अनादि-सिद्ध परब्रह्म अवतार

योग योगेश्वर सद्गुरुदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज

अद्भुत दिव्य-जीवन गाथा

श्रीमद्भगवद्गीता (हिन्दी) सहित

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

विनम्र निवेदन

जिन भाग्यशाली महापुरुषों ने आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव प्रभु रामलाल जी महाराज के स्थूल चरण कमलों का सान्निध्य प्राप्त कर दिव्य समाधि द्वारा परमानन्द का लाभ उठाया था उन के श्री चरणों में सत्संग करने का सौभाग्य श्री सद्गुरुदेव प्रभु रामलाल जी महाराज द्वारा दीक्षित इस सेवक को भी हुआ। श्री योग योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज की दिव्य एवं अद्भुत कृपा लीला से द्रवीभूत होकर, इन कृपा सागर की प्रेरणा शक्ति से और उन ब्रह्मलीन महापुरुषों के निजी दिव्य अनुभवों पर आधारित निम्नलिखित पुस्तकों की सत्य घटनाओं की सहायता से, इस सेवक ने योग योगेश्वर श्री सद्गुरुदेव प्रभु रामलाल जी महाराज की 'अद्भुत दिव्य–जीवन गाया' को कम्प्यूटर सी डी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, ताकि जो प्राणी इस महान् शक्ति के केन्द्र श्री प्रभु जी महाराज के स्थूल दर्शनों से वंचित रहे हैं, उन प्रभु दर्शन अभिलाषी आत्माओं को भी किसी प्रकार, इन श्री करुणासागर प्रभु जी की दिव्य लीलाओं का परिचय प्राप्त हो सके और वे अध्यात्म पथ पर आगे बढ़ कर कल्याण को प्राप्त कर सकें। पुस्तक–सूची इस प्रकार है

(1) ''श्री सद्गुरुदेव प्रभु रामलाल जी महाराज की स्वहस्त लिखित कथाएँ''
–प्रकाशक : श्री सिद्ध गुफा सँवाई एत्मादपुर (आगरा) (उ0प्र0)
(2) ''जीवन तत्त्व साधन'' आविष्कारकः श्री प्रभु रामलाल जी महाराज
–प्रकाशक : श्री सिद्ध गुफा सँवाई एत्मादपुर (आगरा) (उ0प्र0)
(3) ''योग भक्ति दर्पण एवं योगसिद्धि'' मुख्याधिष्ठाता पं0 रामलाल जी महाराज
–प्रकाशक : श्री रघुवीर राज जी मलहोत्रा, होशियार पुर (पंजाब)
(4) ''नेत्र–ज्योति–प्रकाशिनी नेति : लेखक ब्रं0 गोपालानन्द जी महाराज
–प्रकाशक : प्रभु श्री रामलाल जी महाराज
(5) ''सँवाई के चमत्कारिक चरित्र'' लेखक : प्रधान योगाचार्य श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
–प्रकाशक : श्री सिद्ध गुफा सँवाई एत्मादपुर (आगरा) (उ0प्र0)
(6) ''श्री योगमहादिव्य रामायण'' लेखक : प्रधान योगाचार्य प्रो0 चमन लाल जी महाराज
–प्रकाशक : योग साधन आश्रम, होशीयार पूर (पंजाब)
(7) ''योग दिव्य दर्शन'' लेखक व प्रकाशकः प्रधान योगाचार्य श्री देवीदयाल जी महाराज
(8) ''दिव्य जीवन दर्शन'' लेखक : प्रधान योगाचार्य श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
–प्रकाशक : योगाचार्य डा0 दास लाल जी ब्रह्मचारी
(9) ''ब्रं0 गोपालानन्द व उन के ध्यानानुभव''
–लेखक : प्रधान योगाचार्य श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
(10) ''योगिराज श्री मुलखराज जी'' लेखक : प्रधान योगाचार्य श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
–प्रकाशक : योगाचार्य जगदीश गर्ग
(11) ''योग का साक्षात्कार'' लेखक : प्रधान योगाचार्य श्री देवीदयाल जी महाराज
–प्रकाशक : दिल्ली योग सभा, दिल्ली।
(12) ''आठ योगी'' लेखक : प्रधान योगाचार्य श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
–प्रकाशक : श्री सिद्ध गुफा, सँवाई, एत्मादपुर (आगरा)
(13) ''समाधिस्थ–योगिनियाँ'' लेखक : प्रधान योगाचार्य श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
–प्रकाशक : श्री सिद्ध गुफा, सँवाई, एत्मादपुर (आगरा)
(14) ''महायोगी की लोकयात्रा'' लेखक : योगाचार्य (डा0) दासलाल जी ब्रह्मचारी
–प्रकाशक : श्री सिद्ध गुफा सँवाई, एत्मादपुर (आगरा)
(15) ''गुरुदेव वचनामृत'' सम्पादक : (डा0) दास लाल जी ब्रह्मचारी योगाचार्य
–प्रकाशक : श्री सिद्धगुफा सँवाई, एत्मादपुर (आगरा)
(16) ''दिव्य आत्मकथा तथा वंशावली श्री रामलाल जी महाराज'' लेखक व प्रकाशकः योगाचार्य राजेन्द्र गुप्ता व सन्तोष पुष्कर्णा जी योग साधन केन्द्र, मोहाली (पंजाब)
(17) ''श्री हरि गीता'' लेखकः व प्रकाशकः ब्रह्मलीन पं॰ श्री दीनानाथ भार्गव ।

तेरा तुझको अर्पण

श्री महाप्रभु भगवान सदाशिव महाराज जी के पुनीत चरणों में समर्पित है यह अनादि–सिद्ध परब्रह्म अवतार प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की ''अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा।'' शरणम्, शरणम्, शरणम्।

मुझे तूने दाता बहुत कुछ दिया है। तेरा शुक्रिया हैं, तेरा शुक्रिया है।

तेरा ही दिया, मैं ने खाया पिया है, तेरा शुक्रिया है, तेरा शुक्रिया है।।

पताः प्रो० रधुनन्दन लाल सूद

श्री प्रभु चरण सेवी बालक

रधुनन्दन सूद

(संकलन कर्त्ता)

C/o- SOOD DHIRENDRA, B.E., MBA (Tech)

MANAGING DIRECTOR- RAMA ASSOCIATES,

Rangnam Apartment, Rajthewi, 521/3-4, Siayuthya Soi-2, PHAYATHAI, BANGKOK- 10400 (THAILAND) Fax.: +66-2-640-1178

Ph.: +66-818285416; +66-840911000

प्रकाशक :

योग योगेश्वर रामलाल जी महाराज का जन्मस्थान 764/X-4 कटरा व कूचा

भाई सन्त सिंह समीप हिन्दु कॉलेज अमृतसर (पंजाब) Ph.: 0183-2532058

प्रार्थना:– इस के प्रथम संस्करण की प्रुफ रीडिंग श्री देवेन्द्र ब्रह्मचारी योग साधन आश्रम, आर के पूरम सै०–4 नई दिल्ली, वालों ने बड़े परिश्रम से की थी, उसके लिए उन्हें साधुवाद। गत पांच वर्षो में कई प्रभु –प्रमी भाई–बहनों ने फोन द्वारा इस द्वितीय संस्करण के लिए अपने सुझाव दिए हैं। इस के लिए उनका बहुत–बहुत धन्यवाद।

Free-Websit : www.sriramalenze.com

सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

प्रथम संस्करण : रामनवमी पर्व दिनांक (14.04.2008)

द्वितीय संस्करणः रामनवमी पर्व दिनांक (20.04.2013)

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

अनुक्रमणिका

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ अंक
A	प्राक्कथन	I-III
B	वंशावली	IV-VI
C	भविष्यवाणी	VII
पहला अध्याय	**अद्भुत करुणामय बाललीला**	**1 से 10**
१.१	भगवान का प्राकट्य (ई सन् 1888)	1
१.२	श्री प्रभु रामलाल जी महाराज की जन्म कुण्डली वाग्रहस्थिति	1–3
१.३	यह कौन आए रे (भजन)	3
१.४	संस्कारी वृद्धा को अविनाशी स्वरूप प्रदान	3
१.५	साधु सत्संग एवं सम्पूर्ण ज्योतिष विद्या व जड़ी–बूटी ज्ञान	4
१.६	सिद्ध द्वारा सत्कार (ई0 सन् 1896)	4
१.७	'रामतीर्थ' गमन	5–6
१.८	विद्या ग्रहण यात्रा (आयु0 12–14 वर्ष)	6–8
१.९	शुभ विवाह संस्कार (ई0 सन् 1903)	8
१.१०	पं0 श्री गंडाराम जी का देहावसान (ई0 सन् 1907)	8–9
१.११	प्रतीकोपासक	9–10
१.१२	प्रभु महिमा (भजन)	10
१.१३	भय भला किस बात का (भजन)	10
दूसरा अध्याय	**अद्भुत सद्गुरुखोज यात्रा**	**11 से 24**
२.१	शिवलीन अवधूत योगी श्री कृपालानन्द जी से मिलन	11–14
२.२	श्री प्रभुजी की जयराम से भेंट	14
२.३	श्री प्रभु जी द्वारा राजमाता (काठगोदाम) को दीक्षा	14–15
२.४	बन तीर्थ बन	15–17
२.५	जसपुर के कुम्हार बालक पर प्रभु कृपा	18
२.६	अवधूतानी शलमा	18–20

२.७	जयराम का जिह्वा चापल्य	20–21
२.८	सँवाई (आगरा) में प्रभु पदार्पण (ई सन् 1909)	21
२.९	काशीजी में भगवान शंकर जी की पूजा	21
२.१०	एक संस्कारी देवी पर प्रभु कृपा	21–22
२.११	पीत वस्त्रधारी ब्रह्मचारी	22–23
२.१२	भैरवी–चक्र	23–24
२.१३	भक्त की पुकार (हे मेरे गुरूदेव करूणासिंधु .....)	24

तीसरा अध्याय — अद्भुत नर्मदा परिक्रमा — 25 से 37

३.१	नर्मदा परिक्रमा मण्डली	25
३.२	हरिराम शर्मा (हरिहरानन्द जी महाराज) का जीवन दर्शन	25
३.३	श्री प्रभु रामलाल जी महाराज द्वारा प्रेतग्रस्त मन्दिर का उद्धार	25–26
३.४	ब्रह्मणयुवक हरिराम को शरण प्रदान	26–27
३.५	पूर्ण समर्पित हरिहरानन्द जी पर सद्गुरूदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का अपार अनुग्रह रूपी आशीर्वाद	27–28
३.६	भय देने वाली रूहों से रक्षा	28–29
३.७	खप्पर वाले साधु का गर्वचूर्ण	29–30
३.८	भैरवसिद्ध महात्मा पर अनुग्रह	30–31
३.९	वनप्रस्थी दम्पति योग दीक्षा	31–31
३.१०	दम्पति को योग दीक्षा व साध्वी से मिलाप	32
३.११	जल में समाधिस्थ योगी	32–33
३.१२	मुखराम और कृष्णानन्द की मन्त्र साधना	33
३.१३	देवरहा बाबा पर कृपा व नासिक में प्रभु लीला	33–34
३.१४	नासिक के भक्त शिवनाथ की योग दीक्षा	34
३.१५	श्री पुष्करराज यात्रा	35–35
३.१६	अवधुतानी कालिका से भेंट	35–36
३.१६	प्रभु! भाव के भूखे (भजन) हे योगेश्वर प्रभु रामलाल	36–37

चौथा अध्याय — अद्भुत कृपा प्रसंग — 38 से 50

४.१	पटना में श्यामनारायण वकील की योग दीक्षा	38
४.२	निर्दोषी ब्राह्मण बालक की मृत्यु दण्ड से रक्षा	39
४.३	हरिहरराय जज की वैराग्यपूर्ण अवस्था व प्रभु साक्षातकार	39–41
४.४	तपस्वी हरनामदास को योग समाधि प्रदान	41–42

४.५	फिरोजाबाद के स्टेशन मास्टर पर कृपा	39
४.६	योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की परम कृपा पात्रा योगिनी रामरति को दिव्य समाधि का दान	42–44
४.७	योग योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज की परम कृपा पात्रा 'आत्म समर्पित' रामा का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव	44–48
४.८	ध्यान योग द्वारा नशों से छुटकारा	48–49
४.९	गोहाटी की अवधूतानी द्वारा स्वागत्	49–50
४.१०	दूसरी अवधूतानी हरिहरानन्द द्वारा परास्त	50

पाँचवाँ अध्याय — घोर वन-यात्रा आसाम — 51 से 60

५.१	गणक से मिलाप	51
५.२	परशुराम कुण्ड की यात्रा और नागाओं द्वारा अपहरण	51–52
५.३	घोर वन यात्रा 'मय ग्राम' (आसाम)	52–55
५.४	राजा रणसिंह पर कृपा	55–56
५.५	सिद्ध योगी से मिलाप व वर्तालाप	56–57
५.६	योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की नेपाल यात्रा	57–58
५.७	अघोरी ज्ञानगिर द्वारा वैरागी को वाक् सिद्धि	58–59
५.८	श्री प्रभु रामलाल जी महाराज नेपाल के राजदरवार में	59–60

छठा अध्याय — महाप्रभु भगवान सदाशिव मिलाप — 61 से 68

६.१	महाप्रभु भगवान सदाशिव जी के चरणों में आत्मनिवेदन	61
६.२	अवतारी बालक श्री रामलाल जी को श्री सद्गुरुदेव महाप्रभु भगवान सदाशिव जी महाराज का साक्षात्कार, दिव्य अनुभव व अष्टाँग योग सिद्धी की कृपा प्राप्ति	61–67
६.३	कर्म योगी–वीर योगी	67–68
६.४	करूणावतार योगेश्वर प्रभु राम का हिमालय से लौटना	68
६.५	भजन (तेरी हाजीर में बुलाया गया हूँ.....)	68

सातवां अध्याय — सवाँई के दिव्य चमत्कार — 69 से 81

७.१	परम योगिनी रामरती को प्रभु प्रेरणा	69–70

७.२	बरहन ग्राम के ठाकुर दास पर प्रभु कृपा	71
७.३	सवाँई में द्वितीय पदार्पण (ई. सन् 1911)	71
७.४	सिद्ध गुफा का निर्माण व तालाब में शिक्तपात	71–72
७.५	श्री प्रभु जी के दो आज्ञाकारी कुत्ते	72
७.६	श्री महादेव जी के रूप में प्रभु दर्शन	72
७.७	विश्वरूप दर्शन	72–73
७.८	सवाँई के कुएँ में गंगा जी के दर्शन	73
७.९	कृपा की चवन्नी	73
७.१०	अद्भुत माला	73–74
७.११	ठाकुर दास को चार पुत्रों का दान	74
७.१२	श्री प्रभु जी का एक ही समय तीन शरीर प्रकटाना	74–75
७.१३	प्रभु कृपा से बुद्धि का विकास	75
७.१४	यदृच्छा गति	75
७.१५	ठा0बाबूराम को चरण पादुका का दान	76
७.१६	कृषक पर कृपा	76–77
७.१७	जवाहर पहलवान का गर्व	77
७.१८	सिद्धगुफा सवाँई से योग योगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का आकाश गमन (ई सन् 1913)	77–79
७.१९	श्री प्रभुजी का हरिद्वार में आगमन् और योग प्रचार	79
७.२०	हरिद्वार 'कुम्भ' पर लोगों को दर्शन व शिक्षा	79–80
७.२१	घरवालों का योगेश्वर राम को ढूँढ़ने हरिद्वार 'कुम्भ' पर जाना (ई.सन् 1915)	80
७.२२	अमृतसर में चाची के साथ हुई अलौकिक घटना	80–81
७.२३	भक्त की प्रार्थना–सर पे मेरे अगर हाथ रख दो प्रभु.....	81
७.२४	भजन– नजर भर देख ले मुझ को.....	81

'अद्भुत दिव्य-जीवन गाथा'

आठवां अध्याय — योग शक्ति सम्पन्न महापुरुष — 82 से 97

८.१	गृहस्थी रूप में योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज	82
८.२	डा0 रामगोपाल (ब्र0 गोपालानन्द जी) का जीवन दर्शन	82
८.३	श्री सद्गुरुदेव पं0 रामलाल जी महाराज के परम प्रिय कृपा पात्र ब्र0गोपालानन्द जी को प्रभु दर्शन व ध्यानानुभव	82-84
८.४	भैरव सिद्ध महात्मा को दण्ड	84-86
८.५	महन्त बालकृष्ण दास पर अनुग्रह	86-87
८.६	ब्र0 गोपालानन्द जी को महाप्रभु भगवान सदाशिव के दर्शन	87
८.७	गुरु नानक देव जी के दर्शन और बलाकर्षक साधन की प्राप्ति	87-88
८.८	ब्र0 गोपालानन्द जी महाराज को जगदम्बा कालिका के स्थूल दर्शन	88
८.९	ब्र0 गोपालानन्द जी की माता को सद्गति	88-89
८.१०	ब्र0 गोपालानन्द जी महाराज को सृष्टि की उत्पत्ति का दर्शन	89
८.११	ब्र0 गोपालानन्द जी के ध्यान में पूर्व जन्म ज्ञान व प्रारब्ध क्षय	89-90
८.१२	ब्र0 गोपालानन्द जी महाराज को भगवान कृष्ण चन्द्र जी महाराज के दर्शन व आकर्षण विद्या व ज्ञान	90
८.१३	ब्र0 गोपालानन्द जी को शाबरी के दर्शन व मूर्च्छा कुम्भक का ज्ञान	90-91
८.१४	ब्र0 गोपालानन्द जी को गुरु-भक्तों की गति का अनुभव	91-92
८.१५	सिद्ध योगी का प्रभु दर्शन करने अमृतसर आना	92-93
८.१६	आनन्दकन्द श्री सत्गुरुदेव पं0 रामलाल जी महाराज की परम कृपापात्रा महात्मा ऋषिदेवी जी का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव	93-94
८.१७	महात्मा ऋषिदेवी जी के ध्यानानुभव	94-95
८.१८	प्रयाग के कुम्भ स्नान पर मैंडु मल्लाह पर कृपा	95-96
८.१९	योग साधन आश्रम छेहरटा (पंजाब) का निर्माण ई.सन्-1920	96-97
८.२०	'छेहरटा आश्रम' की भूमि पर हकशुफे का केस	97

नवां अध्याय — पूर्ण समर्पित महापुरुष — 98 से 113

९.१	आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव पं0 रामलाल जी महाराज के परम प्रिय कृपा पात्र 'राजा' मुलखराज जी का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव	98

९.२	श्री प्रभु जी का साक्षात्कार (ई सन् 1920)	98-100
९.३	आनन्दकन्द श्री प्रभु जी महाराज की महान् कृपा	100
९.४	श्री प्रभु जी की अपार कृपा द्वारा पूर्व जन्म का ज्ञान	100-101
९.५	श्री मुलखराज जी की तुरीय स्थिति की दिव्य घटना	101
९.६	उड्डयन गति द्वारा काँगड़े के पहाड़ से नीचे आना	102
९.७	श्री मुलखराज जी की राजयोग अवस्था	102-103
९.८	दिव्य दृष्टि का प्रादुर्भाव	103-105
९.९	वस्त्र स्पर्श से भूत का उतरना	105-106
९.१०	कुम्हार का माल उठाकर ले जाना और श्री प्रभु जी का रोकना	106-107
९.११	योगी की निर्भय अवस्था	107-108
९.१२	मजीठ मंडी अमृतसर वाले भक्त पर प्रभु कृपा	108-109
९.१३	माला देवी का उद्धार	109-110
९.१४	श्री मुलखराज जी महाराज की लाहौर में पूर्वजन्म वाले महात्मा से भेंट	110-111
९.१५	कुण्डलिनी जागरण	111
९.१६	सिद्धो की पहचान	111-112
९.१७	तीसरे नेत्र की प्राप्ति	112
९.१८	गजरक्षा की भाँति भक्त वत्सल प्रभु जी का नँगे पाव धाना	112-113
९.१९	भजन (मेरा आप की दया से.....)	113

दसवां अध्याय — अद्भुत काश्मीर यात्रा — 114 से 125

१०.१	आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव पं० रामलाल जी महाराज की कृपा पात्रा 'चतुर्भुजा' द्रौपदी देवी जी का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव	114
१०.२	बहन द्रौपदी देवी जी पर परम अनुग्रह	114-115
१०.३	'चतुर्भुजा' द्रौपदी जी के आह्वान् पर भगवान कृष्ण का भोग लगाना	115
१०.४	'चतुर्भुजा' द्रौपदी जी पर कामी पुरुष की कुदृष्टि का फल-प्राणान्त	116
१०.५	अबोध बालक घुग्घू पर श्री प्रभु जी की अनुपम कृपा	116
१०.६	घूग्धू द्वारा माता को प्रभु दर्शन	117

१०.७	घूग्धू का 'चतुर्भुजा' द्रौपदी जी को श्राप	117–118
१०.८	श्री प्रभु जी द्वारा द्रौपदी जी को देवियों में योग प्रचार कार्य की आज्ञा	118
१०.९	श्री प्रभु जी के कृपापात्र गृहस्थ संत श्री पारस नाथ जी का जीवन दर्शन	119
१०.१०	ऋषिकेश आश्रमका कुआँ	119–120
१०.११	सवाँई (आगरा) में प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का तृतीय पदार्पण	120
१०.१२	भजन (प्रभु आना तोरा युग–युग अन्दर.....)	120
१०.१३	आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की 'लोक कल्याण' काश्मीर यात्रा	120–125
१०.१४	भजन (संसार है गुण गा रहा.....)	125

ग्यारहवां अध्याय — योग विभूति साक्षात्कार — 126 से 160

	सद्गुरुदेव पं. रामलाल जी महाराज के परम प्रिय कृपा पात्र श्री चन्द्रमोहनजी महाराज का जीवन दर्शन	126
११.१	पूर्व जन्म–साक्षात्कार	126–127
११.२	श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का जन्म एवं शिक्षा	127–128
११.३	स्वप्न में सद्गुरुदेव श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन व आशीर्वाद	128
११.४	योग साधन आश्रम ऋषिकेश में श्री प्रभु जी के दर्शन एवं दीक्षा	128–129
११.५	मानिकचन्द दलाल पर अद्भुत प्रभु कृपा	129–135
११.६	जीवन–तत्त्व साधन	135
११.७	विशेष लाभ प्राप्ति के नियम	135
११.८	जीवन तत्त्व साधन–पहली क्रिया सर्वोत्तान	135
११.९	सर्वोत्तान करने की विधि	136
११.१०	वैज्ञानिक आधार	136–139

११.११	दूसरी क्रिया : स्कन्ध चालन	139-140
११.१२	वैज्ञानिक आधार	140-142
११.१३	तीसरी क्रिया : पग चालन	142
११.१४	वैज्ञानिक आधार	143-145
११.१५	चौथी क्रिया : नाभि चालन	145
११.१६	वैज्ञानिक आधार	146-147
११.१७	पाँचवी क्रिया : जानू प्रसार	147-148
११.१८	वैज्ञानिक आधार	148-151
११.१९	छठी क्रिया : बाल मचलन	151-152
११.२०	वैज्ञानिक आधार	115-153
११.२१	सातवीं क्रिया : बाल ध्यान	153
११.२२	वैज्ञानिक आधार	153-154
११.२३	आठवीं क्रिया : नाड़ी संचालन	154
११.२४	वैज्ञानिक आधार	154-155
११.२५	नाड़ी संस्थान	155-159
११.२६	नवीं क्रिया : उत्क्षेपण	159
११.२७	वैज्ञानिक आधार	159-160

बारहवां अध्याय — दिव्य विभूति योग — 161 से 170

	श्री सद्गुरुदेव पं. रामलाल जी के प्रिय कृपा पत्र श्री नृसिंह मूर्ति जी महाराज का जीवन दर्शन	
१२.१	बाल्यकाल तथा दीक्षा	161-162
१२.२	योग साधन आश्रम ऋषिकेश में प्रभु दर्शन और दीक्षा	162
१२.३	अटूट श्रद्धा की घटना	162-163
१२.४	श्री श्रीकृष्ण भक्ति बरदान	163
१२.५	एक विलक्षण घटना	163
१२.६	विद्याप्रकाश पर अद्भुत कृपा	163

१२.७	श्री नृसिंह मूर्ति जी की गृह वापसी	163-164
१२.८	श्री नृसिंह मूर्ति जी की धर्मपत्नी को प्रभु दर्शन	164
१२.९	श्री नृसिंह मूर्ति जी के साथ हुई दिव्य घटना	164
१२.१०	शंकराचार्य जी द्वारा प्रभु महिमा	164
१२.११	प्रभु चरणों में रहने से दुःख दूर	165
१२.१२	चरित्रहीन सांई दास	165-166
१२.१३	दुश्चरित्रा महिला पर प्रभु कृपा	166-167
१२.१४	भीषण बाढ़ से भक्त और गांव की रक्षा	167
१२.१५	शान्ति स्वरूप के बालक की रक्षा	168
१२.१६	जसवन्त को प्रभु दर्शन	168
१२.१७	तत्त्व विजयी महासिद्ध हरिहरानन्द के दर्शन	168-169
१२.१८	समाधिस्थ बिहारीलाल के श्री प्रभु जी ने कारज निपटाये	169-170
१२.१९	सतगुरू महिमा	170

तेरहवां अध्याय — प्रभु कृपा द्वारा लोक कल्याण — 171 से 182

श्री प्रभु रामलाल जी महाराज के कृपा पात्र श्री रतन लाल जी (स्वामी कृष्णा नन्द जी) का जीवन परिचय

१३.१	श्री सद्गुरू जी की खोज	171
१३.२	श्री रतनलाल जी (स्वामी कृष्णानन्द) महाराज पर प्रभु कृपा	171-172
१३.३	श्री रतनलाल जी (स्वामी कृष्णानन्द) को प्रभु शरण प्रदान	172
१३.४	ध्यान में चाकू की तलाश	172-173
१३.५	सवाँई में श्री प्रभु जी का चौथा पदार्पण (ई० 1930)	173-174
१३.६	अन्धी कन्या को ज्योति दान	174-175
१३.७	श्री प्रभु जी का जम्मू में चित्र पकड़ाना	175-176
१३.८	जीभ काटने पर प्रभु रक्षा	176-177
१३.९	वन यात्रा तैयारी पर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज को आज्ञापत्र	177
१३.१०	प्रभु कृपा की वर्षा	177-178

१३.११	सरदार टहल सिंह द्वारा प्रभु लीला	178-179
१३.१२	ब्र० गोपालानन्द महाराज का ध्यान योग से शक्ति प्राप्त करना	179-182
१३.१३	भजन (अगर प्रीतम को पाना है.....)	182

चौदहवां अध्याय — अद्भुत योग भक्ति दर्पण — 183 से 202

१४.१	सद्गुरुदेव श्री प्रभु रामलालजी महाराज के प्रिय भक्त नारायण दास जी महाराज का जीवन परिचय	183
१४.२	भक्त नारायण दास जी महाराज को प्रभु शरण प्रदान	183
१४.३	भक्त नारायण दास जी महाराज के दिव्यानुभव	184-185
१४.४	लाहौर में श्री मुलखराज जी महाराज व श्री गोपालानन्द जी महाराज द्वारा योग प्रचार	185-186
१४.५	भक्त नन्दलाल जी को जीवन दान	186
१४.६	श्री प्रभु जी का लाहौर में जमीन न खरीदने का आदेश	186-187
१४.७	लाहौर के पं. अमरनाथ जी पर प्रभु अनुग्रह	187-188
१४.८	लाहौर के असाध्य रोगी पर प्रभु कृपा	188-189
१४.९	श्री प्रभु जी का खूंखार पागल को ठीक करना	189
१४.१०	श्री प्रभु जी के कृपापात्र श्री श्यामलाल जी खन्ना व लाहौर में संकीर्तन की लहर	189-191
१४.११	श्री माधोराम जी पर प्रभु कृपा	192
१४.१२	प्रभु जी का लाहौर में उपदेश-'योग भक्ति दर्पण'	192-201
१४.१३	ब्र० गोपालानन्द जी महाराज द्वारा समाधि में प्राप्त गोलोक की दिव्य आरती पूजन (भावार्थ सहित)	201-202

पन्द्रहवां अध्याय — सिद्धयोग का साक्षात्कार — 203 से 213

	सद्गुरुदेव प्रभु जी रामलाल जी महाराज के कृपापात्र श्री अमरनाथ जी महाराज का जीवन दर्शन	203
१५.१	वाल्यकाल	203
१५.२	श्री अमरनाथ जी महाराज के ध्यानानुभव	203-206
१५.३	श्री प्रभु जी का श्री मुलखराज जी को वरदान	206
१५.४	बाघमती का अमृतमय जल	206

१५.५	श्री नृसिंह मूर्ति जी का राधा प्रेम में भटकना	207–208
१५.६	प्रभु गुफा ब्रह्मपुरी	208
१५.७	प्राकृतिक शर्बत	209
१५.८	कंदमूल प्रसाद	209–210
१५.९	सिद्धलोक के दर्शन	210
१५.१०	जीवन तत्व साधन द्वारा वृकाग्नि का पैदा होना	210
१५.११	नेति–क्रिया	211–212
१५.१२	श्री गोपालानन्द जी महाराज का गोलोक गमन	212–213
१५.१३	श्री प्रभु चरणों में विनय	213

सोलहवां अध्याय — अद्भुत शंका समाधान — 214 से 234

	श्री प्रभु रामलाल जी महाराज द्वारा शंका समाधान	
१६.१	प्रश्न– देश में आपत्ति आ रही है, लोग भूखे हैं। ऐसे समय में योग की आवश्यकता क्यों है और आजकल योग कैसे हो सकता है ?	214–217
१६.२	प्रश्न– योगी नगरों में क्यों आते हैं ?	217–219
१६.३	प्रश्न– जब दिन रात मेहनत करने के बाद भरपेट रोटी नहीं मिलती तो ऐसे समय में योग कैसे हो सकता है ?	219–222
१६.४	प्रश्न– यम नियम सिद्ध किये बिना योग कैसे किया जा सकता है ?	222–225
१६.५	प्रश्न– विषयी, पापी, गृहस्थी, दुर्बल, रोगी, वृद्ध, स्त्री आदि सब लोग योग कैसे कर सकते हैं ?	225–228
16.6	श्री प्रभु जी महाराज का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को अन्तिम पत्र	228–229
16.7	श्री प्रभु जी महाराज का श्री मुलखराज जी महाराज को **अन्तिम दिव्य संदेश**	229
१६.८	श्री प्रभु जी महाराज द्वारा निर्माणकाय का संवरण	229–230
१६.९	श्री प्रभु जी महाराज की अद्भुत दिव्य घटनायें	230–232

१६.१०	श्री प्रभु जी महाराज के प्राण शरीर की शवयात्रा	232
१६.११	श्री स्वामी मुलखराज जी महाराज द्वारा योग प्रचार	232-233
१६.१२	प्रधानयोगाचार्य श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा प्रचार	233
१६.१३	श्री प्रभु जी के 'सिद्ध योग परम्परा' में गद्दी का विधान वर्जित	234
१६.१४	निः स्वार्थ सेवा का स्वरूप	234
१६.१५	यज्ञार्थ भावना	234
१६.१६	भगत की भावना (श्याम आये भी आकर चले भी गये....)	234

सत्रहवां अध्याय योग योगेश्वर प्रभु राम की स्वहस्तलिखित कथायें 235 से 263

१७.१	एकाग्र सुफला	235-238
१७.२	तस्कर	239-240
१७.३	कुबुद्ध	240-243
१७.४	कुमुद	243-246
१७.५	योग सिद्ध धृतराव	246-249
१७.६	चार लड़के गड़वाये	249-250
१७.७	बिजना	250-251
१७.८	हिमालय पाँचल	251-252
१७.९	निषिद्ध कर्मा	253
१७.१०	वेदान्ती	253-254
१७.११	कर्म लक्षमी	255-256
१७.१२	शम्भू	256-257
१७.१३	सुकर्मा	257-259
१७.१४	मर्यादा रानी	259-260
१७.१५	मोह पर	261
१७.१६	मंगल बध ज्ञानी	262-263

'अद्भुत दिव्य-जीवन गाथा'

अठारहवां अध्याय सिद्ध योग परम्परा के कृपामयी संस्मरण 264 से 286

	सिद्धयोग परम्परा के प्रकाशित परमात्म सत्ता के दो दिव्य स्वरूप	264
१८.१	श्री प्रभु राम के योग सिद्धांतों को परिपुष्ट करने वाले सदुपदेश	265-274
१८.२	श्री दुष्यन्तसिंह व सुशीला के दिव्य अनुभव	274-276
१८.३	डाक्टर रविन्द्र कुमार जौहरी के संस्मरण	276-278
१८.४	ईश्वरी प्रसाद खड़हर के संस्मरण	278-279
१८.५	श्री पुष्कर दत्त (पोखर) शर्मा धनानावाले के संस्मरण	279-281
१८.६	ऐसे भी बुलाते हैं.....योग योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज	281-283
१८.७	मनोरमा पर अद्भुत प्रभु कृपा के संस्मरण	283-286

उन्नीसवां अध्याय श्रीमद्भगवद् गीता (हिन्दी) 287 से 339

मंगलमय पहला अध्याय	288-290	विभुति योग दसवां अध्याय	314-316
अमृतमय दूसरा अध्याय	291-995	विश्वमेव दर्शन योग ग्यारहवां अध्याय	317-322
कर्मयोग तीसरा अध्याय	296-298	भक्तियोग बारहवां अध्याय	323-324
ज्ञान कर्म सन्यास योग चौथा अध्याय	299-301	क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग तेरहवा अध्याय	325-326
कर्म सन्यास योग पांचवां अध्याय	302-303	गुणत्रय विभाग योग चौदवां अध्याय	327-328
आत्म उद्धार योग छठा अध्याय	304-306	पुरुषोत्तम योग पन्द्रहवां अध्याय	329-330
ज्ञान विज्ञान योग सातवां अध्याय	307-308	देवी संपदा योग सोलहवां अध्याय	331-332
अक्षर ब्रह्मयोग आठवां अध्याय	309-310	श्रद्धातत्र योग सत्रहवां अध्याय	333-334
परम गुह्य राजविद्यायोग नौवा अध्याय	311-313	मोक्ष सन्यास योग अठारहवां अध्याय	335-339

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

प्राक्कथन

श्री मद्भगवद् गीता में योगेश्वर भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने स्वयं श्री मुख से उद्घोष किया है कि–हे अर्जुन :–

"यदा यदा ही धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम"।।

अर्थात्:–जब–जब (लोगों की) धर्म में अरुचि और अधर्म में रुचि बढ़ जाती है, तब–तब मैं स्वयं अपने (प्रकृति) रुप की रचना करता हूँ।

भारत देश की ऋषि सन्तानों को नास्तिकता और भोग विलास आदि अधर्माचारण में फँसी देख, उन के कल्याणार्थ व प्रभु दर्शन अभिलाषी संस्कारी आत्माओं को अपनी दिव्य और चमत्कारिक लीलाओं द्वारा परमानन्द प्रदान करने हेतु, अनादि सिद्ध परब्रह्म परमात्मा स्वयं योग योगेश्वर श्री सद्गुरुदेव पं0 रामलाल जी महाराज के रूप में ई0 सन् 1888 में अमृतसर नगर (पंजाब) में पूज्य पाद ज्योतिविंद पंडित गंडा राम जी के घर में माता भागवन्ती जी के गर्भ से प्रकट हुए। इन में जन्म–जात सिद्धियों का वास था। जब यह तीन वर्ष के ही थे तो इनके दर्शन मात्र से एक मरणासन्न वृद्धा स्त्री मृत्युशय्या से उठ बैठी और उस ने पूर्ण स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया। आठ वर्ष की आयु थी तो एक सिद्ध महात्मा ने इन के नन्हें रूप में ईश्वरीय दर्शनों का लाभ प्राप्त किया। इन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञानार्जन 14 वर्ष की अल्प आयु में ही प्राप्त कर लिया था।

श्री प्रभु रामलालजी महाराज छोटी अवस्था से ही पूर्ण सद्गुरु की खोज में लग गये और वे हरिद्वार, ऋषिकेश, आदि स्थलों के वनों में इसी उद्देश्य से पधारे। घर लौटने पर इन के माता पिता ने इन के विरक्त भाव को देख कर इन का विवाह पंद्रह वर्ष की आयु में ही कर दिया, परन्तु श्री प्रभु जी को यह बन्धन प्रभावित न कर सका।

ई0 सन् 1907 में पं0 श्री गंडाराम जी के देहावसान के बाद, श्री प्रभु जी पूर्ण सद्गुरु की खोज का दृढ़ संकल्प धारण कर घर छोड़ कर चले गये। सर्व प्रथम इन्होंने ऋषिकेश, ब्रह्मपुरी, हरिद्वार, काठगोदाम, मुरादाबाद, वनतीर्थवन, जसपुर, अयोध्या, मथुरा, संवाई, काशी, गया, बलिया आदि स्थानों में पदार्पण किया। जसपुर ग्राम में एक कुम्हार बालक को खेचरी की सिद्धि प्रदान की। अयोध्या में दुखिया अवधूतानी शलमा को दिव्य समाधि का दान दिया तथा काशी में भगवान् शंकर की पूजा करने जा रही एक संस्कारी देवी पर दिव्य कृपा की। गया जी में वाम मार्गियों को योग मार्ग में लगाया।

फिर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज 'गया जी' से दक्षिण दिशा में बलिया गये और वहाँ से नर्मदा नदी के साथ–साथ पश्चिम की ओर चले। उस समय इन के साथ शिष्य रूप में एक बड़ी साधु मण्डली भी थी। जनपद ग्राम (बलिया) के एक ग्रामीण ब्राह्मण बालक हरिराम (हरिहरानन्द) की भक्ति, दानशीलता और शूरवीरता पर प्रसन्न हो, उसे योग की उच्च स्थिति तथा योग सिद्धियों का दान प्रदान कर साधु मण्डली का प्रधान बना दिया। इस यात्रा पर श्री प्रभु जी ने अपनी अलौकिक शक्ति से कई भूतग्रस्त स्थानों की शुद्धि द्वारा लोक कल्याण किया। बहुत से तपोनिष्ठ महात्माओं को दर्शन दिये। इसी प्रसिद्ध यात्रा के मध्य दूसरे दिव्य योग शरीर की रचना कर, नासिक नगरी में योग शरीर द्वारा योग प्रचार और संस्कारी भक्तों को शरण प्रदान कर फिर इस योग शरीर को नासिक में त्याग कर दूसरे शरीर से उत्तर की ओर शिष्यमण्डली सहित चल पुष्करराज महातीर्थ में पहुंचे।

वहाँ से फिर संस्कारी जीवों के कल्याणार्थ पूर्व दिशा की लंबी यात्रा के द्वारा पटना पधारे। वहाँ पर श्याम नारायण वकील को शरण प्रदान कर, एक निर्दोष ब्राह्मण बालक को फांसी के दण्ड से मुक्त करवाया। फिर हरिहरराय जज पर कृपा कर और हरनाम दास तपस्वी को सिपाहियों के चंगुल से छुड़ा कर योग समाधि का दान दिया। पटना से श्री प्रभु जी मण्डली के साथ बंग–बिहार सीमा पर जमुनियाँ घाट के समीप चम्पारण पधारे। वहाँ पर इन्होंने एक कुसंग–ग्रस्ता लड़की रामरती को सन्मार्ग पर लगाया और योग समाधि का दान प्रदान कर उसे जगत्पूज्या बना दिया। तत्पश्चात् बंगाल देश पधारे।

बंग देश में आशुतोष चटर्जी नामक जज और उस की धर्मपत्नी रामा की सेवा पर प्रसन्न हो कर उन्हें शरण प्रदान कर, रामा को योग की उच्चस्थिति का दान प्रदान किया। बंग देश से श्री प्रभु जी गोहाटी (वर्त्तमान गोवाहाटी) पधारे। गोहाटी की अवधूतानी पर कृपा कर सारी साधु मंडली को गोहाटी में छोड़ कर मुखराम और कृष्णानन्द को साथ लेकर आसाम देश के भयंकर बनों, जंगली हाथियों, नर संहारी मनुष्यों और भयंकर वन पशुओं से संकीर्ण स्थलों में से होते हुए ब्रह्मपुत्र नदी को पार कर ''मय'' नामक ग्राम में राजा रणसिंह को शरण प्रदान कर वहां के सिद्ध योगीगुरु से मिले।

वहाँ से गोहाटी वापिस आकर, सारी साधु मंण्डली के साथ श्री प्रभु जी ने नेपाल की यात्रा की। नेपाल के राजपरिवार पर अनुग्रह कर तथा मण्डली को त्याग कर व हरिहरानन्द को समाधिस्थ कर, अकेले ही दूर उत्तर की ओर चल पड़े और महाप्रभु भगवान सदाशिव महाराज जी के श्री चरणो में, प्रभु श्री रामलाल जी ने आत्मनिवेदन किया और पास की झाड़ी के नीचे जाकर सो गए।

महाप्रभु भगवान सदा शिव स्वयं प्रभु श्री रामलाल जी को लेने के लिए सुमेरु पर्वत से वहाँ पधारे और श्री प्रभु जी को वे अपने साथ आकाश मार्ग से अपनी परमपावनी अगम्य गुफा में ले गये। वहाँ पर श्री प्रभु रामलाल जी ने श्री महाप्रभु जी से कुछ वर्षों तक योग की पूर्ण शिक्षा मर्यादा रूप से प्राप्त कर और उन की आज्ञा को शिरोधार्य कर सुमेरु पर्वत से ई0 सन् 1911 में आकाश–मार्ग द्वारा बस्तियों में पदार्पण किया ।

लगभग दो साल बाद, जब श्री प्रभु जी हिमालय से लौट कर किसी गाड़ी में जमुनियाँ घाट की तरफ से निकल रहे थे, तो यह सब रामरती पहले ही ध्यान में देख कर समाधिस्थ अवस्था में बोल उठी और अपने पास वाले लोगों से उस ने कहा–''अरे! जाओ स्टेशन भाग जाओ, इस गाड़ी में परम कृपासागर मेरे गुरुदेव श्री प्रभु जी आ रहे हैं। उन को जल्दी से लिवालाओ, ताकि मैं आँखें खोल कर उन के दर्शन कर अपने जीवन को सफल बना लूँ''। वहाँ कुछ दिन रहने के पश्चात् श्री प्रभु जी संवाई (आगरा) पधारे।

संवाई के इस द्वितीय पदार्पण पर श्री प्रभु जी ने स्वरचित 'जीवन तत्व साधन' नामक क्रियाओं द्वारा वहाँ के लोगों के दुखों को दूर कर, संवाई के अधिकारी वर्ग को शरण प्रदान कर, दिव्य ध्यान समाधि के दान का प्रवाह प्रवाहित कर, वहां अनन्त दिव्य लीलायें की। फिर ई0 सन् 1913 में सिद्धगुफा संवाई (आगरा) से आकाश गमन कर हरिद्वार, ऋषिकेश आदि स्थानों पर पदार्पण कर योग प्रचार करने लगे।

ई0 सन् 1915 के हरिद्वार कुम्भ पर इन के परिवार वालों ने इन्हें पहचान लिया और अपने साथ अमृतसर ले आये। वहां सभी को आठ वर्ष बाद के इन के मिलाप पर

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

बड़ा आनन्द हुआ। अब श्री प्रभु जी वनखण्डी रुप (जटाधारी) को छोड़कर विप्रवेश में रहने लगे। योग योगेश्वर प्रभु ने एक साधारण गृहस्थी के रूप में अमृतसर रहते हुए लोक कल्याण के तीन महान कार्य किये जो समाज के पूर्ण स्वास्थ्य लाभ तथा आत्मोत्थान के लिये थे। सर्वप्रथम इन्होंने रोगों की निवृत्ति के लिये 'जीवन तत्व साधन' का समाज में प्रचार किया। दूसरे, योग की क्रियाओं को निःशुल्क जन सामान्य तक पहुंचाने के लिए 'योग साधन आश्रमों' की स्थापना की। तीसरा अनुपम कार्य श्री आनन्दकन्द प्रभु जी ने, तीव्र शक्तिपात द्वारा कुण्डलिनी जागरण और शरण में आने वाले श्री हरिहरानन्द, रामरत्ती, रामा चटर्जी, अवधूतानि गोहाटी, राजा रणसिंह, ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी, महन्त बालकृष्ण जी, महात्मा ऋषिदेवी, अबोध बालक घुग्घू, श्री मुलखराज जी, बहन द्रौपदी देवी, मैडुं मल्लाह, श्री चन्द्रमोहन जी, श्री नरसिंह मूर्ति जी, भक्त नारायण दास जी, श्री कृष्णानन्द जी, भक्त अमरनाथ जी, श्री बिहारी लाल जी, श्री माधोराम जी, श्री श्याम लाल खन्ना, श्री नन्दलाल जी आदि अनेक संस्कारी जीवों को दिव्य समाधि का दान प्रदान कर उन के अलौकिक अनुभवों द्वारा सिद्धयोग की परम्परा को स्थापित किया।

श्री मुलखराज जी का जीवन सद्गुरुदेव योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की चरण–शरण (ई0सन् 1921) में आने के बाद एकदम अलौकिक बन गया और वे 10 वर्षो तक लगातार तुरीय स्थिति में रहे। श्री आनन्दकन्द प्रभु जी ने उन्हें अपना स्वरूप बना कर ई0 सन् 1938 में अपने स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया। श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने स्वयं श्री महाप्रभु भगवान सदा शिव के आदेश अनुसार सुमेरु पर्वत पर पुनः 51 वर्ष की आयु में जाते समय श्री मुलखराज जी को 12 जुलाई ई0 सन् 1938 (मंगलवार) व्यासपूजा के अवसर पर एक दिव्य संदेश दिया और अपने प्राकृत शरीर में 20 दिन के लिये अपने प्राण–कोश छोड़ कर दूसरे योग दिव्य शरीर से हिमालय प्रस्थान कर गये। बीसवें दिन (31 जुलाई ई सन् 1938) को योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज ने अपने प्राकृत शरीर से अपने प्राण कोश को खींच कर इसे भी छोड़ दिया। रात दो–बजे के बाद श्री प्रभु जी ने अपना भौतिक शरीर छोड़ा, उस समय इन के तीन शिष्य–श्री मुलखराज जी, श्री चन्द्रमोहन जी तथा द्रौपदी वहन जी इन के पास थे। श्री प्रभु जी ने उन्हें कहा–''मांगो, जिस को जो मांगना हो'' सभी ने कृपा की याचना की। श्री प्रभु जी ने सभी के सिर पर हाथ रख कर उन्हें आशीर्वाद दिया और लगभग रात दो बजे सो जाने की आज्ञा दी। प्रातः चार बजे जब भक्त शिष्य उठे तो उन्होंने देखा कि श्री प्रभु जी महाराज अपना प्राणकोश वाला भौतिक शरीर छोड़ चुके थे। सभी भक्तों को यथा संभव सूचना दी गई। वहाँ अगले दिन दोपहर तक लगातार संकीर्तन चलता रहा। उस समय सब भक्तों ने वहाँ तीन अलौकिक व अद्भुत घटनायें सुनी, फिर श्री प्रभु जी के दिव्य शरीर को विशाल विमान पर विराजमान करवाकर सारे अमृतसर में संकीर्तन करते हुए विशाल यात्रा निकाली गई और उन के भौतिक शरीर का अन्तिम संस्कार किया गया।

आनन्दकन्द योगयोगेश्वर प्रभु श्रीरामलाल जी महाराज आज भी अपने मूल योगमय शरीर से हिमालय में विराजमान हैं और भक्तों को संकटों से बचाते रहते हैं। आशा है कि श्रद्धालु भक्त समाज करुणावतार श्री प्रभु जी की इस ''अद्भुत दिव्य गाथा'' में वर्णित उन की अपार कृपा लीलाओं के पठन, पाठन, श्रवण व मनन द्वारा सदैव लभान्वित होते रहेंगे और श्री प्रभु जी का श्रद्धापूर्वक स्मरण करने से उन पर करुणासागर श्री प्रभुजी की कृपा सदा बनी रहेगी।

श्री सद्गुरुदेव जी की बालिका–'मनोरमा सूद'

‘अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा’

वंशावली

गोत्र	:	मौद्गल्य	सूत्र	:	कात्यायनी
प्रवर मुख्य	:	अंगीरस ऋषि	वंश	:	जोशी (सारस्वत ब्राह्मण)
शाखा	:	माध्यन्दिनी	पूर्वज	:	पं० हरिराम

पांचवी पीढ़ीः पं० चढ़त राम

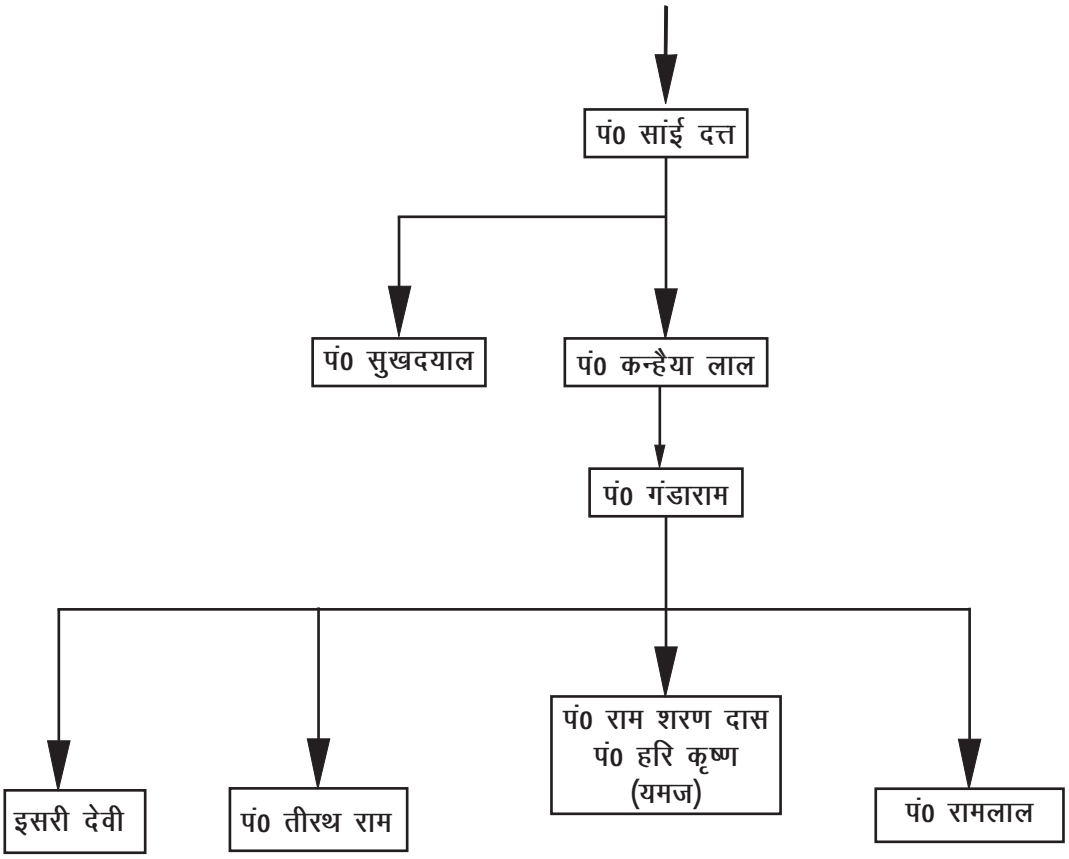

प्राप्त तथ्यों के अनुसार प्रभु जी के पूर्वज पं० हरिराम जी का निवास स्थान जालन्धर जिला के ‘‘त्रिहारा’’ नामक ग्राम में था। बाद में सतलुज नदी की बाढ़ के कारण इन्हें जिला लाहौर के ‘‘नौशहरा’’ ग्राम में जाकर निवास करना पड़ा। इनकी पांचवी पीढ़ी में पंडित चढ़तराम जी ब्राह्मण कुल तिलक विवेकी तथा वैराग्यशील हुए। आपके हृदय में एक पुत्र रत्न होने पर ऋषिवृति धारण करके एकान्त में जाकर केवल परमेश्वर की आराधना में आयु बिताने का संकल्प था। अतः एक दिन ग्राम से बाहर तालाब में स्नान, संध्या – वंदन कर रहे थे तो उसी समय एक सज्जन ने ‘‘पंडित जी को बुलाकर कहा पंडित जी बधाई हो। आपके घर में पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ है।’’ इतना सुनते ही वह बोले ‘‘भक्त वत्सल भगवान की कृपा हुई है जिन्होंने हमारा संकल्प पूर्ण कर दिया है।’’ यह कहकर उसी क्षण श्री चढ़तराम जी किसी अज्ञात दिशा की ओर चले गए। आप ने ऐसी विरक्ति एवं संयम का परिचय दिया जो प्रत्येक मानव के लिए आत्म–कल्याण का हेतु है। नवजात ‘साईंदत्त’ जी का पालन पोषण ‘‘बुग्याना’’ नामक ग्राम (जिला लाहौर) में उनके मामा जी ने किया।

साधु संगति इनका एकमात्र धर्म कर्म था और सच्चरित्रता की आप

साक्षात प्रतिमा थे। यही कारण था कि एक बार किसी एक महात्मा के अनुष्ठान बताने पर आपने तुरन्त किसी से भी आज्ञा लिए बिना रावी नदी के तट पर जाकर चालीस दिन का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। उधर जब सांयकाल आप घर न लौटे तो सभी बहुत चिन्तित हुए प्रत्येक दिशा में लोग इन्हें ढूँढते रहे। अन्त में 38वें दिन किसी व्यक्ति ने आकर पता दिया कि वे तो रावी नदी के तट पर छोटी सी कुटिया बना कर तपस्या कर रहे हैं। उसी समय आपके मामा जी आपको जबरदस्ती उठाकर घर ले आए। अनुष्ठान में एक दिन की न्यूनता हो जाने पर भी आप अपने उदेश्य में सफल हो चुके थे। एक बार वर्षा न होने के कारण अटारी में एक सरदार साहब ने वृष्टि यज्ञ करवाया जिसमें आपको भी निमन्त्रित किया गया। आप में स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ था। अपनी इच्छा से भले ही किसी के पास चले जाएं, किन्तु किसी के बाध्य करने पर न जाते थे। उधर यज्ञ प्रारम्भ हुए तीन दिन व्यतीत हो चुके थे। चौथे दिन प्रातः काल आपके मन में विचार आया कि चलो देखें तो सही, क्या हो रहा है ? जब यज्ञ मण्डप में पहुँचे तो सभी विद्वानों ने उठ कर आपका सम्मान किया। सभी प्रमुख व्यक्तियों में आनन्द का स्रोत बह चला। यज्ञ मण्डप में रोज की भांति श्री गणेश जी का पूजन हो चुका था परन्तु जब हवन के लिए समिधा जलाने लगे तो आप ने अग्नि द्वारा समिधा जलाने से मना कर दिया और कहा कि- ''यदि हमारे अग्नि स्थापन के मन्त्रों में मन्त्र के उच्चारण पर, अग्नि प्रदिप्त करने की शक्ति नहीं है तो इस यज्ञ से वर्षा नहीं हो सकती।'' अतः आप ने बड़े उच्च स्वर में मन्त्र बोलकर ''स्वाहा'' कहने के साथ ही सामग्री को समिधा पर छोड़ा तो अग्नि जल पड़ी। तदनन्तर उसी दिन वर्षा भी इतने जोर से हुई कि यज्ञ करने में भी बाधक होने लगी। आपके घर में पं0 सुखदयाल तथा पं0 कन्हैयालाल नामक दो पुत्र हुए। आप 52 वर्ष की आयु में ही इस संसार से विदा हो गये। तत्पश्चात् आपका परिवार फिर ''नौशहरा'' में आकर रहने लगा।

पं0 कन्हैयालाल जी अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान थे। आपका व्यवसाय आजीवन वैद्यक रहा। ई0 सन् 1848 कार्तिक कृष्ण नवमी चन्द्रवार को आपके यहां पूज्य पंडित गंडाराम जी ने जन्म लिया। पंडित गंडाराम जी के पालन-पोषण एवं यज्ञोपवीत संस्कार आदि कृत्य इकलौता पुत्र होने के कारण बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुए। पंडित गंडाराम जी अपने ताऊ-जात भाइयों के साथ ''नौशहरा'' के निकट 'भंडाना' नामक ग्राम में एक विद्वान के पास पढ़ा करते थे। अध्ययन के अतिरिक्त सभी भाई अपना अधिक समय बाहर तालाब में तैरने में व्यतीत करते थे। परन्तु पं0 गंडाराम जी अधिक बलशाली तथा ओजस्वी होने के कारण प्रत्येक कार्य में सर्वप्रथम रहते थे। सहसा उनके मन में विचार आया कि मनुष्य जीवन का ध्येय क्या है उसे क्या करना है ? इस जीवन को किस प्रकार प्रगति पथ पर अग्रसर किया जाना चाहिए। यह कोई साधारण प्रश्न नहीं था जिसे सरलता से हल किया जा सके। अतः आपने उस दिन से अपनी प्रवृति को सब ओर से हटाकर इस जटिल समस्या को सुलझाने में लगा दिया। एक आध मास पर्यन्त इस विषय पर पर्याप्त अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। परन्तु अन्त में यह निर्णय किया कि मुझे इस स्थान पर रहकर उन्नति का कोई भी अवसर हाथ नहीं लग सकता। अतः कहीं अन्यत्र जाकर अवश्य कोई न कोई उपाय ढूँढ निकालना चाहिए।

सौभाग्यवश एक दिन आपके पिता पं0 कन्हैयालाल जी ने आपको कोटले का एक रूपया देते हुए कहा 'तुम अमृतसर से एक विवाह पद्धति मोल ले आओ।' यह सुनते ही आप तुरन्त चल पड़े । उस समय आपकी आयु लगभग 21-22 वर्ष थी, आपके मन में कई प्रकार के विचारों का संघर्ष चलता रहा। अन्तिम निर्णय यह रहा कि मुझे अवश्यमेव

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

किसी परम योग्य विद्वान से विद्या ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि बिना विद्या के इस समय किसी भी कार्य में उत्कर्ष प्राप्त करना नितान्त असम्भव है। उस समय अमृतसर (पंजाब) में प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य पं0 विष्णुदास जी रहते थे। आप अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान थे। आपकी मानसिक सत्ता अत्यन्त प्रबल एवं प्रतिभाशाली थी। आप बड़े सुहृदय व्यक्ति थे। आप के पास दूर–दूर से विद्यार्थी पढ़ने के लिए आया करते थे। पूज्य पंडित गंडाराम जी ने विद्या प्राप्ति के लिए आप से सानुरोध प्रार्थना की जिसे आपने सहर्ष स्वीकार करते हुए उन्हें पढ़ाना आरम्भ कर दिया।

पूज्य पं0 गंडाराम जी बड़े मनोयोग से विद्या पढ़ने लगे। आप बड़े प्रेम से अपने ज्योतिषगुरु जी की सेवा–सुश्रूषा करते थे। आपकी बुद्धि की विलक्षणता और सेवा से प्रसन्न हो कर पं0 विष्णुदास जी आपको सब से अधिक चाहते थे। वह कई बार सहसा कह उठते थे ''हे पुत्र! तुम्हारा जीवन सब प्रकार से सुखी हो और तुम्हारी सन्तान भी तेजस्वी, साधु और विद्वान हो ।'' श्री गुरु जी के आशीर्वाद से आप पूर्ण विद्वान हुए।

आपने विक्रमी संवत् 1933 के चैत्र मास में कटड़ा भाई सन्त सिंह ''अमृतसर'' में एक दुकान किराए पर लेकर ज्योतिष कार्य प्रारम्भ किया उस समय आपके घर एक कन्या और एक पुत्र पं0 तीर्थराम थे। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि पं0 गंडाराम जी बड़े मनोयोग से विद्या पढ़ चुकने पर और गुरु जी के आशीर्वाद के कारण ज्योतिष शास्त्र के चूड़ान्त मर्मज्ञ एवं सफल विद्वान हो गये थे। यही कारण था कि आपको देश–विदेश में यथेष्ट प्रसिद्धि तथा मान–सम्मान प्राप्त था। भक्ति मार्ग में अधिक प्रवृत्ति थी। जिह्वा पर सरस्वती आसीन थी और मुख ओजस्वी एवं सुन्दर था। उस समय अपके विषय में कई प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गईं थीं। कोई कहता कि इन्होंने 'यक्षिणी' सिद्ध कर रखी है और कोई कहता 'भैरवी'। विक्रमी संवत् 1934 में आप अमृतसर की पंचायत के नेता (चौधरी) बनाए गए। आप पंचायत के प्रत्येक व्यक्ति की समय अनुसार सेवा के लिए सदा तत्पर रहते थे और सबके सुख–दुख को आजीवन अपना ही सुख–दुख समझते थे। आपके पिता पं0 कन्हैयालाल जी संवत् 1938 में गोलोक सिधार गए। आप बड़े सरल एवं सच्चरित्र महानुभाव थे। आप दृढ़ता, आस्तिकता, दयालुता, श्रद्धा, सेवा उदारता एवं भक्ति की सुन्दर जाज्वल्यमान प्रतिमा थे।

विक्रमी संवत् 1942 में गंडाराम जी के यहां दो युगल पुत्र उत्पन्न हुए जिनका नाम पंडित राम शरण दास तथा हरिकृष्ण रखा गया। विक्रमी संवत् 1945 चैत्र शुक्ला नवमी के दिन योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी ने जन्म लिया। उस समय पंडित गंडाराम जी का यश देश–विदेश में सुचारु रूप से फैल रहा था। पं0 गंडाराम जी ने अपने जीवन में कई अनुष्ठान भी किए। नित्य कर्म में आप बढ़े–चढ़े कर्मकाण्डी थे। यही कारण था कि आपकी जिह्वा में एक प्रकार की शक्ति आ गई थी। जिसको जो कुछ कह देते थे उस के साथ वही घट जाता था। कई निः सन्तान घरानों को आपने अपने मन्त्र बल से सन्तानवान् बनाया। कई असाध्य रोगियों को नीरोग बनाया। या यों कहिए कि आपका समस्त जीवन दुखी प्राणियों की सेवा में ही व्यतीत हुआ। अपने परिवार का भी यथा समय उचित पालन–पोषण करके उसे भली–भांति सुसंस्कृत किया। शारीरिक बल एवं सुन्दरता के साथ–साथ धन–धान्य में भी आपका यथेष्ट अधिकार था आत्माभिमान ने आपके अन्तःकरण में विशेष प्रभुत्व जमा रखा था। जो शब्द मुख से निकल गया, उस पर सदा अटल रहे।

अन्त में पूज्य पंडित गंडाराम जी अपने सर्व प्रकार से सुखी, आनन्दपूर्ण और भक्तिमय जीवन को भली भांति व्यतीत कर विक्रमी संवत् 1964, सन् 1907 ई0 में मार्गशीष मास में 60 वर्ष की आयु भोग कर इस नश्वर संसार को त्याग कर गोलोक चले गए ।

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

महर्षि काकभुशुंडि द्वारा लिखित भविष्यवाणी

मद्रास नगर रायपेट स्थित, कौमार नाड़ी ज्योतिषालय के काकभुशुंडि कृत 'काक नाड़ी' नामक संहिता में महर्षि काकभुशुंडि जी द्वारा लिखित श्री अनंत कोटि आनंद कंद सद्गुरुदेव पं० श्री रामलाल जी महाराज का जातक फल।

महर्षि श्री काकभुशुंडि जी कहते है कि अंड पिंड ब्रह्माण्डों को गर्भ में धारण करने वाली हे देवि! एक महापुरूष का जातक फल मैं कह रहा हूँ। वृषभ लग्न है, द्वितीय भाव में चंद्र है, कर्काकट में शनि राहु हैं, तुला मे कुज है, वृश्चिक में बृहस्पति है। मीन में रवि है। मकर में केतु है, कुंभ में बुध वा शुक्र है। इस प्रकार की ग्रह स्थिति में जन्म है।

जगत की रक्षा के लिये अवतार लेने वाले महापुरूष हैं। जन्म भूमि पंजाब है। वह नगर भी किसी समय प्रसिद्ध राजधानी के रूप से प्रकट होगा, उसका इतिहास भी महान् है। उसका नाम अमृतसर होगा। पूर्व पश्चिम बीथी है, उत्तराभिमुख सिंहद्वार का गृह है। पंचम गर्भ में जन्म है।

जीवों को लोक परलोक का ऐश्वर्य देने में समर्थ महाप्रभु हैं। अष्ट सिद्धियों के स्वामी हैं। सभी प्रकार की सिद्धि शक्तियों के अधिपति हैं। सांसारिक जीवों के प्रारब्ध को अपने ऊपर लेकर तथा भुगत कर उनको भी अपनी पदवी दे देने में समर्थ महापुरूष हैं।

आपका नाम श्री रामलाल है। पैतृक सम्पति अधिक नहीं। समस्त विश्व को ऐश्वर्य देने में समर्थ प्रभु को पैतृक वैभव से क्या प्रयोजन है ? पैतृक ऐश्वर्य के अधिक रहने का प्रयोजन भी क्या है ?

पंद्रह वर्ष की आयु होने पर विवाह होगा। पत्नी के बालकौर व सुभद्रा यह दोनों नाम हैं। माता पिता के विशेष अनुरोध से ही यह विवाह होगा। फिर भी छिलके के साथ रह कर इमली की भांति निर्लेप ही रहेंगे (कमलपत्रमिवांभसः)। इस प्रकार थोड़ा समय व्यतीत करके अन्य देशों की ओर प्रस्थान करेंगे। उस अल्प काल में भी संतानोत्पति की ओर ध्यान न होगा।

पिता जी का नाम श्री गंडाराम है। आपकी बीस वर्ष की आयु के भीतर पिता का स्वर्गवास है। तीस वर्ष की आयु के भीतर माता जी का स्वर्गारोहण होगा। माता जी का नाम श्रीमती भागवंती है।

पिता के देहावसान के पश्चात, गृह त्याग कर तथा दूरस्थ देशों में जाकर, बड़ों का अनुग्रह प्राप्त कर ज्ञान ज्योति अभेद स्वरूप के दर्शन होंगें।

ईश्वर कृपा अधिक रहेगी। बड़े–बड़े अनुभवी सिद्धों को भी होने वाले संदेहों को निवृत्त करने की असाधारण योग्यता को प्राप्त होंगे। ऐसी महान् योग्यता बीस वर्ष की आयु के भीतर ही प्राप्त होगी।

ऐसी महान् योग्यता के साथ अनेक स्थानों में भ्रमण करेंगें। इतने में तीस वर्ष आयु होने पर माता जी का स्वर्गारोहण होगा। माता जी के देहावसान के समय सभी सिद्धियां प्रकट होंगी। ज्ञानोपदेश करते हुए अनेक स्थानों में पदार्पण करेंगे।

अन्य जीवों को ज्ञानोपदेश द्वारा कृतार्थ करने वाले गुरूओं के भी गुरू होकर उनकी योग्यता अनुसार गुरू शक्ति प्रदान करते रहेंगे। सृष्टि स्थिति आदिक महाशक्ति सम्पन्न हैं। मुँह माँगा वरदान देने में भी पूर्ण समर्थ हैं।

ये महापुरूष जगत के आधारभूत महाशक्ति के अवतार हैं। इनका चरित्र अपार है। द्वितीय भाग में विस्तार पूर्वक कहा जाएगा।

सदा सर्वदा निर्विकल्प में स्थित रहते हुए, इक्यावन वर्ष की आयु में भौतिक शरीर त्याग कर, द्वितीय तन धारण कर, मेरू गिरि के स्वर्ण शिखर में रह कर इससे भी अधिक उन्नति प्राप्त कर, फिर दूसरा शरीर धारण कर कल्पांत तक यह इसी स्थिति में विराजेंगे। ऐसी उत्तम स्थिति इन महापुरूष में नित्य रूप में रहेगी।

१ अद्भुत करूणामय बाल लीला

१.१ भगवान का प्राकट्य

सर्व कला सम्पूर्ण योगेश्वर रामलाल प्रभु पंजाब प्रांत के अमृतसर नगर कूचा भाई सन्त सिंह में संवत् 1945 चैत्र शुक्ल नवमी बृहस्पतिवार इष्ट 6 घड़ी 56 पल वृषभ लग्न पर अवतरित हुए। आपके पिता जी का शुभ नाम परम पूज्य पंडित गंडाराम जी तथा माता का नाम भागवन्ती जी है। आप बाल्यकाल से ही भगवान के चित्र जहां–कहीं टंगे देखते तो उसी में ही टकटकी लगा लेते थे, माता–पिता व अन्य किसी से भगवद्–गुणानुवाद या श्लोकों का उच्चारण सुनते तो बालपन की सब प्रक्रिया भूलकर अपने नन्हें से स्वरूप को उसी में तल्लीन कर लेते थे। जब कभी कोई साधु महात्मा गली या बाजार में भिक्षा के लिए आते तो आप उनको देखकर मुस्कराने लगते। कोई एक सिद्ध महात्मा इनके चिह्न चक्र को देखकर सहसा कह उठते थे कि यह तो होनहार बालक है।

१.२ श्री प्रभु राम लाल जी महाराज की जन्म कुण्डली व ग्रह स्थिति

जन्म तिथि :– चैत्र शुक्ल नवमी विक्रमी सम्वत् 1945 तद्नुसार 22 मार्च सन् 1888 ई0 बृहस्पतिवार सर्वाधारी संवत्सर। काल/जन्म समयः– 6 घड़ी 56 पल तद्नुसार 8 बज कर 56 मिनट 24 सैकेंड जन्म स्थान :– अमृतसर (पंजाब)। जन्म नक्षत्र :– पुर्नवसु नक्षत्र

ग्रह स्पष्ट

ग्रह	राशी	अंश	दिशा	नक्षत्र
लग्न	वृषभ	06:24:58		03 कृतिका
सूर्य	मीन	11:08:10		26 उत्तरा भाद्रपद
चन्द्र	मिथुन	26:05:40		07 पुनर्वसु
मंगल	तुला	07:21:29	वक्री	15 स्वाति
बुध	कुंभ	15:34:18	मार्गी	24 शतभिषा
गुरू	वृश्चिक	15:30:40	मार्गी	17 अनुराधा
शुक्र	कुंभ	12:11:31	मार्गी	24 शतभिषा
शनि	कर्क	08:46:36	वक्री	08 पुष्य
राहु	कर्क	16:06:19	वक्री	08 पुष्य
केतु	मकर	16:06:19	वक्री	22 श्रवण

‘अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा’

जन्म समय पर ग्रहों की स्थिति :-

लग्न–वृषभ राशि	जीवा (बृह)– वृश्चिक राशि
सूर्य– मीन राशि	शुक्र– कुम्भ राशि
चन्द्र– मिथुन राशि	शनि– कर्कट (कर्क) राशि
कूजा (मंगल)– तुला राशि	राहु– कर्कट (कर्क) राशि
बुध– कुम्भ राशि	केतु– मकर राशि

लग्न कुंडली

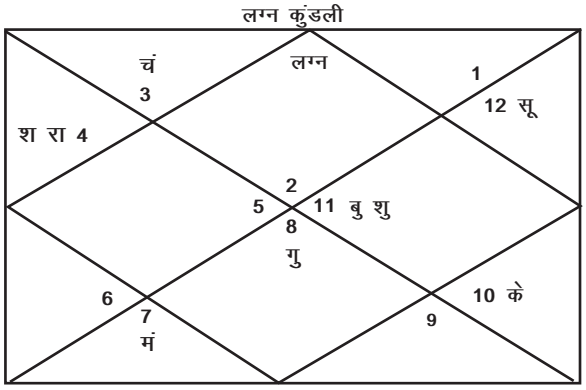

नवमांश

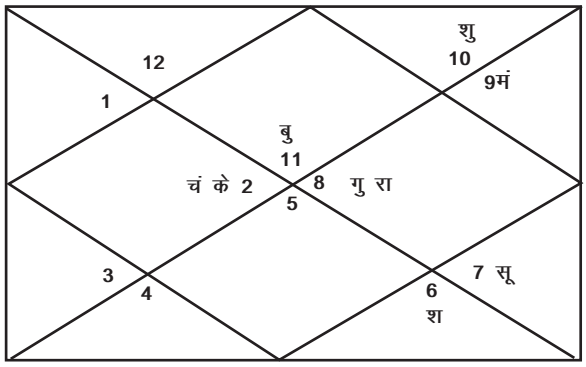

चन्द्र कुंडली

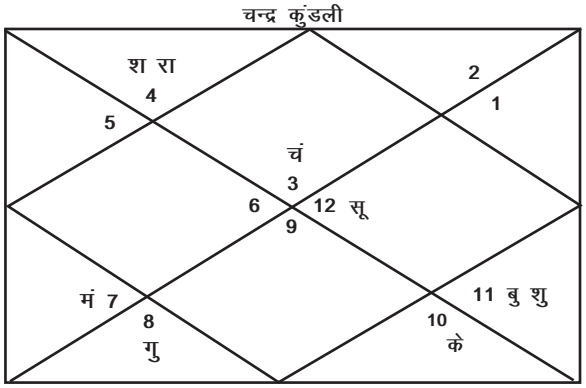

भाव चलित

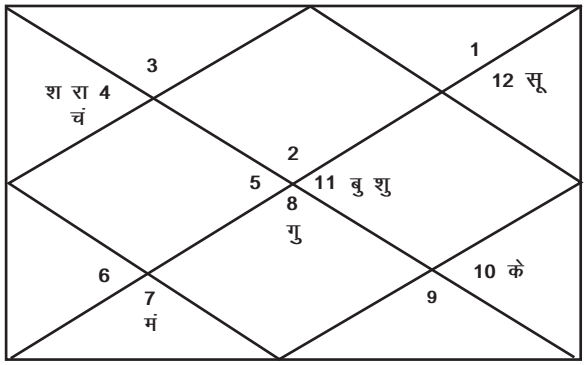

इस जन्म कुण्डली से कुछ ज्योतिषीय तथ्य जो स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं, इस प्रकार कहे जा सकते हैं :– जन्म कुण्डली वृषभ लगन की है जो शुक्र की राशि है। अतः जातक का ललाट उन्नत, नैन नक्श प्रभावशाली तथा गरिमाशील व्यक्तित्व होगा।

बृहस्पति की सातवीं दृष्टि लग्न पर पड़ने से व्यक्तित्व में आध्यात्मिकता का पुट आ जाएगा। प्रथम तथा पंचम भाव के स्वामी शुक्र तथा बुध का केन्द्र स्थान में होना तथा नवम् भाव के स्वामी शनि का नवम भाव अर्थात अपने ही भाव को देखना (नवम भाव को ज्योतिषशास्त्र में धर्म स्थान कहा गया है) और पुनः जीवा (बृहस्पति) की लग्न पर सातवीं तथा शनि पर नवम दृष्टि जातक का योगेश्वर (योगियों का भी ईश्वर) होना सिद्ध करती है। प्रथम भाव के स्वामी तथा पांचवें भाव के स्वामी का दशम भाव में स्थित होना योग मार्ग के उच्चतम सोपान पर आरूढ़ होने की सफलता का जयघोष कर रहा है। छटे भाव में मंगल की स्थिति जातक के इस दृढ़ निश्चय को प्रकट करती है कि मार्ग की पथ – बाधाओं, विध्न अवरोधों की परवाह किए बिना अपने ध्येय को प्राप्त करने में सफल

मनोरथ होगा। 'मंगल' जातक के इस अदम्य साहस को उत्तरोत्तर बलशाली बना रहा है। 'मंगल' की धर्म स्थान (नवम भाव) पर चौथी दृष्टि गुरू परम्परा से ज्ञानार्जन और उसका उत्तरोत्तर उन्नयन कहती है। आध्यात्मिक ऊर्जा का स्त्रोत केतु ग्रह धर्म स्थान नवम को और भी ऊर्जा प्रदान करता है जिससे जातक में योगाध्यात्म की सिद्ध–हस्तता सिद्ध होती है। शनि वीतरागात्मिकता और राहु गहन समाधि की ओर इंगित करते हैं। सूर्य से शनि तथा शनि से बृहस्पति और गुरू से सूर्य परस्पर त्रिकोण स्थान पर होना जातक को आध्यात्मक/योग की बुलन्दियों तक पहुंचा देगा। श्री रामलाल प्रभु के स्पर्श मात्र से शक्ति पात हो जाता था और व्यक्ति तत्क्षण तुरीय अवस्था में पहुंच जाता था।

१.३ यह कौन आए रे

कलियुग में शक्ति वाले, यह नन्द जी के लाले।
यह गउओं के ग्वाले, यह तो राम धनुष वाले।। यह कौन आए रे.....
जब होवे धर्म की हानी, तब आवें अन्तर्यामी।
त्रैलोकी के जो स्वामी, वेदों ने गाए रे।। यह कौन आए रे.....
यह मर्यादा पुरूषोत्तम, यह भगवान है परमातम।
जगदीश्वर सब के आत्म, भक्तन मन भाए रे।। यह कौन आए रे.....
त्रेता में रावण मारा, द्वापर में कंस संहारा।
अब ब्राह्मण वेश है धारा, कलियुग में आए रे।। यह कौन आए रे.....
प्रभु राम रती को तारा, रामा को पार उतारा।
हरिहरानन्द सर वारा, शिव पद को पाए रे।। यह कौन आए रे.....
शरणागत श्याम तुम्हारी, जाए चरणों पे बलहारी।
प्रभु राम लाल अवतारी, गुण तोरे गाए रे।। यह कौन आए रे.....

१.४ संस्कारी वृद्धा को अविनाशी स्वरूप प्रदान

श्री प्रभु जी तीन वर्ष की आयु में कूचा भाई संत सिंह (अमृतसर) में बालकों के साथ खेल रहे थे। उधर एक देवी जिसका जीवन प्रभु भक्ति, भजन ध्यान में ही व्यतीत हुआ था। अपना अन्तिम समय विचार जब वह प्रभु की याद में आकुल–व्याकुल हो गई तो ध्यान में उसने अपने पूर्व–जन्म के श्री सद्गुरू देव को जो कि मनुष्य तन में रामलाल नाम से अवतीर्ण हो चुके हैं उनको इस समय बालक रूप में खेलते देखा । तब उस देवी ने अपने भाई को बुला कर, यह सब घटना सुनाई और प्रभु जी का नाम, स्थान, बालक रूप के सब चिह्न समझा कर 'कटरा भाई सन्त सिंह' में भेज दिया। तब वह आपके पिता जी से आज्ञा प्राप्त कर प्रभु जी को कंधे पर उठाकर 'चौक किले' के समीप अपने घर ले आये। वह देवी प्रभुजी के दर्शन पाते ही अति प्रसन्न हो प्रणाम कर मुक्त कंठ से स्तुति करने लगी, ''हे मेरे अराध्य देव प्रभो! आपने संस्कारी आत्माओं के कल्याणर्थ मानव तन धारण किया है। मैं आपके दर्शन पाकर कृतार्थ हुई हूँ। कृपा कर आप मुझे सर्व बन्धनों से मुक्त कर अपने दिव्य अविनाशी चरणों में ले लीजिए।'' इतना कहते ही वह देवी प्रभु जी को प्रणाम कर मौन हो गई। बाल स्वरूप श्री प्रभु जी ने उस वृद्धा को अपने वरदहस्त से आशीर्वाद प्रदान किया। वह देवी तत्क्षण अपने पंचभौतिक शरीर को छोड़ श्री प्रभु जी के दिव्य अविनाशी स्वरूप में समा गई।

<u>स्तुति</u> रामलाल तुम्हारी जय होवे, गुरूदेव तुम्हहारी जय होवे ।

१.५ साधु सत्संग एवं सम्पूर्ण ज्योतिष विद्या व जड़ी-बूटी ज्ञान

पांच वर्ष की आयु में आपके पूज्य पिता जी ने आपको संस्कृत की एक पाठशाला में पढ़ने के लिये भेजा। वहाँ आप संस्कृत पढ़ने लगे, किन्तु जो मन भगवद् प्रेम में विभोर रहने का अभ्यस्त था, उसका केवल बाहरी पठन–पाठन में संन्तुष्ट रहना दुष्कर था। इस कारण श्री प्रभुजी जब किसी महात्मा के आने का सामाचार सुनते तो वहाँ पहुँच जाते। कई एक बार आपके पूज्य पिता जी विद्यालय में आकर आपके पठन पाठन के विषय में पूछते तो अध्यापक महोदय कहा करते थे कि यह बहुधा विद्यालय से भाग जाता है, परन्तु आश्चर्य यह है कि परीक्षा में सर्व प्रथम रहता है। जब कभी पिता जी आप से पूछते कि ''चिरंजीव! तुम पाठशाला से भाग कर कहाँ जाते हो? तो झूठ न बोल कर सत्य–सत्य सब बात कह देते कि अमुक महात्मा आये थे वहां उनके दर्शनों के लिए गये थे। यह सुनकर पिता जी मन में तो बड़े प्रसन्न होते, परन्तु मर्यादावश ऊपर से डांट दिया करते थे।

ज्यों–ज्यों दिन बीतते गये, आपके मन में साधु महात्माओं के सत्संग और दिव्य अविनाशी स्वरूप में विशेष स्थिति के लिये उत्कंठा बढ़ती चली गई। इन दिनों आपने संस्कृत का अध्ययन करते हुए, थोड़े ही समय में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और साथ ही धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना भी आरम्भ कर दिया। अब आपका अधिक समय साधु–महात्माओं के सत्संग तथा धार्मिक ग्रन्थों के अवलोकन में ही व्यतीत होने लगा। आपके पिता जी ने अपको ज्योतिष शास्त्र पढ़ाकर कुछ समय के भीतर ज्योतिष में भी प्रवीण कर दिया। पंडित गंडाराम जी की विशेष प्रसिद्धि होने के कारण लोग बहुत दूर–दूर से फलादेश पूछने के लिए आया करते थे। कई बार पूज्य पिता जी आपकी योग्यता को देखकर फलादेश कहने के लिये आज्ञा दे देते थे। आप उसके भूत, भविष्य और वर्तमान काल की सब बातें ऐसी स्पष्टता से कह सुनाते थे, मानो त्रिकालदर्शी हों।

इसके अतिरिक्त आपको यन्त्र–मन्त्र और जड़ी–बूटियों का भी अच्छा ज्ञान हो गया था। आप से कई प्रकार के चमत्कार भी देखने में आते रहते थे। यथा–एक बार आपने जल के कटोरे में दीपक जला कर रखा और कहा कि चलो। तो दीपक चलने लगा। आपकी आज्ञानुसार दीपक दाएं–बाएं और कभी ऊपर कभी नीचे चलता था।

यदि किसी को सर्प या बिच्छू काट जाता तो उसकी खबर लेकर आने वाले को आप एक थप्पड़ लगा देते थे। उधर तत्क्षण विष झड़ कर आराम आ जाता था। आप का यज्ञोपवीत संस्कार बड़े समारोह के साथ दस वर्ष की आयु में हुआ था।

१.६ सिद्ध द्वारा सत्कार (ई० सन् 1899)

वालस्वरूप योगेश्वर श्री रामलाल प्रभु के दर्शन करने के लिये कैलाशगिरि से एक सिद्ध अमृतसर आये और उन्होंने अपना आसन ''हाथी दरवाजे'' के समीप एक वट वृक्ष के निचे लगा लिया। वहाँ के लोग सिद्ध के दर्शन से मन वांछित फल प्राप्त कर उनकी फल, फूल, मेवा आदि द्वारा सेवा करने लगे। वे सिद्ध महात्मा किसी द्वारा धन अथवा स्वर्णादिक वस्तुएं भेंट करने पर वापिस कर देते। सारे नगर में सिद्ध की गुणगाया सुनकर बालरूप प्रभु श्री रामलाल जी भी सिद्ध को मिलने गए। वहाँ बहुत श्रद्धालु

नर–नारी सिद्ध के चरणों मे बैठे उन का उपदेश सुन रहे थे। जैसे ही सिद्ध ने प्रभु रामलाल जी के वालरूप में दर्शन किये तो वह सिद्ध अपना उपदेश भुला कर मुस्कराने लगा और मन से प्रभु के श्री चरणों को प्रणाम करने लगा। बालरूप प्रभु ने सिद्ध के मुस्कराने का कारण पूछा तो सिद्ध श्री बालक रूप प्रभु जी को अपने पास बैठा कर उनके श्री चरणों में प्रणाम कर स्तुति करने लगा– ''हे प्रभु ! आप के यश को सनकादिक मुनि गाते हैं, ब्रह्मनादिक आप का पार नहीं पाते। रामरूप में आप ने रावण को मारा और श्री कृष्ण रूप में कंस का संहार किया। आप सारे जगत् के स्वामी, सिद्धों के सिद्धेश्वर, योगीश्वर और योगेश्वर हैं। आप ने यहाँ विराज कर दास पर बड़ा अनुग्रह किया। आप की जय हो। सिद्ध ने अपने प्रेम के आंसुओं से वालस्वरूप प्रभु के श्री चरणों को धो कर उन का मन से सत्कार किया। सब सत्संगी भाई वहनों को भी सिद्ध ने वालस्वरूप योगेश्वर रामलाल जी के बारे में बताया। इस घटना के वाद सिद्ध अमृतसर छोड़ रामतीर्थ चले गए।

१.७ 'रामतीर्थ' गमन

कुछ दिनों के पश्चात् जब श्री रामलाल प्रभु को पता चला कि वे महात्मा 'रामतीर्थ' पहुंच गए हैं और उन्हें याद करते हैं, तो महात्मा जी के प्रेम को देखकर उनके पास जाने का निश्चय किया। परन्तु सोचा कि आजकल महात्मा जी एकान्तवास कर रहे हैं। अतः अन्य व्यक्तियों को साथ लेकर जाना उचित नहीं होगा। उन्हें एकाकी ही जाना चाहिये। किन्तु माता–पिता उन्हें अकेला शायद न जाने दें और यदि वह बिना अनुमति लिये चले गए और किसी ने उन्हें उधर जाते देख कर पिता जी को बता दिया तो वे लोग घबरा उठेंगे और यदि न गए तो महात्मा जी के प्रेम का निरादर होगा। अतः रात्रि को जाकर प्रातः होने से पूर्व ही वापस लौट आना प्रभु रामलाल जी ने उचित समझा तदनुसार आप महात्मा जी के प्रेम वश रात्रि को ही जाकर वापिस घर आजाया करते थे।

आपके पूज्य पिता पं० गंडाराम जी अपने समय के प्रकाण्ड पंडित थे। इसी कारण आपके पास सर्वदा अध्ययन करने के लिये दूर–दूर से विद्यार्थी आया करते थे। उनमें से एक विद्यार्थी ने पूज्य पंडित जी को नम्रता से सूचित किया कि आपके कनिष्ठ पुत्र पं० रामलाल जी प्रतिदिन रात्रि को न जाने कहां चले जाया करते हैं। अतः वे रात्रि को प्रायः सो नहीं सकते होंगे। इससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ने की आशंका है। यह सुनकर पूज्य पंडित जी ने कहा, ''हम तुम्हारी बात को कैसे सत्य मानें, जबकि हम प्रतिदिन देखते हैं कि वह रात्रि को भोजन के पश्चात् हमारे सामने ही सोने को चला जाता है और प्रातः हम उसे बिस्तर पर लेटा हुआ देखते हैं।'' तब उस विद्यार्थी ने कहा, ''महाराज! मैं सत्य कहता हूँ । हम लोग जब सो जाते हैं। तो वे चुपके से उठकर नित्य प्रति न जाने कहाँ चले जाते हैं और प्रातः होने से पूर्व ही वापिस आकर चुपके से बिस्तर पर लेट जाते हैं।'' तब पूज्य पंडित जी ने कहा– ''अरे विद्यार्थी! तू ज़रा सोच तो सही कि मेरा नन्हा–सा बालक, जिसकी आयु अभी ग्यारह वर्ष की है, वह किसलिए रात्रि को बाहर जाता होगा ? इसलिए तेरी शिकायत मेरे विचार में झूठी है। हाँ, यदि तू ऐसे जाते हुए उसको पकड़कर दिखला दे तो मैं मान सकता हूँ।'' विद्यार्थी ने यह शर्त स्वीकार कर ली। अन्ततः वह पता लगाने में सफल हो गया कि प्रभु राम प्रतिदिन सिद्ध महात्मा के पास रामतीर्थ जाते हैं। उस विद्यार्थी ने यह बात अपने सब सहपाठियों से कही और आपस में सलाह की कि रामलाल प्रभु को इस प्रकार रात्रि के समय जाने से रोकने के लिये केवल

यही उपाय उत्तम होगा कि उन्हें जाते हुए रास्ते में ही पकड़कर गुरु जी के सामने उपस्थित कर दिया जाये। तदनुसार एक दिन कुछ विद्यार्थी मिलकर अमृतसर से लगभग तीन मील की दूरी पर 'रामतीर्थ' की सड़क पर कुएँ के निकट जंगल में पहले से ही जाकर छिप गये और जब श्री प्रभु जी वहाँ पहुँचे तो उन विद्यार्थियों ने डराने के लिये सहसा एक ही साथ अपनी–अपनी लाठियां उठाकर हल्ला बोल दिया। तब श्री रामलाल प्रभु एकदम सम्भल गये और स्फूर्ति से उनमें से एक की लाठी छीनकर उन पर प्रहार करने लगे। वे सभी चिल्ला उठे, ''पंडित जी! हमें मारना नहीं, हम तो आपके दास विद्यार्थी हैं।'' तब आपने उन्हें आवाज से पहचान कर लाठी तो रोक ली और बोले कि तुम लोग रात को यहाँ क्या करने आये हो? तब उन्होंनें नम्र निवेदन किया, ''आपके भले के विचार से ही आये हैं। हम लोग आपको ऐसे भयानक स्थानों में आने–जाने से रोकने के लिए डराने आये थे। धन्य हो आप, जो स्वयं डरने की अपेक्षा हमारी ही लाठी बलपूर्वक छीनकर इस छोटी सी आयु में अपने निर्भीक स्वभाव और परिपक्व विकसित बुद्धि का परिचय दिया है। क्षमा कीजिए, हम लोग अपनी अविकसित तुच्छ बुद्धि से आपका हित करने चले थे; परन्तु आपने हमें दिखला दिया है कि आप साधारण बालक नहीं वरन्, प्रतिभा सम्पन्न उच्च आत्मा हैं।''

विद्यार्थियों की बात चुनकर श्री प्रभु जी ने मुस्कराते हुए कहा– ''भैया! तुम लोगों ने अपनी बुद्धि अनुसार तो हित करने के लिए यह पुरूषार्थ किया है, किन्तु सत्संग के विचार से यह विध्नरूप अहित है; क्योंकि महापुरूषों का सत्संग ही जीवों को महानता की ओर ले जाने वाला होता हैं। इसलिए बाल्य, युवा, वृद्ध आदि अवस्थाओं के विचार में ही समय नष्ट कर देना बुद्धिमत्ता नहीं है।'' यह सुनकर वे सब विद्यार्थी श्रद्धापूर्वक सिर झुकाये हुए हाथ जोड़कर कहने लगे ''महाराज! अब हम आपके श्रेय मार्ग में कभी भी बाधक नहीं बनेंगे। कृपया हमें लौट जाने की आज्ञा दीजिए।'' श्री प्रभु जी प्रसन्नतापूर्वक ''तथास्तु'' कहकर रामतीर्थ की ओर चल दिये और प्रातः होने से पूर्व ही घर वापस आ गये।

पूज्य पिता जी को जब यह मालूम हो गया कि राम प्रतिदिन 'रामतीर्थ' सिद्ध महात्मा के दर्शन और सत्संग के लिए जाया करते हैं, तब बुलाकर सब बात प्रेमपूर्वक पूछी। आपने भी सत्संग में जाने का सब वृत्तान्त जैसा था, वैसा कह सुनाया; जिसे सुनकर पूज्य पिता जी हृदय से तो प्रसन्न हुए परन्तु मर्यादावश रात्रि के समय 'रामतीर्थ' आदि भयंकर जंगल में आने–जाने से मना कर दिया। आपने भी पिता जी की आज्ञानुसार 'रामतीर्थ' में जाना तो बन्द कर दिया, परन्तु हृदय में जो पूर्व संस्कारवश योग के उच्च विचार उभर रहे थे। वे न दब सके। श्री प्रभु जी जब कभी योगी महात्माओं का आगमन सुनते तो वहाँ अवश्य पहुँच जाते।

१.८ विद्या ग्रहण यात्रा (आयु० 12-14 वर्ष)

वित्रम संवत् 1958 में अनुभवी योगी महात्माओं से योग की विशेष स्थिति प्रप्ति करने हेतु श्री प्रभु जी काशी धाम को चल दिये। वहां काशी में पं० शिव कुमार जी से योग शास्त्र तथा वैद्यक विद्या पाई। पं० शिव कुमार बालक स्वरूप प्रभु रामलाल जी को जो पढ़ाते वह उस विद्या को तुरन्त कंठ कर लेते। श्री शिव कुमार जी कहते थे कि यह बालक अति ज्ञानी और अद्वितीय है। ऐसा बालक हम ने कभी भी नहीं देखा।

बालक स्वरूप श्री प्रभु जी घर बिना बताए ही विद्याग्रहण करने काशी आये हुए थे।

इस कारण घर वाले बड़े दुःखी थे। अश्वमेध घाट–काशी पर योगीजन अपने अनुभव कह रहे थे। श्री बालक स्वरूप रामलाल प्रभु ने भी योग पर अपने अनुभव बताए जिसे सुन कर सब योगीजन अति हर्षाये और नत–मस्तक हुए। वहां श्री रामलाल जी के पिता के मित्र– रेल के गार्ड उन को वहां मिल गए। इस कारण उनकी प्रार्थना पर श्री प्रभु राम घर वापिस आ गए।

आप घर तो वापस आ गये, परन्तु सांसारिक व्यवहार कार्य में आप की जरा भी रूचि नही थी। आप के मन में योग की ऊँची स्थिति प्राप्त करने की बड़ी अभिलाषा थी। इस लिए आप अनुभवी योगी महात्माओं द्वारा योग विद्या को प्राप्त करने हरिद्वार कनखल आदि स्थानों पर रहे परन्तु फिर अपने भाई के साथ घर आना पड़ा।

बालक स्वरूप प्रभु रामलाल जी का संकल्प योगी वन कर–अपना आवागमन मिटाकर, संसार का कल्याण करने हेतु–जगत के कष्टों को योग द्वारा दूर करना था, इस कारण व फिर घर छोड़ कर करुक्षेत्र चले गए। कुरुक्षेत्र स्थित थानेसर में पं0 बलराजजी के पास जो शास्त्र काशी में बाकी रह गये थे; उन का पूरा अध्ययन करने लगे। अपना लक्ष्य शीघ्र ग्रहण करने के लिये बालक स्वरूप श्री रामलाल प्रभु प्रातः सर्वप्रथम उठते–शौच–स्नान आदि से निवृत्त हो गुरू जी को स्नान करवाते–पशुओं के लिए खेत से स्वयं चारा काट कर लाते, डालते, गोबर उठाते और फिर गुरू जी से पाठ अध्ययन करते। मध्याह्नकाल में गुरू जी को भोजन करवा कर बर्तन आदि माँजना तथा स्वयं भोजन आदि करके पाठ याद करना। रात्रि को पढ़ने के उपरान्त गुरू चरणों की सेवा करना तत्पश्चात् अपने विश्राम स्थान पर आकर सो जाना। यह आप ने अपनी दिन चर्या बना रखी थी।

एक दिन प्रातः चारा काटते–काटते वर्षा आरम्भ हो गई, जिससे गठरी बहुत भारी हो गईं फिर वृक्ष की सहायता से गठरी सिर पर रखी और मार्ग की फिसलाहट से बचते हुए गुरूगृह में चारा डाल कर प्रभु राम विश्राम कमरे में जाकर सो गये। गुरूजी ने अन्य विद्यार्थियों को बालक स्वरूप प्रभु रामलाल को खोज लाने की आज्ञा दी। खोजते हुए विद्यार्थी जब आप के विश्राम स्थान पर आये तो उन्होनें देखा कि आप सो रहे हैं और एक काला नाग फन पैलाये आप के सिर पर छाया कर रहा है। विद्यार्थी भयभीत होकर पाँवों की ओर से चार पाई खींचने लगे। आप एकदम उठ बैठे और वह नाग अदृश्य हो गया ।

बालक स्वरूप प्रभु रामलाल संकोचवश गुरू गृह से भोजन न पा कर प्रायः बाज़ार से करते थे या चने और गुड़ खा कर गुजारा कर लिया करते थे। जब सारे पैसे खर्च हो गए तो आप ने एक विज्ञापन–''ज्योतिष के विषय में जो कोई कुछ पूछना चाहे वह पूछ सकता है'' लिख कर व साथ ले कर आप बाज़ार चल दिये। एक धनी सेठ ने अपनी कुण्डली दिखाई। आपने सेठ का भूत, भविष्यत् और वर्तमान बड़ी स्पष्टता और सरलता से बता दिया। सेठ ने प्रसन्न हो आप को भोजन कराया तथा दक्षिणा देकर दूसरे दिन उसी समय वहां आ कर कृतार्थ करने की प्रार्थना की। अगले दिन सेठ कई अन्य व्यक्तियों के साथ अपनी–अपनी कुण्डली दिखलाने की इच्छा से वहाँ एकत्रित थे। सब अपनी–अपनी कुण्डलियों के फलादेश को सुन कर चकित हो उठे तो उन्होंने आप का पता–पंडित बूलराज जी के पास रहने का जान लिया। सारे थानेसर में यह बात आग की तरह फैल गई। वहाँ के प्रतिष्ठित व्यक्ति पंडित बूलराज जी के पास जा कर–''अमृतसर के ज्योतिषी जो आप के पास ठहरे हुए हैं। वे कहाँ है'' ? ऐसा पूछने लगे। उन्हों ने आगे कहा कि ऐसा अद्वितीय ज्योतिषी आज तक हमारे देखने व सुनने में नहीं आया। उन की

बातें बिल्कुल सच्ची साबित हुई हैं। वह पं0 गंडाराम जी के सुपुत्र हैं। पं0 जी ने बालस्वरूप प्रभु रामलालजी को बुलवाया, पूछा और आगन्तुक महाशय की कुण्डली देखकर फलादेश कहने की आज्ञा दी। आप ने कुण्डली देखकर पूर्व की भाँति फलादेश बताया। आगन्तुक महाशय बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे इन्होनें हमारी भूतकाल तथा वर्तमान काल की जो बातें कही हैं,। वे सब यथार्थ हैं। यह सुनकर पं0 बूलराज जी तथा सब विद्यार्थी बड़े आश्चर्य चकित तथा प्रसन्न हुए। पं0 जी ने गृह की सभी सेवा आप से छुड़वा दी और अपने पास ही एक आसन लगवा दिया। आप अपने अध्ययन के अतिरिक्त आगन्तुकों को फलादेश बतलाने से जो आय होती, वह पं0 जी को सादर समर्पित कर देते। इस पाठशाला का एक प्रभुदत्त गौड़ नाम का विद्यार्थी ज्योतिर्विंद पं0 गंडाराम जी के पास ज्योतिष विद्या पढ़ने अमृतसर पहुँचा और उन के पुत्र की फलादेश कहने की योग्यता के बारे में कहा। श्री गंडाराम जी ने अपने पुत्र तीर्थराम द्वारा बालक रामलाल प्रभु को घर वापस बुलवा लिया।

१.९ शुभ विवाह संस्कार (ई0 सन् 1903 आयु 15 वर्ष)

अमृतसर पहुँचने पर श्री प्रभु राम के माता–पिता व सम्बन्धियों ने निर्णय किया कि बालकस्वरूप रामलाल प्रभु का विवाह शीघ्र कर दिया जाये ताकि ये मोह–ममता में आकर साधु–महात्माओं के पास इधर–उधर भागना छोड़ दे। अतः संवत् 1960 (ई0 सन् 1903) में आप का शुभ विवाह भसीन निवासी श्री युत् पं0 माधोराम जी की सुपुत्री बालकौर (श्वसुर गृह का नाम सुभद्रा) से बड़े समारोह के साथ कर दिया गया। अन्त में नारियों व सालियों ने श्री रामलालजी दूल्हे से छन्द सुनने के लिए उन को अपने पास बुला कर छन्द कहने के लिए प्रार्थना की इनकी प्रार्थना पर आप ने यह छन्द सुनाये ।

छन्द सखी इक मैं कहूं, जो योगी महाराज, वे करते हैं जगत के, पूरण आकर काज ।
पूरण आकर काज, मोक्ष का मेवा देते, मोह माया को त्याग, सदा वे आनन्द लेते।।
तीन गुणों के ताप का, करता वही इलाज, छन्द सखी इक मैं कहूँ, जोयोगी महाराज।।।

छन्द सखी इक मैं कहूं, योगी सब का मीत, धाम सताती नहीं उसे, नहीं सताती शीत।
नहीं सतावे शीत, राग द्वेष अनुराग न राखे, मीठा कड़वा सभी एक संग योगी चाखे।।
हार नहीं उस की कभी, लेता बाजी जीत, छन्द सखी इक मैं कहूँ, योगी सब का मीत।।।

छन्द सखी इक मैं कहूं, मुक्ति मारग योग, योगी प्यारा ईश का, नर्क द्वार है भोग।
नर्क द्वार है भोग, भोग से रोग सतावें, रोगी जो है जीव, कभी सुख नहीं पावे।।
रहते आवागमन में, योग हीन जो लोग, छन्द सखी इक मैं कहूं, मुक्ति मारग योग।।।

छन्द सखी इक मैं कहूँ, स्वप्न जान संसार, निशिदिन जीवन जात है, इसका नही इतवार।
इस का नहीं इतबार गुरू, योगी अपनाओ, सीखो प्राणायाम ब्रह्म का दर्शन पाओ।।
होती नही बिनु योग के, यह नैया पार, छन्द सखी इक मैं कहूं, स्वप्न जान संसार।।।

छन्द सखी इक मैं कहूँ, योगेश्वर घनश्याम, अखिल विश्व के हित कही, गीता परम ललाम।
गीता परम ललाम, योग की शिक्षा देती, सकल ताप संताप जीव के यह हर लेती।।
ऐसे योगीराज को, वार वार प्रणाम, छन्द सखी इक मैं कहूं योगेश्वर घनश्याम।।।

१.१० पं0 श्री गंडाराम जी का देहावसान (ई0 सन् 1907)

विवाह के पश्चात् श्री प्रभु रामलाल जी अपने पूज्य पिता जी के साथ ज्योतिष का

कार्य करते हुए महापुरूषों का सत्संग और योग के उच्च ग्रन्थों का स्वाध्याय भी करते रहते थे। आप के पूज्य पिता पं0 गंडाराम जी विक्रम संवत् 1964 (ई0 सन् 1907) में गोलोक गमन कर गये। उस समय प्रभु श्री रामलाल जी के दिव्य शरीर की आयु 19 साल थी। आप का हृदय तो पहले ही संसार से विरक्त था। इस घटना से आप के हृदय में वैराग्य का भाव और भी उमड़ पड़ा। आप सारा समय ध्यान समाधि अथवा संतों के दर्शन तथा उन के सत्संग में बिताने लगे। फिर एक दिन श्री रामलाल प्रभु पूर्ण सद्गुरु की खोज में घर से निकल पड़े।

१.११ प्रतीकोपासक (*श्री प्रभु रामलालजी महाराज के अपने शब्दों में*)

एक समय हम हरिद्वार में आए, हम नित्य प्रति अपना नित्य कर्म करते रहते थे तब एक दिन मन में आई, कि चलो किसी महात्मा के दर्शन कर आवें तब वहाँ से वशिष्ट गुफा को चल पड़े। एक दिन रात्रि वशिष्ठ गुफा में रहे, तब हम भूखे प्यासे वहाँ से चलते चले गये और पाँच छः दिन चलते चलते व्यतीत हो गये। तब एक दिन एक कुण्ड जल का भरा हुआ मिला तब उस कुण्ड में स्नान कर नित्य कर्म करने लगे, तब क्या देखते है कि एक वृक्ष के नीचे बद्रीफल जैसे अन्य कई फल पड़े हुए हैं और उन फलों को उठा उठाकर खाने लगे। जब उदरपूर्ति हो गई तब ऊपर से पेट भर कर जल पी लिया। उसी समय दस्त आने आरम्भ हो गये। जब तक दिन रहा हमें होश रहा रात्रि को कोई सुध बुध न रही और विरेचन प्रवाह (दस्तों का प्रवाह) चलता रहा। जब रात्रि व्यतीत हो गई और दूसरे दिन का मध्याह्न समय हुआ तो सूर्य ने पत्थर तपा दिए तब हमें भी चैतन्यता प्राप्त हुई तो क्यादेखा ? तब मैने कहा कि देखो कैसी आपति आई है। तब उत्साह से उठे और उठते ही फिर गिर गये और कुण्ड में जा पड़े। उसमें गिरते ही वही शक्ति तथा वही उद्यम उत्पन्न हो गया। भूख से पीड़ित होकर पुनः उन्हीं फलो को खाने लग गये। और खाने के पश्चात् पानी भी पी लिया, पानी के पीते ही अतीत बल हो गया। इसके पश्चात् वहाँ से आगे बढ़े तो मुझे गंगाराम क्षत्री लाहौर का निवासी मिला, मैने पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो तब उसने उत्तर दिया कि मैं किसी महात्मा को देखने आया हूँ। तब हम दोनों उस वन मैं पाँच दिन तक पर्यटन करते रहे। मुझे उन फलों के प्रभाव से भूख न लगी। गंगाराम वृक्षों के पत्र और घास खा–खा कर बीमार हो गया परन्तु भूख फिर भी न बन्द हुई। उसी दिनएक कोस की दूरी पर रात्रि को अग्नि जलती हुई देखी तब हम दोनों उधर ही चल पड़े। जब उस स्थान पर पहुँचे तो अग्नि के पास एक चिमटा गड़ा हुआ देखा तो हमने जान लिया कि यहाँ कोई साधु रहता हैं, तब हम दोनों वहाँ बैठ गये, जब एक पहर रात्रि रही तो महात्मा गुफा से वाहर निकले और हम दोनों ने उनको प्रणाम किया। महात्मा जी ने काँख में से एक लोटा निकाल कर हमें दे दिया और कहने लगे कि तुम्हें जिस वस्तु की आवश्यकता हो वही वस्तु इस लोटे में से ले लेना। इतना कह कर महात्मा जी चले गये।

थोड़ी देर के पश्चात गंगाराम ने उस लोटे से चर्स व तम्बाकू माँगा और उसी समय लोटे में से चरस और तम्बाकू मिल गया और गंगाराम बड़े आनन्द से पीने लगा। जो वस्तु उस लोटे से माँगी वही वस्तु उस लोटे से प्राप्त हुई। प्रातःकाल महात्मा जी फिर गुफा से निकले। उस समय मैंने महात्माजी से बातचीत की तो ज्ञात हुआ कि वे केवल

प्रतीक उपासक थे। तब मैंने बिचार किया कि इनके पास क्यों ठहरा जाय।

उस समय मैंने गंगाराम से कहा कि तुम ठहरोगे अथवा आगे जाओगे। गंगाराम ने कहा कि हम लोटे को छोड़कर कहाँ जा सकते हैं तब मैं वहाँ से आगे चल दिया। चार पाँच दिन इधर घूमने के पश्चात् मैं फिर वहीं लौट कर आया तो मैंने देखा कि आगे आगे गंगाराम और उसके पीछे पीछे साधु भागा जा रहा था, तब मैंने भागकर महात्माजी को जाकर रोका और पूछा कि क्या बात है। महात्माजी ने बतलाया कि आज यह दिन में लोटा लेकर भाग गया था, और रास्ते में जाकर गंगाराम ने जब लोटे से वस्तु माँगी और वह वस्तु लोटे से न मिली, तब गंगाराम वापिस लौट कर आया, अब वह यहाँ आ निकला है। तब मैंने समझा कर क्षमा करा दिया। उस महात्मा जी ने मुझसे कहा कि तुम यहाँ रहो तब मैंने कहा कि मैं प्रतीक उपासना के वास्ते यहाँ नहीं रह सकता। इतना कह कर वहाँ से चल दिये परन्तु गंगाराम वहाँ ही रहा।

१.१२ प्रभु महिमा------ (*मनोरमा सूद के ध्यान द्वारा प्राप्त*)

दिल से इन्हें पुकारो, भगवान आ जायेंगे ।
जिस रूप में ध्यावो, वही रूप धर आयेंगे ।
विष्णु, महेश, ब्रह्मा क्षण भर में बन जायेंगे।। दिल से .....

भीलनी ने इन्हें पुकारा, यह रघुवर बन आये थे।
दिल में इन्हें बसा लो, प्रभु राम बन आयेंगे।। दिल से.....

मीरां ने इन्हें पुकारा, घनश्याम बन आये थे।
नटवर को तुम अपना लो, प्रभु श्याम बन आयेंगे।। दिल से .....

यह भाई बन्धु सारे, कोई न साथ देगा ।
ममता तू इनकी मन से, ओ बन्दे अब हटादे ।। दिल से.....

इक राम नाम को ही, इस मन में तू बसा ले।
तेरी नैया के प्रभु जी, फिर केवट बन जायेंगे।। दिल से .....

श्रद्धा और प्रेम से ही, बस प्रभु को पा जाओगे।
इक बार इनका बन जा, प्रभु तेरे बन जायेंगे।। दिल से .....

१.१३ भय भला किस बात का------ (*गीता मनीषी स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज*)

सब दुःखो की जड़ है मोह, मोह किसी से क्यों करे।
ऐसा न हो जिनको मैं चाहूँ, उनमें से कोई भी मरे।।
हास्यपद यह बात, क्या भरोसा किसी के साथ का।
निर्मोही बन कर देख तू, भय भला किस बात का।।
है भक्त तो फिर सौप दे, सब कुछ प्रभु के हाथ में।
ले जायेंगे उस पार वे रथ जिन्दगी का हांक के ।।
प्रभु सम सुहृद कोई है नहीं, ऐसा तू दृढ़ विश्वास ला।
अंग संग हैं वे सर्वदा, फिर भय भला किस बात का।।

२ अद्भुत सद्गुरुखोज यात्रा

२.१ शिवलीन अवधूत योगी श्री कृपालानन्द जी से मिलन

ऋषिकेश से लगभग नौ मील ऊपर पुण्य–तोया भागीरथी के पावन किनारे किनारे ब्रह्मपुरी नाम का पवित्र वन है। अपनी उत्तरा–खंड की यात्रा प्रारम्भ करने से पूव हमारे सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने कुछ समय इस पवित्र वन में निवास किया था। उन्हीं दिनों अवधूत योगी श्री कृपालानन्द जी भी इस वन में रहा करते थे। अखण्ड मण्डलाकार तेजयुक्त परम सिद्ध श्री प्रभुजी की वास्तविकता को वह पहचानते थे, अतः उनके प्रति कृपालानन्द जी के हृदय में स्वाभाविक ही अत्यन्त सम्मान एवं प्रेम का भाव उदय हो गया था। प्रायः वह श्री प्रभु जी के पास आकर ज्ञान–चर्चा किया करते थे।

अवधूत श्री कृपालानन्द जी के ध्येय थे भगवान सदाशिव, अतः वह शिवलीन रहा करते थे । उस वन में रहने वाले अन्य सभी महात्मा उन का अत्यन्त सम्मान करते थे वह परम विरक्त भाव से अवधूत वृत्ति में विचरण करते थे। उन्हीं दिनों मसूरी के वनों में घूमते हुए एक अंग्रेज दम्पति आए। वहाँ एक साधना लीन महात्मा के र्दशन होने से उस अंग्रेज स्त्री के हृदय में वैसी साधना कर ईश्वर–प्राप्ति की इच्छा जागृत हो गयी। उस स्त्री ने महात्मा जी के चरण पकड़ कर उस मार्ग का उपदेश करने की प्रार्थना की। महात्माजी योगबल से समझ गये कि इसका संस्कार महात्मा कृपालानन्द जी से है। अतः उन्होंने उस अंग्रेज महिला को ब्रह्मपुरी के वन में जाने की आज्ञा देते हुए कहा–''योगिराज कृपालानन्द जी के द्वारा ही तुम्हें यह अन्तर्निधि प्राप्त होगी। उनके द्वारा ही ज्ञान का प्रकाश तुम्हें प्राप्त होगा।'' वह अंग्रेज स्त्री बड़ी दृढ़ लगन वाली थी। अतः पति को वापिस करके स्वयं खोजते खोजते ब्रह्मपुरी के वन में जा पहुची और यत्र–तत्र कृपालानन्द जी का अन्वेषण करने लगी। इसी प्रकार रात्रि हो गई, तब भयभीत होकर उसने भगवान् से कातर–स्वर में प्रार्थना की। अकस्मात् कृपालानन्द जी नग्न रूप में विचरण करते उधर ही आ निकले। देखते ही उस देवी ने अवधूत जी के चरण कमलों को पकड़ लिया। पहिले तो उन्होंने उसे हतोत्साहित करने का प्रयास किया। अन्त में उसकी दृढ़ लगन देखकर उसे योगाभ्यास की विधि बताई और वहीं पर कुटीया बना कर रहने की आज्ञा दे दी। वह देवी अपने गुरुदेव की आज्ञा का अक्षरशः पालन करती और कन्दमूल खाकर अपनी साधना में तत्पर रहती। परिणामतः उसमें कई चमत्कारिक शक्तियों का प्राकट्य हुआ।

जिन दिनों आनन्दकन्द प्रभु श्री रामलाल जी महाराज वहाँ पहुंचे थे, तब यह देवी भी वहां निवास किया करती थी। इसके अतिरिक्त हीरागिरी नाम के एक अन्य महात्मा से भी श्री प्रभुजी का परिचय हुआ। परिचय बढ़ने पर श्री प्रभु जी और वह महात्मा साथ साथ गंगा–स्नान करके कन्दमूल खोद लाते और साथ ही बना लिया करते थे। कभी–कभी कृपालानन्द जी भी उस ओर आ जाते थे। महात्मा हीरागिरि अवधूत कृपालानन्द जी के प्रति कुछ उपेक्षा का भाव रक्खा करता था। अवधूत उसके मनोभाव समझ गये और उन्होनें उसे शिक्षा देने का विचार किया।

अवधूत श्री कृपालानन्द जी प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में ही पवित्र गंगा की धारा में स्नान

करके गंगा–तट पर ही समाधिस्थ होकर बैठ जाया करते थे। दोपहर बाद लगभग दो बजे के उपरान्त वह समाधि से उठते थे। उठने के पश्चात् उस वन में जो कोई भी साधु कन्दमूल बनाकर तैयार किया हुआ दिव्य–दृष्टि से दिखाई देता उसके पास मनोजविता से तत्काल जा पहुँचते और उससे आधा भोजन लेकर खा लिया करते थे। वह स्वयं कन्दमूल न बनाकर नित्य इसी प्रकार किया करते थे। ब्रह्मपुरी के वन में रहने वाला कोई भी महात्मा उनके इस नैत्यिक कार्यक्रम के कारण कृपालानन्द जी से रूष्ट नहीं होता था क्योंकि सभी को उनकी दिव्य–स्थिति का ज्ञान था। सब जानते थे कि यह सब प्रकार से परिपूर्ण भगवान सदाशिव के ही रूप हैं । अतः जिस के यहाँ जाकर भी भोजन करते वही अपना अहोभाग्य समझता और उनके पुनरागमन की प्रतीक्षा किया करता। प्ररन्तु महात्मा हीरागिरि उनके इस व्यवहार से बहुत ही चिढ़ता था, इसी कारण उनके प्रति उपेक्षाभाव रखते हुए कहता–ठीक है, कृपालानन्द जी युक्त योगी हैं और हम सब युंजन योगी हैं। लेकिन कालान्तर में हम भी युक्तता को प्राप्त होंगे ही। कृपालानन्द भी हमारे बराबर का भाई ही तो है।

योगिराज कृपालानन्द जी ने उसके मनोभावों को जान लिया था। अतः अब भोजन के लिए अन्य किसी महात्मा के यहां न जाकर वह नित्य ही महात्मा हीरागिरि के स्थान पर पहुँचने लगे। दो–तीन दिन तो वह चुप रहा और मन मारकर कृपालानन्द जी को भोजन के लिए कन्दमूल देता रहा। परन्तु चौथे दिन उसे कृपालानन्द जी को भोजन के ठीक तैयार हो जाने पर आया हुआ देखकर बड़ी खीझ हुई। जैसे ही कृपालानन्द जी ने अपना भाग माँगा, वैसे ही वह क्रोध में भरकर बोला क्यों दे दें तुझे कन्दमूल ? क्या तू खोद कर रख गया था ? जंगल में पड़ा है कहीं से भी खोद ले और बना कर खा ले। किन्तु अवधूतकृपालानन्द जी ने उस के इन क्रोधयुक्त वचनों को कोई महत्व नहीं दिया और चुपचाप उसके बनाये हुए कन्दमूलों में से अपना भाग स्वयं ही लेकर खा गये और हँसते हुए चल दिए। हीरागिरि बहुत चिढ़ता रहा और कहता रहा देखो, महात्मा होकर भी क्या आदत डाली है ? आया और खा गया जैसे इसके माँ बाप खोदकर और बना कर इसके लिए ही रख जाते हों। हीरागिरि ने अगले दिन इस मुसीबत से बचने के लिए भोजन के समय से बहुत ही पहले कन्दमूल बना डाले और श्री प्रभु जी से बोला–उस दुष्ट कृपालानन्द के आने से पूर्व ही खा लेते हैं। फिर अवधूत आकर खाली पात्र देखकर स्वयं ही लौट जायगा। अभी भोजन उसने परोसा ही था कि सामने से मुस्कराते हुए कृपालानन्द जी आते दिखाई पड़े। आते ही बोले–भाई हीरागिरि बड़ा अच्छा किया जो तुमने जल्दी ही कन्दमूल तैयार कर लिये आज तो जल्दी ही भूख लग आई है। विवश महात्मा हीरागिरि को नित्य की भाँति तीन भाग करने पड़े, और कृपालानन्द जी तृप्त होकर चल दिये।

महात्मा हीरागिरि बड़ी उलझन में था–कैसे इस अवधूत से पिंड छूटे ? उसे एक उपाय सूझा और अगले दिन उसने भोजन के समय तक कन्दमूल खोदे ही नहीं। उसका विचार था भोजन के समय अवधूत आयेगा तो कह दूंगा भाई, यदि तुझे कन्दमूल खाने हों तो खोद ला और बनाकर खा ले। मुझे तो खाना नहीं था, इसीलिए बनाया नहीं है। परन्तु आश्चर्य की बात कि उस दिन भोजन के समय योगी कृपालानन्द आए ही नहीं। जब भोजन का समय निकले दो घंटे हो चुके, तब हीरागिरि वन में जाकर कन्दमूल खोद लाया और बनाने लगा। मन में वह प्रसन्न था और नित्य ही इसी उपाय से कृपालानन्द जी से बचने की बात सोच चुका था। कंदमूल बनकर तैयार ही हुआ था कि कृपालानन्द जी आ पहुँचे और हँसकर बोले– भाई हीरागिरि तू हमारा बड़ा ख्याल रखता है। तुझे कैसे

पता चल गया कि आज हमें भूख नहीं लगी है इसलिए हम देरी से खायेंगे। वैसे तो आज बिना खाये ही रहना पड़ता, लेकिन जब तूने इस समय बना ही रखा है। तो ला–थोड़ा सा खा लेते हैं। मन ही मन हीरागिरि को बेहद क्रोध आया और बोला तुम कुछ समाधि–अमाधि नहीं लगाते। केवल भोजन की समाधि लगाते हो। इस समय कहाँ कन्दमूल मिलेगा। बस यही देखा करते हो। इसके बाद हीरागिरि नित्य स्थान–परिवर्तन करके कन्दमूल तैयार करने लगा। किन्तु श्री कृपालानन्द जी की दिव्य दृष्टि से कोई भी स्थान बच न सका और वह अपनी मनोजविता से प्रत्येक स्थान पर पहुँचकर हीरागिरि के यहाँ ही नित्य भोजन करते थे।

महात्मा हीरागिरि के हृदय में प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो गई औंर उसने एक दिन चुपचाप धतूरे के सेर भर पतों का साग बना डाला और मन में कहने लगा आज महात्मा को इस प्रकार आने का मजा मिल जायगा। उधर श्री प्रभु जी ने भी अपने कन्दमूल भून कर तैयार किए हुए थे। ठीक समय पर कृपालानन्द जी आए। श्री प्रभुजी ने अपने कन्दमूलों के तीन भाग करके एक भाग कृपालानन्द जी के सम्मुख रक्खा। हीरागिरि ने धतूरे का सारा साग कृपालानन्द जी के सम्मुख रख दिया। तब अवधूत बोले– क्यों रे हीरागिरि मरने को हम ही रहे हैं क्या ? हम तुम दोनों ही क्यों न मरें ? इस साग को तू भी खा और हम भी खाते हैं। श्री प्रभुजी इस रहस्य से अनभिज्ञ थे, अतः आश्चर्य में भरकर कहने लगे–महाराज, क्या हुआ ? ऐसे वचन क्यों बोल रहे है। तब कृपालानन्द बोले – आज यह हमें मारने के लिये धतूरे के पतों का साग बनाकर लाया है। श्री प्रभु जी ने कहा–आप उसे मत खाइये, बस केवल मेरे वाले कन्दमूल ग्रहण कीजिए। परन्तु अवधूत कहने लगे–वेचारे ने बड़े प्रेम से बनाया है। हम इसे अवश्य खायेगें। ऐसा कहकर उस साग के तीन भाग करके एक प्रभु जी के सामने भी रख दिया और कहा–तुम इसे निश्शंक खाओं, हम भी खाते हैं। परन्तु फल यह दूष्ट हीरागिरि ही भोगेगा तीनों ने वह साग खाया किन्तु श्री प्रभु जी और कृपालानन्द पर धतूरे के विष का कोई प्रभाव नहीं हुआ। परन्तु थोड़ा सा साग खाते ही हीरागिरि की दशा बिगड़ने लगी और थोड़ी सी देर में विष के प्रभाव से वह मूर्च्छित हो गया। श्री प्रभु जी से कृपालानन्द जी ने कहा तीन दिन तक यह अपने किये का आनन्द भोगेगा तीन दिन बाद होश में आते ही हीरागिरि बोला हम अब इस दुष्ट कृपालानन्द की अपने योगबल से खबर लेंगे और चुपचाप नित्य की भाँति कन्दमूल बनाकर तैयार किये। मध्याह्न होने पर अवधूत श्री कृपालानन्द जी आये और हँस कर बोले कहो हीरागिरि अभी कुछ और मन में है। श्री प्रभुजी हँस पड़े तो अबधूत कहने लगे अब यह योगबल से हमारा बदला लेगा। हम उस समय भी इसकी खबर लेंगे। तत्पश्चात् कन्दमूल का भोजन करके तीनों व्यक्ति बैठ कर चर्चा करने लगे।

उस समय हीरागिरि अपना अपमान समझ कर बहुत ही क्रोध में था। उसी दशा में उसने विचार किया–आज जब यह अवधूत ध्यानस्थ होगा, उसी समय जाकर इसका मुख कालिख से काला करूँगा। कृपालानन्द जी पूर्ण योगी थे, तत्काल उसके मन का विचार जान गये और वहीं समाधि लगा कर बैठ गये। दोनों हाथों को कालिमा से काला करके जैसे ही बढ़ा–उनके आसन के नीचे से ततैयें निकल कर हीरागिरि के मुख को चिपट गईं। उनसे बचने के लिए अनजाने ही उसने अपने दोनों काले हाथों को अपने मुख पर ही लगा लिया। फलतः कृपालानन्दजी के बजाय उसका स्वयं का ही मुख काला हो गया। श्री कृपालानन्द जी की इन चमत्कारिक शक्तियों को देखकर हीरागिरि कुछ भयभीत सा हो गया। परन्तु प्रतिशोध की भावना उसके मन से न निकल सकी।

एक दिन श्री प्रभु जी के निवास स्थान पर हीरागिरि, कृपालानन्द और कृपालानन्द की अंग्रेजी शिष्या सब एकत्रित थे। हीरागिरि कहने लगा–अवधूत जी, आपका तन तो अति कृश है। हमें तो आपसे एक कार्य कराना था। कृपालानन्दजी बोले–निःसंकोच कहो, क्या काम है ? हीरागिरि बोला–हम चाहते थे कि इस ब्रह्मचारी (प्रभुजी) की शिला यहाँ से उठाकर हमारे स्थान पर ले जाकर रख दी जाती तो बड़ा अच्छा होता। वहाँ से हीरागिरि का स्थान दो मील दूर था और शिला का वजन सैकड़ो मन था। तत्काल कृपालानन्द जी ने अपनी अंग्रेज शिष्या को आज्ञा दी जाओ, यह शिला उठाकर वहां रख आओ। आज्ञा पाकर वह देवी श्री कृपालानन्द की प्ररिक्रमा करके एवं चरणकमलों में प्रणाम करके उस शिला पर सिद्धासन से बैठ गई। थोड़ी देर में ही वह शिष्या शिला सहित आकाश मार्ग से जाकर, यथा स्थान शिला को रखकर आकाश मार्ग से ही वापिस आ गई। आकर अपने गुरूदेव को प्रणाम करके बैठे गई। इस चमत्कार को देखकर हीरागिरि बहुत लज्जित होकर कृपालानन्द जी का मान करने लगा। तब श्री प्रभु जी वापस हरिद्वार आ गये।

२.२. श्री प्रभुजी की जयराम से भेंट

हरिद्वार में श्री प्रभु जी को उनके पिताजी का जयराम नामक एक विद्यार्थी मिला। उसने महाराज जी को प्रणाम कर, जो कुछ पैसे पास थे, वे भी चरणों मे भेंट कर दिये और प्रार्थना की, ''महाराज! मुझे भी अपने चरण कमलों के साथ ही रखिए।'' श्री प्रभु जी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

तत्पश्चात् श्री प्रभु जी जयराम को साथ लेकर हरिद्वार से 'काठ गोदाम' आ गये और एक धर्मशाला में ठहरे। श्री प्रभुजी के पास उस समय केवल तीन पैसे बचे थे। जयराम को भेजकर तीन पैसे की स्याही व कागज़ मंगवा लिये और उन पर विज्ञापन लिखा–''पंजाब के एक ज्योतिषी और वैद्य धर्मशाला में ठहरे हुए हैं। जिस किसी को अपनी जन्मपत्री दिखलानी हो या चिकित्सा करवानी हो, वह आकर लाभ उठावें''। इस विज्ञापन को जयराम ने शहर के मुख्य–मुख्य स्थानों पर जाकर चिपका दिया। कुछ समय पश्चात् एक सेठ ने आकर अपनी जन्मपत्री श्री महाराज जी को दिखलाई। उस फलादेश को सुनकर उसकी पूरी सन्तुष्टि हुई, जिससे सेठजी ने भोजनादि का सब प्रबन्ध कर दिया और कुछ रूपये भी भेंट किये। इसके पश्चात् बहुत से व्यक्ति कुण्डली दिखलाने और रोग चिकित्सा के लिये आने लगे।

२.३. श्री प्रभु जी द्वारा राजमाता (काठगोदाम) को दीक्षा

कुछ दिनों में ही शहर में आपकी पूर्ण प्रसिद्धि हो गई कि पंजाब से आये हुए वैद्यराज और ज्योतिषी जी महाराज बहुत से असाध्य रोगियों को ठीक कर चुके हैं और ज्योतिष के फलादेश को कहने में तो अद्वितीय हैं। इस प्रकार की प्रशंसा जब 'काठ गोदाम' के राजा ने सुनी, तो वह भी श्री महाराज जी को बड़े सम्मान के साथ अपने राजमहल में ले आये। 'काठ गोदाम' की राजमाता ने भी श्रीमहाराज जी से दीक्षा प्राप्त की। कुछ दिन और वहाँ रहने के पश्चात् श्री महाराज जी वहां से जाने लगे तो राजा ने और ठहरने के लिए प्रार्थना की, परन्तु महाराज जी न रूके और एक दिन बिना किसी को सूचना दिये वहाँ से मुरादाबाद की ओर चल दिये। जब राजा को श्री प्रभुजी के मुरादाबाद पहुँच जाने का समाचार मिला तो वह राजमाता सहित श्री प्रभु जी के चरण कमलों में पहुँच गया

और 'काठ गोदाम' चलने के लिए बहुत अनुनय विनय करने लगा, परन्तु श्री महाराज जी वापस जाने के लिए सहमत न हुए और राजा को सदुपदेश व कृपामय आशीर्वाद देकर भेज दिया।

२.४. बन तीर्थ बन (*श्री प्रभु रामलालजी महाराज के अपने शब्दों में*)

एक स्थान बड़े भयंकर वन में तीर्थवन नाम से विख्यात है। उस स्थान में एक योगभ्यासी महात्मा रहते थे। उनकी इच्छा हुई कि इस स्थान पर कुछ मंदिर आदि की रचना करें तब उन्होंने देखा कि यहाँ पांडवों के समय के मंदिर बने हुए थे, वह गरक हो गये, तब उन्होंने देखा कि एक कदम के वृक्ष के नीचे दूध का एक कुण्ड भरा हुआ है। वह कुण्ड पत्थरों से बन्द है। उसके आगे से पत्थर हटाया जाए तो उसमें से दूध निकल निकल कर, उसके पास ही एक तालाब है उसमें जाकर गिरेगा और बड़ा धन शस्त्रादिक उस तालाब के पास जो मंदिर गरक हो गये हैं उनमें पड़े हुए हैं।

जब महात्मा का संकल्प उठा तब वहाँ पर मजदूर आदि आने लगे। महात्मा ने उन्हें हुक्म दे दिया कि तुम इस वन को काटो। इस वन में से राजा की एक दाँतिन भी काटने की आज्ञा नहीं थी। उन मजदूरों ने वह जंगल कितना ही काट दिया। जब राजा के नौकरों को खबर हुई, तब राजा ने नौकरो को भेजा कि उस साधू को पकड़ लाओ। जब राजा के नौकर साधू को पकड़ने लगे तो उन मजदूरों ने मार मार कर नौकरों को भगा दिया। तब उस राजा ने फौज भेजी। मजदूर तो भाग गये, महात्मा को उन्होंने पकड़ लिया और उनको बाँध कर हाथी पर लाद लिया।

एक चण्डाली जो वहाँ का स्थान झाड़ती थी, उसने हाथी की पूँछ पकड़ली। हाथी चिल्लाने लगा। जब हाथी चिल्लाया तो वन के सैंकड़ों हाथी आगए । तब फौजों ने तोपें व गोली चला कर अपना पीछा छुड़ाया। महात्मा जी ने चण्डाली को कहा कि तुम हाथी को छोड़ दो हम अभी आते हैं । तब वे महात्मा को लेकर राजा के सामने ले गए। उसने कारागार बास दे दिया और कहा कि इसको पाँच दिन के बाद बुलायेंगे। जब महात्मा को करागार में डाल दिया तो महात्मा दूतों से कहने लगे कि जाओ राजा से कह दो कि हम जा रहे हैं तुम पकड़ लो। इतना कह कर महात्मा निकल गये और नैनीताल शहर में आकर वह महात्मा और साधुओं को उपदेश करने लगे। राजा के दूतों ने देखा कि यह वही साधु है जिसे पकड़ कर आज लाए थे। जब उसको दूत पकड़ने लगे तब वह महात्मा लोप हो गये। उन दूतों ने आकर राजा को कहा कि वही साधु कारागार में से निकल गया है। तब राजा ने फिर हुक्म दे दिया कि उसे पकड़ लाओ । तब वे उसी महात्मा को, उस ही बन में से पकड़ कर लाये और राजा के सामने किया। राजा ने कहा तुम कारागार से क्यों भाग गये, तुम्हें हमारा भय नहीं हैं। तुम्हें अब बड़ी कठोर सजा दी जायेगी।

महात्मा ने कहा कि साधु कभी किसी के रोके रूक नहीं सकते, राजा सुसर क्या है । ब्रह्मा विष्णु के भी रोके नही रूक सकते हैं। ले सुसर अब हम जाते हैं तुम हमें पकड़ लो। तब राजा हथकड़ी लगाने का हुक्म देता ही रहा पर, महात्मा पहले ही लोप हो गये।

तब राजा ने कहा कि ये तो कोई महात्मा हैं, इन्हें क्या पकड़ना है। और तब महात्मा उसी वन में आकर वृक्ष कटवाने लगे। तत्पश्चात् जहाँ–जहाँ पृथ्वी में धन कोशादि वस्तुएँ थीं वह खुदवाने लगे। तब एक दिन वह राजा शिकार खेलने के वास्ते उसही स्थान पर

आ गये तब उस महात्मा ने एक साधु को उस राजा के पास भेज दिया। उस साधु ने जाकर राजा को कहा कि तुम हमारे बन में शिकार नहीं खेलो। तब राजा ने हुक्म दिया कि तुम मुझे उस महात्मा के पास ले चलो। तब वह साधु राजा को महात्मा के पास ले आए। तब राजा ने महात्मा के यहाँ गौएँ देखी और राजा ने महात्मा को जाकर प्रणाम किया। तब महात्मा ने कहा तुम हमारे जंगल में आकर जीव हत्या क्यों करते हो। राजा ने उत्तर दिया कि हम तुम्हारी गौओ की रक्षा के लियें सिंहादियों को मारते हैं।

महात्मा ने कहा कि हमारे शेर ऐसे नहीं हैं। राजा ने कहा कि देखें तुम्हारे शेर गौओं को तँग कैसे नहीं करते ? तब महात्मा ने कहा कि देखो शेर अभी आता है। उसी समय दो तीन शेर आ गये और सभी गौएँ वहाँ से निकल कर एकत्रित हो गई। एक ही स्थान पर सभी घास खाने लगे, एक गाय ने शेर को सींग मारे तो शेर चिल्लाया और दूर हट कर घास खाने लगा। राजा ने महात्मा के चरण पकड़ कर क्षमा माँगी और कहने लगे कि हे महात्मा हम देश के राजा हैं जो इच्छा हो माँगो। तब महात्मा ने कहा कि हम तुम्हारे से क्या माँगे, हम राजाओं के भी महाराजा हैं, जो तुम्हारी इच्छा हो सो तुम माँगो। तब राजा ने देखा कि यहाँ इमारत लगी हुई है तब उसने एक हजार बोरी चूने की और एक हजार रूपया देने का हुक्म दे दिया। तब एक साधु ने कहा कि महाराज हमको कुछ जमीन भी देनी चाहिए। राजा ने कहा जितनी चाहते हो उतनी लेलो। तब साधू ने कहा, हमे एक घोड़ा दे दीजिये, जितनी जमीन पर घोड़े पर चढ़ कर मैं घूम आऊँ उतनी जमीन हमें दे दीजिये। तब राजा ने घोड़ा दे दिया और जितनी जमीन पर वह घूम कर आया, उतनी ही जमीन देदी। तब आज्ञा मांगी। महात्मा ने कहा इस बन में जीवों का कभी भी शिकार खेलना नहीं होगा। तब राजा प्रणाम कर महात्मा से आज्ञा पाकर उस जंगल से चले गये।

तत्पश्चात् महात्मा ने उस निशान पर पक्की बुर्जियाँ लगवा दीं। फिर महात्मा ने पृथ्वी खुदवानी आरम्भ करदी। जमीन के अन्दर खजाना मिला और पाण्डवों के समय के शस्त्र मिले, पत्थर की शिलायें दो सौ गज लम्बी जमीन के नीचे दबी हुई निकली; उनके ऊपर रंग किये हुए और देवताओं की मूर्तियाँ लिखी हुई थीं, तब उन्हें देख कर राजा व मजदूर कहने लगे कि इनको कौन उठा कर रखेगा, तब महात्मा ने कहा कि हम उठाकर रख देंगे। महात्मा मजदूरों को मजदूरी नहीं देते थे, जिसकी जितनी मजदूरी होती थी उसको उतना ही सोना अथवा चाँदी उस ही जमीन से मिल जाता था। महात्मा ने उसी स्थान पर ईट पत्थरों से मन्दिर बनवाने प्रारम्भ कर दिए। महात्मा ने कहा कि ये दो दो सौ गज की लम्बी पत्थर की शिलायें गढ़ी हुई हैं, इनकी छतें बनवानी हैं। तब राज मजदूरों ने कहा कि महाराज इनको इंजन भी नहीं हिला सकता हम कैसे उठायेगें। महात्मा ने कहा तुम सौ सौ कोठरी चारों ओर बना लो उसके ऊपर छत बनाने के लिए हम शिलायें उठा कर रख देगें। सब राजों ने ऐसा ही करके महात्मा से कह दिया कि अब शिलायें ऊपर रखनी चाहिए। तब महात्मा ने हाथ में बाँसुरी पकड़ पर बजानी शुरू कर दी और शिलायें अपने आप वहां से उठ कर ऊपर धर गई। राज मजदूरों ने देखा कि शिलायें जैसी–2 धरनी चाहिए थीं वैसे ही धरी गईं हैं। यह आश्चर्य देख कर राज व मजदूर महात्मा के चरणों में गिर पड़े। इसी प्रकार राज मजदूर और महात्मा इस मन्दिर को बनाते रहे। वह मन्दिर ऐसा बना हुआ है कि सौ कोठरियाँ चारों ओर बनी हुई हैं और चौदह मंजिल ऊँचा सफेदी व रोगन आदि से सुसज्जित हैं।

फिर महात्मा ने उस कदम के वृक्ष को हाथ लगा दिया क्योकि उसके नीचे दूध का

कुण्ड था। तब उन्होंने उसे खुदवाना शुरू कर दिया और जड़ खुद जाने पर उसमें से दूध की धारा निकलने लगी। तब उन्होंने तालाब खुदवाने की इच्छा की। जब उन्होनें ध्यान देकर देखा तो मालूम हुआ कि तालाब बहुत ही गहरा था और उसके ऊपर मिट्टी बहुत सी थी। तब उन्होंने तालाब खुदवाना छोड़ दिया।

एक दिन हस्तिनापुर का नबाव वहाँ परीक्षा लेने आ गया। उसने वहाँ आकर कुछ तो भेंट की और कहा कि एक दिन हमारा अन्न खाइये। दूसरे दिन उसने वहाँ रोटी बनवाई और नौकर के कान में कहा कि तुम कोई जानवर मार कर उसे पका कर इनको किसी तरह खिलादो, नौकर अभी जाने न पाया था कि महात्मा ने उसी समय नबाव को बुला कर कहा कि यहाँ तुम अन्न खिलाने के बास्ते आये हो या माँस। अच्छा तू ऐसा चाहता है तो अन्धा हो जा, तब नबाव चरणों में गिर गया और अपराध क्षमा करवा लिया और नवाब चला गया।

एक दिन महात्मा ने सोचा कि यह शरीर बूढ़ा हो गया है या तो इसी को फिर जवान बनालें या दूसरा शरीर धारण करलें तब उन्होंनें उस शरीर को बारह वर्ष का बना लिया। लोग 10–20 कोस के ग्रामो के रोगों से आर्त हुए वहाँ जाते थे और महात्मा के वास्ते पान और सुपारी ले जाते थे। महात्मा और कुछ खाते ही नहीं थे। कुष्टी अभी तक जाते हैं।

एक दिन महात्मा के मन में आई कि इस शरीर को छोड़दें। इतने में बाबा लक्ष्मणदास उस स्थान को आ रहे थे और ये महात्मा जंगल को जारहे थे, तो रास्ते में दोनों का मेल हो गया। तब महात्मा ने कहा कि तुम हमारे स्वरूप जैसे हो अतः तुम हमारे स्थान पर चले जाओ और हम यहाँ पर शरीर त्यागते हैं। महात्मा ने शरीर त्याग दिया और बाबा लक्ष्मणदास ने उसे उठाकर नदी में फेंक दिया। महात्मा लक्ष्मणदास वहाँ रहने लगे।

रामपुर वाले नबाव ने उस दूध के कुण्ड के ऊपर आकर गौ हत्या कर दी। तब वह दूध की धारा निकलना बन्द हो गई। अब भी उसके आस पास के लोग वहां उसी तरह से आते हैं क्योंकि वे लोग यही समझते हैं कि यह वही महात्मा हैं क्योंकि उनकी शक्ल व शरीर वैसा ही था, फिर एक दिन, घूमते–घुमते हम भी चले गये और बाबा लक्ष्मणदास हमारे साथ भी और लोगों की तरह बरतने लगा। तब हमारे लड़कों ने उसकी पोल खोलनी शुरू की। तब वे हमारे पास आकर कहने लगे कि आप हमारी उन्नति नहीं चाहते। मैंने कहा कि हम तुम्हारा क्या नुकसान करते हैं। तब उसने कहा कि आपके शिष्य यह कहते हैं कि यह वह महात्मा नहीं हैं, यह लक्ष्मणदास वैरागी है तब मैंने कहा वह सत्य कहते हैं। तब महात्मा बोला कि यह बिलकुल झूठ है। तब मैंने कहा कि तुम आधे क्वार सायंकाल के वक्त जसपुर से आरहे थे रास्ते में तुम्हें इस नदी के किनारे वह महात्मा मिले थे या नहीं ? तब उन्होनें अपना शरीर त्याग दिया, और तुमने उनका शरीर नदी में फेंक यहाँ आकर सब कुछ सम्भाल लिया। अब तुम उनकी तरह गाली गलोज लोगों को देने लगे, कहाँ वह महात्मा योगाभ्यासी कहाँ तुम अज्ञानी अनपढ़। तब बाबा लक्ष्मणदास ने पाँव पकड़ लिये और कहने लगे मेरा अपराध क्षमा कीजिये मैं आपका दास हूँ। इस बात का यहाँ किसी को ज्ञान नहीं है। मुझे अपना दास जानकर मुझ पर कृपा करो। मैंने कहा कि तुम क्या चाहते हो, उसने कहा कि उसी तरह सब लोग आते है, न तो हमारे पास कोई दवाई है और न हम कुछ जानते ही है तब हमनें उन्हें कुछ मन्त्र बता दिये और कुछ दवाई उनके हाथ से बनवादी और भी जो उन्होंने कहा वह भी करा दिया। तब उसने लोगों से शेरनी का दूध इकट्ठा करवाया और शेर के मृगान दे कर हमें विदा किया। तब हम वहाँ से चले और वह हमारे साथ आकर हमें जशपुर छोड़ गये।

२.५ जसपुर के कुम्हार बालक पर प्रभु कृपा

जसपुर पहुँचकर श्री प्रभुरामलाल महाराज जी एक मंदिर में गये। वहाँ कुछ व्यक्ति बैठे हुए एक कुम्हार के लड़के की प्रशंसा कर रहे थे कि वह लड़का प्रायः इस मंदिर में घंटों ध्यान–भजन करता रहता है और जब प्रसन्नता में आकर किसी को कोई बात कह देता है तो वह बात सत्य हो जाती है। इस प्रकार बातचीत चल ही रही थी कि वह लड़का भी वहाँ आ पहुँचा। श्री प्रभुजीमहाराज ने उस बालक को अपने पास बुला कर कहा–''बेटा! तुम्हारी खेचरी अभी सिद्ध नहीं हुई तथा मूलाधार चक्र में तुम्हारे ध्यान की स्थिति है''। यह बात सुनकर बालक ने श्री प्रभु जी के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया तथा पास के एक कमरे से लैम्प उठा लाया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। श्री प्रभु जी ने पूछा– ''क्या बात है'' उत्तर में बालक ने प्रार्थना की, ''महाराज! दो दिन से मुझे ध्यान में आपके दर्शन हो रहे हैं। इससे पहले जिन गुरूदेव ने ध्यान की स्थिति कृपाकर प्रदान की थी, जब वे जाने लगे तब मैंने उनसे प्रार्थना की कि महाराज! आपकी शरण प्राप्त करके भी क्या मैं अधूरा रहकर इस संसार में गोते खाता रहूँगा? तो उत्तर में उन्होंने कहा–''पुत्र! जितना काम हमें करना था, वह कर दिया है। अब तुम्हें इससे आगे की स्थिति प्रदान करने के लिए एक महापुरूष पंजाब देश से यहाँ पधारेंगे। मैंने प्रार्थना की –यदि वे आयें और मैं न पहचान सका तो फिर मेरा उद्धार कैसे होगा''? उन्होंने उत्तर में कहा –''पुत्र! वे प्रभुरूप ब्राह्मण–कुल में अवतीर्ण हुए हैं और उनके मस्तक में बाई ओर चोट का निशान है। प्रभो, अब मैं वही निशान देखना चाहता हूँ। कृपया मस्तक के वस्त्र को कुछ ऊपर उठाइये''।

यह सुनकर श्री रामलाल जी महाराज ने मस्तक से वस्त्र को ऊपर उठाया तेा वह बालक उस निशान को देख गद्गद हो श्री प्रभु के चरणों मे गिर पड़ा। श्री प्रभुजी ने कृपा कर करूणामय आशीर्वाद प्रदान किया। कुछ समय योग–सम्बन्धी वार्तालाप के पश्चात् फरमाया–''बेटा, अब तुम इस समय रात्रि को घर जाकर विश्राम करो और प्रातः स्नान इत्यादि करके आना तो हम योग में तुम्हारी विशेष स्थिति करवा देंगे।'' तत्पश्चात् श्री प्रभु जी के चरण कमलों में प्रणाम कर वह बालक अपने घर को चला गया।

दूसरे दिन प्रातः पुष्पादि उपहार लेकर भक्तिपूर्वक उस बालक ने श्री महाराज जी के चरणों में आकर साष्टांग प्रणाम किया और योग कि विशेष स्थिति के लिए प्रार्थी हुआ। श्री प्रभु जी महाराज ने अधिकारी समझ शक्ति संचार द्वारा खेचरी की सिद्धि एवं कुण्डलिनी जागृत करा दी तथा आज्ञा दी, ''अब तुम एकान्त में जाकर समाधि को बढ़ाओ। इसके पश्चात् श्री प्रभुजी वहाँ से चल दिये।

२.६ अवधूतानी शलमा (*श्री प्रभु रामलालजी महाराज के अपने शब्दों में*)

एक अवधूतानी, जिला अलमोड़ा की, अयोध्या में बैठी रो रही थी, मैंने पुछा, कहो अवधूतानी यह क्या बात है तब उसने कहा कि साधुओं को रो रही हूँ। तब मैंने कहा कि साधुओं ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तब उसने कहा, मैं एक गृहस्थी योगाभ्यासी महात्मा की सेवा करती थी। तब एक वैरागी साधू आँखों में पत्थर धरे मिले, मैंने उनसे कहा कि ''हे महात्मन्! यह आँखों में पत्थर कैसे धरे हैं।'' तब उस साधू ने कहा, ''पत्थर मत कहो यह तो शालिग्राम हैं।'' तब मैने कहा, ''इनके यहाँ रहने का क्या

प्रयोजन है'' तब उसने कहा ''हर समय शालिग्राम का दर्शन होता रहता है।'' तब मैंने कहा ''कि महाराज मुझे भी दर्शन कराओ तो उस साधु ने कहा, ''सेवा के बिना ही ?'' तब मैंने कहा–''नहीं महाराज सेवा आपकी करूँगी।'' तब उस महात्मा ने कहा ''फिर हम तुम्हें दर्शन भी करा देंगे।'' तब मैं उनकी सेवा करती रही। दो तीन मास के वाद मैंने साधू को कहा ''कि महाराज मुझ पर भी कृपा करो, मुझे भी दर्शन करवाओ।'' तब उस साधू ने कहा ''तू अभी अधिकारी नहीं हुई।'' मैं फिर भी उनकी सेवा तीन चार मास करती रही, तब मैंनें कहा–''महाराज मुझ पर कृपा करो मुझे दर्शन करवाओं, ''ऐसे दर्शन नहीं हुआ करते हैं जैसे तुम करती हो उसने कहा। ''महाराज कैसे दर्शन होंगे ?'' तब उसने कहा ''कि तुम सामग्री लाओ हम हवन करेंगे। फिर हम पीछे यज्ञ करेगें। तब हम शालिग्राम जी का आपको दर्शन करवायेंगे।'' तब मैंने सामिग्री तो लादी और यज्ञ के वास्ते लोगों के पास याचना करने के लिए गई। जब यज्ञ होने लगा, तब उस महात्मा ने कहा एक रेशमी रूमाल शालिग्राम जी के वास्ते लाओ। जिन जिन पुरूषों को दर्शन करना है उनको भी साथ ले आना। तब मैंने बड़े उत्साह से रूमाल ला दिया। तब उन्होंने जो एक ग्रन्थिका हर समय वक्षस्थल में स्थित रखते थे और जब कभी मैं पूछती थी कि यह क्या है तब हमें कहते थे बस इसका नाम मत लो। तब मैं कहने से बन्द हो जाती थी, वह उस ग्रन्थिका को खोलने लगे, उस समय उन्होंने कहा–अब तुम सीताराम करते जाओ। तब उन्होंने ऊपर से अँगोछा उतारा, नीचे से एक लोहे का डिब्बा निकला तब उसने वह भी खोला, तब उसमें से एक डिबिया और निकली जो कि रूमाल से बँधी हुई थी। तब उसने माला खटखटा के उसे खोला, खोलके क्या देखते हैं– उसमें से वही पत्थर का बट्टा निकला। तब मैंने कहा, क्यों मुझे पत्थर के बट्टे का दर्शन कराना था, तब महात्मा ने कहा हम तो बड़े परिश्रम से नैपाल गये, तब बड़ी कठिनता से मुक्ति नारायण गये, बर्फ भूख प्यास को सहन किया, तब यह शालिग्रामजी का दर्शन पाया, तुम एक वर्ष सेवा करके घबरा गई, मैंने तो अस्सी वर्ष की अवस्था में शालिग्राम का दर्शन पाया है। तब मैंने कहा–ऐसे तो मन्दिरों में कई पड़े हैं, मैं तो चाहती हूँ चतुर्भुज परमात्मा का दर्शन करूँ। तब उसने कहा कि न तो हमारे गुरू और दादा गुरू ने किए, क्या कलयुग में चतुर्भुज का भी कभी दर्शन होता है तब मैं निराश होकर वहाँ से चली आई। वह योगाभ्यासी महात्मा इस सधुए ने छुड़ा दिए, नहीं तो आज तक ऐसे ऐसे अनेक पुरूषों को मैं दर्शन करवा देती। तब मैं उन योगाभ्यासी को अन्वेषण करती हुई चली, उन्होंने वह स्थान छोड़ दिया और पति–पत्नी किसी पहाड़ पर चले गये थे। मैंने उनके वियोग से घर बार त्याग दिया, तब मैं एक महात्मा जो वेदान्ती थे उनके पास आ गई। उनकी सेवा करने लगी, उसने हमारा सिर मूंड़ लिया, सिर मूँड़ कर उसने चेली बना लिया। तब उसने बहुत मिथ्या भाषण हमें सिखला दिया, वेदान्त के ग्रन्थ पढ़ पढ़ कर सिर्फ अहं ब्रह्मस्मि कहना मात्र ही सिखला दिया। अब मैं लोगों का अन्न व्यर्थ में खाया करती हूँ। तब मैंने कहा, जो तूमने पहले पत्थर बतलाए थे उसमें तुम और उस महात्मा की गलती है, उसको इस शालिग्राम में से चतुर्भुज विष्णु की मूर्ती निकालनी नही आती थी। उसमें चतुर्भुज मूर्ति है। तब उसने कहा कि यह बात मैंने उस योगाभ्यासी से सुनी थी। इसी वास्ते में उस सधुए के पीछे पड़ गई थी, यदि आप कोई ऐसा साधन जानते हों, तो हमें करा दीजिए मैं आपकी तन, मन, धन से सेवा करूँगी। तब मैंने कहा–मुझे तुम्हारी सेवा की कोई आवश्यकता नहीं हैं। तुम अपना काम करके दिखाओ। तब हम उसे एक मन्दिर

में ले गये, वहाँ जाकर राम, लक्ष्मण सीता जी की मूर्ति दिखलाई और साथ ही उसे वह विधि सिखलाई। तब हम आगे चल दिये। जब हम घूम कर हरिद्वार में आये, तब हमें वह बहुत सी स्त्री साथ लिये और आप बड़ी चुटमुट बनी हुई आन कर पाँव में गिर पड़ी। मैंने पहचाना भी नहीं और स्तुति करने लगी। तब मैंने पहिचाना कि यह वह अवधूतानि है। तब उसने कहा कि महाराज में वही चरणों की दासी हूँ, जो कि अयोध्या मे आपने अपने चरणों के साथ लगाई थी। उस दिन से रात दिन हर समय आप हमारे साथ ही रहते हैं। आगे तो में एक विष्णु भगवान के दर्शन के लिये भटकती फिरती थी, तब रात दिन मैं रोती रहती थी। अब में जिस समय जिस लोक में जाना चाहती हूँ वहाँ ही आप ले जाया करते हैं। जैसे मेरे मन में आती है वैसे ही उन देवताओं से आप करवा देते हो। जो मेरा कार्य होता है वह आप उसी समय कर देते हैं। अब सैंकड़ों हमारी चेलियां आप ही को स्मरण करती हैं। आपकी मूर्ति हर एक के हृदय में जड़ी हुई है। जब मुझे शिव लोक व इन्द्रलोक व किसी लोक में जाना होता था तो मैं आपसे विनय करती थी कि अमुक्त अमुक्त शिष्या को में साथ ले जाना चाहती हूँ । तब उस चेली को आप साथ लेकर चल पड़ते थे। एक दिन मैं आपके साथ इन्द्रपुरी को गई तव वहां के भोग्य पदार्थ भोगने लगी, तो मैंने देखा कि इन्द्रदेव जी एक अत्यन्त सुन्दर पुष्पक विमान में बैठ कर कहीं जाने लगे, तो मैं आपके पीछे पड़ गई कि इस विमान पर मुझे चढ़ना है। तब आपने वही पुष्पक विमान इन्द्र से लेकर हमें चढ़ा दिया। ऐसे मेरे मन के मनोरथ आप पूरण करते हैं। एक दिन मैं और मेरी सब शिष्या एक जंगल में जा रहीं थी। तब वहाँ हमें प्यास लगी तो एक कूप में, से मेरी शिष्या विन्दा पानी लेने चली गई। तब वह सब तो रोने लगी। मैंने आपका ध्यान किया और कहा कि यह लड़की तुम्हारी जा रही है कूप में तब आपने भुजा से पकड़ कर बाहिर निकाल दिया। ऐसे–ऐस लोक और परलोक के कार्य हमारे आप करते रहे, तो अब दासी को क्यों विस्मरण किया। तब मैंने कहा, नहीं अवधूतानी हमने तुमको विस्मरण नहीं किया। तब उसने कहा आप हमारे आसन पर चलें। तब हमने उसको कहा कि हम कल तुम्हारे आसन पर आयेंगे यह कह कर हम चल दिये।

२.७ जयराम का जिह्वा चापल्य

श्री प्रभुजी अवधपुरी से भ्रमण करते हुए मथुरा आये। जयराम नाम का एक विद्यार्थी कुछ काल से श्री प्रभुजी के साथ था। जब से श्री प्रभु जी के साथ मण्डली रहने लगी और दर्शनार्थी अधिक संख्या में आने–जाने लगे, तब से जयराम में यह दोष आ गया था कि दर्शनार्थी जिज्ञासुओं से अलग पेड़े मंगवाकर खाया करता था। श्री प्रभुजी के पास रहने के कारण जयराम को भी लोग बहुत श्रद्धा से देखा करते थे,। पर जयराम श्री प्रभु जी से छिपाकर अलग पेड़े मंगवाकर खाने में ही उन लोगों की श्रद्धा का दुरूपयोग किया करता था। इस बात को देखकर श्री प्रभु जी ने जयराम को ऐसा न करने के लिये कई बार समझाया, पर उसने अपनी आदत न छोड़ी। तब श्री प्रभुजी ने एक दिन उसकी आदात छुड़ाने के लिये बहुत से पेड़े मंगवाये और जयराम को अलग ले जाकर खाने की आज्ञा दी। जयराम ने बड़े आनन्द के साथ पेट भर कर पेड़े खाये। फिर भी बहुत से पेड़े बच गये। जब उसका पेट बिल्कुल भर गया, तब श्री प्रभु जी ने डांट कर जबरदस्ती पेड़े खिलाने शुरू किये। थोड़ी देर में जयराम बिल्कुल भी न खा सका और उसके खाये हुए

सब पेड़े उल्टी होकर निकल गये। उसी दिन से जयराम को पेड़ों से घृणा हो गई और उसका सारा जिह्वा–चापल्य (जीभ का चटोरापन) एकदम जाता रहा।

२.८ सवांई (आगरा) में प्रभु पदार्पण (ई० सन्-1909)

श्री प्रभु जी मथुरा से चल कर पहली बार सवांई आये। (सवांई आगरा शहर से 15 मील दूर तहसील एत्माद पुर से लगभग 1 मील पश्चिम की ओर है। टूंडला रेलवे जंक्शन से यह 6 मील की दूरी पर है और एत्मादपुर होकर आना पड़ता है) वहां के एक संस्कारी भक्त प्यारे लाल ने सवांई में श्री प्रभु जी का बड़े आदर मान, और प्यार से सत्कार किया और वहाँ के सब लोग अपने–अपने काम को छोड़ कर श्री प्रभु चरणों में आने लगे। श्री प्रभु जी ने उन को अपने उपदेशों से निहाल किया। श्री प्रभुजी उन को योग के साधन कराने लगे और औषध द्वारा उनकी बीमारियाँ भी हरने लगे। सवांई के लोग श्री प्रभु जी को ''बाबा जी'' कह कर सम्बोधत करते थे। श्री प्रभु जी अपने इस आगमन पर सवांई 27 दिन ठहरे थे और वहाँ के लोगों के प्रेम वस श्री प्रभु जी ने उन्हों वहां फिर आने का वचन भी दिया था।

२.९ काशी जी में भगवान शंकर जी की पूजा

श्री प्रभु जी सवांई से चल कर भगवान शंकर की नगरी काशी जी में पहुँच गए। श्री प्रभु जी ने वहाँ श्री महाप्रभु भगवान शंकर जी की पूजा आराधना की और प्रार्थना की–

अशीर्वाद दो कल्याणधन, कर प्रण मेरा पूर्ण। आया घर से जिस लिये, कारज हो सम्पूर्ण।।

यही भाव मनलायकर, करते प्रभु प्रणाम। नभ से वाणी यों भयीं, ''जय हो तेरी राम''।।

२.१० एक संस्कारी देवी पर प्रभु कृपा

श्री प्रभु रामलाल जी महाराज के कृपापात्र बालकृष्णदास जी एक बार भ्रमण करते–करते बनारस के पास के एक गांव से निकल रहे थे। वहाँ पर उन्होंने उस गाँव के समीप रहने वाली एक योगिनी के विषय में चर्चा सुनी। श्री बालकृष्णदास जी को उसके दर्शन की इच्छा हुई, अतः पता पूछ कर उस देवी के स्थान पर पहुँचे। उस समय वह योगिनी अपने स्थान पर उपस्थित नहीं थी। अतः ध्यानावस्था में बैठकर उन्होंने यह जानने का प्रयास किया कि वह योगिनी किस कोटि की है। अभी तक यह ध्यानस्थ ही थे कि वह योगिनी कहीं से आ पहुँची। उन्हें देखकर अपनी शिष्याओं से कहा–''देखो, यह हमारे गुरुभाई हैं। बड़े भाग्य की बात है कि यह यहाँ आ पहुँचे हैं। तुम लोग मन लगाकर इनकी सेवा करो।'' बहुत देर बाद जब बालकृष्णदास जी ध्यान से उठे, तब उस योगिनी की शिष्याओं ने इनकी बहुत सेवा की। जब योगिनी ने उन्हें अपना गुरू भाई बताया, तब इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होने पूछा–बहिन जी, कृपा करके बताइये कि मैं आपका गुरुभाई कैसे हूँ? उस देवी ने उत्तर दिया– भाई, तुम्हें इस बात का ज्ञान नही है। श्री प्रभुजी नेपाल (हिमालय) को जाते समय यहाँ होकर निकले थे। मैं श्री महादेव जी पूजन करके जब शिवालय से बाहर निकली तो सहसा मुझे श्री प्रभुजी के दर्शन प्राप्त हुए। मुझे लगा साक्षात् भगवान सदाशिव के ही दर्शन मिल गए, क्योंकि उस समय उनकी दिव्य आकृति जटाजूट से घिरी हुई थी। मैं श्री प्रभुजी के दर्शन पाकर कृतार्थ हो गई। अपने जीवन को धन्य समझने लगी। मेरे हृदय की भावना को पहचान कर श्री

प्रभुजी ने आज्ञा की–''ले देवी, आज से तुम्हें भजन करना आ जायगा, हम सिखा देते हैं। तुम पंचाक्षरी मन्त्र (अर्थात ऊँ नमः शिवाय) को निरन्तर जपती रहना। सब प्रकार से कल्याण होगा।'' श्री प्रभुजी तो चले गये परन्तु उसी दिन से उनकी आज्ञा का पालन करने के फलस्वरूप मैं निहाल और कृतार्थ हो रही हूँ। चराचरात्मक जगत के दिव्य अनुभव हो रहे हैं। मैं भूत और भविष्य की ज्ञाता बन गई हूँ। श्री प्रभुजी का नाम योगयोगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का उस समय का नाम ब्रह्मचारी सर्वानन्द था और उन्हीं की कृपा का तेज तुम्हारे अन्दर प्रकाशित हो रहा है। इसीलिए, तुम मेरे गुरु–भाई हो।

श्री बालकृष्णदास जी स्वयं बताते थे कि उन्होंने वहाँ कई दिन तक निवास किया था, तो उस देवी ने उनकी अनवरत बहुत सेवा की। जिस समय वह वहां से आगरे आने के लिए गाड़ी पर चढ़े, तो वह देवी बराबर आकाशमार्ग से उनकी गाड़ी के साथ आगरा तक आई। श्रीप्रभुजी के इस पावन चरित्र के विषय में किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए। उन के चरणों की कृपा से कुछ भी असम्भव नहीं है। जो उनके कृपामय चरणों को हृदय में धारण कर चुके हैं, उनको प्रायः इस प्रकार के एवं इससे भी विलक्षण अनुभव होते रहते हैं। उन करूणासागर दीनबन्धु अकारण दयालु श्री प्रभुजी की कृपा सदैव उनका साथ दिया करती है।

२.११ पीत वस्त्रधारी ब्रह्मचारी

काशीजी में एक पण्डा, जो कि 'शरीफ गुण्डा' होने के अतिरिक्त दुष्टों को दण्ड देने में बलवान और साधु सेवक भी था, वह श्री प्रभु जी का सेवक बन गया। उसकी प्रार्थना पर प्रभुजी उनके घर कुछ दिन ठहरे। एक दिन उस भक्त के साथ श्री प्रभु जी सैर करने बाहर निकले, तो बाजार में, एक पीत वस्त्रधारी ब्रह्मचारी को सामने से आते हुए देखा । उस ब्रह्मचारी के साथ एक वेश्या थी। ब्रह्मचारी ने एक हाथ तो उस वेश्या के गले में डाला हुआ था, दूसरे हाथ में शराब की बोतल पकड़ी हुई थी। प्रभु जी को देखते ही ब्रह्मचारी बड़े आदर और विनय के साथ श्री प्रभु जी की ओर बढ़कर परस्पर वार्तालाप करता रहा। तत्पश्चात् प्रभु जी थोड़ी दूर जाकर वापस अपने स्थान पर आ गये। तब उस पंडा भक्त ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की–''महाराज! उस ब्रह्मचारी के साथ तो वेश्या थी और उसने शराब की बोतल भी पकड़ी हुई थी। ऐसे खराब व्यक्ति के प्रति भी अपने बहुत प्रेम–भाव दिखलाया। क्या कारण है'' ? तब प्रभुजी ने उत्तर दिया–''वह ब्रह्मचारी खराब नहीं है, अच्छा योगाभ्यासी है''। इस बात पर उस पंडा भक्त को विश्वास नहीं हुआ। श्री प्रभु रामलाल जी महाराज उसका संशय मिटाने के लिए उसको साथ लेकर रात्रि को दस–ग्यारह बजे उस ब्रह्मचारी के घर की छत पर पहुँच गये। वहां मघ (धमाला) के समीप जाकर पंडा भक्त को देखने के लिए कहा। भीतर देखा तो उस ब्रह्मचारी का आसन जमीन से काफी उठा हुआ पाया। कुछ ही समय में आसन इतना ऊँचा उठ गया कि उस ब्रह्मचारी का सिर मघ के साथ आ लगा। बहुत समय ऐसी स्थिति रहने के पश्चात् प्रातः तीन बजे के लगभग आसन पुनः नीचे उतरने लगा और धीरे–धीरे भूमि पर जा लगा। इसके अनन्तर श्री प्रभुजी उस पंडा भक्त को साथ लेकर वापस अपने स्थान पर आ गये।

दूसरे दिन प्रातः काल ब्रह्मचारी को घर से बाहर गए हुए देखकर प्रभुजी ने उस पंडा भक्त के साथ वेश्या से जाकर ब्रह्मचारी का सब हाल पूछा तो वेश्या ने महात्मा जानकर सत्य–सत्य कहा–''महाराज! मुझे इन्होंने पचीस रू० महीने पर रखा हुआ है। मेरा काम

केवल प्रति–दिन सायंकाल को गले में हाथ डलवाकर इनके साथ सैर करने जाना होता हैं। इन्होनें पहले दिन से जो शराब की बोतल ली है, वही अब तक हाथ में लेकर जाते हैं। सैर करने के पश्चात् वापसी पर पहने हुए वस्त्र मेरे ही कमरे में फैंक देते हैं और केवल कोपीन के साथ अपने घर जाकर अन्दर से किवाड़ बन्द कर लेते हैं।'' इस बात को सुनकर उस पंडा भक्त का संशय दूर हुआ। फिर श्री प्रभुजी पंडा भक्त को साथ लेकर अपने स्थान पर वापस आ गए। उस दिन सायंकाल को प्रभु जी फिर सैर को चले तो रास्ते में वही ब्रह्मचारी वेश्या को साथ लिए हुए मिला। तब श्री प्रभुजी ने उससे पूछा–''यह क्या और वह क्या ?'' इतनी बात सुनते ही ब्रह्मचारी ने कहा महाराज क्या करें, ऐसा न करूँ तो दुनिया बहुत तंग करती है।'' श्री प्रभुजी ने कहा–''साधु वेश की मर्यादा तो रखनी चाहिए।'' तब ब्रह्मचारी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की–''महाराज, यदि मैं पूर्णतया मर्यादा का पालन करता हूँ, तो भिन्न–भिन्न प्रकार की कामनाओं की पूर्ती के लिए दुनिया बहुत तंग करती है। जब मन विशेष कष्ट को सहन करने में असमर्थ होता है। तो मनोवृत्तियाँ विक्षेपता को प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए मजबूर होकर पूर्वोक्त दोष से बचने के लिए कभी–कभी यह स्वांग भी करना पड़ता है। कृपया मेरे रहस्य को किसी से न कहिएगा।'' इस बात को सुनकर श्री प्रभुजी उस ब्रह्मचारी को आशीर्वाद देकर अपने स्थान पर चले आए।

२.१२ भैरवी-चक्र

कुछ दिन 'काशी' ठहरने के पश्चात् श्री प्रभुरामलाला जी महाराज 'गया' पधारे। 'गया' जी में भी उस पंडा भक्त का एक स्थान था। श्री प्रभु जी पंडा भक्त की प्रार्थना पर उसके प्रेम–भाव भक्ति को देख वहाँ ही रहने लगे। एक दिन की बात है, श्री प्रभु जी गद्दी पर विराजमान थे। पंडा भक्त भी श्रीचरणों में बैठा हुआ था। उस समय, एक वाममार्गी ब्राह्मण तिलक लगाए हुए पंडा भक्त से मिलने आया। उसे देखते ही पंडा भक्त भय से कांपता हुआ उठ खड़ा हुआ और साष्टांग प्रणाम कर उसे यथोचित आसन देकर बैठाया। जब तक वह वाममार्गी वहाँ रहा, तब तक वह पंडा भक्त हाथ जोड़े, वहीं खड़ा रहा। थोड़ी देर बातचीत करके वह वाममार्गी चला गया तो श्री महाराज जी के पूछने पर पंडा भक्त ने उस पंडित के विषय में बतलाया– ''महाराज जी, ये यहाँ के वाममार्गियों के प्रधान हैं। यदि किसी से इनकी आज्ञा का उल्लंघन हो जाये तो ये मन्त्रों द्वारा उसके अंग–भंग कर देते हैं। इस कारण मैं इनसे इतना डरता हूँ।''

''उपरोक्त वचन साधु आचरण के विपरीत सुनकर श्री महाराज जी ने फरमाया–''साधना सम्पन्न साधु अथवा ब्रह्मणों का बस्तियों में विचरना तो जीवों के हितार्थ होता है, किन्तु क्या यह इतने तमोगुणी हैं! क्या ये लोग भैरवी चक्र भी लगाते हैं'' ? तो पण्डा भक्त ने उत्तर में कहा–''यहाँ भैरवी चक्र भी लगता है और उसके भी यही प्रधान हैं।'' तब श्री प्रभुजी ने पूछा–''अब भैरवी चक्र किस दिन है और कहाँ पर लगेगा ? इस बात का पता हमें यदि बताओ तो हम उनका गर्व भंग कर देंगे''। यह सुनकर पहले तो वह भक्त भयवश संकोच करने लगा, परन्तु श्री प्रभुजी से अभयदान प्राप्त कर वह भैरवी चक्र लगाने की पूरी–पूरी जानकारी ले आया। श्री प्रभुजी वाममर्गियों को धर्माचरण विरूद्ध देखकर उन्हें धर्म मार्ग पर लाने की जहाँ–तहाँ कृपा किया करते थे।

जिस दिन भैरवी चक्र होना था, उस दिन रात्रि को श्री प्रभु जी अपनी योग शक्ति से उस मकान के भीतर प्रविष्ट हुए और जाकर देखा कि बीच में ज़मीन के ऊपर एक

कपाल के खप्पर में बड़ा दीपक जल रहा है। उसके चारों ओर गोल दायरा बनाकर बहुत से स्त्री–पुरूष मुद्रा लगाये हुए, पाँच मकारों का सेवन कर रहे हैं। श्री प्रभु जी ने उस खप्पर से कुछ दूरी पर खड़े होकर योग शक्ति का प्रयोग किया, जिससे दीपक सहित खप्पर उड़कर अपने आप श्री प्रभु जी के हाथ में चला आया। वाममार्ग में यह एक विशेष नियम है कि भैरवी चक्र के बीच में रखा हुआ दीपक यदि किसी कारण से और जगह चला जाये तो जब तक वह फिर बीच में न आ जाये, तब तक मुद्रावस्थित स्त्री–पुरूष कठपुतलियों की तरह स्तम्भित रहते हैं। इस कारण दीपक वाला खप्पर श्री प्रभुजी के पास चले जाने से सभी की ऐसी हालत हो गईं कि कोई हिल भी नहीं सकता था।

श्री महाराज जी के उपरोक्त अद्‌भुत चमत्कार को देखकर प्रधान सहित सब वाममार्गियों ने श्री प्रभुजी से अपने अपराध के लिए क्षमा याचना की। तब प्रभु जी ने भविष्य में कभी भैरवी चक्र न लगाने तथा किसी को कष्ट न देने की प्रतिज्ञा करवाकर खप्पर को भी दीपक सहित लौटा कर उन को क्षमा कर दिया। तब भैरवी चक्र को तोड़कर सब वाममार्गी स्त्री–पुरूष श्री प्रभु जी के चरण–कमलों में प्रणाम कर अपने–अपने घर को चले गये। तत्पश्चात् श्री प्रभु रामलाल जी महाराज भी पंडे भक्त के साथ अपने स्थान पर आ गये।

२.१३ भक्त की पूकार

हे मेरे गुरूदेव करूणासिंधु करूणा कीजिए।
हूँ अधम आधीन अशरण अब शरण में लीजिए।।
खा रहा गोते हूँ मैं भवसिंधु के मझधार में।
आसरा है दूसरा कोई न अब संसार में।। हे मेरे गुरूदेव....
मुझ में है जय तय न साधन और नहीं कछु ज्ञान है।
निर्लज्जता है एक बाकी और बस अभिमान है।। हे मेरे गुरूदेव...
पाप बोझे से लदी नैया भवँर में जा रही।
नाथ दौड़ो अब बचा वरना डूबी जा रही ।। हे मेरे गुरूदेव..
आपभी यदि छोड़ देंगे फिर कहाँ जाऊँगा मैं।
भव सागर को नाथ कैसे पार कर पाऊँगा मै।। हे मेरे गुरूदेव...
सब जगह मंजिल भटक कर ली शरण अब आप की।
पार करना या न करना दोनो मरजी आप की।। हे मेरे गुरूदेव....
प्रभो! आप की हूँ मैं शरण, निज चरण सेवक लीजिये।
मैं कुछ नहीं हूँ माँगता, जो आप चाहें दीजिये।।
सर आँख से मंजूर है, दूख दीजिये सुख दीजिये।
जो भी हो इच्छा कीजिये, पर दूर न दर से कीजिये।।

३ अद्भुत नर्मदा परिक्रमा

३.१ नर्मदा परिक्रमा मण्डली

'गया जी' से चलकर श्री प्रभु जी अन्य तीर्थ स्थानों से होते हुए 'नर्मदा' की परिक्रमा के लिए चल दिये। उन्हीं दिनों बलिया जिले का तर्क शास्त्र और व्याकरण का अद्वितीय पण्डित मुखराम नामक ब्राह्मण श्री प्रभु जी के पावन चरण कमलों में रहने लगा। कुछ दिन पश्चात् श्रीकृष्णानन्द दण्डी स्वामी जो कि षट्शास्त्री के अतिरिक्त वेदपाठी और अद्वितीय विद्वान भी थे, श्री प्रभु जी की प्रशंसा से प्रभावित होकर योग के लिए प्रार्थी हुए। तब अधिकारी देखकर श्री प्रभुजी ने उसे योग का उपदेश दे दिया। तब से वे दण्डी स्वामी महाराज श्री प्रभु रामलाल जी के चरणों में ही रहने लगे। इनके अतिरिक्त श्री प्रभु जी बीस–पच्चीस अन्य व्यक्तियों की मण्डली सहित 'नर्मदा' की परिक्रमा करने लगे।

३.२ हरिराम शर्मा (हरिहरानन्द जी महाराज) का जीवन दर्शन

श्रीहरिराम शर्मा बलिया जिले के एक ग्राम के निवासी थे। पवित्र ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ। इनके माता–पिता ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार इनका यथायोग्य पालन–पोषण एवं शिक्षा व्यवस्था की। तत्पश्चात् यह अपने ग्राम में ही रहकर साधारण कृषि–कर्म करते रहे। हरिराम पूर्ण सदाचारी और संयमी थे। इन्होंने युवावस्था प्राप्त करके सभी श्रेष्ठ कार्य किए। परहितचिन्तन और साधू–सेवा की इनको बड़ी लगन थी। न तो इनकी स्वयं कुकर्म करने की वृति थी और न ही दूसरे को कुकर्म करते देख सकते थे। स्वभाव से यह बड़े ही साहसी एवं निर्भय थे अर्थात अत्याचार का विरोध करने में किसी से डरते नहीं थे यह जिस ग्राम में निवास करते थे वहां पर पुलिस थाना भी था। संयोग से वहाँ कुछ इस प्रकार के अधिकारी लोग आ गये जो बड़े दुस्साहसी थे। गाँव वालों पर अनेक अत्याचार करते थे। श्री हरिराम जी को यह सब सहन नहीं था। अतः इन्होंने बड़ी निर्भयता से उनके इन कार्यों का विरोध किया। फल–स्वरूप वह अधिकारी भी अब मनमाना व्यवहार नहीं कर पाते थे। इनकी यह प्रबल इच्छा रहती थी कि इनके गाँव में किसी भी प्रकार का दुष्कर्म न होने पाए। इसके लिए यह यथा सम्भव प्रयत्न करते रहते थे।

३.३ श्री प्रभु रामलाल जी महाराज द्वारा प्रेतग्रस्त मन्दिर का उद्धार

एक दिन श्री प्रभु जी ने, नर्मदा की परिक्रमा यात्रा करते हुए, नर्मदा तट के ऊंचे टीले पर, एक सुन्दर मन्दिर देखा। भीतर जाने पर उस मन्दिर में कोई व्यक्ति भी नहीं मिला। श्री प्रभु जी ने एकान्त सुयोग्य स्थान देख वहीं डेरा लगवा दिया। इतने में सायंकाल के समय मन्दिर का एक मुनीम आकर श्री प्रभु जी के चरणों में प्रार्थना करने लगा–''महाराज! आप यहाँ से अपना डेरा शीघ्र उठवा लीजिए, क्योंकि रात को यहाँ किसी को रहने नहीं दिया जा सकता।'' तब श्री प्रभुजी ने पूछा–''इसका क्या कारण है ? मुनीम ने कहा–''महाराज, यदि कोई आदमी अनजाने में यहाँ रात को सो जाये तो प्रातः मरा हुआ मिलता है। फिर गांव वाले चन्दा ईकट्ठा करके उस मुर्दे को जलाते हैं। आपके एकदम इतने व्यक्ति मर जाने पर गरीब गांव वालों को मुर्दे जलाने के लिये इतनी लकड़ियाँ एकत्रित करना मुश्किल हो जायेगा। इसलिए हम लोगों पर कृपा कर आप

यहाँ से अपना डेरा बदल कर और कहीं जा ठहरिये, क्योंकि पहले भी कई बार ऐसी घटनाएँ हो चुकी हैं।''

तब श्री महाराज जी ने कहा–''हमारे साथ ऐसी बात नहीं हो सकती। तुम निश्चिन्त होकर चले जाओ''। पर मुनीम को विश्वास नहीं हुआ। उसने श्री महाराज जी से डेरा बदलने के लिये बहुत कहा परन्तु श्री महाराज जी न माने। आखिर मुनीम हार कर चला गया और गांव में जाकर उसने सबसे कह दिया। वह रात श्री महाराजजी ने मण्डली सहित बड़े आराम से व्यतीत की। प्रातःकाल वह मुनीम कई आदमियों के साथ आकर सब को जीवित देख बहुत आश्चर्यान्वित हुआ और श्री प्रभु जी के चरणों में गिर कर प्रार्थना करने लगा–''महाराज! आप कोई महापुरूष हैं क्योंकि यह पहली घटना है कि इस मन्दिर में रात को कोई रह जाये और न मरे''। तब श्री महाराज जी मुस्करा दिये और कहा–''यह सब प्रभु की कृपा है''

उस मन्दिर में पूजा न होती देख कर श्री महाराज जी ने इसका कारण पूछा ? मुनीम ने कहा–''महाराज! यह मन्दिर बहुत रूपया खर्च करके कलकता निवासी एक मारवाड़ी सेठ ने बनवाया था। पता नहीं कि इसमें क्या दोष रह गया है, जिससे रात को यहाँ रहने से लोग मर जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो इस मन्दिर के भगवान की पूजा एक दो दिन करता है, वह भी अवश्य मर जाता है। आज तक जितने पुजारी यहाँ आये हैं, वे सब तीन–दिन के अन्दर ही अन्दर मर गए हैं। तब से इस मन्दिर में पूजा करने कोई नहीं आता।'' इस बात को सुनकर श्री प्रभु जी ने कहा–''मन्दिर खोल दो, आज से हम पूजा करेंगे।'' आज्ञा पाकर मुनीम ने मन्दिर खोल दिया और श्री प्रभु जी पूजा करने लगे। जब चार–पाँच दिन पूजा करने से प्रभु जी पर किंचित भी प्रभाव न पड़ा तो इस चमत्कार को देख आस पास के गांवों में प्रभु जी की खूब प्रशंसा होने लगी। तत्पश्चात् उस मुनीम का तार पाकर मन्दिर को बनवाने वाला सेठ भी कलकता से श्री प्रभु जी के चरणों में उपस्थित होकर प्रार्थना करने लगा–''महाराज! दास ने बहुत–सा धन खर्च करके इस मन्दिर को बनवाया, परन्तु पूजा न होने के कारण बहुत दुःखी रहा। आज आपकी कृपा से मेरा दुःख दूर हुआ।''

अब मैं आपको यह मन्दिर भेंट करता हूं। प्रतिदिन सौ रूपया या इससे अधिक जितना भी हो, दास खर्च करने को तैयार है। कृपया आप इसे स्वीकार कर यहाँ ठहरिए। इस बात को सुन कर श्री प्रभु जी ने फरमाया, ''हमारा रहना तो यहाँ मुश्किल है, परन्तु हमारे अब तक के रहने से इस मन्दिर का जो दोष था वह सब दूर हो गया है। इसलिए तुम निश्चिन्त होकर पुजारी को नियुक्त करके मन्दिर में पूजा आदि कराओ।'' श्री महाराज जी की आज्ञा पाकर उस सेठ ने पुजारी नियुक्त कर दिया और स्वयं श्री महाराज जी का सेवक बन गया। मन्दिर में पूजा के समय दर्शनार्थियों की भीड़ लगी देख सेठ प्रसन्नता में आकर भण्डारे करने लगा। श्री प्रभुजी की प्रशंसा सुन दूर–दूर से नित्य सैकड़ों लोग दर्शनार्थ आने लगे। यह मन्दिर नर्मदा के तट पर ऊँचे टीले पर होने के कारण दो–चार मील के अन्दर–अन्दर चारों तरफ के ग्राम से अच्छी तरह से दिखाई पड़ता था।

३.४ ब्राह्मणयुवक हरिराम को शरण प्रदान

श्रीहरिराम शर्मा जी के पड़ोस में एक दुश्चरित्रा स्त्री रहती थी, जिसका प्रभाव गांव के युवक और युवतियों पर बड़ा बुरा पड़ रहा था पहिले तो हरिराम जी ने उसे समझा–बुझाकर सन्मार्ग पर लाने का प्रयास किया। परन्तु उसका कुकर्म करने का स्वभाव बन चुका था। अतः उस स्त्री को समझ नहीं आया और वह अधिकाधिक कुकर्म

में प्रवृत्त होती गई। हरिराम शर्मा जी ने जब यह देखा कि इसमें सद्भाव उत्पन्न नहीं हो रहा है तो उन्हें कड़ा उपाय अपनाने का विचार करना पड़ा। फलतः एक दिन उन्होंने उस स्त्री को कड़े ढ़ंग से ताड़ना देनी प्रारम्भ की, तब वह स्त्री जोर-जोर से रोने और चिल्लाने लगी। उन दिनों आनन्दकन्द योग योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री रामलालजी महाराज उसी गांव में विराजमान थे। उस स्त्री को पिटते हुए देखकर करूणासागर श्री प्रभुजी को बड़ी दया आई। अपने पास आने वाले सत्संगियों से उन्होंने पूछा यह लड़का कौन है? वह इस स्त्री को क्यों पीट रहा है? सत्संगियों में से एक ने विनयपूर्वक कहा-प्रभो, यह ब्राह्मण बालक है और बड़ा चरित्रवान् है। यह पिटने वाली स्त्री बहुत ही दुश्चरित्रा है। यह इस प्रकार की ताड़ना के योग्य ही है। इस प्रकार के शब्द सुनकर उस ब्राह्मण नवयुवक के प्रति श्री प्रभुजी का हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ और उन्होंने एक सत्संगी को आज्ञा दी कि इस बच्चे को हमारे पास बुलाकर लाओ। श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार एक व्यक्ति वहाँ से उठकर गया और हरिराम को श्री प्रभु जी के चरण कमलों के समीप ले आया। उनके वहाँ आने पर श्री प्रभुजी ने उनकी पीठ ठोकते हुए कहा-''बेटा, तुम किसके बालक हो?'' हरिराम शर्मा जी ने श्री प्रभुजी के सम्मुख हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा-''मैं इसी गाँव का रहने वाला एक ब्राह्मण बालक हूँ।'' तब मुस्कराते हुए श्री प्रभुजी ने कहा-''बेटा, ब्राह्मण तो बड़े दानी होते हैं, ब्राह्मणों के कर्म वेद पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना, दान देना और लेना होते हैं। तुम यह बतलाओं कि तुमने केवल लेना ही सीखा है या कुछ देना भी जानते हो।'' हरिराम शर्मा जी ने उत्तर दिया-''प्रभो! मैं ब्राह्मण हूँ। आपकी कृपा से मुझे दान देना भी आता है।'' तब श्री प्रभुजी ने कहा-''यदि तू दान दे सकता है तो तू हमें अपना सिर दे दे।'' श्री प्रभुजी के मुख से निकले इन वचनों को सुनकर हरिराम शर्मा जी ने प्रसन्न मुख होकर कहा-''अवश्य, आपकी इच्छानुसार ही दान दूँगा। परन्तु मुझे तीन दिन का समय दे दीजिए। जिससे मैं घर के सारे कार्य निपटाकर तैयार होकर आ जाऊँ। फिर आप बड़ी प्रसन्नता से मेरा सिर उतार लीजियेगा।'' श्री प्रभुजी ने प्रसन्न मन से उसे आज्ञा दे दी। तीन दिन का अवकाश प्राप्त कर हरिराम शर्मा जी अपने घर गए और अपना लेना देना निपटाकर अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दान कर दिया। फिर तलवार हाथ में लेकर तीसरे दिन नियत समय पर श्री प्रभुजी के चरण कमलों में आकर उपस्थित हो गए और विनम्रता पूर्वक बोले-''महाराज! सेवक उपस्थित है। आप बड़ी प्रसन्नता से अब मेरा सिर ले लें। किन्तु यदि आप मेरा सिर यहीं जन-समुदाय के सम्मुख उतारेंगे तो इन लोगों को बड़ी भ्रान्ति हो सकती है। सम्भवतया आपको व्यर्थ कुछ कष्ट देने लगें। अतः आप नदी किनारे किसी वन में जाकर मेरा सिर उतार लें।

३.५ पूर्ण समर्पित हरिहरानन्द जी पर सद्गुरुदेव प्रभु श्रीरामलालजी महाराज का अपार अनुग्रह रूपी आशीर्वाद

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का हृदय उनके इन भावपूर्ण वचनों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। श्री प्रभुजी हरिराम शर्मा को साथ लेकर वन के एक सघन कुंज में पहुँचे और बोले-''यदि तुम्हारे सिर को हम उतारेंगे तो हमें ब्राह्मण-वध का पाप लगेगा। अतः तुम स्वयं ही अपना सिर काट कर हमें दे दो''। श्री प्रभुजी की ऐसी आज्ञा पाकर हरिराम ने तलवार उठाकर अपने सिर को काट देने का प्रयास किया। किन्तु ज्यों ही तलवार उनकी गर्दन पर लगने वाली थी, त्यों ही एकदम श्री प्रभुजी ने उनका हाथ पकड़कर तलवार छीन ली और उसके दो टुकड़े करके फेंक दी। फिर हरिराम को अपने कण्ठ से

लगाकर श्री प्रभुजी ने कहा-''बेटा, तेरी भक्ति दृढ़ता से हमारा हृदय अत्यन्त प्रसन्न है। बेटा, तू तत्वविजयी महासिद्ध होगा।'' योग योगेश्वर सद्गुरूदेव श्री प्रभुजी से हार्द दीक्षा पाकर श्री हरिराम जी देहध्यास को भूल तुर्यातितुर्या ध्यान स्थिति को प्राप्त होकर कृतार्थ हो गए और उनका जीवन धन्य हो गया। उसी अवस्था में हरिराम को श्री प्रभुजी स्वयं अपनी पीठ पर उठा कर अपने स्थान पर ले आये। वहाँ हरिराम आठ दिन समाधिस्थ रहे। श्री प्रभु जी ने हरिराम को ध्यान से उठाकर कहा- ''चिरंजीव! अब हम आगे को जायेंगे, यह मन्दिर हम तुम्हारे सुपुर्द करते हैं। हमारे पीछे यहाँ योग का प्रचार करते रहना।'' इस पर हरिराम श्री प्रभुचरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगा- ''प्रभो! अब दास को श्री चरणों की सेवा में साथ ही रखिए। इस माया के चक्र में न डालिए।'' ''श्री प्रभुजी ने हरिराम को अपने चरणों में रखना स्वीकार कर लिया और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा दे कर हरिराम का नाम बदल कर हरिहरानन्द रख दिया और साथ ही श्री प्रभु जी ने श्री हरिहरानन्द को सब तरह से सुयोग्य देख सर्वप्रधान बना दिया। उसी समय से उनके हृदय में दिव्य महाशक्ति का स्फुरण हुआ और वह बड़े बड़े दिव्य दृश्यों को देखने लगे। उन की ध्यानस्थिति का विकास बड़ी तीव्रता से हुआ। उनका चित यकायक ही समाहित हो गया। श्री हरिहरानन्द जी का वह नवयुवावस्था का समय था, अतः समाहित स्थिति को पाकर जो सिद्धियां उनके सम्मुख उपस्थित हुई उनका उन्होंने कई जगह उपयोग किया। कई व्यक्तियों पर उन्होने शापानुग्रह किया।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की इस परम कृपा को अपलब्ध कर श्री हरिहरानन्द जी का हृदय श्री प्रभुजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम से भरा रहने लगा। वह प्रतिपल श्री प्रभुजी की चरण सेवा में लगे रहते थे। वह श्री प्रभुजी की सेवा ध्यान-दृष्टि से देखकर किया करते थे, यह उन का नियम था। अर्थात् जिस वस्तु की जिस समय श्री प्रभुजी को आवश्यकता होती थी, उसे ध्यान-दृष्टि से देखकर तत्काल उपस्थित कर किया करते थे। जिस समय वह देखते कि श्री प्रभुजी को भूख लगने लगी है, तो पहिले ही भोजन तैयार करके रख लिया करते थे, प्यास लगने पर पहिले से जल ले आकर उपस्थित हो जाते थे। सारांश यह कि श्री प्रभुजी को मुख से कहने की आवश्यकता ही न पड़ती थी और पहिले से ही वह वस्तु लेकर उपस्थित हो जाते थे। इस प्रकार श्री हरिहरानन्द जी श्री प्रभुजी की सेवा में निरन्तर तत्पर रहा करते थे। श्री प्रभुजी का हृदय उनके इस सेवा भाव से अत्यन्त प्रसन्न रहता था। फलस्वरूप उन्होंने अनेकों अलौकिक शक्तियों को सहज ही प्राप्त कर लिया था। श्री हरिहरानन्द जी के जीवन में अनेकों अलोकिक एवं चमत्कारिक घटनायें घटीं-जो उनकी अद्भुत शक्ति की परिचायक थी।

३.६ भय देने वाली रूहों से रक्षा

आन्दकन्द श्री प्रभुजी नर्मदा के वनों की यात्रा में अकस्मात घूमते-घामते नर्मदा के तट पर बसे एक गांव में जा पहुँचे। उस गाँव से थोड़ी दूर वन में एक विशाल वट वृक्ष था। वट के नीचे एक सुरम्य चबूतरा बना हुआ था। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि कोई भी यात्री वहाँ रात्रि-वास नहीं कर पाता था। उस गांव के लोगों का विश्वास था कि उस जंगल में वट वृक्ष के नीचे जो भी साधु महात्मा रात्रि वास करेंगे वह अवश्य ही मर जायेंगे। श्री प्रभुजी जब उसी वट वृक्ष के नीचे रात्रि वास करने का विचार करने लगे तो गाँव वालों ने कहा-''महाराज, यह वन बड़ा भयानक है। जो भी उस वट बृक्ष के नीचे रात्रि वास करता है, वह अवश्य ही मारा जाता है। कौन मार देता है-यह तो हम

निश्चयपूर्वक नही कह सकते। किन्तु सुनते हैं कि वहाँ बड़ी भारी प्रेत व्याधा है। अतः गाँव का कोई भी व्यक्ति वहाँ जाने का साहस ही नही करता। आप साधु महात्मा हैं, यदि आपके साथ ऐसा कुछ हो गया तो हमारे गाँव पर बहुत बड़ा भार पड़ेगा। इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आप वहाँ न जाकर हमारे गाँव में ही किसी स्थान पर ठहर जायँ।'' किन्तु श्री प्रभुजी हँसकर कहने लगे-''हमें तो ठहरने के लिए वही स्थान पसन्द आया है। तुमने वहाँ की प्रेत व्याधा की बात बताकर हमें सचेत करके अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया है। अब यदि हमें कुछ हो भी गया तो तुम लोगों का कोई दोष नहीं होगा।''

इस प्रकार श्री प्रभुजी के मन में यही विचार दृढ़ रहा कि हम आज उसी वृक्ष के नीचे ठहरेंगे और वहाँ के उपद्रवों को दूर करके लोक हित करेंगे। उस समय श्री प्रभुजी के साथ अन्य साधुओं की मण्डली भी थी। गाँव वालों से उन्होंने भी सुन रक्खा था कि उस वट वृक्ष के नीचे महान उपद्रव होते हैं। अतः उन लोगों ने भी हाथ जोड़ कर श्री प्रभुजी से प्रार्थना की-प्रभो! वहाँ जाना उचित नहीं। अवश्य ही वहाँ उपद्रव होते हैं। किन्तु श्री प्रभुजी ने लोकहित की भावना को ही दृढ़ रक्खा और श्री हरिहरानन्द जी को साथ लेकर उस वृक्ष के नीचे ठहर गये। अन्य साधुओं की मण्डली भय के कारण उस वृक्ष से लगभग आधे मील की दूरी पर ठहरी ताकि उन पर कोई आपत्ति न आ सके। सब कार्यों से निपट कर सब लोग शयन करने लगे। रात्रि में घटना विपरीत ढंग से घटी। उस वट वृक्ष के नीचे तो कोई उपद्रव नहीं हुआ बल्कि आधी रात के समय वे सभी साधु रोने और चिल्लाने लगे हाय रे! हम मारे गये। कैसी आपति में पड़ गये ? अब हम क्या करें ? उन साधुओं को दिखा कि भयंकर प्रेत-समूह उन सबों को पीट रहा है।

साधुओं के उस आर्तनाद को सुनकर श्री प्रभुजी को बड़ी दया आई और उन्होंने श्री हरिहरानन्द जी से कहा-''बेटा, जाओ। इन साधुओं के बीच में जाकर खड़े हो जाओ जिससे यह बेचारे इन प्रेतों की आपत्ति से बच सकें।'' श्री प्रभुजी की आज्ञा को पाकर तत्काल ही श्री हरिहरानन्द जी उन सब साधुओं के बीच में जाकर खड़े हो गये। उनके वहाँ पहुँचते ही वहाँ की सब व्याधाएं शांत हो गईं, सभी साधुओं ने श्री हरिहरानन्द जी के चरणों को पकड़ लिया और हाथ जोड़कर कहने लगे-महाराज! आज आपने हम सबों को बड़ी आपति से बचा दिया, अन्यथा हम सब साधु मारे जाते। महाराज आपके हम बड़े आभारी हैं।

३.७ खप्पर वाले साधु का गर्वचूर्ण

अगले दिन प्रातःकाल गांव वाले वट वृक्ष के नीचे रात्रि वास करने वालों का समाचार जानने आए और श्री प्रभुजी को पूर्णरूपेण सकुशल देखकर आश्चर्य में पड़ गए। उस साधु मण्डली द्वारा इस घटना का प्रचार सारे गांव में हो गया। सभी लोग श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ आने लगे-बड़ा भारी मेला सा लग गया। तब करूणासागर श्री प्रभुजी ने अपने मुखारविंद से उन सभी गांव वालों को आश्वस्त करते हुए कहा-''अब से यहां कोई भय नही रहेगा। अब यह स्थान प्रेत-ब्याधा से सर्वथा मुक्त हो गया है। अब जो भी साधु महात्मा चाहेंगे यहाँ निचिन्तता से ठहर सकेंगे।'' इन वचनो को सुनकर सब गाँव वालों का हृदय अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उन सबने मिलकर वहां एक बड़े भण्डारे का आयोजन किया। आस पास के गांवों के ब्रह्मणों और साधु महात्माओं को निमन्त्रण भेज दिया गया। दो तीन कढ़ाव खीर बनी एवं पूरी और साग बन कर तैयार हो गया। आमंत्रित अतिथियों के आ जाने पर ज्यों ही भण्डारे की पहली पंगत बैठाई जाने लगी

त्यों ही कहीं से एक उदण्ड प्रकृति के महात्मा निकल आए। उस महात्मा ने बड़ी साधना से भैरवजी को सिद्ध किया था। वह महात्मा प्रायः भण्डारों में जाकर भैरवजी की शक्ति से भण्डारे तुड़वा दिया करते थे। यही उनकी विशेष करामात थी। भण्डारे की सूचना पाकर वह वहाँ भी आ पहुँचे थे।

आते ही उन महात्माजी ने गालीगलौज करना प्रारम्भ कर दिया। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी तो उस समय अपने डेरे में विश्राम कर रहे थे। अतः श्री हरिहरानन्द जी पर ही उससे निबटने का भार आन पड़ा। उन्होंने उस महात्मा को काफी समझाने-बुझाने का प्रयत्न किया और उससे कहा-''भाई! तुम साधु हो। तुम्हें ऐसा अनर्थ नहीं करना चाहिए जिससे दूसरे लोगों को हानि पहुँचे।'' परन्तु जितना ही वह समझाते थे उतना ही उस महात्मा का अहंकार पुष्ट होता चला गया। उसने अपना खप्पर फैलाकर कहा-''मैं कुछ नहीं जानता। पहिले मेरा खप्पर भर दो फिर अपना भण्डारा करते रहना। अन्यथा मैं वह कार्य करूँगा जिससे तुमको लेने के देने पड़ जायेंगे। अभी तुम सबों को भण्डारा करना सिखला दूँगा।'' उसके इन कटु शब्दों को सुनकर ''अच्छा, अभी तेरा खप्पर भर देता हूँ'' ऐसा कहकर श्री हरिहरानन्द जी ने एक छोटी सी लुटिया उठा ली और उसमें खीर भर कर उसके खप्पर में डालनी प्रारम्भ कर दी। सब लोग बड़े आश्चर्य में थे कि न तो खप्पर ही भरता था और न उस लुटिया की खीर ही समाप्त होती थी। ऐसा होते हुए घंटे पर घंटे बीतने लगे परन्तु कोई परिणाम सामने न आया। अन्त में श्री हरिहरानन्द जी ने अपनी योग शक्ति से उसकी शक्ति को छीन लिया। ऐसा होते ही उसका खप्पर तत्काल भर गया और उस छोटी लुटिया से अन्य सभी पात्र भी खीर से भर गये। सभी लोगों को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। वह महात्मा अपनी शक्ति को गया जानकर रो रोकर कहने लगा-''महाराज! मेरी शक्ति वापस कर दो। अब आपके सम्मुख कभी नहीं आऊँगा। कृपा करके इस बार क्षमा कर दें।'' इस भारी कोलाहल को सुनकर श्री प्रभुजी जाग उठे और वहाँ आकर सबको शान्त कर दिया। उस महात्मा को यथोचित शक्ति यह कहकर दिला दी कि आज से आगे तुम कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर सकोगे जिससे लोगों का कोई अनिष्ट हो। उसके बाद भण्डारा खूब धूमधाम से संपन्न हुआ और सभी ने प्रसन्न मुद्रा से भोजन किया। इस भण्डारे के उपरांत श्री प्रभुजी वहाँ से चल पड़े और नर्मदा के तट पर आगे बढ़े।

३.८ भैरवसिद्ध महात्मा पर अनुग्रह

वहां से दो-चार मील आगे चलकर श्री प्रभुजी ने फिर अपना डेरा डाल दिया। वहाँ से थोड़ी दूर पर दो गाँवों के मध्य एक भैरव सिद्ध महात्मा रहते थे। वह बड़े क्रूर स्वभाव के थे। आस-पास के रहने वाले सभी लोगों को उन्होंने अपनी शक्ति से तंग कर रक्खा था। श्री हरिहरानन्द जी ने उस महात्मा के विषय में थोड़ी बहुत बातें लोगों से सुन रक्खी थीं कि यह जनसाधारण को बहुत दुःख देता है। नर्मदा तट पर डेरा डाल देने पर श्री प्रभुजी ने हरिहरानन्द जी को आग लाने की आज्ञा दी। हरिहरानन्द जी अनजाने में आग लेने उसी महात्मा के स्थान पर जा पहूँचे और उस महात्मा की धूनी में से आग लेकर जब चलने लगे तब उस महात्मा के शिष्य ने कहा-''अरे ब्रह्मचारी! यह तुमने क्या किया? मेरे गुरू की धूनी में से आग ले ली। अब तुम अपनी खैर मत समझो। मेरे गुरूदेव अभी स्नान करके आते ही होंगे। देखना वे तुम्हें कैसा घोर दण्ड देकर भेजते हैं''। इतनी देर में वह महात्मा सामने से आते हुए दिखाई दिए। उनके एक हाथ में जल का लोटा

था। श्री हरिहरानन्द जी के हाथ में अग्नि देखते ही वह कोप में भरकर उनकी ओर बढ़े। श्री हरिहरानन्द जी ने उन्हें क्रोधित देखकर उस महात्मा के हाथ में से जल का लोटा छीन लिया और उसके साथ ही साथ उसकी शाप देने की शक्ति भी छीन ली और तत्काल भागते हुए श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में चले आए। पीछे-पीछे वह महात्मा जी भी रोते हुए पहुँचे। श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में पहुँचकर वह महात्मा बहुत गिड़गिड़ाये-आपके इस ब्रह्मचारी ने मेरी वह सारी शक्ति छीन ली है जिसे मैंने वर्षो की साधना से प्राप्त किया था। वह मेरी जीवन भर की कमाई है। यदि आसपास के लोगों को इस घटना का पता चल गया तो वे सब के सब आकर मुझे मार ही डालेंगे। अतः कृपाकर मेरी शक्ति मुझे लौटा दीजिए ताकि मैं जीवित रह सकूँ,। महात्मा अभी इस प्रकार से कह ही रहे थे कि आस-पास के बहुत से लोग वहाँ एकत्रित हो गये और श्री प्रभुजी से कहने लगे-''महाराज! इस दुष्ट महात्मा ने लोगों को बड़ी हानियाँ पहुँचाई हैं। किसी की लड़की को अन्धा कर दिया, किसी की पत्नी को मार दिया, किसी का वंशोच्छेद ही कर दिया-इस प्रकार महान् दुःख दिए हैं। अतः कृपा करके इस महात्मा की शक्ति वापिस मत कीजियेगा। आप एक बार इस दुष्ट महात्मा को अपनी कुटिया से बाहर कर दीजिए ताकि आज हम इसके ठीक-ठीक दर्शन कर लें।'' ज्यों-ज्यों लोग इस प्रकार की बातें कहते थे त्यों-त्यों वह महात्मा भय के कारण कम्पित होता जाता था और बारम्बार हाथ जोड़कर श्री प्रभुजी से विनय करता था-करूणासिन्धो! यदि आप मुझें अशरण को शरण् नहीं देंगे तो यह लोग मुझे मार ही डालेंगे।

श्री प्रभुजी ने दोनों पक्षों की बात सुनी और गाँव वालों को इस प्रकार सान्त्वना दी -भाई, होनहार जो कुछ थी वह हो चुकी। अब तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी। साधु को मारना नहीं चाहिए, अतः तुम लोग इसे छोड़ दो। उधर उस महात्मा को इस प्रकार समझाया-महात्मन् तुम्हारा स्वभाव कठोर है और तुम अपनी शक्ति का अहित चिन्तन में दुरूपयोग करते थे। अतः तुम सिद्धि के पात्र नहीं हो। अब तुम निर्जन वन में चले जाओ और अपने पापों का प्रायश्चित करो। परमार्थ-लाभ के लिए तप करो। श्री प्रभुजी के इस प्रकार समझाने पर वह महात्मा श्री प्रभुजी को प्रणाम करके वन में चले गये और गांव वाले भी आश्वस्त होकर श्री प्रभुजी का जय-जय कार करते हुए अपने अपने घरों को लौट गए।

३.९ वानप्रस्थी दम्पति को योग दीक्षा

श्री प्रभु जी नर्मदा तट पर जा रहे थे। मार्ग में घाट पर एक वानप्रस्थी दम्पति बैठे हुए संस्कृत में परस्पर शास्त्रार्थ कर रहे थे। जिसे देख श्री प्रभुजी सुनने के लिए उसी घाट पर एक तरफ बैठ गए। इतने में हरिहरानन्द, मुखराम, दण्डी स्वामी इत्यादि आकर श्री प्रभु जी के चरणों में बैठते गए। फिर थोड़ी देर में मुखराम, उस दम्पति में से देवी के साथ एक पक्ष लेकर शास्त्रार्थ करने लगा। उसने इनको ऐसा परास्त किया कि ये एकदम निरूतर हो गए। तब दण्डी स्वामी उस देवी से शास्त्रार्थ करने लगे। पर दण्डी स्वामी से भी उसके पक्ष का उत्तर बड़ी कठिनता से बन पाता था। इसके उपरान्त शास्त्रार्थ करते हुए दण्डी स्वामी ने कहा-''बिना स्वानुभव के खाली शास्त्राज्ञान परोक्षज्ञान है और केवल परोक्षज्ञान से ही आत्मकल्याण नहीं हो सकता और अपरोक्षज्ञान आत्म साक्षात्कार के बिना नहीं होता, परन्तु आत्मसाक्षात्कार सद्गुरू कृपा के बिना कभी प्राप्त नहीं हो सकता।'' इन बातों को सुनकर देवी ने कहा-''आपकी ये बातें बिल्कुल ठीक हैं''। तब

दण्डी स्वामी ने उस देवी को श्री प्रभु जी की कुछ महिमा सुनाई, जिससे वह श्री प्रभुजी के गुणानुवाद सुनकर शिष्यत्व को ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करने लगी। परन्तु उसके पति ने यह कहकर विरोध किया कि स्त्री को पति के अतिरिक्त और किसी से शिष्यत्व ग्रहण नहीं करना चाहिए। तब उस देवी ने पति से शास्त्रार्थ करके यह सिद्ध कर दिया कि स्त्री पति के अतिरिक्त किसी दिव्यदृष्टि के दाता योगी सद्गुरू से दीक्षा प्राप्त कर सकती है। तब पति भी निरूत्तर हो गए। वह दम्पति वानप्रस्थी तो थे ही, इसलिए दोनों ने ही श्री प्रभुजी से यथाविधि शिष्यत्वग्रहण किया। वह दम्पति श्री प्रभुजी के चरणों में ही रहने लगे। थोड़े ही दिनों में श्री प्रभु जी की कृपा से उस दम्पति को ध्यान की बहुत ही अच्छी स्थिति प्राप्त हो गई। श्री प्रभुजी दोनों को अनन्य भक्ति का आशीर्वाद देकर आगे को चल दिए।

३.१० सिंह स्वामिनी साध्वी और उसके योगी गुरू से मिलाप

श्री प्रभुजी नर्मदा की प्ररिक्रमा में जा रहे थे। रास्ते में पर्वत, जंगल इत्यादि आने लगे। एक स्थान पर परिक्रमा मार्ग में बाई तरफ पहाड़ की ओर एक पगडंडी जाती थी। वहाँ से निकलते हुए प्रभुजी जब परिक्रमा के रास्ते में आगे बढ़ने लगे तो प्रभुजी के चरण अपने आप खिंचे हुए उस पगडंडी की ओर जाने लगे। तब उस पगडंडी के रास्ते में विशेष आकर्षण देख श्री प्रभुजी हरिहरानन्दजी को साथ ले और मंडली को वहाँ छोड़ आगे बढ़े। आगे जाकर श्री प्रभुजी ने पहाड़ के ऊपर साधु वेष में एक देवी को चिमटा हाथ में लिए शेर के पीछे दौड़ते हुए देखा। उस देवी ने प्रभुजी को देखते ही शेर का पीछा छोड़ श्री चरणों में प्रणाम किया और वह प्रभु जी को हाथ जोड़ प्रार्थना कर अपने गुरू स्थान पर ले गई, जहाँ पर उस देवी के गुरू एक योगी महात्मा रहते थे। प्रभुजी को देखते ही उस महात्मा ने श्री प्रभुजी का आदर-सम्मान किया और आसन दे विराजमान कराया। फिर अपनी उस शिष्या से कन्दमूल इत्यादि मँगवा तथा बनवाकर श्री प्रभुजी तथा हरिहराननद को खिला स्वयं भी अपनी शिष्या सहित प्रसाद पाया। तत्पश्चात् श्री प्रभुजी के साथ वह महात्मा वार्तालाप करने लगे। इतने में हरिहरानन्दजी के मन में यह जानने की इच्छा हुई कि यह देवी योग में किस अवस्था को पहुंची हुई है। इधर उसी समय महात्मा ने श्री प्रभुजी से अपनी शिष्या की परीक्षा करने की प्रार्थना की। तब प्रभुजी ने देवी से साधन सम्बन्धी कई प्रकार के प्रश्न किए, जिनका उसने ठीक-ठीक उतर दिया। इस प्रकार थोड़ी देर तक उस देवी की परीक्षा कर श्री प्रभुजी ने महात्मा से कहा-''इस देवी की योग स्थिति बिल्कुल ठीक है और जैसा होना चाहिए, वैसे लक्षणयुक्त भी है।'' श्री प्रभुजी उस देवी को आशीर्वाद देकर और थोड़ी देर उस महात्मा से वार्तालाप कर हरिहरानन्द सहित वापस जाने लगे, तब वह महात्मा भी कुछ दूरी तक श्री प्रभुजी को पहुंचाने आये। फिर श्री प्रभुजी से आज्ञा लेकर वह योगी महात्मा वापस अपने स्थान को चले गए।

३.११ जल में समाधिस्थ योगी

श्री प्रभु जी मण्डली सहित नर्मदा की परिक्रमा करते हुए एक स्थान पर कुछ दिन ठहर गए। वहाँ पर एक महात्मा से परिचय हुआ, जो कि कई दिन की समाधि लगाते थे और नर्मदा के किनारे एक गुफा में रहते थे। एक बार वह महात्मा गुफा में, दशमद्वार श्वास चढ़ाकर समाधि लगाए हुए बैठे थे। इतने मे वर्षा-ऋतु होने के कारण नर्मदा नदी

में बाढ़ आ गई, इस कारण महात्मा की गुफा से बहुत ऊँचाई तक पानी चढ़ गया। इधर श्री प्रभुजी ने दिव्य दृष्टि द्वारा देखा कि गुफा के भीतर जल में उस महात्मा का शरीर आसन स्थिति में समाधिस्थ है। हरिहरानन्द को यह ज्ञान कराने के लिए कि ब्रह्मरन्ध्र समाधि में अवस्थित योगी के शरीर को जल भी बहाकर नहीं ले जा सकता, उसे आज्ञा दी कि जल में गोता लगाकर उस गुफा में महात्मा के शरीर को देख आओ। सो आज्ञा पाकर हरिहरानन्द जी ने वहाँ पर देखकर वैसे ही आकर बतलाया, जैसाकि प्रभु जी ने श्रीमुख से फरमाया था। कुछ घंटों के पश्चात् बाढ़ जब उतर गई तब वह महात्मा भी समाधि से उठ जाने पर श्री महाराज जी के पास आए और कुछ समय वार्तालाप करते रहे। तत्पश्चात् श्री प्रभुजी से आशीर्वाद प्राप्त कर अपनी गुफा की ओर चले गए।

३.१२ मुखराम और कृष्णानन्द की मन्त्रसाधना

कुछ दिनों के पश्चात् श्री प्रभु जी आगे को चल दिए। श्री प्रभु जी पूर्ण सिद्ध महाप्रभु भगवान सदादिव जी के पास नेपाल से ऊपर हिमालय जाने का विचार कर घर से निकले थे। किन्तु पूर्व संस्कारवश जिन–जिन जीवों के उद्धार निमित जहाँ–जहाँ जितने समय के लिए जाना होता था, दुर्गम मार्ग लाँघते हुए और कठिनाइयों का सामना पूर्ण प्रसन्नता से करते हुए आगे बढ़ रहे थे। एक दिन श्री महाराज जी ने पूर्व संस्कार के मिलाप का सम्बन्ध किसी एक ऐसे महात्मा से देखा–जो आसाम देश के गोहाटी शहर से 200 मील के अन्तर पर बड़े घने वन में रहते हैं। परन्तु मार्ग में मन्त्र तन्त्र आदि की भरमार होने के कारण वहाँ जाना अति कठिन है। अतः ऐसा विचारकर श्री प्रभुजी ने अपने साथ रहनेवाले मुखराम और कृष्णानन्द को विन्ध्याचल पर्वत पर ले जाकर ऐसी मन्त्र–साधना करवाई, जिससे इन पर किसी प्रकार के मन्त्र–तन्त्र आदि का कुछ भी प्रभाव न पड़ सके। फिर थोड़े दिनों बाद श्री प्रभुजी विन्ध्याचल से आगे चल दिए।

३.१३ श्री प्रभु जी द्वारा दुसरे दिव्य शरीर से देवरहा बाबा पर कृपा और नासिक में प्रभु लीला

नर्मदा जी के किनारे कुछ दूर आगे चल कर, वृक्षों के नीचे एक मनोहर सुहावना स्थान देख कर श्री प्रभुजी ने वहाँ डेरा डालने की आज्ञा दी। श्री प्रभुजी ने फरमाया कि यह बहुत प्यारी साधना भूमि है इस कारण यहाँ पर सब योग साधना में लग जाओ। अगर साधना में कोई भी विघ्न आये तो श्री प्रभु जी को याद करना वह तुम्हारे सारे अंतराओं को मिटा देंगे। सब भक्तों ने आज्ञा अनुसार अपने अपने आसन लगाकर योग साधना आरम्भ कर दी। हरिहरानन्दजी ने श्री प्रभुजी का भी आसन लगा उन को विराजमान करवा अपना आसन भी उन के श्री चरणों के पास ही लगा लिया। कृष्णानन्द तथा मुखराम ने भी अपने आसन श्री हरिहरानन्द जी के पास ही लगा साधना आरम्भ कर दी। श्री प्रभुजी लम्बी समाधि में सब भक्तों के साथ नर्मदा तीर पर विराजमान रहे और एक दूसरे दिव्य योग शरीर द्वारा आकाश मार्ग से नासिक की ओर जा रहे थे कि उन्हों ने नर्मदा तट पर स्थित धनधोर जंगलों में री देवरहा बाबा को खेचरी मुद्रा की सिद्धि के लिए कठोर साधना करते हुए देखा तो कृपालु प्रभु उन की तपश्चर्या से प्रसन्न हो कर आकाश से धरातल पर आ गये। श्री प्रभु जी क तेजोमय जटाधारी स्वरूप को देख कर देवरहा बाबा ने साष्टाँग प्रणाम किया। श्री प्रभु जी ने उन्हें अपना आशीर्वाद

देकर कहा कि बैटा। खेचरी मुद्रा की सिद्धि के लिये तुम लगातार पिच्छले बारह साल से साधनारत हो। हम तुम्हारी इस साधना से प्रसन्न हो कर तुम्हारी खेचरी मुद्रा अभी सिद्ध करा देते हैं। इतना कर कर श्री प्रभु जी ने अपना वरदहस्त उनके सिर पर रखा तो उनकी खेचरी मुद्रा तत्काल उसी क्षण सिद्ध हो गयी। खेचरी मुद्रा के सिद्ध हो जाने पर प्राणी सिद्ध की श्रेणी में आजाता है और आकाश गमन की शक्ति को पा लेता है। श्री देवरहा बाबा ने इस अहैतुकी कृपा के दाता अपने श्री सद्गुरूदेव प्रभु रामलाल जी महाराज की स्तुती की और फिर से साष्टाँग प्रणाम किया। श्री प्रभु जी ने कहा कि बेटा अब तुम्हारी साधना पूर्ण हुई तुम संसार में जा कर जन कल्याणर्थ कार्य करो। हमारा पूर्ण आर्शीवाद तुम्हारे साथ है। इतना कहकर श्री प्रभु जी अपने दिव्य योग शरीर से 'नासिक' के लोगों को योग साधना, उपदेश और समाधि का दान करने लगे। नासिक में श्री प्रभुजी के चरणों में जो भी आया उस ने मन चाहा वर पाया-रोगी रोग मुक्त, निर्धन को धन, विन संतान वालों को संतान प्राप्ति, भक्तों को भगवान के दर्शन और समाधि की प्राप्ति हुई। उधर हरिहरानन्द श्री प्रभुजी की सेवा करता और अपने मन में आश्चर्य करता कि श्री प्रभुजी नर्मदा के तट पर कई दिनों से समाधिस्थ हैं। मंडली वाले भक्त भी बड़े विस्मित थे कि प्रभुजी किस कारण से इस स्थान पर इतने लम्बे काल से समाधिस्थ हैं। इन सब को श्री प्रभुजी की दिव्य लीला जो नासिक में उन द्वारा रचित दूसरे दिव्य शरीर से हो रही थी, उसका कुछ भी भेद नहीं था। वहाँ नासिक में श्री प्रभुजी ने समाधि में प्राण त्याग की एक दिव्य घटना नासिक के लोगों के सामने की। नासिक वालों को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने नासिक वाले शरीर को जल समाधि दी और फिर श्री प्रभुजी की मूर्ति एक मन्दिर में स्थापित कर वहाँ आरती पूजन आरम्भ किया।

३.१४ नासिक के भक्त शिवनाथ की योग दीक्षा

नासिक के कई संस्कारी भक्तों को श्री प्रभुजी ने कृपा कर दीक्षा दे कर कृतार्थ किया। इन में एक भक्त शिवनाथ भी था। जब श्री प्रभुजी ने नासिक से जाने का बताया तो भक्त शिवनाथ श्री प्रभुजी के विरह में फूट फूट कर रोने लगा। श्री प्रभुजी ने उसे आश्वासन देते हुए कहा कि-''बेटा! हम बारह साल बाद तुम से किसी तीर्थ स्थान में अवश्य ही मिलेंगे।''

बारह साल बाद शिवनाथ ने ऋषिकेश आश्रम में, जहाँ श्री प्रभुजी पण्डित वेश में आराम कुर्सी पर विराजमान थे प्रवेश किया और देखा दीवार के सहारे श्री प्रभुजी का जटा जूट रूप (नासिक जैसा) चित्र लगा हुआ था, इस स्वरूप को प्रणाम करके उस ने श्री प्रभुजी से प्रश्न किया कि यह स्वरूप तो हमारे सर्वसमर्थ गुरूदेव जी का है आप को कहाँ से मिला है ? श्री प्रभुजी ने कहा कि यह हमारा ही चित्र है। लेकिन वह न माना। तब आकाशवाणी हुई-यही हैं, बारह साल बाद मिलें हैं फिर नही मिलेंगे। श्री प्रभु जी ने अपने आप को जटाधारी रूप में बदल लिया फिर पण्डित वेश में बदल लिया। पर उस पर माया डाल दी फिर आकाश वाणी हुई कि आप के गुरूदेव यही हैं पर शिवनाथ को यह ज्ञात था कि उस के गुरूदेव ने नासिक में अपना शरीर समाधिस्थ अवस्था में छोड़ दिया था इस कारण उस को आकाशवाणी पर विश्वास नहीं हुआ। श्री प्रभुजी को केवल वह ही जान सकता है जिस को वह दयानिधि अपनी कृपा से जना दें-अपना ज्ञान दे दें।

३.१५ श्री पुष्करराज यात्रा

नर्मदा की परिक्रमा पूर्ण करने के पश्चात् श्री प्रभुजी तीर्थ भ्रमण करते हुए अजमेर पुषकरराज क्षेत्र में ठहरे। महाराजजी के पास सन्यासी, वैरागी, ब्रह्मचारी इत्यादि महात्मा भी आकर ठहर गये। एक दिन वाद–विवाद में बहुत से वैरागियों ने थोड़े से सन्यासियों को पीटना चाहा। श्री प्रभुजी ने दोंनों पक्ष वाले महात्माओं को समझाकर कहा कि साधु लोगों के जीवन से गृहस्थियों को शान्ति का उपदेश मिला करता है, इसलिए आप लोगों को आपस में वाद–विवाद नहीं बढ़ाना चाहिये। प्रभुजी के समझाने पर भी वे कटुवचन कहते हुए एक–दूसरे पर लाठियों से प्रहार करने लगे। एक वैरागी महात्मा ने श्री प्रभु जी के ऊपर भी वार करना चाहा, जिसको देखकर छत पर खड़े हरिहरानन्दजी तुरन्त ही नीचे कूद पड़े और एक वैरागी की लाठी छीनकर बिजली की भांति लट्ठ घुमाना शुरू कर दिया। थोड़ी ही देर में लड़ने वाले सभी महात्माओं को इधर–उधर भगा दिया। जिसको देखकर ब्रह्मानन्दजी प्रभुजी का धन्यवाद कर, हरिहरानन्दजी की वीरता की प्रशंसा करने लगे। श्री प्रभुजी ने इसे यथोचित समय पर कर्तव्य का पालन बतला कर बात को समाप्त कर दिया और एक दो दिन ठहरने के पश्चात् वहाँ से बंगाल–बिहार की ओर चल दिये।

३.१६ अवधूतानी कालिकासे भेंट

एक बार आनन्कन्द श्री प्रभुजी अपने भक्त समुदाय के साथ नासिक कुम्भ–पर्व पर स्नानार्थ गये श्री प्रभुजी के भक्तों में योगी सुन्दरगिरि और श्री हरिहरानन्द जी भी थे। साधु–समाज में योगीजी सुन्दरगिरि वखाड़िया के नाम से प्रसिद्ध थे। वह योगी तो थे परन्तु उनकी प्रकृति कुछ कठोर थी। उपयुक्त स्थान पर श्री प्रभुजी ने अपने डेरे डलवा दिये और निवास करने लगे। थोड़े दिनों बाद इनके डेरे के बिल्कुल समीप ही एक अबधूतानी ने भी अपना डेरी डाल दिया। वह अवधूतानी वास्तव में स्वयं महाशक्ति कालिका थीं किन्तु वेश बदल कर आई थीं। उनके साथ उनकी बहुत सी शिष्याएँ भी थीं। योगी सुन्दरगिरि को अबधूतानी का डेरा वहाँ लगाया जान पसन्द नही आया। अतः उन्होंने अवधूतानी कालिका से कहा–तुम अपना डेरा यहाँ से उखाड़ कर परे ले जाओ। किन्तु वह थी परम योगिनी कालिका अतः उसने योगी सुन्दरगिरि की बातों की कोई परवाह नहीं की।

परिणाम यह हुआ कि योगी सुन्दरगिरि बहुत क्रोधित हो गए और उन्होंने कालिका पर अपनी शक्तियाँ चलानी प्रारम्भ कर दीं। कालिका ने भी शक्ति का उत्तर शक्ति से देकर योगी सुन्दरगिरि को बेहोश कर दिया। योगी सुन्दरगिरि श्री हरिहरानन्दजी के परम मित्र थे। उनके बेहोश हो जाने से श्री हरिहरानन्दजी को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने भी कालिका पर अपनी अर्जित शक्तियों को प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। कालिका ने भी उत्तर दिया। फलस्वरूप कुछ समय बाद श्री हरिहरानन्द जी भी बेहोश हो गये। श्री हरिहरानन्द जी को बेहोशी आई देख श्री प्रभुजी ने विचार किया–कालिका ने अपनी शक्ति प्रयोग से हमारे बालकों को बेहोश कर अच्छा कार्य नहीं किया। कालिका का अभिमान काफी बढ़ चुका था। इसलिए जिस समय श्री प्रभुजी इस प्रकार विचार कर रहे

थे, कालिका ने उन पर भी अपनी शक्ति का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी एक दम खड़े होकर शक्ति का जवाब देने का विचार करने लगे। उसी समय नेपाल वाले महाप्रभु भगवान् सदाशिव, जो बृद्ध ऋषि के रूप में हिमालय पर विरजमान रहते हैं, बीच में आकर प्रकट हो गए और कहा–''कालिके! क्या तू नहीं देखती कि यह कौन हैं ? देख तो, किनके साथ तू लड़ रही है'' ? कालिका ने उत्तर दिया–''महाराज! मैं जानती हूँ कि यह सब मेरे भाई हैं। परन्तु पहला आघात इन्हीं की आर से हुआ था। महाप्रभु सदाशिव ने आज्ञा दी–कालिके, अब तू पाताल को चली जा । यह लोग भी अपने अपने स्थानों को चले जायेंगे। महाप्रभु जी की आज्ञा पाकर कालिका तत्काल वहाँ से चली गई। योगी सुन्दरगिरि और श्री हरिहरानन्दजी को तत्काल चेत हो गया और अब सभी लोग यथा पूर्व अपने–अपने कार्यो में लग गये।

३.१७ प्रभु! भाव के भूखे.....(अनुपम, योगिनी 281/17 पंचकुला-134109)

भाव के भूखे हैं भगवान, भाव ही बस सार है।
भाव से इन को भजे तों, भाव से बेड़ा पार है।। भाव के...

अन्न धन और वस्त्र, भूषण, कुछ न इनको चाहिए।
तू बने इनका यही, पूर्ण इन्हें सत्कार है। भाव के...

भाव बिन सब कुछ भी दे डाले तो ये लेते नहीं।
भाव से इक फूल भी दें, तो इन्हें स्वीकार है।। भाव के...

भाव बिन सूनी पुकारे, ये कभी सुनते नहीं।
भाव पूर्ण टेर ही, करती इन्हें लाचार है।। भाव के...

भाव जिस जन में नहीं, उसकी इन्हें चिता नहीं।
भाव वाले भक्त का, भरपूर इन पर भार है।। भाव के...

जो इन्हीं में भाव रख कर, और लेते हैं शरण ।
उनके और प्रभु के हृदय में, एक रहता तार है।। भाव के...

बांध लेते हैं भक्त, इन को कड़ी जंज़ीर से।
इसलिए इस भूमि पर, लेते प्रभु अवतार हैं।। भाव के...

३.१८ भजन

हे योगेश्वर प्रभु रामलाल, हम तेरा ध्यान लगाते हैं।
हाथ जोड़कर प्रेम सहित चरणों में शीश झुकाते हैं।
तुम ही स्वामी तुमही बन्धु, तुमही पिता महतारी हो।
तुम ही हो मेरे राम लखन, और तुम ही कृष्ण मुरारी हो।
जीवन रूपी नैया के, स्वामी तुम्ही रखवारे हो।
पार करो या भँवर में छोड़ो, तुम ही खेवन हारे हो।
देख–देख कर रूप मनोहर, मन में खुशी मनाते हैं।। टेक
आँखों की जाति तुम हो, तुम ही दिन का उजियारा हो।
पुरनमा को चमके है जो, तुम ही चन्दा प्यारा हो।

‘अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा’

बादल तुमही बिजली तुमही, गगन का तारा हो।
एकमात्र स्वामी मेरे, जीवन का तुम्हीं सहारा हो।
सार तुम्हीं हो सारे जग का, तेरा ही गुण गाते हैं। टेक
रातों में तुम रात चाँदनी, सूरज का परकाश तुम्हीं।
जलों में हो तुम गंगा जल, और पर्वत में कैलाश तुम्हीं।
जग उपजावनहारे तुम्हीं, प्रलय काल में नाश तुम्हीं।
आते है जो शरण तुम्हारी, मुक्ति का पद पाते हैं।। टेक
जिसने लिया सहारा तेरा, जीवन सफल बनाया है।
हुए भँवर से पार वही, जिसने तेरा गण गाया है।।
शरण में आने पर दुष्टों को, भी तुमने अपनाया है।
कहे रमेश प्रभु ने उनका, बेड़ा पार लगाया है।
शुभ करनी से जीव शरण, प्रभु रामलाल की आते हैं।।

४

अद्भुत कृपा प्रसंग

४.१ पटना के श्यामनारायण वकील की योग दीक्षा

भ्रमण करते हुए प्रभु श्री रामलालजी महाराज पटना पहुंचे। श्री प्रभुजी की यौगिक अद्भुत घटनाएँ तथा उनकी बढ़ती हुई कीर्ति को सुनकर श्यामनारायण नामक एक बहुत प्रसिद्ध वकील अति नम्रता और प्रेम भाव से श्री प्रभुजी को अपने स्थान पर ले गए। उन्होंने श्री प्रभुजी से दीक्षित हो कर ध्यान में अच्छी स्थिति प्राप्त कर ली। उनकी इतनी श्रद्धा बढ़ी कि उन्होंने कुछ दिनों के लिए कचहरी में जाना बन्द कर दिया और हर समय श्री प्रभुजी की सेवा में ही रहने लगे।

४.२ निर्दोष ब्राह्मण बालक की मृत्यु दण्ड से रक्षा

उन दिनों पटना में हरिहरराय बड़े जज थे। उनकी अदालत में उस समय एक कत्ल का मुकद्दमा आया। वह कत्ल का मुकद्दमा एक ब्राह्मण के इकलौते पुत्र पर कुछ शत्रुओं ने झूठा ही बना दिया था और ऐसे पक्के ढंग से बनाया था कि जिससे वह ब्राह्मण पुत्र अपराधी ठहराया गया और फाँसी की सजा दिए जाने की आज्ञा होने लगी। जज ने भी अपने मन में ऐसा कठोर दण्ड देने का निश्चय कर लिया था और आखिरी हुक्म सुनाने के लिए अन्तिम तारीख डाल दी। किसी प्रकार से अपने पुत्र को बचाने के लिए वह ब्राह्मण जब श्यामनारायण जी को अन्तिम तारीख पर कचहरी में चलने की प्रार्थना करने आया तो उनके बड़े मुंशी से सुना कि सैकड़ों रूपयों की फीस देने पर भी श्यामनारायणजी कचहरी नहीं जा रहे हैं। आजकल वे अपने गुरू महाराज की सेवा में लगे हुए हैं। यदि उनके गुरू महाराज आज्ञा दे दें तो शायद चले जाएँ। तब वह ब्राह्मण अवसर पाकर श्री प्रभु चरणों में सिर रख कर रोने लगा। श्री प्रभुजी जी के पूछने पर सब हाल बताकर प्रार्थना की ''महाराज! सचमुच मेरा लड़का बिल्कुल निर्दोष है। यदि कृपा कर आप आज्ञा देकर श्यामनारायण जी को अब की तारीख पर कचहरी में भेज देवें तो मेरा इकलौतापुत्र बच सकता है।'' तब श्री प्रभुजी ने श्यामनारायण को बुलाकर कचहरी जानेकी आज्ञा दी। ऐसा सुनते ही वह विचारने लगे कि प्रभुजी के दर्शन एवं सेवा से वंचित हो जाऊँगा। इतने में घटघट के जाननहार प्रभुजी फरमाने लगे-''हम भी आपके साथ चलेंगे।'' तब वे भी अन्तिम तारीख पर जाने के लिए राजी हो गए और ब्राह्मण भी गद्गद् हो प्रभुजी की स्तुति करता हुआ अपने घर को चला गया। अन्तिम तारीख पर श्यामनारायण श्री प्रभुजी को अपनी गाड़ी में बिठलाकर जज की अदालत में पहुंचा। जज ने जब सुना कि श्यामनारायण वकील के गुरू महाराज आये हैं, तो उसने श्री प्रभुजी को यथोचित सम्मान देकर अपने पास कुर्सी लगवाकर बिठा लिया।

जब मुकदमा सुनने के लिए जज प्रस्तुत हुआ, तब जज का पुरोहित हाथ में एक पत्र लेकर शीघ्रता से आया और जज के हाथ में पत्र देने लगा तो उस पुरोहित का शरीर श्री प्रभुजी से स्पर्श करने लगा। तब श्री प्रभुजी ने उस पुरोहित को दूर रहने के लिए संकेत किया। पुरोहित से पत्र लेनेके पश्चात् जज ने श्री प्रभु जी से पूछा-''महाराज! योगी लोग

तो समदर्शी होते हैं, आपने इस पुरोहित को अस्पृश्य की तरह दूर रहने के लिए किस कारण से कहा ? कृपया मेरे इस संशय की निवृति किजिए।'' श्री प्रभुजी ने फरमाया कि ''पहले आप मुकदमें से निपट लें, बाद में इसका कारण बतलाऐगें।'' तब उस जज ने कहा कि ''महाराज! जब तक मेरा यह संशय निवृत्त न होगा, तब तक मुकदमे की तरफ ठीक–ठीक मन नहीं लगेगा। इसलिए कृपाकर आप मेरे संशय का समाधान कीजिए।''

श्री प्रभुजी ने फरमाया–''आपके पुरोहित ने ग्रहण के समय कुछ विशेष महादान लिया है। ग्रहण में विधिपूर्वक महादान लेनेवाला यदि पूर्ण समर्थ न हो तो उसके शरीर में कुष्ट रोग हो जाता है। सो इस प्रकार ग्रहण में महादान लेने के कारण पुराहित जी के शरीर में कुष्ट रोग हो गया था। अनुष्ठान, जप आदि करके रोग को घटा तो लिया है, परन्तु अभी भी इनके शरीर में कुष्ट अंश है। शास्त्रों में कुष्ट रोगी को अस्पृष्य बताया है इस लिए आप के पुरोहित को दूर रहने के लिए कहा है।'' श्री महाराज जी के उपर्युक्त कथन को पुरोहित ने भी स्वीकार किया। इस बात को सुन जज बहुत प्रभावित हुआ। तत्पश्चात् उस ब्राह्मण लड़के के मुकद्दमे की सुनवाई आरम्भ हुई। श्यामनारायणजी ने अपनी ठोस दलील देते हुए ब्रह्मण के लड़के को निर्दोष सिद्ध कर दिया। तदनन्तर जज ने भी सोच–समझकर उसे छोड़ देने का हुक्म सुना दिया और मुकद्दमा खारिज कर दिया। श्री प्रभुजी श्यामनारायण जी के साथ अपने स्थान पर वापस चले आए।

४.३ हरिहरराय जज की वैराग्यपूर्ण अवस्था और प्रभु की आपर कृपा

कृषक वेशधारी जज हरिहरराजय को जब स्वयम् अपनी इन्कौरी द्वारा राणा के मुख से अपने दुश्मन ब्राह्मन के निर्दोष बालक को नाहक फंसाा जाने का पता चला तो उसके मान में श्री प्रभु जी के प्रति श्रद्धाभाव प्रकट हो गया। मुख्य न्यायाधीश हरिहरराय के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने जजी के कार्य से इस्तीफा देकर सीधे श्री प्रभु चरणों में उपस्थित हो कर प्रार्थना की कि ''प्रभु! मुझे अपनी शरण प्रदान कर पूर्ण योगी बनाने की कृपा करें।'' श्री प्रभु जी ने उसके भोग संस्कारों को देख कर कहा कि ''बेटा! इस समय तुम ईश्वर का चिन्तन करते हुए अपने परिवार का पालन पोषण करो फिर समय आने पर हम तुम्हें अवश्य ही योग दीक्षा दे कर पूर्ण योगी बना देंगे।'' इतने में जज की धर्म पत्नी भी अपने दो बच्चों के साथ श्री प्रभुजी के चरणों में आकर कहने लगी कि ''महाराज! मैं ने सुना है कि मेरे पतिदेव साधु होने के लिए आप के पास आए हैं। आप कृपा कर मेरी और इन बच्चों की दीन दशा पर ध्यान दे कर इन को साधु न बनाइए।'' श्री प्रुभ जी ने फरमाया– ''देवी! यह घर न छोड़ने की प्रतिज्ञा करेगा तभी हम इसे अपने साथ रखेंगे अन्यथा नहीं।'' दूसरे दिन हरिहरराय ने फिर निवेदन किया कि ''प्रभु! मैं अपनी नौकरी करने अब नहीं जाऊँगा। अब तो आप मुझे योग दीक्षा दे ही दीजिये।'' श्री प्रभु जी ने कहा कि ''बेटा! दीक्षा तो हम तुम्हें समय आने पर ही देंगे एवं वह समय अभी आया नहीं है।'' इतना सुन, प्रणाम कर, वह नाराज हो कर किसी और समर्थ योगी द्वारा पूर्ण योगी बनने चला गया। हरिहरराय ने ऋषिकेश में दो महा की तलाश के बाद एक तपस्वि महात्मा वेशधारी को योग्य गुरूदेव समझ प्रणाम् कर निवेदन किया कि आप मुझे पूर्ण योगी बनाने की कृपा करें। उस ने कहा कि पहले मेरी सेवा करो, मेरे प्रसन्न होने पर तुम्हें दीक्षा देकर पूर्ण योगी बना दूँगा। हरिहरराय गुरूदेव को परिपूर्ण जान उन की पूरे मनोयोग से सेवा करने लगे। दो माह बाद महात्मा ने प्रसन्न हो कर उन्हे मंत्र दिया तथा आखें बन्द कर प्रकाश का दर्शन करने की आज्ञा दी। गर्मी का दिन, ऊपर से आग की तपस एवं महात्मा द्वारा दोनों कन्पटियों को जोर से दबाने के

कारण उन की आँखें लाल हो गई ततो उन्हों ने कहा कि गुरूदेव मुझे लाल पीला दिखाई दे रहा है। इतना कहकर ये बेहोश होकर गिर पड़े। महात्मा भग गया। होश आने पर महात्मा को कहीं भी न पा कर वह अयोध्या धाम योग्य गुरू की तलाश में चल पड़े। वहां एक महात्मा बेशधारी को अन्तर्यामी जान उसे अपनी करूणा कहानी कह सुनाई। उसने कहा कि हम सिद्ध पुरूष हैं। तुम सेवा करो हम तुम्हें सिद्ध बनादेंगे। हरिहरराय उन को सिद्ध पुरूष जान दिन रात सेवा करने लगे। वह भगवान राम के एक भव्य मंदिर का पुजारी था जो प्रातः पांच बजे अपनी कोठरी से बाहर आता था फिर छः बजे आरती कर मंदिर में अपने आसन पर बैठ कर बाहर बजे तक भक्तों को प्रसाद एवं आर्शीवाद दिया करता था। ऐसा ही कार्य चार बजे से आठ बजे सायंकालीन आरती तक चलता। उसे के सैकंड़ो शिष्य थे। रात्री के भोजन उपरान्त वह अपनी कोठरी में नौ बजे से प्रातः पाँच बजे तक एकांत साधना करता। इस समय में उस को मिलने की सब को मनाही थी। हरिहरराय को एक कमरा उस ने अपनी कोठरी की बगल में दे रखा था। अचानक एक रात में दो बजे उसे एक स्पष्ट आवाज सुनाई दी कि ''अरे हरिहरराय तू जिसे सिद्ध समझ रहा है, उसकी करनी बाहर जा कर देख।'' वह तत्काल उठ कर बाहर पचास कदम की दूरी पर स्थित आम के पेड़ पर चड़ कर बैठ गये। सुवह चार बजे एक नौजवान औरत उस महात्मा के दरवाजे से बाहर आयी एवं उसी पड़े के नीचे से हो कर गयी। हरिहरराय यह देख कर हतप्रभ से होकर स्टेशन आ गये और वृंदावन में किसी मठ के महन्त की ख्याती सुन उन के चरणों में प्रणाम कर प्रार्थना की कि महाराज क्या आप मुझे भगवान के दर्शन करा दोगें ?'' महन्त ने कहा तुम आश्रम की गो सेवा करो, जिस दिन तुम्हें शिष्य बनाऊँगा उसी दिन ईश्वर के स्थूल दर्शन भी करा दूँगा। दो महीने बाद महन्त ने हरिहरराय को घर घर जा कर भिक्षा में धन एकत्र कर, वहाँ पूर्णिमा के अवसर पर दीक्षायज्ञ करवा कर उसे ईश्वर दर्शन करवाने का अपना वायदा याद दिलाया। पूर्णिमा के दिन यज्ञ की पुर्णाहुति के बाद महन्त ने हरिहरराय के कान में मंत्रदान करके एक सुनहरे रंग के बक्स में से शालिग्राम को निकाल कर कहा बेटा! करो भगवान के दर्शन एवं इन्हें साष्टांग प्रणाम करो। हरिहरराय ने कहा कि ''महाराज! यह तो शालिग्राम की पिण्डी है आप ने तो साक्षत् स्थूल रूप में भगवान के दर्शन कराने की बात कहीं थी।'' इस पर महन्त न गुस्से में एक लकड़ी द्वारा उस की पीठ पर प्रहार किया एवं कहा कि हरामजादे! '' इस घोर कलिकाल में भगवान स्थूल रूप में क्या कभी दर्शन देंगे।'' इसके बाद उसे बुरी प्रकार अपमानित करके मठ से बाहर निकलवा दिया। फिर उन को किसी पथिक द्वारा बिहार के गया जिले की कर्मनाशा नदी के किनारे सिद्ध औधड़ महात्मा का पता चला तो वह तीन दिन बाद वहां पहुँचे और उन्हें प्रणाम किया। महात्मा ने कहा कि ''तुम साक्षात ईश्वर दर्शन करने एवं योगी बनने आये हो। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। तुम सेवा में लग जाओ।'' यह औघड़ महात्मा तामस्कि वृति का था जो रात को हरिहरराय द्वारा मृत शरीर को नदी उठवाकर आश्रम अपने खाने के लिए मंगवाता था फिर भोजनोपरान्त नदी में फिकवा देता था। हरिहरराय की इस सेवा के चालीसवें दिन शांम तीन बजे औघड़ महात्मा ने दस–दस रूपये के पाँच नोट उन्हे दिये एवं कहा कि शहर जा कर रात्रि में 12 बजे एक बोतल शराब एवं एक कुँवारी लड़की को ले आना। आज तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हो जावेगा। हरिहराराय ने भगवान शिव के मंदिर के दान पात्र में वह पाँच नोट डाल दिये। भगवान शिव को प्रणाम कर श्री प्रभु जी की वातें याद आयीं और वह अपने भूत एवं वर्तमान समय को सोच कर काफी देर तक रोते रहे। जीवन से बिल्कुल निराश एवं हताश हरिहरराय ने पंचाक्षरी मंत्र का जाप करते हुए आधि रात में नदी में कूद कर प्राणान्त कर देने का मन बना लिया। जब मंदिर की घड़ी

में ग्यारह बजे तो हरिहरराय नदी की यात्रा के लिए निकल पड़े। जैसे ही तिराहे से नदी वाली सड़क पर निकले तो सामने योग योगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज जटाधारी स्वरूप में प्रकट हो गये एवं बोले–''बेटा! तुमने हमारी आज्ञा की अवहेलना कर एक साल के लिए महान कष्ट भोगा अब तुम्हारी दीक्षा का समय हो गया है मैं योग दीक्षा देने आया हूँ।'' श्री प्रभु जी के दिव्य स्थूल जटाधारी स्वरूप का दर्शन कर श्रभ हरिहरराय कृतार्थ हो गये। उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा निकल रही थी एवं कण्ठ भर आया था। उन्हों ने चरण स्पर्श कर प्रणाम किया तो श्री प्रभु जी ने आर्शीवाद देते हुए कहा कि ''बेटा! योगी के बच्चे रोते नहीं हैं।'' इतना कहने के बाद श्री प्रभु जी ने उन के सिर पर अपना वरदहस्त रखा और तत्काल उन्हें सिद्ध योगी बना दिया। श्री हरिहरराय ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि प्रभु जी अब मेरे लिए क्या आदेश है? श्री प्रभु जी ने कहा कि–वैसे तो तुम इसी समय सिद्ध योगी बन गये हो परन्तु हिमालय पर जाकर कुछ समय स्वाध्याय कर लो। आगे मैं आवश्यकतानुसार तुम्हें निर्देशित करता रहूँगा। ''फिर प्रभु जी ने उन्हें आकाश मार्ग से हिमालय को भेज दिया।

४.४ तपस्वी हरनामदास को योग समाधि प्रदान

हरनाम दास का जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ। उसका एक भाई था और उन दोनों में बड़ा प्यार था। कुछ देर बाद उस के भाई का निधन हो गया। इस से हरनाम दास को संसार से वैराग्य हो गया। उसे एक वैरागी गुरू से उपदेश मिला और वह साधु वन उन के साथ भिक्षा आदि करता और नाम जपता। जब बारह वर्ष बाद गुरु समा गए पर हरनाम दास का मन शांत नही हुआ।

फिर काशी जी में एक कथा वाचक संत से तप की महिमा सुन उसने तप करने की ठानी। अन्न को त्याग बारह साल फलाहार ही खाया और सब भारत के तीर्थ किये, पर इन तीर्थों की यात्रा से मन की इच्छा नहीं मिटी। तब एक साधु ने उसे मंत्र दिया और एक पैर पर जपने को कहा। उसने बारह साल ऐसा किया, उसकी एक टाँग सुख गई और एक हाथी की टाँग जैसी मोटी हो गई। उसे प्रभु दर्शन नहीं हुए। फिर हरनामदास ने शीतकाल में सारी रातें हिमवत् जल में ठिठुर ठिठुर कर गुजारीं और ग्रीष्म काल में बारह अग्नि तापी। उसे बुढ़ापा आ गया, सो जब ऐसा तप न कर सका तो उसने मौन धारण कर लिया। वह आराम करने एक टुटे मन्दिर में लेट गया। उसे मालूम नही था कि वहां मन्दिर से ईंटे कौन मारता था। उसे लोगों ने पकड़ लिया। जूतों से पीटा और केशों से पकड़ खूब घसीटा। उसे लहू–लुहान कर पुलिस के हवाले कर दिया। पुलिस ने उसे चोर जान हथकड़ी डाल, जेल में भेज दिया। इस सारी तपस्या के फलस्वरूप श्रीप्रभुजी का हृदय पसीज गया।

घट घट के जानन्हार श्री प्रभुजी वकील श्याम नारायण के साथ गाड़ी में जा रहे थे तो उन्होंने एक साधु को घाव भरे शरीर में–हथों में हथ कड़ियाँ डाले पुलिस वालों के साथ जाते देखा। श्री प्रभुजी ने श्याम नारायण को उस साधु फकीर को जमानत पर छुड़ाने का आदेश दिया। श्याम नारायण ने प्रभु आज्ञा अनुसार उस घायल साधु को जमानत पर मुक्त करवा, अपनी कार में बिठा, श्री प्रभुजी के पास ले आये। श्री प्रभुजी ने उस साधु को स्नानादि करवा कर नूतन वस्त्र पहनाये और उसके घावों पर औषधि लगाई। इस के बाद उस को अच्छा खान पान करवाया। साधु बड़ा खुश हुआ। फिर श्री प्रभु जी ने उस को योग का उपदेश दिया और उसे योग–साधन में लगा दिया। उस को दिव्य अनुभव होने लगे और वह दीर्घ काल तक समाधिस्थ रहने लगा। तब श्री प्रभु जी

ने हरनाम दास को बद्रीनाथ तीर्थ पर जा कर साधना करने की आज्ञा प्रदान कर उसका जीवन सफल बना दिया। श्री प्रभु कृपा से तपस्वी हरनाम दास को प्रभु साक्षात्कार हो गया और उसका जीवन आनंदमय बन गया।

४.५ फिरोजाबाद के स्टेशन मास्टर पर कृपा

श्री प्रभुरामलाल जी महाराज अभी पटना में ही विराजमान थे, उन्हीं दिनों फिरोजाबाद का स्टेशन मास्टर श्री प्रभुजी के चरणों में आने जाने लगा। एक दिन श्री प्रभुजी ने उसकी विशेष भाव भक्ति सेवा से प्रसन्न हो उसे दीक्षित कर दिया। थोड़े ही समय में उसके पूर्व संस्कार तथा अटूट श्रद्धा को देख शक्ति संचार द्वारा खेचरी मुद्रा तथा श्वास चढ़ाना आदि साधन सिद्ध करवा दिये जिससे वह ध्यान की अत्युत्तम अवस्था को प्राप्त होकर आनन्दमय जीवन व्यतीत करने लगा। कुछ दिन पश्चात् श्री प्रभुजी वहाँ से चल दिये।

४.६ योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की परम कृपा पात्रा -'परम योगिनी' रामरती को दिव्य समाधि का दान

बंगाल बिहार की सीमा पर जमुनिया घाट नामक एक स्थान है। उस स्थान को देखने की इच्छा से एक बार योगयोगेश्वर श्री प्रभुजी मण्डली सहित घूमते–घूमते वहाँ पहुँचे और पवित्र गंगा–जल में स्नान करके अपने नित्य आत्म–स्वरूप का चिन्तन करते हुए वहाँ बैठ गये। वह स्थान थोड़ा सा एकान्त में था, थोड़ी ही देर में वहाँ पर कहीं से घूमते हुए पिता और पुत्र दो व्यक्ति आये। वे वर्ण से क्षत्रिय थे। उनके पास कृपाणें थीं। उनका मुख बहुत लाल था। उनके दुखी मन को देख करके श्री प्रभुजी को बड़ी दया आयी और पूछा कि भाई तुम बड़े दुःखी मालूम पड़ते हो इसका क्या कारण है? यदि कोई विशेष गोपनीय बात नहीं है, तो वह हमें बता दो। सम्भव है, तुम्हारी दुःख–निवृति का कारण हम बन जायें। श्री करूणाकर प्रभुजी के वचनों को सुनकर पहले तो उन दोनों ने संकोच किया किन्तु बाद में वृद्ध क्षत्रिय ने संकोच छोड़ करके सत्य–सत्य कह दिया। उसने श्री प्रभुजी को बतलाया ''महाराज! हम दोनों पिता–पुत्र हैं। मैं इसका पिता हूँ, यह मेरा पुत्र है। हमारी एक लड़की है उसका नाम रामरती है। संस्कार–वश वह बहुत दुराचारिणी हो गई है। लोकलाज, कुल–कीर्ति सभी उसने बिना किसी संकोच के छोड़ दी है। वह खुल्लम खुल्ला मद्य पी करके व्यभिचार करती है। आत्मांश होने के नाते से थोड़ा सा हमें दुःख है और यह लोकापवाद हमसे सहन नहीं होता। यह दुःख पाकर हम दोनों आये हैं और यह विचार कर रहे हैं या तो देश छोड़ करके हमही कहीं चले जायें, जिससे हृदय–विदारक कर्णकटु बातें हमारे कानों में न पड़ सकें और या हम अपने हाथों से उस लड़की को कत्ल करदें जिससे सदा के लिए यह कंटक कट जाये और हम अपवाद से वच जायें। श्री प्रभुजी ने उनकी सत्य बातों को सुन करके आश्वासन देते हुए कहा–''भाई, तुम्हें भी कहीं जाना न पड़े और उस लड़की का भी उद्धार हो जाये यह बहुत ही उत्तम होगा।'' श्री प्रभुजी की इस पवित्र वाणी को सुन करके उन दोनों ने कहा–''महाराज! हमारे विचार में तो यह असम्भव है। जिस प्रकार विना पौधे के आकाश में फूल नहीं लग सकता, इसी प्रकार से इस लड़की का उद्धार होना हमारी दृष्टि में असम्भव तो है ही, फिर भी आप महात्मा हैं, सर्व समर्थ हैं, आपकी कृपा से कुछ हो जाये तो अच्छा ही है, वह लड़की इन स्थानों में घूमती रहती है। सम्भव है, वह कहीं न कहीं से आ ही रही होगी। कदाचित वह आप की बात को मान ले और उस का सुधार हो जाय तो अच्छा ही

है।'' इतनी देर में रामरती कहीं से घूमती हुई वहाँ आई। उसके सिर के बाल पागलों की तरह बिखरे हुए थे। शराब की बोतलें हाथ में थीं।

परम् कारूणिक श्री प्रभुजी ने कृपा करके उसे अपनी ओर बुलाया और कहा ''देवी! तुम ऐसा कर्म क्यों करती हो? इस भ्रष्टाचरण को छोड़ दो तो तुम्हें इससे भी बड़ा आनन्द मिल जायेगा।'' किन्तु उस लड़की को विश्वास न हुआ और उसने बिल्कुल स्पष्ट कहा कि यह सब काम मैं अपने आनन्द के लिये करती हूँ। दो–चार व्यक्ति मेरे साथ रहते हैं। इससे बढ़कर आनन्द संसार में मुझे और कोई नहीं दिखाई देता। यदि इससे बढ़कर आनन्द कोई और हो और आप मुझे वह दे सकें तो यज्ञोपवित पकड़कर सौगन्ध खाइए, तब मैं आपकी बात पर विश्वास कर सकती हूँ। यदि वह आनन्द इससे बढ़कर हुआ तो मैं इन कर्मो को छोड़ दूंगी। रामरती के ऐसे हठ को देखकर उसके कल्याण को अपनी दृष्टि में रखते हुए परम् कृपालु प्रभु जी ने यज्ञोपबतीत पकड़ कर सौगन्ध खाई और कहा ''देवी, इससे भी बड़ा आनन्द होता है और वह हम अभी तुम्हें देंगे, जिसको पाकर तुम इन वासनिक झमेलों और अपने तन की सुध–बुध भी भूल जाओगी और देवी कहलाओगी।'' यह कहकर श्री प्रभुजी ने रामरती को दिव्य साधन बताया और सिद्धासन पर बैठकर उस साधन को करने की आज्ञा प्रदान की। रामरती ने ज्यों ही आसन लगाकर उस साधन को करना आरम्भ किया, तत्काल उसकी मनोवृत्ति अन्तर्मुखी हो गई।

श्री प्रभुजी की परम कृपा से रामरती कृतार्थ हो गई। रामरती के बाप व भाई ने देखा कि प्रभु जी ने रामरती को बिठाकर केवल मात्र उसके सिर पर अपना हाथ रक्खा है जिससे तत्काल ही वह तन–मन की सुध को खोकर के समाधिस्थ हो गई। वह परम् योगिनियों की तरह से आसनबद्ध होकर बैठी है। रामरती की यह स्थिति देखकर पिता–पुत्र दोनों ही बड़े आश्चर्य में थे। उनके आश्चर्य को देखकर श्री प्रभुजी ने उनको समझाकर कहा कि भाई अब तुम निश्चिन्त रहो। अब यह रामरती दुराचारिणी लड़की नहीं रही। अब यह साक्षात् देवी हो गई, जो इसकी सेवा करेगा वह मन चाहा फल पायेगा। यह कह करके श्री प्रभुजी तीन रोज के लिए किसी साधु से मिलने के लिए चले गये।

तीन रोज बाद दुबारा लौटकर आये तो श्री प्रभुजी ने देखा कि रामरती उसी प्रकार बैठी है। यह देखकर उन करूणार्णव का ह्रदय अतिशय प्रसन्न हुआ और वहाँ आस–पास गाँव वालों को कह दिया कि यह अब साक्षात् देवी है। जो इसकी सेवा करेगा वह मन वाँछित फल पायेगा। यह कहकर श्री प्रभुजी बंगाल के नदिया स्थान को चले गए।

श्री प्रभुजी के जाने के बाद रामरती की बिल्कुल निश्चेष्ट समाधि को देखकर स्त्री–पुरूष उसके दर्शनों को आने लगे। रामरती बिल्कुल चेतना–शून्य रहती थी। बंगाल जाने से पूर्व श्री प्रभुजी ने स्वयं अपने हाथों से एक दूध का कटोरा उसके मुँह से लगा दिया था और वह उसे पी गई और उसी प्रकार का आदेश लोगों को उन्होंने दे दिया था कि तुम लोग भी इस प्रकार इसको दूध पिला दिया करना। इस प्रकार की स्थिति में रहती हुई यह थोड़ा बहुत कुछ खा लिया करेगी। श्री प्रभुजी के इस आदेश को स्मरण करके उसी प्रकार लोग उसकी सेवा करने लगे। उस समाधि की स्थिति में ही रामरती के मुख से लोगों के लिए कई प्रकार के आशीर्वाद स्वतः ही निकल जाते थे और वह ज्यों के त्यों सफल हो जाते थे। बहुत से लोगों ने अपने मनोवांछित फल पाकर वहीं रामरती के स्थान पर शिवालय, धर्मशाला और रामरती के सिर पर भी एक अच्छा मठ बना दिया। जिसमें बैठी रामरती साक्षात् भवानी की तरह समाधिस्थ रहती थी। रामरती किसी से बोलती नहीं थी। केवल मात्र श्री प्रभुजी की अपार कृपा से जब किसी का भला होना

होता था तो आशीर्वादात्मक वाणी ही उसके मुख से निकलती थी। लगभग तीन साल तक रामरती जोगबनी (बिहार प्रान्त के चम्पारण जिले के उत्तरी छोर से 13 किलोमीटर की दूरी पर है) स्थान पर समाधिस्थ रही।

४.७ योग योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज की परम कृपा पात्रा 'आत्म समर्पित' रामा का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव

श्री प्रभुजी भक्त समुदाय के साथ घूमते हुए 'नदिया' (बंगाल) दोपहर के समय पहुँचे। उन दिनों ग्रीष्म ऋतु होने के कारण गर्म लू चल रही थी। प्रभुजी 'नदिया' के बाहर एक सुयोग्य स्थान देख कर रूक गए। वहाँ एक शिव मन्दिर में विश्राम करने लगे।

हरिहरानन्द जी तथा अन्य भक्त भी थकावट के कारण मन्दिर के इधर–उधर पड़ गए। मन्दिर छोटा होने के कारण प्रभुजी के निचले शरीर पर धूप पड़ने लगी। कुछ समय के भीतर प्रभुजी जब उठे तो देखा कि बहुत ही सम्पन्न वेषवाली एक देवी अपनी छतरी से छाया कर रही है, आप स्वयं धूप में खड़ी है और उसका सारा शरीर पसीने से भीग गया है। इस देवी के पति ने हरिहरानन्दजी के ऊपर छाया की हुई है और उसका भी सारा शरीर पसीने से भीगा हुआ है। महाराजजी के उठते ही दम्पति ने प्रणाम किया। इतने में हरिहरानन्द जी भी उठ गये और बाकी मंडली को भी जगा दिया। फिर उन दम्पति ने श्रीचरणों में बड़े प्रेम भाव से प्रार्थना की–''प्रभो, कृपा कर हमारे घर पर पधारें।'' प्रभुजी ने फरमाया ''हम प्रायः किसी गृहस्थी के यहाँ नहीं ठहरा करते, स्वतन्त्र ही रहा करते हैं।'' तब उस दम्पति ने कहा कि महाराज यदि आप आज्ञा दें तो आपके लिए तीन चार दिन में नई कोठी बनवा दी जाये। तब हरिहरानन्द जी सहज ही कह बैठे–''अच्छा! आप नई कोठी बनवाओ। यदि महाराजजी उचित समझेंगें तो ठहर जावेंगे।'' इस बात को सुनते ही वे दम्पति प्रभुजी के चरणों में प्रणाम कर बड़ी प्रसन्नता से महाराजजी को हरिहरानन्द सहित घोड़ा गाड़ी द्वारा अपने महल में ले गए। तत्पश्चात् और गाड़ियां भेजकर अन्य सभी भक्तों को भी बुलाकर अपने पास ठहरा लिया।

हरिहरानन्द को वहाँ पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि इनका नाम आशुतोष चटर्जी है और यहाँ के जज हैं व इनकी धर्मपत्नी का नाम रामादेवी है। दम्पति ने कुछ दिनों में ही कोठी अपने बगीचे में तैयार करवा दी। जिसमें श्री प्रभुजी अपने भक्तों सहित रहने लगे। दम्पति ने सेवा–भाव से श्री प्रभुजी को प्रसन्नकर गुरू दीक्षा प्राप्त कर ली। इसी प्रकार और भी सैकड़ों नर–नारी भक्त दीक्षित होते गये, जिससे दिन–रात प्रेम–भक्तियोग का धारा प्रवाह प्रवाहित होने लगा। हर समय दर्शनार्थियों का तांता सा बंधा रहता था। श्री प्रभुजी ने थोड़े ही दिनों में बहुत से भक्तों को उतम ध्यानावस्था प्रदान कर दी। विशेषकर प्रभुजी ने रामादेवी की अनन्य भाव–भक्ति से प्रसन्न हो ऐसी कृपा कर दी कि कुछ दिनों के अभ्यास से रामाजी योग मार्ग में हरिहरानन्द के सदृश अत्युत्तम ध्यान स्थिति को प्राप्त हो गई और चौबीस घन्टे मस्ती की हालत में पड़ी रहने लगी। पुरूषों में हरिहरानन्द और देवियों में रामाजी उस समय प्रधानता को प्राप्त हुए।

रामाजी की एक बहिन थी, वह भी प्रभुजी की शरण में आकर योग की अच्छी स्थिति को प्राप्त हुई व हर समय मस्ती में रहने लगी। आशुतोष चटर्जी का परिवार भी समय समय पर पहुंचकर श्री प्रभुजी की सेवा कृपा आशीर्वाद को प्राप्त करता रहा। नदिया में प्रभुजी दिन में एक बार ही भक्तों की प्रार्थना पर भीतर से बाहर दर्शन देने आया करते

थे। दर्शन पाते ही सैकड़ो दर्शनार्थी स्त्री-पुरूष संकीर्तन करते-करते प्रेम विभोर हो शरीर की सुधि भूले हुए श्री चरणों में गिर पड़ते थे।

'नादिया' की दिव्य घटनाएं

श्रीप्रभु जी के 'नदिया' में रहते हुए अनेक दिव्य घटनाएं हुई, जिनमें से कुछ नीचे दी जा रही हैं।

(1) एक बार रामाजी के पुत्र जो कि जज थे, बहुत बीमार पड़ गये। जब डाक्टर, हकीम, वैद्य इत्यादि सबकी चिकित्सा से कोई लाभ नही हुआ, तब भक्तों की प्रार्थना पर प्रभुजी ने एक पानी का गिलास अपने हाथ से दिया, जिसे पीते ही वे एकदम स्वस्थ हो गए।

(2) एक दिन रामाजी के यहाँ श्री प्रभुजी बैठे हुए थे। उस समय एक पढ़ा-लिखा अंग्रेजी फैशन का आदमी प्रभुजी के दर्शन करने आया। उसने आते ही पूछा कि मैं कहां बैठूं। तब श्री प्रभुजी ने अपनी बराबरी में एक कुर्सी पर उसे बिठा लिया। इतने में आशुतोष चटर्जी व अन्य कुछ भक्त आकर प्रभुजी के चरणों में नीचे कालीन पर बैठ गये। आशुतोष चटर्जी ने अपने एक आदमी से इशारा करके उसे नीचे बिठला दिया। फिर भी उसे समझ न आई और दुबारा श्री प्रभुजी से आज्ञा लेकर कुर्सी पर बैठ गया। आशुतोष चटर्जी ने फिर इशारा करके उसे कमरे से बाहर ले जाकर अंग्रजी में समझाया कि इस प्रकार उसे गुरूजनों के बराबर नहीं बैठना चाहिए। तब वह प्रभुजी से प्रार्थना कर कहने लगा-''महाराजजी, मुझे पता नहीं था कि गुरूजनों के सामने नीचे बैठा जाता है''। श्री प्रभुजी उसकी अनभिज्ञता को देख मुस्कराये और उसे आशीर्वाद देकर भेज दिया।

(3) रामा और हरिहरानन्द प्रभु चरणों में अनन्य भाव-भक्ति से हर प्रकार की सेवा में लीन रहते थे। इन दोनों में सेवा करने की एक विशेषता यह थी यथा-प्रभुजी को पानी पीने की आवश्यकता हो तो उनके कहे बिना ही ध्यान से जानकर ये दोनों भक्त पहले से ही ठण्डा जल हाथ में लिए हुए श्री प्रभुजी के पास आकर खड़े हो जाते थे। जो पहले पहुँच जाता, प्रभुजी उससे जल लेकर पी लिया करते थे। इस प्रकार हरिहरानन्द और रामा दोनों प्रभुजी के कहे बिना सब प्रकार के सेवा कार्य करते रहते थे।

(4) एक दिन प्रभुजी कुछ भक्तों के साथ खेतों में घूमने दूर चले गए। वहाँ पर प्रभुजी को प्यास लगी। इस बात को घर बैठे रामाजी ने ध्यान में देखकर उसी समय अपने पुत्र को टेलीफोन करके घर पर बुला लिया और ठंडा जल बोतल में डालकर आज्ञा दी कि प्रभुजी खेतों में अमुक जगह पर जा रहे हैं। इस समय प्रभुजी को प्यास लगी है इसलिए तुम शीघ्र जाकर प्रभुजी को जल पिला आओ। माताजी की आज्ञा पाते ही वह मोटरसाईकिल पर चढ़कर खेतों की ओर चल पड़े। आगे काफी दूर पहुँचने पर वहीं सड़क पर मोटर साईकिल छोड़ पैदल ही खेतों में जाने लगे। प्रभुजी पहले से ही मोटर साईकिल की अवाज सुनकर रूक गये। उधर एकदम रामाजी के पुत्र ने आकर प्रभुजी को प्रणाम किया और जल पिलाकर सारी बात भी कह सुनाई, जिसे सुनकर श्री प्रभुजी के साथ खड़े सब व्यक्ति रामाजी के सेवा भाव की इस उत्तम निष्ठा उत्तम को देख सराहना करने लगे और अपने में सेवा भक्ति की न्यूनता देख लज्जित हुए। तत्पश्चात् श्री प्रभुजी भक्तों सहित अपने स्थान पर वापस आ गए।

(5) श्री प्रभुजी की कृपा से रामाजी में कई प्रकार की विलक्षण यौगिक सिद्धियां आ गई थीं, जिससे वह स्वर्गादि दूसरे लोकों से भी वस्तु ला सकती थीं। एक बार की बात है

कि श्री प्रभुजी बागीचे में विराजमान थे और उनके श्रीचरण–कमलों में सैकड़ों दर्शनार्थी बैठे हुए थे। उस समय आकाश से बहुत ही चमकती हुई प्रकाशवान वस्तु नीचे आती हुई दिखाई दी, जिसे देख वहां बैठे हुए सभी लोग अपनी बुद्धि के अनुसार तरह–तरह के अनुमान लगाने लगे। थोड़ी ही देर में वह प्रकाशमय वस्तु ठीक उसी जगह पर सीधी आने लगी। बैठे हुए लोगों को कुछ भय–सा हुआ कि कहीं कोई उपद्रव न हो जाए। तब श्री प्रभुजी ने फरमाया,–''यह न तो आकाश से टूटा हुआ तारा है और न किसी उपद्रव का ही कारण है। यह तो ध्यानावस्था में स्वर्गलोक से रामा द्वारा भेजा हुआ दिव्य पुष्प है। इसलिए आप लोग निर्भय होकर बैठे रहें।'' फिर भी थोड़े भक्तों के अतिरिक्त और सब लोग भयभीत हो कुछ ही दूरी पर खड़े होकर देखने लगे। कुछ समय के भीतर वह प्रकाशमय पुष्प सीधा श्री प्रभुजी के हाथ में आ गिरा। तब सब लोग उस पुष्प को देख अचम्भा मानने लगे। श्री प्रभुजी ने फिर लोगों को सम्बोधित करते हुए फरमाया,''यह पुष्प रामा ने ध्यानावस्था में स्वर्गलोक से हमारे पास भेजा है। इसी समय जाकर देखो, रामा अपने घर ध्यान में पड़ी हुई होगी''।

कुछ भक्तों ने जब महल में जा कर देखा तो रामाजी ध्यान में बैठी हुई मिलीं। श्री प्रभुजी ने उस पुष्प को शीशे की अल्मारी में रखबा दिया जिसे देखने के लिए कई दिन तक बड़ा भारी मेला–सा लगा रहा। उस पुष्प में दिव्य प्रकाश के अतिरिक्त एक विशेषता यह भी थी कि कितने ही दिन बीतने पर वह पुष्प मुरझाया नहीं था। वहाँ से चलते समय उस पुष्प को श्री प्रभुजी रामाजी के यहाँ ही छोड़ गए।

(6) एक दिन की बात है कि श्री प्रभुजी को भोग लगाने के लिए हरिहरानन्दजी भीतर से कुछ फल लेने गए। प्रभुजी जहाँ पर विराजमान थे, वह स्थान कुछ ऊँचाई पर होने के कारण सीढ़ियाँ चढ़कर जाना पड़ता था। उधर रामाजी फलाहार लेकर सीढ़ियाँ चढ़ने लगीं, तो पीछे से हरिहरानन्द भी फल लेकर सीढ़ियों में आ पहुँचे हरिहरानन्द ने उनसे पहले पहुंचने के विचार से एक सीढ़ी छोड़ दूसरी पर छलाँग लगा दी और तेजी से आगे निकल गए।

उनके ऐसा करने से रामाजी सीढ़ियों से फिसल गई। इतने में हरिहरानन्द प्रभुजी के आगे फल लिए खड़े हो गए। परन्तु सर्वान्तर्यामी प्रभु जी यह सब जान गए और रामाजी को आश्वासन देते हुए हरिहरानन्द को फटकार दिया रामाजी ने प्रार्थना की–''प्रभो! भाई हरिहरानन्द जी पहले भी मेरी सेवा छीनने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए कृपा कर इनको कुछ समय के लिए समाधिस्थ कर दीजिए, ताकि दासी को श्रीचरणों की सेवा प्राप्त हो सके।'' इस प्रार्थना को सुनकर श्री प्रभुजी ने कुछ ऐसी कृपा कर दी जिससे हरिहरानन्दजी आठ दिन समाधि में पड़े रहे। इतने दिनों के पश्चात् जब उठे, तब सारी सेवा छिनी देख, हरिहरानन्दजी मन में दुःख मानने लगे। उनको बहिन रामाजी पर बहुत क्रोध आया और कुछ अनुचित शब्द भी कह डाले, जिनको सुनकर अपने भक्तों में किसी प्रकार का दोष न सहन करनेवाले श्री प्रभुजी ने हरिहरानन्द को दो महीने के लिए कहीं बाहर चले जाने का दण्ड दे दिया, जिससे हरिहरानन्दजी आज्ञाविवश हो प्रभुजी को प्रणाम कर नदिया से चल दिए। वे यत्र–तत्र भ्रमण करते हुए 'मारवाड़' देश मे पहुंचे। वहाँ शहर से बाहर एक पेड़ के नीचे बैठ गए। उस शहर में ९० प्रतिशत नास्तिकों का ही निवास था। यदि कोई साधु अथवा ब्राह्मण आ जाता, तो उसे टिकने नहीं देते थे तथा शहर में रहने वाले ब्राह्मणों व अन्य धर्मानुयायियों को भी बहुत तंग किया करते थे। उस

शहर का एक ब्राह्मण–दम्पति घूमते हुए इधर आ निकला और हरिहरानन्द को देख, महात्मा जानकर प्रणाम किया और सब प्रकार से सेवा करने लगा। ब्राह्मण–दम्पति को सेवा करते देख एक नास्तिक ने शहर में जाकर कह दिया जिससे सब नास्तिक ब्राह्मण–दम्पति को तंग करने लगे। परन्तु वह दृढ़ता से हरिहरानन्द जी की खूब सेवा करने लगा। इस पर सबने अब महात्मा को ही तंग करने का निश्चय किया।

उस शहर में नास्तिकों के तीन बड़े मुखिया थे जो कि बड़े धनवान थे। एक दिन इनमें से एक मुखिया आकर बिना कारण ही हरिहरानन्द को कटु वचन कहने लगा। परन्तु वे बिल्कुल मौन रहे। तत्पश्चात् हरिहरानन्द जी ने ब्राह्मण–दम्पति से कहा ''हमारा विचार है कि इसी व्यक्ति से यहाँ पर एक मन्दिर बनवाएँ, जिसे सुनकर वह व्यक्ति कुछ अनुचित शब्द कहता हुआ अपने घर चला गया। उस रात्रि को जब वह मुखिया अपने घर में सोया, तो उस समय हरिहरानन्द के सदृश आकारवाला व्यक्ति उस मुखिया को खाट से नीचे और कभी खाट को उसके ऊपर गिराने लगा। इस प्रकार रात्रि भर उस मुख्यि को तंग करता रहा। मुखिया का चिल्लाना सुन कर सभी घरवाले उठ–उठकर आये, परन्तु उनको वह तंग करनेवाला व्यक्ति बिल्कुल दिखाई ही नहीं देता था। इस प्रकार प्रातःकाल उठते ही वह मुखिया रात्रि की घटना को विचारकर समझ गया कि कल मैं उस साधु को बहुत से अनुचित शब्द कह आया था। वे कोई सामर्थ्यवान् महात्मा है। इसलिए सेवा द्वारा उनको प्रसन्न करके अपना अपराध क्षमा करवाने में ही मेरा कल्याण है। ऐसा सोचकर वह मुखिया उसी दिन नित्य–कर्म से निवृत्त हो श्री हरिहरानन्दजी के पास पहुंचा, बार–बार चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगा और हरिहरानन्दजी से प्रार्थी हो एक मन्दिर बनाने की आज्ञा प्राप्त कर ली।

दूसरे दोनों मुखिया भी आकर बारी–बारी हरिहरानन्द को बहुत से अनुचित शब्द कहते–कहते अन्त में थक कर घर चले गये। ये तीनों मुखिया पहले तो मारपीट करने के विचार से आते थे, परन्तु हरिहरानन्द से सुदृढ़ और तेजस्वी शरीर को देखकर किसी को आगे बढ़ने का साहस नहीं होता था और दूर ही खड़े होकर कटुवचन कहकर चले जाते थे।

इसी प्रकार ये दोनों मुखिया भी हरिहरानन्द को अपशब्द कहते हुए जब घर पहुंचे, तो रात्रि को सोते समय पहले मुखिया की भांति उनके साथ भी उपरोक्त सारी घटना घटित हुई। जिससे एक के बाद दूसरा मुखिया श्री हरिहरानन्द जी से क्षमा माँगी, एक ने कुआँ और दूसरे ने धर्मशाला बनवाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। इस प्रकार तीनों मुखियाओं ने मन्दिर, कुआँ और धर्मशाला बनवाने शुरू कर दिए और साथ ही श्री हरिहरानन्दजी की खूब सेवा करने लगे।

इस प्रकार तीनों मुखियाओं को श्री हरिहरानन्दजी की सेवा करते देख, शहर के अन्य लोग भी दर्शनों के लिये आने शुरू हो गये और मिल कर उस स्थान पर भण्डारे करने लगे। इससे पहले साधु व ब्राह्मणों को वहाँ जो तकलीफें हुआ करती थीं, न केवल वे सब दूर हो गईं बल्कि उनकी भली प्रकार सेवा होने लगी। उस ब्राह्मण–दम्पति को अब वही लोग सम्मानित दृष्टि से देखने लगे। हरिहरानन्द ने ब्राह्मण दम्पति को पात्र देख दीक्षित कर दिया और कुछ दिनों में ही उत्तम ध्यान अवस्था प्रदान कर दी, जिससे वह सेवा करते हुए चौबीस घंटे तुरीयावस्था में रहने लगे। थोड़े ही दिनों में उधर धर्मशाला मन्दिर कुआँ सब तैयार हो गए और एक क्षेत्र भी जारी हो गया। तब श्री हरिहरानन्दजी ने ब्राह्मण दम्पति को उस स्थान का अधिकार देकर योग प्रचार करने की आज्ञा दे दी।

इतने में दो मास पूरे होने को आये, तब ब्राह्मण दम्पति को पूर्णकृपामय आशीर्वाद दे वहाँ से चलकर हरिहरानन्दजी नदिया (बंगाल) में श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में पहुँच गये। हरिहरानन्द के चले जाने पर मंडली का प्रबन्ध मुखराम करते रहे, परन्तु मुखराम से सारा प्रबन्ध ठीक प्रकार से नहीं हो पाता था। अब दो मास की अवधि बीतने पर श्रीहरिहरानन्दजी ने आते ही मंडली आदि का सब प्रबन्ध पहले की भांति सम्भाल लिया और रामाजी के साथ बहन–भाईयों की तरह प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हुए प्रभुजी की सेवा करने लगे। कुछ काल के पश्चात् प्रभुजी की 'नदिया' से चलने की इच्छा हुई, तब प्रभुजी ने चलने का संकल्प रामा व आशुतोष चटर्जी इत्यादि सब भक्तों से कह दिया, जिससे सब भक्त प्रेम के कारण प्रभुजी को न जाने देने के लिये तरह तरह के उपाय करने लगे, पर प्रभुजी जाने का पूर्ण संकल्प कर चुके थे। इसलिए सब भक्तों को श्री प्रभुजी ने बहुत समझाया,परन्तु भक्तगण प्रेमवश अपना हठ नहीं छोड़ते थे। तब श्री प्रभुजी एक दिन रात्रि को बिना सूचना दिये अपनी मण्डली के साथ चल दिये।

प्रातः प्रभुजी को वहाँ न देख सब भक्त व्याकुल हो 'नदिया' के चारों ओर खोजने लगे, परन्तु प्रभुजी का कहीं पता न चला, तब और सब भक्त तो अति व्याकुल व दुखी होकर अपने अपने घर बैठ गए। परन्तु रामा जी से प्रभु चरणों का वियोग सहा नहीं गया। जिस रास्ते से प्रभु जी गए थे, उस रास्ते को ध्यान द्वारा जानकर रामा अपने पति के साथ पैदल चल पड़ी। जहाँ–जहाँ प्रभुजी रात को ठहरते थे, वहाँ–वहाँ आशुतोष चटर्जी व श्री रामाजी भी ठहरते हुए लोगों से सुनते गये कि महाराजजी मण्डली सहित कल रात्रि को यहीं ठहरे थे और आज प्रातः ही चले गये हैं। इस प्रकार प्रभुजी आगे–आगे और उनके पीछे–पीछे एक पड़ाव के अन्तर में पति के साथ रामाजी चलती गईं। इस प्रकार रामाजी को पैदल आते तथा बहुत कष्ट सहते देख, सर्वद्रष्टा श्री प्रभुजी एक पड़ाव में एक दिन के लिए अधिक रूक गए; जिससे रामाजी प्रभुजी के चरणों में पहुंच गई और दोनों पति–पत्नी ने श्री प्रभुजी के बिना कहे चले आने का बहुत दुःख प्रकट किया। तब श्री प्रभुजी ने फरमाया कि हमारी इच्छा के विरूद्ध तुम लोग हमें रोकना चाहते थे। इसलिए हम बिना कहे चले आए हैं। फिर रामा व आशुतोष चटर्जी ने श्री प्रभुजी से वापिस चलने की बहुत प्रार्थना की, परन्तु प्रभुजी नहीं माने, और दो दिन अपने पास रख कर कृपामय आशीर्वाद दे वापिस 'नदिया' भेज दिया। तत्पश्चात् श्री प्रभुजी अपनी मण्डली सहित बंगाल से आसाम की ओर चल दिये।

४.८ ध्यान-योग द्वारा नशों से छुटकारा

बंगाल से जब श्री प्रभुजी आसाम देश की ओर यात्रा कर रहे थे। उस समय एक वैरागी आकर श्री प्रभुजी के पास रहने लगा। उस वैरागी को तम्बाकू, सुल्फा, गाँजा इत्यादि नशीले पदार्थो को नित्यप्रति सेवन करने का अभ्यास था। वह वैरागी प्रतिदिन चतुरस जमीन को खोद कर चौका बना गोबर से लीप लकड़ियां धो सुखाकर रसोई बनाया करता था। यदि रसोई बनाते हुए एक पता भी हवा से उड़ कर चौके में आ जाये तो सब रसोई अपवित्र हो जाती थी। उस सब भोजन को छोड़कर प्रतिदिन दो–दो, चार–चार बार रसोई तैयार कर वह वैरागी बाबा बड़ी मुश्किल से भोजन पाया करते थे। परन्तु श्री प्रभुजी ने दया से प्रेरित होकर उस वैरागी को अपने पास रख लिया और

तम्बाकू, गाँजा इत्यादि नशों के लिए भी वे वैरागी जो कुछ खर्च करे, वह सब श्री प्रभुजी दे दिया करते थे। यद्यपि इस बात को देखकर श्री प्रभुजी के पास रहने वालों को और समाज को ठीक नहीं लगता था, तो भी श्री प्रभुजी करूणावश उस वैरागी को किसी बात से मना नहीं करते थे। कुछ दिन ऐसे बीतने पर वैरागी महात्मा ने श्री प्रभुजी से ध्यानोपदेश के लिए बहुत प्रार्थना की। तब श्री प्रभुजी ने कृपाकर वैरागी को दीक्षित कर दिया और दो चार दिन में ही उस वैरागी को अत्युत्तम ध्यानावस्था प्रदान कर दी, जिससे वह वैरागी चौबीस घंटे मस्ती की हालत में रहने लगा। एक दिन वह वैरागी महात्मा मस्ती में अपने चौके में बैठे भोजन कर रहे थे, उस समय एक साँड उनके पास आकर खड़ा हो गया। तब वह वैरागी एक ग्रससाँड के मुँह में और एक ग्रास अपने मुँह में देते हुए धीरे–धीरे भोजन करने लगा। तो किसी एक सेवक ने उस साँड को पत्थर मार दिया तो वह वैरागी चिल्ला उठा–''अरे मेरे भगवान को पत्थर मार दिया।'' तब श्री प्रभुजी ने पूछा–''वैरागी तुम्हें क्या हुआ है तो वैरागी ने उत्तर दिया कि महाराज आपकी कृपा से अब इस दास को सर्वत्र भगवान ही नजर आते हैं। सो मैं इस समय अपने भगवान के मुँह में ग्रस दे रहा था, पर आपके सेवक ने पत्थर मार दिया जो कि मेरे भगवान को लगा।'' इस बात को सुनकर श्रीप्रभुजी बहुत प्रसन्न हुए। फिर वह वैरागी समदर्शी हो जाने के कारण अपना अलग भोजन बनाना छोड़ कर श्री प्रभुजी के भंडारे में ही भोजन पाने लगा और श्री प्रभुजी की सेवा करने लगा। इस तुर्य्यावस्था के प्राप्त होते ही सर्व नशे अपने आप ही एकदम छूट गए। फिर श्री प्रभुजी ने उस वैरागी को आसाम में ही एक मन्दिर में बिठा दिया और कृपामय आशीर्वाद देकर वहाँ से आगे चल दिये।

४.९ गोहाटी की अवधूतानि द्वारा स्वागत्

कलकत्ता से अमीन गांव और वहां से स्टीमर द्वारा ब्रह्मपुत्र नदी पार करके श्री प्रभुजी गोहाटी शहर जाकर फाँसी बाज़ार में मण्डली सहित ठहरे। थोड़े ही दिनों में वहाँ बहुत से व्यक्ति श्री प्रभुजी के भक्त बन गये। एक दिन कुछ भक्तों ने गोहाटी शहर के निकट ही एक स्थान पर रहने वाली अवधूतानि की बहुत प्रशंसा की और निवेदन किया–''महाराज! उस अवधूतानि की सिद्धियां देखकर लोग सेवा करने लगे हैं और उसकी सेवा करने से लोगों की सब मनोकामनाएं पूर्ण होने लगी हैं। अब वह अवधूतानि इस प्रान्त में दुर्गा के समान पूजी जा रही है''। इतना ही कहकर भक्तों ने वहाँ चलने के लिए प्रार्थना की। इस बात को सुनकर कुछ भक्तों को साथ ले श्री करूणावतार प्रभुजी उसी ओर चल पड़े। जब उस अवधूतानि के स्थान से थोड़ी ही दूरी पर थे तो वह अवधूतानि स्वंय ही दौड़ती हुई श्री प्रभुजी के चरणों में आकर गिर पड़ी और कहने लगी–हे प्रभो! ''आप मेरे सद्गुरू देव हैं। तथा मुझ दासी की साधना–पूर्ति के लिए पधारे हैं''। यह कहकर श्री प्रभुजी को निज स्थान पर लेजाकर अर्ध्य से पूजन किया। फिर श्री प्रभुजी के पूछने पर उसने कहा, प्रभो! ''मेरे पहले गुरूदेव ने योग में अच्छी स्थिति प्रदान कर मुझे कहा था कि भविष्य में पंजाब से एक महापुरूष यात्रा करते हुए यहाँ आकर तुम्हारी शेष साधना पूर्ण करा देंगें। सो हे प्रभो! उनके बताये हुए सब चिन्ह आप में विद्यमान हैं''। उस अवधूतानि ने महाराजजी के नाम, धाम, पिता का नाम, व ललाट के वाम पार्श्व के सब चिन्ह आदि बतलाए जिनको सुनकर श्री प्रभुजी मुस्करा दिये, फिर

वह अवधूतानि प्रभुजी के चरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगी–''हे प्रभो! बहुत वर्षो से मैं श्री चरणों की प्रतीक्षा में बैठी हुई हूँ। सो अब कृपाकर दासी की शेष साधना पूर्ण कराइये''। तब श्री प्रभुजी ने कृपाकर उस अवधूतानि को योग की अति उत्तम अवस्था प्रदान कर दी। थोड़ी देर पश्चात् श्री प्रभुजी शहर में अपने स्थान पर पुनः लौट आये।

४.१० दूसरी अवधूतानि हरिहरानन्द द्वारा परास्त

गोहाटी शहर में एक दिन श्री प्रभुजी हरिहरानन्द को साथ लेकर बाजार में जा रहे थे, अकस्मात् एक और अवधूतानि से भेंट हुई। वह प्रभुजी के चरणों में आदर सहित प्रणाम कर कुछ समय तक वार्तालाप करती रही। तत्पश्चात् श्री प्रभुजी के दर्शनों के लिये भी आने–जाने लगी। कुछ भक्तों से हरिहरानन्दजी की प्रशंसा सुनकर अवधूतानि ने उनके योग बल की परीक्षा करने का निश्चय किया। एक दिन हरिहरानन्द अपने स्थान पर ध्यान में बैठे हुए थे। उस समय प्रभुजी किसी भक्त की प्रार्थना पर उनके घर गये हुए थे। उधर वह अवधूतानि अपने मकान में ध्यानस्थ हो सूक्ष्म शरीर से हरिहरानन्द की भुजा पकड़ कर अपने मकान की ओर खींचने लगी।

हरिहरानन्द जी हँस पड़े और उल्टे उसके सूक्ष्म शरीर को बलपूर्वक पकड़ कर प्रभुजी की तरफ चल पड़े अतः वह अवधूतानि अपना सारा बल लगाने पर भी हरिहरानन्द के हाथ से छूट न सकी। इधर प्रभुजी दिव्य–दृष्टि द्वारा यह सब घटना देखकर मुस्कराने लगे। तब किसी भक्त ने पूछा–''महाराज! क्या बात है जो आप इतनी अधिक प्रसन्नता से मुस्करा रहे हैं''? श्री प्रभुजी ने फरमाया कि यहाँ पर एक अवधूतानि रहती है। वह हमारे बच्चे के ऊपर अपना बल आज़माने लगी है। परन्तु हमारा बच्चा उसे पकड़ कर यहाँ ला रहा है। देखो, उस अवधूतानि को कहाँ पर अपना बल आज़माने की सूझी। इस कारण से हम मुस्कारा रहे हैं।

इतने में हरिहरानन्दजी उस अवधूतानि के सूक्ष्म शरीर को हाथ से पकड़े हुए पहुंच गये और प्रभुजी के चरणों में प्रणाम कर अपने साथ बीती सब घटना कह सुनाई। यह सुन श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी–''इसे वहाँ पड़े मोटे बाँस में डाल दो''।

उन्होंने उस अवधूतानि को बाँस में डाल दिया फिर श्री प्रभुजी ने उस अवधूतानि से पूछा–''शूरू से क्या–क्या हुआ, हमें सब बात सुनाओ।'' तब वह बाँस में से ही अपना सब हाल सुनाने लगी। यद्यपि वह सूक्ष्म शरीर से बोल रही थी, पर उसकी आवाज़ प्रभुजी के चरणों में बैठे हुए सब भक्तों को सुनाई देती थी। फिर उस अवधूतानि ने जिस प्रकार बल आजमाई के विचार से समाधि में बैठे हुए हरिहरानन्द को हाथ पकड़कर खीचां और इस के उपरान्त हरिहरानन्द उसे पकड़कर यहाँ ले आये, यह सब वृतान्त कह सुनाया। बाद में प्रभुजी ने पूछा–''कहो अवधूतानि, अब तेरी क्या इच्छा है''?अवधूतानि बोली प्रभो''। मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए, भविष्य में मैं कभी किसी से ऐसी बल आजमाई नहीं करूंगी तब श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी–''इसे छोड़ दो।'' श्री हरिहरानन्दजी ने उसे बांस में से बाहर निकाल छोड़ दिया। तब यह अपने मकान पर अपने स्थूल शरीर में प्रविष्ट हो गई। फिर स्थूल शरीर से श्री प्रभुजी के चरणों में आकर उस अवधूतानि ने क्षमा माँगी। श्री प्रभुजी ने उसे क्षमा कर भेज दिया और आप वहाँ से गोहाटी शहर के फाँसी बाजार में आ गये। तत्पश्चात् हरिहरानन्द के पास सब शिष्य मण्डली को छोड़, केवल कृष्णानन्द को साथ लेकर श्रीप्रभुजी वहाँ से एक पहाड़ी गांव में चले गए।

५ घोर वन-यात्रा आसाम

५.१ गणक से मिलाप

हरिहरानन्द जी के पास सब शिष्य मण्डली को छोड, कृष्णानन्द को साथ ले श्री प्रभुजी एक पहाड़ी गांव पर गणक नामक महात्मा की प्रशंसा सुन, उस के पास पहुँचे। महात्मा ने श्री प्रभुजी का आदर–सत्कार किया। श्री प्रभुजी ने जान लिया कि गणक महात्मा मंत्र–तंत्र आदि जानता है। श्री प्रभुजी ने महात्मा गणक से पूछा–''क्या तुम्हारे देश में कोई योगाभ्यासी महात्मा रहते हैं? गणक ने कहा–''यहाँ से 250 कोस पर आसाम देश गुजर जाने पर एक महात्मा रहते हैं। किन्तु आप वहाँ जा नहीं सकते क्योंकि रास्ते में बड़े भयंकर वन हैं और उन में जंगली भैंसे, शेर, चीता, हाथी आदि हिंसक जानवर अधिकतर पाये जाते हैं और यंत्र–तंत्र की भरमार है। मय ग्राम (जिस का राजारणसिंह है) से 1 मील आगे पराशर ऋषि के नाम पर एक गुफा है वहां पर एक योगाभ्यासी महापुरूष रहते हैं। उन की आयु 200 वर्ष से अधिक है उन की जटाएँ बहुत लम्बी और विशाल हैं सो उन से भेंट के लिए जान को हथेली पर रख कर इन सब कठिनाइयों से गुज़रना होता है, जहाँ पग–पग पर जीवन और मौत का सवाल होता है। यह सुनकर श्री प्रभुजी मुस्कराये और फरमाया–''भैया हम ने तो घर से निकलने से पूर्व ही यह प्राण और शरीर श्री महाप्रभु जी को समर्पित कर दिये हैं। अब यह उन के ही हैं जो सर्व–देव और जीवों के स्वामी हैं। इस लिए अब यह पीछे को न लौट कर आगे को ही बढ़ेगें। फिर श्री प्रभुजी गोहाटी शहर आ गये।

५.२ परशुराम कुण्ड की यात्रा और नागाओं द्वारा अपहरण

श्री प्रभुजी मुखराम और कृष्णानन्द को साथ लेकर गोहाटी से 'परशुराम कुण्ड' की ओर चल दिये। वहां की यात्रा पूर्ण होने पर श्री प्रभुजी कुछ और यात्रियों के साथ जब वापस आ रहे थे, तो मार्ग में एक दिन प्रातःकाल अन्य यात्रियों के चलने से पूर्व ही अपने दोनों बच्चों को साथ लेकर चल पड़े। अभी कुछ दूरी पर ही पहुंचे थे कि मनुष्य–भक्षी भीलों की जाति का एक नवयुवक धनुष–बाण हाथ में लिए रास्ते में मिल गया और वह नागा श्री प्रभुजी को कंधे पर तथा मुखराम व कृष्णानन्द को दाएँ–बाएँ बगल में लेकर दौड़ता हुआ कई मील जंगल में निकल गया और अपने स्थान पर पहुंचकर उसने सीटी बजाई। जिसे सुनकर बहुत से भील पेड़ों से कूद पड़े और प्रभुजी, मुखराम व कृष्णानन्द को बीच में बिठाकर, चारों ओर सब नागे ढोल इत्यादि बजाकर उत्सव मनाने लगे।

जो नागा प्रभुजी को उठा लाया था, उसकी मां प्रभुजी के पास आकर बैठ गई। उसका एक स्तन किसी कष्ट के कारण सूजकर नीचे की ओर लटक रहा था जिससे वह बहुत तकलीफ पा रही थी। प्रभुजी ने अपने पास से एक जड़ी निकालकर उस देवी को देते हुए, सूजे स्तन पर मल देने का इशारा किया। जड़ी के लगाते ही जलन के मारे वह बहुत कष्ट पाने लगी, जिससे सब नागे दांत पीसकर ऐसे देखने लगे, मानों अभी चबा जायेंगे। पर एक–दो मिनट में ही उस देवी का स्तन संकुचित हो गया, और जलन कम होने पर नींद आने लगी।

सोने से पहले उसने सभी भीलों को अपनी भाषा में समझाया कि जड़ी के मलने से मुझे बहुत आराम मालूम होता है। इसलिए अभी इनको कुछ नहीं कहना। ऐसा कहकर वह सो गई और कुछ देर के बाद उठने पर उस देवी ने देखा कि स्तन को पूरा आराम है। तब उस देवी ने प्रभुजी के प्रति कृतज्ञता भाव से प्रेरित होकर सबसे कह दिया कि इन्होंने मुझे मृत्यु से बचायाहै, इसलिए इनको कदापि नहीं मारना।

इस बात को न मानते हुए सब नागा भीलों ने कहा, ''अब तो हमारा मतलब सिद्ध हो गया है, इसलिए इनको अवश्य मारकर .खा लेना चाहिए।'' ऐसा सुन उन सब में दो दल हो गए। एक दल उस देवी की ओर हो गया, जिसने यह कहा कि हम लड़कर प्राण भले ही दे दें पर इन तीनों को मारने नहीं देंगे। दूसरा दल कुछ और ही कहने लगा। इस प्रकार उन दो दलों में बाद विवाद होने लगा। कुछ देर पश्चात् वह सब मिलकर श्री प्रभुजी तथा मुखराम व कृष्णानन्द को हाथ के इशारे से एक देवी के मंदिर में बाजे बजाते हुए ले गए। वहाँ उन नागा भीलों ने उस देवी की परिक्रमा, वंदना आदि बाजे बजाते हुए की।

बाद में विरोधी दल वाले इन्हें देवी पर बलि चढ़ाने के लिए उद्यत हुए। तब अनुकूल दल वालों के रोकने पर दोनों दलों में परस्पर घनुष–बाणों से घमासान युद्ध होने लगा। युद्ध में सहायक दल के जो आदमी तीरों से घायल होकर गिर जाते थे, उनको उठाकर वह लोग श्री प्रभुजी के आगे रख देते थे तो श्री प्रभुजी बूटियों का रस लगाकर उसी समय तीरों के घाव ठीक कर देते थे। जिससे घायल हुए भील उसी क्षण उठकर दुबारा लड़ने लग जाते थे।

इस प्रकार विरोधी दल वालों के अधिकतर व्यक्ति घायल होते गए। परिणाम यह हुआ कि उस नागा देवी के दल वालों की जीत हुई। विजयी होने पर वह नवयुवक श्री प्रभुजी को दोनों बच्चों सहित बाजे बजवाते हुए अपनी माँ के पास ले आया और सारा हाल कह सुनाया। प्रभुजी ने मुखराम व कृष्णानन्द सहित कन्द–मूल–फल खाकर दो दिन वहीं व्यतीत किये। तीसरे रोज उस देवी को श्री प्रभुजी ने इशारे से समझाया कि अब हम यहाँ से जाएँगे। तब उस नागा देवी ने रात्रि में अपने लड़के को साथ भेजकर श्री प्रभुजी व दोनों बच्चों को भीलों के उस घने जंगल से आगे गोहाटी के रास्ते में दूर तक पहुँचवा दिया। श्री प्रभुजी, मुखराम व कृष्णानन्द को साथ लेकर गोहाटी पहुंच गए।

५.३ धोर वन यात्रा मय ग्राम (आसाम)

श्री प्रभुजी ने हरिहरानन्दजी को मण्डली तथा अन्य भक्तों के साथ गोहाटी में ही रहकर साधना करने तथा करवाने की आज्ञा दे कर कहा कि हम लौट कर यहीं मिलेगें। फिर मुखराम और कृष्णानन्द को साथ लेकर श्री प्रभुजी मय ग्राम की यात्रा के लिये चल दिये। 'सदिया' तक तो सवारी में गये और आगे वन की ओर पैदल चल दिए। आप दिन भर चलते रहते। सायं होते ही वन में विश्राम कर लेते।

एक दिन एक गाँव से जल लाने के लिये श्री प्रभुजी ने मुखराम को भेजा। जब वह जल लेने के लिये वहाँ गया, तो उसने देखा कि वे सब लोग एक छप्पर में लघुशंका करते हैं, उसी से स्नान करते व भोजन बनाने के लिए जल ले जाते हैं। उनका ऐसा अनाचार देखकर मुखराम लौट आया। तब श्री प्रभुजी ने मुखराम व कृष्णानन्द सहित रेल का पानी पीकर निर्वाह किया।

इसी प्रकार तीन दिन बीत जाने पर मार्ग में श्री प्रभुजी ने देखा कि तराई वाली जमीन अब आने लगी है। श्री प्रभु जी ने पानी के विचार से जमीन खुदवाईं। अधिक खोदने पर गदला पानी निकल आया। उसमें प्रभुजी ने एक जड़ी डलवा दी, जिससे जल तत्क्षण साफ पीने योग्य हो गया। उस जल से स्नान–नित्य कर्म से निपट, कन्दमूल फल आदि सेवन कर आगे चल दिये । कई प्रकार के वन लांधते हुए एक भयंकर वन में मुंह फाड़े लम्बे–लम्बे सींगों वाले दो–तीन जंगली भैंसे आक्रमण करने लगे। बड़े साहस से उनसे बचकर रात्रि को एक गाँव में जा ठहरे और ग्रामीणों से मय ग्राम का रास्ता पूछा। वे कहने लगे–''आप वहाँ जाने का विचार छोड़ दें।'' तब प्रभुजी ने पूछा–''क्यों ?'' उन्होंने उत्तर दिया–''एक तो भयंकर जीवों का भय है और दूसरे, एक नदी आती है। नदी से पार उतारने वालों का सिर नहीं होता। उन्हें देखते ही वहाँ मूर्छित हो जाओगे और तीसरे, वहाँ मन्त्र–यन्त्र की भरमार है। जो व्यक्ति वहाँ गया है, वह लौट कर नहीं आया।''

श्री प्रभुजी ने उनसे आगे के गाँव का रास्ता पूछा और यह भी पूछा कि वह गाँव कितनी दूरी पर है। उत्तर में उन्होंने गाँव को तीन–चार कोस दूर बताया। प्रभुजी भोजन करके वहाँ से चल दिये। सारा दिन चलते रहने के बावजूद भी वह मार्ग तय न हुआ। सूर्यास्त होने में केवल एक घंटा शेष रह गया। प्रभुजी ने मुखराम और कृष्णानन्द को उसी वन में आसन लगाने की आज्ञा दी। आसन लगाकर उन्होंने इधर–उधर से लकड़ियाँ इकट्ठी कर, आग जलाई। रात्रि को वे अग्नि के चारों ओर सो गए। अर्द्ध–रात्रि के बीतने पर उनके ऊपर पानी के छींटे पड़ने लगे। श्री प्रभुजी ने दृष्टि उठाकर देखा कि एक हाथी खड़ा है और अपने मुख सें पानी निकालकर अग्नि पर डाल रहा है। तब श्री प्रभुजी ने मुखराम व कृष्णानन्द को जगा दिया। मुखराम ने जलती हुई लकड़ी उठकर उसकी सूंड पर प्रहार कर दिया। हाथी एकदम पीछे हटकर चिल्लाने लगा। उसकी चिल्लाहट से हाथियों के झुण्ड के झूण्ड चीखें मारते हुए उस स्थान पर आने लगे।

सभी हाथी निकटवर्ती झरने से पानी लाकर अग्नि, मुखराम व कृष्णानन्द पर डालने लगे। यह देखकर वे दोनों बच्चे घबराये। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि ये हम लोगों को कष्ट पहुँचाये बिना नहीं छोड़ेंगे इसलिए वहाँ पर एकत्रित सब लकड़ियों को आग लगा दी और मुखराम ने जलती हुई एक लकड़ी बाँसों के वन में फेंक दी। हवा तो पहले ही तेज चल रही थी, अतः दावाग्नि फैलने लगी, जिससे सब हाथी घबरा कर जंगल में भागे। चारों ओर अग्नि को फैलते हुए देख, श्री प्रभुजी भी बच्चों सहित वहाँ से चलकर बहुत दूर मैदान में आ गये। उस स्थान पर ऊपर से तो चमकता हुआ रेता दिखाई दिया, किन्तु पाँव पड़ते ही श्री महाराज जी ने देखा कि हम तीनों का शरीर नीचे ही नीचे धँसता जा रहा है। विचार आया कि हम दलदल में आ फंसे हैं ।

श्री प्रभुजी ने कृष्णाननद और मुखराम को पेट के बल उल्टा लेट कर तैरने की तरह हाथ–पाँव जोर से हरकत में लाने की आज्ञा दी। प्रभुजी जब बच्चों के साथ दलदल से बाहर निकले तो आगे को चलते ही गए। इतनी दूर आ गये कि दावाग्नि और हाथी दिखाई नहीं पड़ते थे। तब थकावट के कारण जंगल में थोड़ा विश्राम किया।

प्रातःकाल होने पर एक आदमी सिर पर बोझा उठाये आता हुआ मिला। श्री प्रभुजी ने उससे पूछा, ''क्या कोई गाँव यहाँ से समीप है'' ? उसने उत्तर दिया, ''हाँ, पास ही एक गाँव है।'' तब श्री प्रभुजी ने उसको चार आने के पैसे दिये और कहा कि हमें उस गाँव में पहुँचा दो। उसने अपनी गठरी वहीं रख कर श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि भागते चले आओ। उसने कुछ मील भागने के पश्चात् दूर से इशारा करके बताया कि वह ग्राम है।

इतना कह वह वापस चला गया और प्रभुजी उस ग्राम में पहुँच कर एक पेड़ के नीचे अभी बैठे ही थे कि चारों ओर ग्राम निवासी आकर दण्डवत् प्रणाम कर बैठते गये और श्री प्रभुजी से इधर वन में भ्रमण करने का कारण पूछा।

श्री प्रभुजी ने संक्षेप में सब वृतान्त कह सुनाया। तब उन लोगों ने मुखराम और कृष्णानन्द को जाड़े में ठिठुरते देख अग्नि प्रज्वलित की और गीले वस्त्रों के स्थान पर अन्य वस्त्र पहनने को दिये और भोजन सामाग्री लाकर दी। मुखराम व कृष्णानन्द ने भोजन तैयार कर श्री प्रभुजी को भोग लगवा स्वयं भी भोजन किया और कुछ समय वहाँ विश्राम करने के पश्चात् मयग्राम का मार्ग पूछा। तब उन लोगों ने कहा-''अभी पन्द्रह दिनों का रास्ता शेष है। आप उस ओर मत जाइये, क्योंकि मार्ग में भयंकर हिंसक जानवरों से वास्ता पड़ेगा। नदी के तट पर जो विरला ग्राम मिलेगा, उसके निवासी 'जंगली मनुष्य' राक्षसों के समान व्यवहार करते है। वे मनुष्यों को कष्ट देने और मारने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करते। उन लोगों के देवता भी वैसे ही हैं। जो व्यक्ति भूलकर भी मंदिर के आगे से गुज़र जाए और उनके देवता को प्रणाम न करे तो उसी समय वह किसी न किसी कष्ट से पीड़ित होकर चिल्लाने लगता है। प्रणाम कर लेने के उपरान्त ही देवता उसे छोड़ते हैं।''

श्री प्रभुजी ने फरमाया-''अच्छा भैया, वह भी देख लेंगे।'' रातभर वे लोग श्री महाराजजी के पास कथा, सत्संग व कीर्तन आदि करते रहे। सूर्योदय होते ही प्रभुजी, मुखराम व कृष्णानन्द को साथ लेकर चल दिये। मार्ग में बहुत से वन लांघने पर ब्रह्मपुत्र नदी आई। यह नदी पहाड़ के बीच में होने के कारण चौड़ी कम और गहरी अधिक है। उस नदी को 'कठुआ' नाव द्वारा पार कर प्रभुजी ने कई दिन वन में ही व्यतीत किये। फिर एक दिन वे 'मनुष्य भक्षिणी' नामक नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ पर देखा कि एक मनुष्य नाव सहित नदी तट पर बैठा है। (बिना सिर के नाव चलाने की बात तो मिथ्या निकली) उस मनुष्य को नदी से पार उतारने के लिए पूछा। उसने चार-चार पैसे मांगे। पैसे देकर श्री प्रभुजी मुखराम और कृष्णानन्द सहित नाव में बैठ गए। नाव लेकर जब वह नदी के मध्य में पहुँचा तो कहने लगा-''चार-चार रूपये और दो, नहीं तो नाव डुबोता हूँ।'' प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी वह नहीं माना, बल्कि अपशब्द कहने लगा। तब मुखराम ने उस पर मुष्टिका-प्रहार कर दिया। वह नाव में से उठकर कूद पड़ा। श्री प्रभुजी दोनों बच्चों सहित नदी के उस पार जा पहुंचे।

स्नान करके अभी बैठे थे कि वही मल्लाह उनके सम्मुख आ खड़ा हुआ और कहने लगा-''अब तुम अपनी जान बचाना, मैं बदला लेने लगा हूँ।'' तत्पश्चात् वह पृथ्वी पर कुछ मन्त्र लिखने लगा। उधर मुखराम काँपने लगा तो कृष्णानन्द ने उसे संभाल लिया, क्योंकि श्री प्रभुजी ने विंध्याचल में उनकी रक्षा के लिए पहले से ही मंत्र साधना करवाई हुई थी। इधर मुखराम ने अपनी रक्षा कर उस मल्लाह को जा पकड़ा और उसे अच्छी तरह पीटकर वापस आ गया। वहाँ से चल कर प्रभुजी बच्चों सहित एक गाँव में पहुँचे। प्रभुजी ने कृष्णानन्द को दो रूपये देकर भोजन सामग्री लाने को भेजा। कृष्णानन्द जिस दुकान पर जाता, वह मल्लाह पहले ही पहुंचकर दुकानदार को सामग्री देने से रोक देता। कृष्णानन्द के वापस आने पर मुखराम जाने के लिए तैयार हुआ। प्रभुजी ने उसके धूर्त स्वभाव के कारण भेजना उचित नहीं समझा और फलाहार कर वहीं रात्रि बिताकर प्रातःकाल आगे चल दिये। वह मल्लाह छिप-छिपकर पीछे आता रहा। श्री प्रभुजी बच्चों सहित जिस गाँव में पहुंचते, मल्लाह भी वहाँ पहुंचकर दुकानदारों को भोजन आदि सामग्री देने से मना कर देता।

आगे मार्ग पर खेत में खरबूजे लगे हुए थे। मुखराम ने पीछे रहकर खरबूजा तोड़कर खा लिया। खाते ही उसे पेट दर्द आरम्भ हो गया और बकरे की तरह बोलने लगा। दर्द के मारे वह वहीं लेट गया। वह खेत पास के गाँव की जादू–टोना करनेवाली एक बुढ़िया का था। उसने खेत को चारों ओर से लकीर खींचकर मंत्रित कर रखा था इसी कारण मुखराम की यह दुर्दशा हुई। इतने में वह बुढ़िया आ गई और मुखराम पर कुछ ऐसे मंत्र पड़े, जिनके प्रभाव से वह उसके पीछे–पीछे जाने लगा। बुढ़िया उसे अपने घर की ओर ले गई। इधर श्री प्रभुजी को एक आदमी ने आकर मुखराम का सब हाल सुनाया। तब श्री प्रभुजी लौटकर उस गाँव में बुढ़िया के यहाँ आये और मुखराम को बकरे जैसी आवाज में चिल्लाते देख उस बुढ़िया से कहा–''देवी, यदि इस बच्चे ने तुम्हारा एक खरबूजा खाया है, तो इसका जो दाम है उसका दुगना–चौगुना लेकर इसे छोड़ दो।'' पर वह बुढ़िया नहीं मानी। श्री प्रभुजी ने उसे दस रूपये तक देने को कहा। बुढ़िया उल्टा यह कहने लगी कि मैं तो इसकी दोनों आँखें ही निकाल कर छोड़ूंगी। श्री प्रभुजी ने उसे बहुत समझाया पर वह बिल्कुल न मानी। तब श्री प्रभुजी ने मुखराम की पीठ ठोककर कहा ''बेटा, चलो।'' उसी समय मुखराम ठीक होकर श्री प्रभुजी के साथ जाने लगा तो वह बुढ़िया चिल्लाती हुई, लूट लिया, लूट लिया कहती हुई प्रभु जी के पीछे–पीछे चल पड़ी। तब श्री प्रभुजी ने पूछा, ''क्यों देवी, क्या बात है, तुम्हारा क्या लूट लिया है?'' वह बोली–''महाराज, आज तक मैंने जितनी मन्त्र–शक्ति प्राप्त की थी, वह सब आपने क्षण–भर में छीन ली है। अब मेरे अपराध को क्षमा करें, मेरी मन्त्र–शक्ति मुझे वापस कीजिएगा।'' ऐसा कहकर रोने लगी। उसके बहुत रोने पर भविष्य में किसी को दुःख न देने, कभी किसी साधु या ब्राह्मण को न सताने व खेती के चारों तरफ मन्त्र की लकीरें न देने इत्यादि की प्रतिज्ञाएँ कराकर उस बुढ़िया को मन्त्र–शक्ति वापस देकर क्षमा कर दिया। तत्पश्चात् मुखराम व कृष्णानन्द को साथ लेकर श्री प्रभुजी रास्ते में फल आदि से निर्वाह करते हुए ग्राम जा पहुँचे।

५.४ राजा रणसिंह पर कृपा

राजा रणसिंह के स्थान पर जब श्री प्रभुजी गये तो उसने अच्छा आदर–सत्कार किया। वहाँ पर वही मल्लाह बैठा देखा। मुखराम ने रणसिंह से पूछा–''यह कौन है, और क्या काम करता है?'' रणसिंह टालमटोल करके चुप हो गया। रात्रि को जब प्रभुजी विश्राम करने लगे तो मुखराम गाने का शौकीन होने के कारण ढोलक बजती सुनकर वहाँ चला गया। उसने अपनी मन्त्र रक्षा नहीं की हुई थी। वह वहाँ जाकर गाने लगा। उस समय मुखराम का गला उन्होंने मन्त्र बल से बन्द कर दिया और बेहोश कर बाहर फेंक दिया। इधर कृष्णानन्द ने देखा कि मुखराम ने इतनी देर लगा दी। तब वह उसे ढूंढ़ने चला। वहाँ पहुंच कर देखा कि वह बाहर बेहोश पड़ा है। उसे मन्त्रों द्वारा ठीक करके साथ ले आया। तब मुखराम ने अपनी मन्त्र रक्षा कर उन 4–5 आदमियों को जा पीटा। तब राजा रणसिंह ने आकर श्री प्रभुजी को कहा कि वह देखों तुम्हारा शिष्य कितने आदमियों को पीट चुका है और अभी तक शान्त नहीं हुआ है। तब श्री प्रभुजी ने कृष्णानन्द को भेज मुखराम को अपने पास बुलाकर डाँट दिया।

राजा रणसिंह सब मन्त्र–यन्त्र करने वालों में सिरताज था। उसने सारी रात श्री प्रभुजी पर मन्त्र–यन्त्र करके खो दी, परन्तु परिणाम कुछ न निकला। प्रातःकाल होते ही रणसिंह श्री प्रभुजी के चरणों में आकर क्षमा मांगने लगा। श्री प्रभुजी ने पूछा–''क्यों,

क्या बात है ? तुम कैसी क्षमा माँगते हो ?'' तब राजा रणसिंह ने कहा–''हमने जिस पर आक्रमण किया उसे जीत लिया परन्तु आपके ऊपर सारी रात मन्त्र–यन्त्र किये पर सब निष्फल हुए। इसलिए मुझे मालूम होता है कि आप मनुष्य रूप में देवों के देव हैं। प्रभो, आप स्वयं ही कृपाकर मुझे भवसागर से तारने के लिए पधारे हैं।'' तब श्री प्रभुजी ने फरमाया–''हम तो ब्राह्मण मात्र हैं''। परन्तु रणसिंह ने चरण नहीं छोड़े। तब श्री प्रभुजी ने प्रसन्न होकर उसे दीक्षित कर दिया। फिर वह परिवार सहित सेवा करने लगा।

श्री प्रभुजी उसके प्रेम भक्तिवश कुछ दिन वहाँ ठहरे और फिर एक दिन श्री प्रभुजी ने रणसिंह से पूछा कि क्या आपके देश में कोई सिद्ध महात्मा भी रहते हैं ? तो राजा रणसिंह ने हाथ जोड़ प्रार्थना कर कहा–''प्रभो, हमारे समीप ही एक सिद्ध महापुरूष दो सौ वर्ष से अधिक आयु वाले रहते हैं''।

५.५ सिद्ध योगी से मिलाप व वार्तालाप

दूसरे दिन राजा रणसिंह, पालकी द्वारा श्री प्रभुजी को आगे की यात्रा कराते हुए उन महात्माजी के पास ले चले। वहाँ पहुँचने से पहले ही मील भर इधर वही सिद्ध महात्मा श्री प्रभुजी की पालकी के एक ओर अपना कन्धा देकर चलने लगे। राजा रणसिंह ने यह देख तुरन्त ही श्री प्रभुजी से नम्र निवेदन किया कि महाराज, जिन महात्माजी की ओर आप जा रहे हैं, वे स्वयं आ गए हैं और आपकी पलकी को कन्धे पर उठाये चल रहे हैं। यह बात सुनकर श्री प्रभुजी पालकी से छलांग लगाकर उनकी ओर झुके, किन्तु वह महात्मा पहले ही श्री प्रभुजी के चरणों में गिर पड़े। तब श्री प्रभुजी ने उन महात्माजी से कहा–महाराज! ''हम तो 400 मील के लगभग भयानक वन तथा पहाड़ों की कठिनाइयों को सहते हुए दर्शनों के लिए आपके पास आये हैं। आप ऐसा क्यों करते हैं ? तब महात्माजी ने कहा–''योगिराज प्रभो! पूर्व संस्कारवश हमें आपने यहाँ पधार कर दर्शन देने की अपार कृपा की है। इससे मैं आपका मन, वचन से कृतज्ञ हूँ।''

तब श्री महाराजजी ने कहा कि ''आप हमें योगिराज क्यों कहते हैं ? हम तो आप जैसे योगियों के दर्शन करने आये हैं।'' तब उन्होंने कहा कि ''मैंने तो केवल अभी 2–3 अंगों का साधन सिद्ध किया है। आप तो अष्टाँग योग के स्वामी हैं।''

तब श्री प्रभुजी ने कहा कि ''मुझे तो अभी श्री सद्गुरूदेवजी के दर्शन भी स्थूल स्वरूप में नहीं हुए और उनके दर्शनों के लिए ही घर से निकला हूँ।'' तो महात्माजी ने कहा–''आप तो अन्तर्यामी हैं। अपने को छिपाते हुए इस प्रकार लीला विग्रह धारण किये हो । अब आपको नेपाल जाने पर गुञ्जेश्वरी देवी मन्दिर से 8–10 मील आगे महाप्रभु श्री सद्गुदेव स्वयं दर्शन देने पधारेंगे और वे आपको वहां से लगभग 250 मील ऊपर अपने साथ ले जाकर थोड़े ही समय में मर्यादा रूप से अष्टांग योग के स्वामी बना, अपने ब्रह्मस्वरूप में अभेद कर लेंगे।''

इस वार्तालाप के पश्चात् वह महात्मा श्री प्रभुजी को अपने स्थान पर अति प्रेम से ले गये, कन्द–मूल, फल आदि भेंट कर सत्कार किया और दो तीन दिन श्री प्रभुजी को वहीं ठहराया। राजा रणसिंह भी प्रभुजी की सेवा में वहीं साथ रहा। इसके पश्चात् श्री महाराज जी ने गोहाटी वापस जाने की इच्छा प्रकट की और जाने के लिए सुगम मार्ग पूछा। महात्माजी ने कहा कि यदि आप बन्दरों के राज्य में से होकर जायें, तो लगभग एक मास के भीतर गोहाटी पहुँच जायेगें।

राज रणसिंह ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि महाराज! जैसा श्री महात्माजी से मालूम हुआ है कि आपके सद्गुरूदेव महाप्रभु नेपाल से दो–ढाई सौ मील ऊपर रहते हैं; तो क्या आप गोहाटी से होकर नेपाल में जायेंगे ? उतर में श्री महाराजजी ने फरमाया कि हाँ, हम गोहाटी से ही होते हुए नेपाल जायेंगे।

यह सुनकर राजा रणसिंह ने प्रार्थना की–''महाराज ! नेपाल का राजा मेरा भाई लगता है। उनका और मेरा वंश एक ही है। मेरे पूर्वज पूर्व काल में सारे आसाम देश के राजा थे, पर विदेशियों से युद्ध में हार जाने के कारण पूर्वजों का राज्य छिन गया और नेपाल के राजा ने हम लोगों को अपने राज्य में रहने के लिए कई बार सन्देश भेजा, पर हम लोग क्षत्रियोचित आत्मभिमान के कारण नहीं गए।

परन्तु फिर भी नेपाल का राजा भाई के नाते हमारा बहुत सम्मान करता है। इसलिए मैं राजा को नेपाल में सब तरह से आपके ठहरने आदि के यथोचित प्रबन्ध के लिए एक पत्र डाक द्वारा भेज दूंगा और एक पत्र आपकी सेवा में समर्पित कर देता हूँ, ताकि जाते हुए मार्ग में भी राजकर्मचारियों को दिखलाया जा सके। सो प्रभो! ''कृपाकर दास की इस तुच्छ सेवा को स्वीकार कर कृतार्थ कीजिए।'' ऐसा कह कर पत्र श्री प्रभुजी के चरणों में समर्पित कर दिया। श्री प्रभुजी ने उस पत्र को सम्भाल कर रखने के लिए मुखराम को दे दिया। मुखराम ने उस पत्र को अपने पास किसी पुस्तक में रख लिया। फिर श्री प्रभुजी वहाँ से चलकर कुछ ही दिनों में गोहाटी शहर में पहुंच गए और आते ही हरिहरानन्द जी को आज्ञा दी कि नेपाल चलने की तैयारी करो।

५.६ योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महारज की नेपाल यात्रा

श्री प्रभुजी की आज्ञा से उसी समय सब तैयारी हो गई और श्री प्रभुजी मण्डली के साथ गोहाटी से नेपाल की ओर चल दिये। महाशिवरात्रि की यात्रा का समय होने के कारण और यात्रियों की तरह मंडली समेत नेपाल जाने का पास–पोर्ट तो मिल चुका था, पर जब नेपाल की तलहटी में पहुँचे तो सुना कि नेपाल के राजगुरु आ रहे हैं। अतः राजगुरु के आने तक यात्रियों के लिए रास्ता बन्द है, जिससे श्री प्रभुजी को नीचे ही रूकना पड़ा। दण्डी स्वामी ने घूमते हुए ऐसे ही सड़क पर खड़े राजकर्मचारियों से पूछा कि ये सड़कें जिन के स्वागत के लिए तुम सजा रहे हो, वे राजगुरु कौन हैं और कहाँ से आयेंगे ? तब एक बड़े अफसर ने कहा कि महाराज हमारे राजा साहब के भाई राजा रणसिंह आसाम में रहते है। उनके गुरु यहाँ आने वाले हैं। उन्हीं के स्वागत के लिए ये तैयारी हो रही है।

इस बात को सुनकर हँसते हुए दण्डी स्वामी श्री प्रभुजी के पास आकर कहने लगे कि महाराज आपके लिए सड़कें बन्द होकर यह सब तैयारी हो रही है। यह कह कर राजा के अफसर की कही हुई सारी बात दण्डी स्वामी ने श्री प्रभु जी से नम्रतापूर्वक कह सुनाई। तब श्री प्रभुजी ने मुखराम से राजा रणसिंह की दी हुई दस्ती चिट्ठी माँगी। मुखराम ने तो वह ऐसे ही लापरवाही से कहीं रख दी थी। सो बहुत ढूँढ़ने पर एक पुस्तक में रखी हुई मिल गई। फिर श्री प्रभुजी ने उस पत्र को अपने आदमियों द्वारा कर्मचारियों के पास भेज दिया, जिसे देखकर छोटे–बड़े बहुत से राजकर्मचारी आ गए और मण्डली समेत श्री प्रभु जी को राजा की भेजी पालकी में विराजमान करा बड़े राजसम्मान के साथ ले जाने लगे।

फिर पीछे से और सब यात्रियों के लिए रास्ता खोल दिया गया। दो–चार दिन बीतने

पर एक विशेष घटना इस प्रकार हुई कि मार्ग में श्री प्रभुजी एक स्थान पर रूक गए। कुछ समय से एक बूढ़ा वैरागी श्री प्रभुजी के साथ था, जो कि प्रभुजी की सेवा में दिन–रात लगा रहता था। बहुधा श्री प्रभुजी उस बूढ़े वैरागी को ध्यान भजन करते रहने के लिए फरमाया करते थे, परन्तु वह बूढ़ा वैरागी यह कहा करता था कि महाराज! जिनका ध्यान करने से मोक्ष मिलता है, वह प्रभुजी तो आप स्वयं मूर्तिमान हो विराजमान हैं। इसलिए अब श्रीचरणों की सेवा करने के सिवाय और ध्यान, भजन क्या करना है। इस प्रकार वह बूढ़ा वैरागी दिन–रात केवल सेवा में ही लगा रहता था, जिससे श्री प्रभुजी की यह इच्छा बनी रहती थी कि किसी निमित्त से इस वैरागी पर भी कृपा करें।

५.७ अघोरी ज्ञानगिर द्वारा वैरागी को वाक् सिद्धि-

एक दिन प्रातः वह बूढ़ा वैरागी शौच के लिए जा रहा था कि रास्ते में दण्डी स्वामी शौच होकर आते हुए मिले। दण्डी स्वामी ने वैरागी को शौच जाते देख सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम शौच इस तरफ जाना, उस ओर मत जाना, क्योंकि उधर ज्ञानगिर नामक अघोरी रहता है। यदि कोई अनजान आदमी उस ओर भूल कर भी चला जाये तो वह उसे मार कर भक्षण कर जाता है। तब उस बूढ़े वैरागी ने कहा कि हमारे प्रभु पूर्ण सिद्ध महापुरूष हैं। उनके शरणागत भक्तों को कुछ कहने की किसी अघोरी की क्या मजाल है ? ऐसा कहकर वह बूढ़ा वैरागी जिस तरफ दण्डी स्वामी ने मना किया था, उधर को ही चल दिया। नित्य–प्रति तो बूढ़ा वैरागी शौच के लिए थोड़ी ही दूर जाता था पर उस दिन दो–तीन मील आगे निकल गया। वहाँ जंगल में ज्ञानगिर अघोरी एक मुर्दे को खाता हुआ मिला। ज्ञानगिर ने उस बूढ़े वैरागी को देखते ही यह कहा कि आज तो विधाता ने बैठे बिठाये अपने आप ही मुझे भोजन भेज दिया है। इस बात को सुनते ही वह बूढ़ा वैरागी बोला कि हाँ, हाँ! आधा तुम्हारा और आधा हमारा! हम दोनो बाँट कर खायेंगे।

इतना सुनते ही ज्ञानगिर सोचने लगा कि यह कौन है जो मुझे ऐसा उत्तर दे रहा है। आज तक जो कोई मेरे सामने आया है, कभी किसी में मैंने जवाब देने की शक्ति नहीं देखी। ऐसा सोचकर ज्ञानगिर उस बूढ़े वैरागी की ओर देखने लगा। तब ज्ञानगिर ने, उस बूढ़े वैरागी के सिर पर उसकी रक्षा करते हुए श्री प्रभुजी के दिव्य प्रकाशमय स्वरूप को देखा। फिर उस बूढ़े वैरागी को किसी प्रकार से हानि पहूँचाने की सामर्थ्य न देखकर अघोरी मत के अनुसार उस बूढ़े वैरागी को कहने लगा कि हमारा नियम है कि जो हमारे सामने आ जाए, उसे मारकर भक्षण कर लेते हैं या कोई वर देकर भेजते हैं। इसलिए अब तू हमसे वर माँग। तब बूढ़ा वैरागी कहने लगा कि हम प्रभुजी के बच्चों को तेरे जैसे कंगाल मुर्दा खानेवाले से वर लेने की जरूरत नहीं। आया, वर देनेवाला, कंगाल कहीं का!

फिर भी ज्ञानगिर ने कहा कि चाहे कुछ भी हो, हमारा नियम है। इसलिए तुम कुछ–न–कुछ माँग लो। इस पर बूढ़े वैरागी ने दो–चार और सुना दीं। फिर तीसरी बार ज्ञानगिर ने कहा, यद्यपि तू कुछ नहीं माँगता, तो भी अवश्य हमारा वर देने का नियम है। इस लिए जा तूझे वाक्–सिद्ध देते हैं। वह बूढ़ा वैरागी बोला, जा–जा, हमें तेरे वर की जरूरत नहीं। ऐसा कहकर वापस चला आया। रास्ते में शौच इत्यादि नित्यकर्म से निपटकर आ रहा था तो आगे दण्डी स्वामी उन्हें ढूंढ़ते हुए मिले, क्योंकि उस वैरागी के ज्ञानगिर की तरफ जाने के पश्चात् कुछ देर प्रतीक्षा करके इस भय से बूढ़े वैरागी को ढंढ़ने लग गए थे कि मंडली मे जाकर इस बात को कहूँगा तो मुझपर कहीं हरिहरानन्द जी बिगड़ न जायें। फिर बूढ़े वैरागी के मिलने पर दण्डी स्वामी ने पूछा क्योंकि, क्या बात हुई

जो इतनी देर लगा दी ? मालूम होता है, ज्ञानगिर तुम्हें नहीं मिला, यदि मिलता तो तुम ऐसे ही वापस कैसे आ जाते। तब बूढ़ा वैरागी बोला, ''हाँ–हाँ, मिला तुम्हारा वह ज्ञानगिर और उस की सिद्धि भी देख ली। ऐसा कहकर उस वैरागी ने सारी बात सुनाई। तब दण्डी स्वामी ने कहा, ''इसका कुछ उदाहरण तो देखना चाहिये, यदि तुम्हें सचमुच उसने वाक्सिद्धि दी है तो इस सामने वाले गूलर के पेड़ के फलों को कह दो कि गुलाब–जामुन बन जायें। यदि बन गए, तब समझेंगे कि तुम्हें ज्ञानगिर मिला होगा। तत्क्षण उस बूढ़े ने गूलर के फलों को कहा कि गुलाब–जामुन बन जाओ। सो उसी समय गूलर के फल गुलाब–जामुन बन गए और रस टपकने लगा। इस बात को देखकर दण्डी स्वामी ने कहा कि इस वाक्–सिद्धि से तो तेरा अहित ही होगा। क्योंकि इससे कइयों को वर और शाप आदि अपने आप मिलने लग जाएँगे। उस बूढ़े वैरागी ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो अब मैं सीधा ही पहाड़ों में चला जाता हूँ। वहाँ जाकर किसी एकान्त स्थान में रहकर भजन करता रहूँगा। ऐसा करने से मेरी वाक्–सिद्धि से किसी को हानि नहीं होगी। आप जाकर मेरी ओर से श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में साष्टाँग प्रणाम कर प्रार्थना करना कि प्रभो! आपका यह बालक अमुक कारण से वन में ही रहकर आप का ही ध्यान भजन करता रहेगा। आप अपनी कृपा–दृष्टि बनाये रखना। ऐसा कहकर वह वैरागी दण्डी स्वामी के देखते–देखते ऊपर पहाड़ों में दूर निकल गया। उस बूढ़े वैरागी के नजर से ओझल होने पर दण्डी स्वामी अपने स्थान पर वापस आ गये और श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में सब वृतान्त निवेदन कर दिया। तब हरिहरानन्द जी दण्डी स्वामी को कहने लगे कि तुमने बड़ी भूल की जो उस बूढ़े वैरागी को जाने दिया। श्री प्रभुजी जहाँ इतने सिद्धि–सम्पन्न बच्चों को संभाल रहे हैं, वहां उस बूढ़े को केवल एक वाक्– सिद्धि मिल जाने मात्र से होने वाली हानि से क्या नहीं बचा सकते थे ? ऐसा कहकर उसी समय हरिहरानन्द ने उस बूढ़े वैरागी की खोज करने के लिए कुछ व्यक्तियों को दण्डी स्वामी के साथ भेजा। परन्तु उस वैरागी का कहीं भी पता न मिला।

बाद में श्री प्रभुजी अपनी मण्डली के साथ वहाँ से चलकर तीन–चार दिन में नेपाल की राजधानी 'काठमाँडू' पहुंच गए। वहाँ राजा की ओर से एक महल में ठहराने का प्रबन्ध किया गया था। सो श्री प्रभुजी मण्डली सहित उस महल में ठहर गए। फिर राजा ने श्री प्रभुजी को 'पशुपतिनाथ' इत्यादि मंदिरों तथा तीर्थ–स्थानों की यात्रा कराई।

५.८ श्री प्रभु रामलाल जी महाराज नेपाल के राजदरबार में

एक बार नेपाल के राजा का एक सम्बन्धी बहुत बीमार हो गया। रोग के कारण उसका मुँह बिल्कुल बन्द हो गया और अनेक उपाय करने पर भी नहीं खुलता था। बड़े–बड़े डाक्टर तथा वैद्य प्रयत्न करके हार गये, क्योंकि उसका मुंह बन्द होने के कारण किसी प्रकार की औषधी उसके अन्दर जा ही नहीं सकती थी। इसलिए वे लोग लाचार होकर यही कहते रहे कि यदि किसी प्रकार इसका मुंह खुल जाये तो हम ठीक कर सकते हैं।

श्री प्रभुजी की महिमा सुनकर राजा ने नम्रतापूर्वक श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में अपने सम्बन्धी का मुंह खोल देने की प्रार्थना की। तब श्री प्रभुजी ने उस रोगी को देखकर अपने पास से एक औषधि निकाली और उसकी दो बत्तियाँ बनाकर रोगी के पास धुआँ दिलवा दिया, जिससे उसका मुंह खुल गया। फिर डाक्टरों ने अपनी औषधि देनी प्रारम्भ की। परन्तु उससे कुछ भी लाभ न हुआ, तब दूसरी सब प्रकार की चिकित्सा को छोड़कर राजा ने श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में उस सम्बन्धी की पूर्ण चिकित्सा करने की प्रार्थना

की। फिर श्री प्रभुजी ने उसकी चिकित्सा की। दो–चार दिन में ही वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया जिससे राजा को श्री प्रभुजी के चरण कमलों में बहुत श्रद्धा हो गई और श्री प्रभुजी की बहुत सेवा करने लगा।

जब राजा के पण्डितों ने सुना कि यह राजा रणसिंह के गुरू हैं, तो सबने मिलकर राजसभा में श्री प्रभुजी के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार राजा के बहुत प्रार्थना करने पर श्री प्रभुजी हरिहरानन्दजी, दण्डी स्वामी, मुखराम इत्यादि अपने सेवकों को साथ लेकर राजसभा में गये। राजसभा में शिष्टाचार प्रतिपालन के पश्चात् पण्डितों ने शास्त्र–चर्चा छेड़ दी। तब मुखराम कुछ कहने लगा। इस पर पण्डितों ने शास्त्रार्थ आरम्भ कर दिया। मुखराम भी उनसे खूब शास्त्रर्थ करने लगा जिससे क्रमशः पण्डितों की बारी आती गई। इतने में सायंकाल हो गया। तब आगामी दिवस के लिये सभा विसर्जित हो गई। फिर दूसरे दिन भी उसी प्रकार शास्त्रार्थ होता रहा। इस प्रकार दो–तीन दिन तक शास्त्रार्थ में वहाँ के कई पंडित मुखराम से हारते गये एक दिन वहाँ एक वृद्ध विद्वान को सभा में लाया गया। वह उन सब पण्डितों में प्रधान थे और वेदान्त शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे उन्होंने वेदान्त विषय पर शास्त्रर्थ प्रारम्भ किया। मुखराम तर्क और व्याकरण का पूर्ण विद्वान था, पर वेदान्त विषय में पूर्ण पण्डित नहीं था। इसलिए उस वृद्ध विद्वान से मुखराम शास्त्रर्थ में रह गया। तब दण्डी स्वामी तर्क और वेदान्त के पूर्ण विद्वान होने के कारण उस वृद्ध विद्वान से शास्त्रर्थ करने लगे। उस वृद्ध विद्वान के शास्त्रर्थ से वहाँ के पण्डित लोग बहुत ही प्रभावित हो रहे थे और सोच रहे थे कि शीघ्र ही इनसे दण्डी स्वामी परास्त हो जायेंगें, पर इतने में उस वृद्ध विद्वान के मुख से शास्त्रार्थ करते हुए एक अशुद्ध शब्द निकल गया जिसको मुखराम ने तत्काल पकड़ लिया। परन्तु वह वृद्ध विद्वान अपने मुख से निकले हुए अशुद्ध शब्द को शुद्ध सिद्ध करने लगे। किन्तु व्याकरण में पूर्ण विद्वान होने के कारण मुखराम ने उसकी बात काट दी और अन्त में उस अशुद्ध शब्द के विषय में तर्क करके उस वृद्ध विद्वान को परास्त कर दिया। साथ ही कुछ ऐसे शब्द कहे, जिससे उस वृद्ध विद्वान को महान दुःख हुआ और सभा में ही उसका चेहरा उतर गया जिसे देखकर श्री प्रभुजी ने विचार किया कि यदि हम इस मण्डली को साथ न रखते तो आज इस वृद्ध विद्वान का इतना अपमान न होता इसके पश्चात् राजसभा विसर्जित हो गई। श्री प्रभुजी सेवकों सहित अपने स्थान पर चले आये और हरिहरानन्द जी को आज्ञा दी कि हमारी मण्डली में जितने भी व्यक्ति हैं, इनमें से जो जहाँ जाना चाहते हैं वहाँ तक का मार्गव्यय तथा और भी जो कुछ वह चाहें देकर भेज दें। तब हरिहरानन्दजी ने दण्डी स्वामी, मुखराम तथा अन्य सबको अपने घर या जहाँ–जहाँ जिसने जाना चाहा, उसको वहाँ–वहाँ का मार्ग–व्यय देकर भेज दिया। पश्चात् और जो कुछ रूपया–पैसा सामान बचा, वह भी सब ब्राह्मणों में बाँट दिया।

श्री प्रभुजी हरिहरानन्द को साथ लेकर नेपाल से 'गुंजेश्वरी दुर्गा मंदिर' को चल दिये। श्री प्रभुजी ने हरिहरानन्द को जो क्रियाएं सिखलानी थीं वे सिखलाकर उसे एक गिरि कन्दरा में बिठला दिया और कहा कि शेष साधन जो तुमको करवाने होंगे वे फिर समय आने पर करवा देंगे। तदनन्तर स्वयं श्री प्रभुजी एक लोटा और चादर साथ लेकर ऊपर पहाड़ पर चढ़ गये। वहाँ देखा कि 'गुंजेश्वरी दुर्गा' का मंदिर है। उसमें से दूध की धारा बह रही है। वहां के दर्शन कर श्री प्रभुजी सात–आठ कोस आगे निकल गये और रात्रि को महाप्रभु भगवान सदाशिव के चरण कमलों में निम्नलिखित आत्म निवेदन कर के जंगल की एक झाड़ी के नीचे विश्राम करने लगे।

६

महाप्रभु भगवान सदाशिव मिलाप

(श्री प्रभु जी के शब्दों में)

६.१ महाप्रभु भगवान सदाशिव जी के चरणों में आत्म निवेदन

तेरे ऊँचे पहाड़ बड़े, मैं चढ़ नहीं सकता प्रभु । मेरे पैरों में छाले पड़े, मैं चल नही सकता प्रभु ।। तेरे..
तेरे ऊँचे पहाड़ों पे, हैं बर्फों के तोदे पड़े। हवा घर में ही ठण्डी लगे, मैं चल नहीं सकता प्रभु।। तेरे...
यह तो नाव पुरानी है, कि छेदों से छलनी हुई। पानी देता है धक्के कड़े, मैं चल नहीं सकता प्रभु।। तेरे.
कौन जल भर के लायेगा, व बर्फों में लेटेगा कौन। हम बीच मैदान पड़े, मैं चल नहीं सकता प्रभु।। तेरे.
मिरले शमशो कमल नयन दो, प्रभुजी मैं देखूंगा कब। हाये तुम से परे जा पड़े, मैं चल नही सकता प्रभु।। तेरे
"रामलाल" पै कृपा करो, हे शिव शम्भु कैलाश नाथ। पास अपने बुला लो मुझे, मैं चल नहीं सकता प्रभु।। तेरे..

६.२ अवतारी बालक रामलाल को श्री सद्गुरुदेव महाप्रभु भगवान सदाशिव जी महाराज का साक्षात्कार, दिव्य अनुभव व अष्टांग योग सिद्धि की प्राप्ति

श्री महाप्रभुजी ने आधी रात्रि में दर्शन देकर अति मधुर वाणी में कहा–''उठो, ब्रह्मण देवता! हम आपको लेने के लिए आये हैं। हमने ही आपको इधर आने की प्रेरणा दी थी।'' ये शब्द सुनते ही हम श्री महाप्रभुजी के दर्शन पाकर उनके चरण–कमलों से लिपट गये। मन में इतनी प्रसन्नता हुई कि चरण छोड़ने कठिन हो गये और शरीर की सुधि न रही। तब श्री महाप्रभुजी ने आशिर्वाद देकर उठाया और फरमाया–''बेटा! यह लो चिमटा आँखें मूंद हमारे साथ चलो।'' तत्क्षण हमें ऐसा अनुभव होन लगा कि हमारा शरीर हल्का हो भूमि से ऊपर आकाश मार्ग से वायु का स्पर्श करता हुआ जा रहा है। थोड़ी देर में पांव फिर भूमि से स्पर्श करने लगे और श्री महाप्रभुजी ने आज्ञा दी कि ''पुत्र! हमारा आसन स्थान आ गया है आँखें खोल लो।'' आंखें खोलने पर देखा कि नेपाल या नेपाल की कोई बस्ती भी दृष्टिगोचर नहीं होती, बल्कि हिमालय की ऊँची चोटी और उसके चारों ओर बर्फ ही बर्फ पड़ी दिखाई देती है। समीप ही नीचे एक नदी बर्फ से ढकी हुई कहीं–कहीं से बह रही है। तब हमें बोध हुआ कि हमारे महाप्रभु हमें नेपाल से सैकड़ों मील ऊपर हिमालय की चोटी पर ले जाये हैं। इतने में उस स्थान पर एक सिंह आ गया। साधारणतया सिंह तो गधे जितने ऊँचे होते हैं, परन्तु वह भैंसे जितना ऊँचा बब्बर शेर था। उसकी आँखें दीपक की भाँति चमकती थीं। जब वह श्री महाप्रभुजी के बागीचे में आकर खड़ा हो गया, तब महाप्रभुजी ने हमें आज्ञा दी कि यह लो चिमटा और इसको बाहर निकाल दो। मैंने सुना हुआ था कि शेर बन्दूक की एक–दो गोलियां खाकर भी उस आदमी को मार देता है। तब सोचा कि शेर भले ही खाले, पन्तु गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन न हो। सो चिमटा लेकर शेर की तरफ चल पड़ा। मुझे शेर की ओर बढ़ता देखकर श्री महाप्रभुजी ने अपने भूपटल हाथ से उठाकर जब शेर की ओर देखा तो शेर एकदम निस्तेज हो पीठ फेर खड़ा हो गया। उस समय मैंने देखा कि महाप्रभुजी की आँखों के सामने शेर की आँखों का तेज कुछ भी नहीं था। तब मैंने चार–पाँच कदम शीघ्रता से बढ़कर चिमटे से प्रहार कर दिया, जिससे शेर श्वान के समान चिल्लाकर भाग गया।

तत्पश्चात् हमें कुछ दूरी पर ले जाकर श्री महाप्रभुजी ने क्षुधा निवृत्ति के लिए कन्द–मूल फल इत्यादि बतला दिए और एक पौधे को दिखलाकर फरमाया–''इसको बिल्कुल मत छूना।'' ऐसी आज्ञा प्रदान करने के पश्चात् हमें लौटाकर फिर आसन पर ले आये और गुफा में प्रवेश कर स्वयं समाधि में बैठने से पूर्व आज्ञा दी कि ''पुत्र! तुम भी समाधि मे बैठ जाना।'' यह कहकर श्री महाप्रभुजी स्वयं समाधिस्थ हो गए और हम उनके दिव्य ज्योतिर्मय मुखारविन्द रूपी चाँद को चकोर की तरह निहारने लगे। दर्शन करते दृष्टि स्थिर होने पर न तो क्षुधा की याद आती और न तृप्ति होती थी। विशेष क्या कहें, श्री दर्शन से आठ पहर का त्राटक सि़द्ध होने पर टकटकी से समाधि लग जाती थी।,

हमारे श्री महाप्रभुजी वे हैं, जिन्होंने काल को भी जीत लिया है। आप साक्षात् महादेव अवतार हैं। भ्रुवें जिन की अधर तक, विशाल बाहु, वृषभ कंध, तेज इतना कि आंखें सामने नहीं हो सकतीं। शेष शारदा भी उनका वर्णन नहीं कर सकते तो उनके नाना ऐश्वर्य को हम कैसे वर्णन कर सकते हैं? जब–जब हम समाधि से उत्थान अवस्था में आते थे, तब–तब अपने श्री महाप्रभुजी को ही निहारते रहते थे। प्रातः देखें तो श्री महाप्रभु नन्हे से बालक का रूप धारण कर लेते, मध्याह्न में युवा, और सायंकाल को वैसे के वैसे अति वृद्ध दिखाई देते थे। ऐसे ही उनके नाना रूप दृष्टिगोचर होते रहते थे। जिन्हें हम बड़े कौतूहल से देखते हुए आनन्द प्राप्त करते थे।

एक दिन रात्रि को वहाँ एक भालू आ गया जो श्री महाप्रभुजी के स्थान पर केले के पौधे खराब करने लगा। तब उसे भी पत्थर मारकर निकाल दिया। जब कभी कोई शेर या भालू आदि आ जाये तो पत्थर उठाकर दिखाने से ही वे भाग जाते थे।

एक दिन घूमते हुए वह पौधा हमें दृष्टिगोचर हुआ, जिसको छूने के लिए श्री महाप्रभुजी ने मना किया था। उस पौधे को देखते ही हृदय में ऐसी मौज आई कि देखें इस पौधे में क्या दोष है? ऐसा विचार कर ही रहे थे कि एक ओर मरा हुआ मेढ़क दिखाई दिया, जिसे हमने दो लकड़ियों से उठाकर उस पौधे के फूल से स्पर्श करा दिया। फूल ने उसे पकड़ लिया और तुरन्त ही उसे अपने अन्दर बन्द कर लिया। थोड़ी देर बाद फूल पूर्ववत् खिला तो देखा कि मेढ़क की राख बनकर नीचे गिर गई है। तो इस विषय में श्री महाप्रभुजी की आज्ञा के रहस्य को हम ने प्रत्यक्ष रूप में देख लिया और श्री महाप्रभुजी के चरण–कमलों में आकर समाधिस्थ हो गये।

समाधि से उत्थान होने पर जब कभी हमारे मन में संकल्प उठता था, तो उसे हम पहाड़ की एक बड़ी शिला के ऊपर कोयले से इस विचार से लिख लिया करते थे कि जब हमारे श्री महाप्रभुजी समाधि से उठेंगे तब उनसे इन संकल्पो की निवृति कराएंगे। एक रोज समाधि से उठे और अपने लिखे हुए संकल्पों पर दृष्टि पडते ही उनके उत्तर की तरंगें स्वतः ही हमारे हृदय से मिलने पर मिटाते चले गये। उसी प्रकार उन सब संकल्पो की निवृत्ति हो जाने पर हमने उस शिला को साफ कर दिया।

एक दिन समाधि के पश्चात् मन में घूमने की तरंग उठी तो दो–तीन मील की दूरी पर जाने से गुफा में बैठे हुए एक महात्मा से भेंट हुई। हमने उनको प्रणाम किया। उन्होंने बड़े प्रेम से आसन देकर हमें अपने पास बिठा लिया। हमने देखा कि उनके भी भूपटल बढ़कर अधर तक आये हुए थे। उनसे प्रेमपूर्वक पूछा कि महाराज आप यहाँ कब से विद्यमान हैं? तब उन्होंने कहा कि 500 वर्ष से यहाँ रहते हैं। फिर मैंने पूछा कि महाराज! हमारे श्री महाप्रभु यहाँ कब से विराजमान हैं? उत्तर में उन्होंने कहा कि ये हमारे दादा गुरूदेव हैं। हमें मालूम नहीं है। कि ये कब से समाधिस्थ चले आ रहे हैं। क्योंकि हमारे सद्गुरूदेव जी बतलाया करते थे कि हम पाँच सौ वर्ष से अपने श्री महाप्रभुजी को ऐसा ही देखते चले आ

रहे हैं। छः मास के पश्चात् जब श्री महाप्रभुजी समाधि से उठते हैं तब चारों ओर से ऋषि समाज श्री महाप्रभु जी के दर्शनों के लिए आता है। ऋषिगण इनके अमृतमय उपदेश तथा दर्शनों से कृतार्थ होकर फिर अपने स्थान को लौट जाते हैं। इसी प्रकार हम अपने सद्गुरूदेव जी के ज्योति-ज्योत समाने के पश्चात् पाँच सौ वर्षों से ऐसा ही देखते चले आ रहे हैं। इस प्रकार श्री महाप्रभुजी की कीर्ति सुनने के पश्चात् उस महात्मा को प्रणाम कर हम अपने स्थान की ओर चले आये और समाधिस्थ हो गए।

इसी प्रकार समाधि से उत्थान होने पर हम कन्द-मूल ढूँढ़ते हुए जा रहे थे कि एक महात्मा बैठे हुए दृष्टिगोचर हुए, जिनको प्रणाम करने के पश्चात् हम उनके पास बैठ गये। कुछ देर बीत जाने पर हमने उन महात्माजी को बुलाना चाहा, किन्तु वे न बोले। हमने समझा कि शायद ये महात्मा मौनी हैं। थोड़ी देर के पश्चात् आकाश मार्ग से जाते हुए एक पक्षी ने उन पर बीठ कर दी। तब उस महात्मा ने उस पक्षी की ओर देखकर उसे कुछ गालियाँ निकालीं। उस महात्मा को तमागुणी समझकर हम अपने आसन स्थान पर चले आए।

फिर एक दिन समाधि से उठने के पश्चात् पर्यटन करते हुए हम पाँच-सात कोस निकल गए तो देखा कि एक महात्मा तलाई के पास बैठे हुए मेढ़कों को उठा उठाकर खा रहे थे। जब उन्होंने हमें देखा तो पास बिठाकर एक-दो अञ्जली हमारी झोली में डाल दीं, उन मेढ़कों की उसी क्षण जलेबियां बन गई। इतने में मैंने पीछे मुड़कर देखा तो महाप्रभु जी हाथ में चिमटा लिए रिस भरे आते हुए दिखाई दिए। तब हम उन जलेबियों को भूमि पर गिराकर अपने आसन की ओर उठ भागे। तब चिमटा मारने व उस महात्मा के चिल्लाने की आवाजें दूर तक आती रहीं। जब हम अपने आसन पर पहुंचे, तो श्री महाप्रभुजी को पूर्ववत् समाधिस्थ देखा। तब हम भी एक ओर समाधि में बैठ गए।

एक बार समाधि से उत्थान होने पर हमने देखा कि पर्वत के ऊपर चारों ओर से बर्फ ढल-ढल कर पानी वाधमति में गिर रहा है और बहुत सख्त जाड़ा हो रहा है। तब श्री महाप्रभुजी को चादर ओढ़ाने के विचार से हम गुफा में चले गए। अन्दर जाते ही ऐसा प्रतीत होने लगा कि श्री महाप्रभुजी के बदन से प्रचण्ड अग्नि का-सा सेक आ रहा है। उस सेक के पास ठहरना हमें दुश्वार सा मालूम हुआ। परन्तु हम श्री महाप्रभु जी के चरण-कमलों से लिपट गए तो सेक की बजाय अत्यन्त आनन्द आने लगा। कुछ देर के पश्चात् हम फिर समाधि में जाकर बैठ गये।

इसी प्रकार बारम्बार के अभ्यास से जब हमारी समाधि पन्द्रह दिन की हो गई तो एक बार गुफा के बाहर मैदान में ही हम समाधि में बैठे गये। पन्द्रह दिन के पश्चात् जब उत्थान अवस्था हुई तो हमने देखा कि चारों ओर से अधर तक हमार शरीर बर्फ में गढ़ा हुआ है। और दूर-दूर तक बर्फ पड़ी हुई है। हमारी धूनि भी बर्फ से ढक चुकी है। ऐसी अवस्था में उठ कर खड़ाहोना तो कहाँ, दाएँ-बाएँ देखना भी असम्भव मालूम होता था। उस समय हम अपने महाप्रभुजी की ओर देखकर मन-ही-मन मुस्कराने लगे और स्वयं ही यह विचार हृदय में उत्पन्न हुआ कि नाथ! अपने बालक को कब तक बर्फ में गढ़ा हुआ देखेंगे ? ऐसी भावना मन में आते ही श्री महाप्रभुजी ने दोनों हाथों से बर्फ को दाएँ-बाएँ गिरा दिया। तब हमने श्री महाप्रभुजी के चरणार्विन्दों में प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त किया, अन्दर गुफा में जाने पर श्री महाप्रभुजी पूर्ववत् ही समाधिस्थ दृष्टिगोचर हुए। जब हम गुफा से बाहर निकले तेा देखा कि जहाँ हम समाधि में बैठे थे, वहाँ से बर्फ हटी हुई है। और धूनि भी पूर्ववत् जगमगा रही है। इसके पश्चात् हम कुछ कंदमूल सेवन कर गुफा के बाहर ही फिर उसी स्थान पर समाधिस्थ हो गए। पन्द्रह दिन के बाद समाधि से उत्थानावस्था में आकर देखा तेा हमारे आसन-स्थान को छोड़कर चारों ओर बर्फ पड़ी है

और बाद में भी ऐसे ही हम जब–जब समाधि से उठा करते तो हमारे आसन–स्थान को छोड़कर चारों ओर बर्फ ही बर्फ गिरती दिखाई देती।

जब श्री महाप्रभुजी छः मास की समाधि से उठे तो हमने सष्टांग प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त किया। तदनन्तर अन्य महात्मा भी आने शुरू हो गए। दर्शनों के लिए आने वाले महात्मा अति वृद्धि थे। नकटवर्ती स्थानों में रहने वाले ऋषिगण तो पैदल आ रहे थे परन्तु दूर से आने वाले महात्मा आकाश मार्ग से उतर रहे थे। उन महात्माओं का इतना अगाध प्रेम देखा गया कि वे लोग अपनी जटाओं के बालों से सुन्दर–सुन्दर विविध प्रकार के जंगली पुष्पों की मालाएँ बनाकर लाते थे और हमारे महाप्रभुजी के गले में डालने से पूर्व ही प्रेमवश एकदम चरणों में गिर कर प्रेममग्न हो सुधि भूल जाते थे। इस प्रकार श्री महाप्रभु जी के दर्शनों के लिए दो दिन तक बहुत से महात्मा आते रहे।

तीसरे दिन प्रातः ही श्री महाप्रभु जी ने फरमाया, चलो बच्चे! ''आज निमन्त्रण जीम आवें।'' हम अभी विचार ही रहे थे कि निमन्त्रण देने तो कोई आया ही नही, महाप्रभु जी हमसे उपहास करते होंगे। इतने में सर्वान्तर्यामी महाप्रभु मन की बात जानकर फरमाने लगे, ''बच्चे! मनमहेश पहाड़ में एक महात्मा रहते हैं। उनकी इच्छा शरीर त्यागने की हो रही है। उन्होंने कल सब उत्तराखण्डी महात्माओं को दर्शनार्थ स्मरण किया है।'' इतना कह श्री महाप्रभुजी हमें साथ लेकर आकाश मार्ग से जाने लगे। मार्ग में दर्शनीय स्थानों को देखने का संकल्प उठते ही श्री महाप्रभुजी ने फरमाया कि इस समय सीधे चले चलो। वापिस आते हुए सभी प्रसिद्ध स्थान आपको दिखला देंगे। इतने में हमारे पाँव भूति से स्पर्श करने लगे। इधर महाप्रभुजी की आज्ञा पाते ही जब आँखे खोलीं, तो देखा कि मन महेश पर्वत पर बहुत सा ऋषि समाज एकत्र हो रहा है। श्री महाप्रभुजी के दर्शन पाते ही उन ऋषियों ने आगे बढ़कर प्रणाम किया और आदरपूर्वक आसन देकर विराजमान कराया। तब वह सब महात्मा श्री महाप्रभुजी से आज्ञा आशीर्वाद प्राप्त कर अपने आसनों पर जा आसीन हुए। श्री महाप्रभुजी जिसके यहाँ गये थे उस महात्मा से पूछा कि कहो–''महात्मन्! तुम शरीर क्यों त्यागने लगे हो'' ? उन्होंने कहा–''प्रभो! यह शरीर अब जीर्ण हो गया है।''

श्री महाप्रभुजी–''क्या तुम्हारे सब कर्मों का क्षय हो गया है ?''

महात्माजी–''मैं तो यही समझता हूँ ।''

श्री महाप्रभुजी–''अभी तुम्हारे कुछ संचित कर्म बाकी हैं। तुम अपने पिछले जन्मों को इसी समय देखो। तब वह महात्मा ध्यान में बैठ कर देखने लगा। उत्थान होने पर बतलाया कि मैंने एक सौ सात जन्म में एक संस्कार पड़ा देखा है कि सीढ़ी चढ़ते हुए मेरे हाथ से बिल्ली व उसके तीन बच्चों पर अग्नि पड़ गई थी। यह कुकर्म देखा है। प्रभो! अब इसके अतिरिक्त कुछ और भी मेरा कर्म संस्कार बाकी है या नहीं। तब श्री महाप्रभुजी ने फरमाया कि एक सुकर्म भी है, वह एकादश जन्म में तुमने यज्ञ भी किया हुआ है। अतः अभी तुम्हारा शरीर त्यागना उचित नहीं है। तो उस महात्मा ने कहा–''प्रभो! अब इस जीर्ण शरीर का क्या होगा ? तब श्री महाप्रभुजी ने महात्मा की देह पर शक्तिपात करते हुए फरमाया कि अब से यह शरीर आपका जीर्ण नहीं रहेगा। तत्क्षण महात्मा की देह युवावस्था में परिवर्तित हो गई। तत्पश्चात् उस महात्मा ने जो कन्दमूल फल बनाये हुए थे, सब ऋषि महात्माओं को जिमा दिये। इसके उपरान्त हमारे महाप्रभुजी सब ऋषि समाज को आशीर्वाद देकर चल दिए। वापसी पर आकाश मार्ग से एक पहाड़ के नीचे उतरे। वहाँ पर एक शिव मन्दिर दिखलाया, जिसमें शिवलिंग एकदम नीलम का ही था। उस 'नीलमणि महादेव' के दर्शन करने के पश्चात् और भी इधर–उधर के बहुत से स्थान

दिखलाए। मार्ग के स्थान दिखलाने के पश्चात् हमारे महाप्रभुजी मुझे साथ लेकर आकाश मार्ग से निज स्थान को चले आये।

आते ही श्री महाप्रभुजी समाधिस्थ हो गये। तत्पश्चात् हम भी समाधि में बैठ गये। उत्थानावस्था होने पर देखा कि मेरे पास एक जंगली गाय गिरी पड़ी है। उसके आधे शरीर में कीड़े पड़ गये हैं और महान दुर्गन्ध आ रही है। हमारे मन में आया कि श्री महाप्रभुजी को इससे बहुत दुर्गन्ध आती होगी। अतः इस गाय को कहीं दूर हटा देना चाहिये। यह विचार मन में आया ही था कि इतने में वह गिरि हुई गाय उठ खड़ी हुई और पास आकर अपने सींगों से हमारे बदन को खुजलाने लगी। दुर्गन्ध असह्यय तो थी ही, पर फिर भी हम अपने श्री महाप्रभुजी का ध्यान करते हुए बैठे रहे। दो–तीन मिनट खुजलाने के पश्चात् वह जंगली गाय दो–तीन फर्लांग दूर जाकर वहाँ गिर गई।

एक दिन समाधि से उठने के बाद कन्दमूल ढूंढ़ने लगे तो देखा कि सब स्थान एकदम बर्फ से ढका हुआ है। अतः कन्दमूल नहीं मिल सके। हमने सोचा कि फिर समाधि में बैठ जावें तो बिना खाये दी पन्द्रह दिन आनन्द से कट जाएंगे। उठने के पश्चात् देखा जायेगा। इस प्रकार हम सोच ही रहे थे कि इतने में सामने से एक भालू हमारी ओर दौड़ा चला आ रहा दिखाई दिया। वह समीप आकर अपने मुख में पकड़े हुए केलों के गुच्छे को रखकर भाग गया। तब हमने वह केले खा लिये। तत्पश्चात् फिर हम समाधिस्थ हो गये।

एक दिन हम जब समाधि से उठे तो विचार आया कि श्री महाप्रभुजी जब समाधि से उठकर दर्शनार्थ आने वाले ऋषियों के मध्य में विराजते हैं, तो उस समय के लिए एक 'भव्य मण्डप' बनाये। हमारे महाप्रभुजी जहाँ रहते हैं,वह पर्वत अधिकांश स्फटिकमय है; क्योंकि प्रकृति का नियम है कि जिस स्थान पर बर्फ सौ वर्ष तक जमी रहे और गले नहीं, तो वह स्थान स्फटिक बन जाता है। इस प्रकार बारह मास बर्फ जमे रहने के कारण वह पर्वत अधिकांश स्फटिकमय बन गया है। तब कई बढ़िया–बढ़िया स्फटिक शिलाएँ, जो कि सुन्दर व समान थीं, उठाकर हम ले आये। फिर वहाँ के कुछ पत्थर जलाकर चूना बना लिया। हमारे महाप्रभुजी गुफा के बाहर सामने मैदान में जहाँ ऋषियों के मध्य में विराजमान हुआ करते थे, वहाँ पर ही स्फटिक शिलाओं को चूना लगा कर मण्डप के नीचे का भाग बना लिया। एक जगह बहुत बढ़िया ढंग के बने हुए स्फटिक के चार स्तम्भ मिल गये उनको नीचे से खोद कर हम ले आये और उनको चारों कोनों में बड़े बड़े छिद्र करके गाड़ दिया। तत्पश्चात्, इधर–उधर ढूढ़ने से एक और छत्राकार गोल स्फटिक का बना हुआ गुम्बज मिल गया। उस गुम्बज को अकेले उठाना मुश्किल सा लगा, परन्तु श्री महाप्रभुजी का ध्यान करते ही हमने उसे आसानी से उठाकर उन स्तम्भों के ऊपर रखा। जैसा हम चाहते थे, ठीक वैसे ही वह गुम्बज जुड़ गया। फिर चूना इत्यादि सब लगा कर उस मण्डप को पूरा कर दिया। उस मण्डप के लिये जो–जो स्तम्भ शिलाएँ या गुम्बज इत्यादि हमें मिले थे, वे एकएम सब स्फटिकमय थे और उन पर स्वतः ही बहुत बढ़िया प्राकृतिक शिल्पकला खुदी हुई थी। अतः हम समाधि का अभ्यास भी करते रहे और समाधि से उठने पर थोड़ा–थोड़ा मण्डप भी बनाते रहे। इस प्रकार कई दिनों में श्री महाप्रभुजी के बैठने के लिए एक बहुत बढ़िया स्फटिक मण्डप बन गया। श्री महाप्रभुजी के उठने में अब–तीन दिन शेष थे, तब हमने बहुत से कन्द लाकर एकत्र कर लिये; श्री ताकि महाप्रभुजी के दर्शनों को आने वाले सब महात्माओं को खिलाया जा सके। फिर एक बहुत मोटे बाँस से दस–बारह सेर पानी भरने का एक तरफ बर्तन बना लिया । छोटे बांसों से कुछ गिलास तैयार कर लिये। जब श्री महाप्रभुजी समाधि से उठे तो हमने साष्टांग प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त किया। चारों ओर से आये हुए ऋषि समाज ने भी साष्टांग प्रणाम कर

पुष्पों की वर्षा की। श्री महाप्रभुजी ने सब को करूणामय आशीर्वाद दिया। इसके उपरान्त महाप्रभुजी स्नान इत्यादि से निवृत्त हो सीधे उस मण्डप में जाकर विराजमान हो गये। इतने में हम भी मस्ती में झूमते हुए अपने महाप्रभुजी के चरण–कमलों से लिपट गये। श्री आनन्दकन्द महाप्रभुजी ने परम प्रसन्नतामय मुस्कराते हुए आशीर्वाद देकर हमें कण्ठ से लगा लिया और ऋषियों से फरमाने लगे,''देखों, हमारे ब्रह्मचारी ने कैसा सुन्दर स्फटिक मण्डप बनाया है।'' तब उन ऋषियों ने भी बहुत प्रशंसा की। इस प्रकार अपने महाप्रभुजी को प्रसन्न देख हम अधिक मस्ती की हालत में झूमने लगे, परन्तु सेवा का समय देख अपने आपको सम्भाल लिया। उधर एकदम हमने धूनि में अग्नि प्रचण्ड कर विविध प्रकार के कन्द भून कर तैयार कर लिये और सर्वप्रथम श्री महाप्रभुजी को भोग लगवा कर फिर केलों के पतों पर परोस सभी महात्माओं को जिमा दिया। श्री महाप्रभु जी और सब ऋषि–समाज ने उन कन्दों का रसास्वादन कर बहुत प्रशंसा की। तत्पश्चात् सब महात्मा श्री महाप्रभुजी के चरणों में स्फटिक मण्डप के पास फिर से आकर बैठ गये और हमें भी श्री महाप्रभुजी ने अपने श्री चरण–कमलों से लिपटा लिया।

इतने में वहाँ वह महात्मा भी आ गये जिनके, स्थान पर हम गये थे और वे बोले नहीं थे। उन्होनें हमारे श्री महाप्रभुजी को प्रणाम किया और एक प्रश्न पूछा। तब हमारे श्री महाप्रभुजी ने उस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें आज्ञा दी तो उस महात्मा ने कहा कि यह कल का आया हुआ छोकरा हमारी शंका का क्या निवारण करेगा, तो हमारे महाप्रभुजी ने फरमाया कि यदि हमारे बच्चे से शंका निवृति न हुई तो फिर हम उसका निवारण करेंगे। अब तुम कठिन से कठिन प्रश्न इस बच्चे से करो। देखो, यह तुम्हारी शंका की निवृति करता है, या नहीं। तब उस महात्मा ने प्रश्न किया कि वेदान्त शास्त्र में लिखा है कि एक क्षण में ज्ञान होने पर मोक्ष मिल सकता है, तो योगीजन सैकड़ो वर्षों तक क्यों समाधि लगाते हैं ? तब हमने कहा–''बिना योग के अनन्त जन्मों के संचित शुभाशुभ कर्मों का क्षय होना कठिन है। अतः योग से ही मोक्ष प्राप्त होता है।'' तब उस महात्मा ने कहा कि वेदव्यास जी इस बात को नहीं मानते, क्योंकि ज्ञान तो बिना योग के भी हो सकता है। इसके उत्तर में हमारे महाप्रभुजी ने हमारे मुख से श्लोक निकलवाये, जिनमें से कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं।

श्लोक–

ज्ञानिष्टो विरक्तो वा, धर्मज्ञऽपि जितेन्द्रिय।
बिना योगेन देवोऽपि, न मोक्षं लभते प्रिये।।

अर्थ -श्री महादेवजी कहते हैं कि हे प्रिय (पार्वती)!ज्ञानवान विरक्त, धर्म को जानने वाला चाहे इन्द्रियों को जीतने वाला भी क्यों न हो, योग के बिना देव भी मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है।

श्लोक–

दक्षस्मृतौः–सु असंवेद्यं हितद्ब्रह्मकुमारी स्त्री सुखंयथा।
अयोगी नैव जानाति, जात्यान्धो ही यथा घटम्।।

अर्थ-जैसे पति सुख को केवल विवाहिता स्त्री ही जान सकती है। उस विवाहिता स्त्री के सुख को कुंवारी नहीं जान सकती है। और जैसे जन्मान्ध पुरूष घट के रूप को नहीं जानता, वैसे ही अयोगी उस बह्म को नहीं जानता (उस ब्रह्मनन्द सुख को योगी ही अनुभव कर सकता है।)

ब्रह्मसूत्र का प्रमाण–नोपदेश श्रवणोऽपि कृत कृत्यता परामर्श हते विरोचनवत्। अर्थ–बिना मनन् (योगाभ्यास) के वेदान्त श्रवणमात्र से ही कृत–कृत्यता नहीं है। जैसे, दैत्यों के पति विरोचन को ब्रह्मा से उपदेश श्रवण होने पर भी ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई।

श्लोक–

भवतापेन तप्तानां, योग ही परमौषधम्।

अर्थ-लक्ष्मीपति भगवान जी कहते हैं कि हे खगेश! जो मनुष्य भवताप से अर्थात् संसार के ताप से तपे हुए हैं। उनको योग रूपी अमृत परमौषधि है।

इस प्रकार हमारे मुख से श्लोकों का प्रवाह प्रवाहित होता देख चारों ओर से आये हुए महात्माओं ने श्री महाप्रभुजी के ऊपर पुष्प वर्षा की और जय जयकार बुला कर कहने लगे कि श्री रूद्र अवतारी जी! यह ब्रह्मचारी जी तो आपके ब्राह्मण बालक हैं, आप चाहें तो वृक्षों से भी कहलवा सकते हैं।

इस प्रकार ऋषियों के जय जयकार और श्लोकों के प्रवाह को सुन वह महात्मा निरूत्तर होकर चुप हो गया, किन्तु मन ही मन क्रोध करने लगा। इधर हम अपने महाप्रभुजी के चरण कमलों में पड़े हुए, परमानन्द दिव्य दर्शनों को पाकर अनायास ही हंस रहे थे और हमें परम प्रसन्नता में देख श्रीमहाप्रभुजी भी मन्द–मन्द मुस्करा रहे थे। वह महात्मा हमारे महाप्रभुजी की ओर क्रोध से देखकर कहने लगा कि आपने ही इस छोकरे से हमारी हंसी कराई है। नहीं तो भला हमारी हंसी करना इसकी ताकत में कहाँ था ? इसलिए यह सब आपका ही दोष है और इस अवज्ञा का फल यह अभी–अभी यहाँ ही भुगत लेगा।

तब हमारे महाप्रभुजी ने उस महात्मा का अक्षम्य गुरू तिरस्कार रूपी अपराध देखकर उसके अभिमान को नष्ट करने के लिए अपने संकल्प से हमारे मुख से कहलवा दिया कि जो तुमने शाप दिये हैं, वे सब तुम्हीं को भुगतने पड़ेगें, और तुम्हारे जैसे गुरू–निन्दक का श्री महाप्रभुजी के चरणों में रहना शोभा नहीं देता। अतः तुम अभी श्री महाप्रभुजी के चरणों से नीचे चले जाओगे।

इस पर श्री महाप्रभुजी ने फरमाया कि हमारे बच्चे ने जैसा कहा है वैसा ही होगा। जो शाप तुमने इस बच्चे को दिये हैं, वे सब तुम्हें ही भुगतने पड़ेंगे और इस बच्चे का ‘बाल भी बांका’ न होगा। यह सुनकर वहाँ पर बैठे हुए ऋषि समाज ने पुष्पों की वर्षा की और श्री महाप्रभुजी से कहा–‘‘श्री शिव अवतारी जी! आप धन्य हो! धन्य हो! धन्य हो जो बड़े भारी अभिमानी के अभिमान को अपने ब्राह्मण–बालक से चूर करवा दिया।’’

इसके कुछ देर पश्चात् वह शाप देने वाला महात्मा क्रोध में पागलों की भांति अपने स्थान की ओर न जाकर श्री महाप्रभुजी के गुफा स्थान से नीचे–नीचे जाने लगा और सब महात्माओं के सामने उसका शरीर कुष्ट से एकदम विकृत हो गया। इतने बड़े अभिमानी सिद्ध पुरूष से तनिक गुरू तिरस्कार होने पर उसके जन्म–जन्मातरों के पुण्यों का क्षण में क्षय हो गया। देव दुर्लभ मानव तन को खोकर वह कुगति को प्राप्त हुआ। धन्य हैं वे आत्म–समर्पित भक्त जिनकी रक्षा हर क्षण अपने पूर्णपरब्रह्म सदगुरू–भक्तवत्सल भगवान करते रहते हैं।

६.३ कर्म योगी-वीर योगी

तत्पश्चात् वहाँ बैठे ऋषि समाज में से एक ऋषि ने श्री महाप्रभुजी के चरणों में एक

प्रश्न पूछा–''महाराजजी कुछ योगी वनों में रह कर योग समाधि द्वारा मोक्ष प्राप्त करने का साधन करते हैं और कई कर्म योगी संसार में रह कर संस्कारों का भुक्तान करते हुऐ मोक्ष को प्राप्त करते है। इस दोनों में क्या अन्तर है उस का कृपा कर ज्ञान दिजिए।'' श्री महाप्रभुजी ने अपने बालक श्री रामलालजी से इस का उत्तर देने को कहा। श्री महाप्रभुजी की आज्ञा को माथा झुकाकर उन की कृपा को ही मुक्ति का द्वार माना और आगे कहा ''कि वन में रह कर योग समाधि के द्वारा जो कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त करने की विधि है उस की अपेक्षा वस्तियों में रहकर और अपने संस्कारों का भुक्तान करते हुये मोक्ष लाभ करना अधिक बहादुरी का काम है।'' तब सब ऋषि समाज ने कहा–''हे शिव अवतारी महाप्रभुजी! यह आप के बालक कलिकाल में कर्म–योगी श्री कृष्ण प्रकट हुए हैं। इन्होंने योग–रूप अवतार धारण किया है इस कारण हमारी प्रार्थना है, कि आप इन को संस्कारी जीवों के कल्याण के लिये वस्तियों में जाने की आज्ञा प्रदान करें।''

६.४ करूणावतार योगेश्वर प्रभु राम का हिमालय से लौटना

सायंकाल होते देख, सब ऋषिगण श्री महाप्रभुजी के चरण–कमलों में साष्टांग प्रणाम् कर तथा आशीर्वाद ले अपने अपने स्थान को चले गये। दूसरे दिन सूर्योदय होने पर श्री महाप्रभुजी ने श्री मुख से फरमाया–''अब आप बस्तियों में जा कर संस्कारी–आत्माओं का जहाँ–तहाँ उद्धार करें।'' आज्ञा पा श्री महाप्रभुजी को साष्टांग प्रणाम कर, आशीर्वाद ले, आकाश मार्ग द्वारा योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हिमालय से नेपाल की बस्तियों में आ गए।

६.५ भजन

तेरी हाज़री में बुलाया गया हूँ, नहीं आया खुद मैं तो लाया गया हूँ।
मेरे घट के नेत्र प्रभु आज खोलो, मेरी जिन्दगी को न ममता में रोलो।।
मेरी कब सुनोगे हरि कुछ तो बोलो, क्यों स्वार्थ का अन्धा बनाया गया हूँ।।। तेरी .....
सभी कहते है कि गुनाह गार मैं हूँ, मैं भी मानता हूँ सजावार मैं हूँ।
तभी तो मैं दर–दर रूलाया गया हूँ, तेरी .....
तेरी रहमतों ने बहकाया है मुझको।। तू है पतित पावन बताया है मुझको,
तभी तेरे सम्मुख बैठाया गया हूँ।।। तेरी .....
कहा आज लोगों ने गमसार आये, खुला दर है जो आये दीदार पाये।
मगर मैं तो दर से हटाया गया हूँ।। नहीं आया.....
मेरी जुरमों की तुम फरीश्ते निकालों, हुक्म जो सुनाना है वो भी सुना दो।
रखों पास अपने या नरकों में डालों, मैं ममता के फंदे फंसाया गया हूँ।। नहीं.....
मेरे करमों की देखी तस्वीर तुमने किया दासी को नाथ दिलगीर तुमने ।
जो सच पूछो तो लिखी तकदीर तुमने बना मैं वही जो बनाया गया हूँ।। नहीं.....

७

सवाँई के दिव्य चमत्कार

७.१ परमयोगिनी रामरती को प्रभु प्रेरणा

लगभग दो साल बाद श्री प्रभु जी हिमालय से लौटकर किसी गाड़ी में जमुनियाँ घाट की तरफ से निकल रहे थे। रामरती ने पहले ही ध्यान में देख लिया था कि आज वह परम कृपासागर श्री प्रभुजी, हिमालय से लौट कर इधर आ रहे हैं, जो पल भर में महान् कृपा–दान देकर चले गये थे। श्री प्रभुजी के इस आगमन को देखकर रामरती सहसा बोल उठी और अपने पास बैठे लोगों से कहा, ''अरे! जाओ, स्टेशन भाग जाआ। इस गाड़ी में परम कृपा–सागर मेरे गुरूदेव श्री प्रभुजी आ रहे हैं, जो मुझे यहाँ अमर करके बैठा गये थे, उनको जल्दी से लिवा लाओ ताकि मैं आँखें खोलकर उनका दर्शन कर लूँ और अपने जीवन को सफल बना लूँ।''

रामरती के मुख से ऐसी बाणी सुनकर सत्संगी तत्काल स्टेशन की ओर भाग उठे। किन्तु उनके स्टेशन पर पहुँचने से पहले ही श्री प्रभुजी को स्टेशन–मास्टर ने आदरपूर्वक उत्तार कर अपने पास बैठा लिया था। रामरती के गुरूदेव योगेश्वर प्रभुजी के आगमन की सूचना पहले ही विस्तार पा चुकी थी।

इसलिए स्टेशन–मास्टर के मन में तीब्र लालसा हुई कि सबसे पहले वह ही कोई कृपामय आशीर्वाद प्राप्त करे, जिससे सांसारिक आधि–व्याधि से छूट जाये। इसी समय में शेष लोग गाड़ी देखकर लौट गये। उनको श्री प्रभुजी नहीं मिले। जब भक्तों ने देवी रामरती से जाकर कहा, देवी हमें आपके गुरूदेव इस गाड़ी पर नहीं मिले, तो रामरती ने पुनः उनको आदेश दिया कि भाई ऐसी बात नहीं है। मेरे कृपानिधान प्रभुजी को स्टेशन–मास्टर ने अपने कमरे में बिठा लिया है। वह किसी विशेष लाभ की इच्छा से ऐसा कर रहा है। तुम जाकर श्री प्रभुजी को विनयपूर्वक लिवा लाओ। मुझे स्टेशन पहुंचने की आज्ञा नहीं मिल रही है। इसलिए विवशता में यहाँ बैठी हूँ। देवी रामरती की इस दूसरी आज्ञा को पाकर के सत्संगी उसी समय भागे गये और स्टेशन पर जाकर स्टेशन–मास्टर का कमरा देखा तो पाया कि सचमुच स्टेशन–मास्टर ने श्री प्रभुजी को बिठा रक्खा है और वह उनकी विनय कर रहा है। यह सब दृश्य देखकर सभी लोग साहस के साथ श्री प्रभुजी के पास पहुँचे और उन्होंने श्री प्रभुजी को प्रणाम किया और कुछ भी विचार न करके श्री प्रभुजी को अपने कन्धों पर बिठा कर रामरती के स्थान की ओर चल पड़े। श्री प्रभुजी साधारणतः उन लोगों से कहते रहे, ''अरे भाई, कहां ले जा रहे हो ? रामरती कौन है ? कहां है ?'' लोगों ने प्रार्थना की प्रभो! ''रामरती आपकी चरण–धूलि है, जिसको आप चलते–चलते समाधि का दान दे गये थे। वह लड़की अब देवी है, साक्षात् भगवती है, आपके दर्शन के लिए तड़प रही है। आपके आदेश को पाकर वह यहाँ तक नहीं आ पाई।''

इस प्रकार की बातें करते हुए लोग श्री प्रभुजी को अपने कंधेपर बैठा कर ले जा रहे थे तो श्री प्रभुजी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से यह आज्ञा दी कि अच्छा भाई, ''अब तुम हमें नीचे उतार दो। अब रामरती दौड़ती हुई आ रही है और वह सहसा हमारे चरणों से लिपट जायेगी, कदाचित् उद्वेग में उसको चरण–स्पर्श न मिल सका, तो हो सकता है उसके शरीर को प्राण–कोष छोड़ दें। इसलिए तुम लोग हमें अपने कन्धों से नीचे उतार दो!'' यह आज्ञा पा कर ज्योंहि श्री प्रभुजी को लोगों ने कन्धे से नीचे उतारा त्योंहि लोगों ने देखा कि

रामरती बड़े बेग के साथ दौड़ी आ रही है। उसको बड़े बेग से दौड़-कर आती हुई देखकर श्री प्रभुजी ने लोगों को दूर कर दिया और रामरती श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में लिपटकर बेहोश हो गई। रामरती को बेहोश देखकर श्री प्रभुजी ने आज्ञा प्रदान की कि ''इसको तुम इसी हालत में उठाकर ले चलो।'' लोगों ने श्री प्रभुजी का आदेश पाकर रामरती को उठा लिया और बड़े आदर के साथ उसको उसके मठ में पहुँचा दिया। कई घण्टों के बाद जब रामरती को चेतना आई तो श्री प्रभुजी ने रामरती की ओर देखकर कहा-''रामरती, यह तुमने क्या प्रपंच फैला रक्खा है ? हम तो तुम्हें जंगल में बैठा गये थे आज तो यहाँ पर बड़े-बड़े मन्दिर-शिवाले दिखाई दे रहे हैं।'' रामरती ने चरणारविन्दों में परमविनय के साथ उत्तर दिया ''हे! दीनवत्सल, यह सब तो आपकी ही महिमा है। मैंने तो आँख खोल करके आपके ही दिव्य दर्शन किये हैं। जिस समय आपने मुझे यहाँ जंगल में बिठाया था, उस समय आपके कृपामय स्वरूप को देखते-देखते मैं ध्यान-मग्न हो गई थी। उसी कृपामय छवि को आज कई सालों बाद पुनः अपनी आँखों से देखा है। इसके बीच में जो अमूल्य निधि आप सौंप गये थे, मेरा मन उसी में लीन रहा है। मुझे भी आश्चर्य है कि आपने यह क्या अनुपम कृपा की है कि जो यहां पर यह विस्तार दिखाई दे रहा है।'' इसी प्रकार का वार्तालाप होता रहा। बाद में जब श्री प्रभुजी वहाँ से चलने लगे तो रामरती ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि-''हे दीनबन्धु मैं अब यहाँ नहीं रहना चाहती। कृपा करके आपनी इस चरणधूलि को अपने कृपामय चरण-कमलों के साथ रख लीजिए और कुछ सेवा करने को समय प्रदान कजिए।'' श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों के साथ जाने को रामरती के विचार देखकर, लोगों के मन में बड़ा कष्ट हुआ क्योंकि वह उन लोगों के लिए साक्षात् देवी थी व लोगों का उसके द्वारा बड़ा भला हो रहा था।

लोगों ने मन ही मन और प्रत्यक्ष में भी श्री प्रभुजीसे प्रार्थना की कि ''हे सर्वशक्तमान् प्रभो, यह रामरती अब हमारे लिए जगदम्बा भवानी है, कृपा करके हमारे कल्याण के लिए इनको यहीं छोड़ दिजिए।'' श्री प्रभुजी ने उनकी दीन विनय को सुनकर और रामरती का वहीं रहना उचित समझकर रामरती को पूरी-पूरी सांत्वना देकर यह समझाया कि रामरती हम कहीं भी रहते हुए तुम्हारे पास ही रहेंगे, तुम्हारे हर कार्य को हर समय हम देखेंगे। यह कहकर श्री प्रभुजी वहाँ से चले आये। श्रीप्रभु जी के वहाँ से चले आने के बाद श्री करूणानिधि जी के स्थूल चरण-कमलों से वियोग का महाकष्ट रामरती को हुआ जिसके फलस्वरूप उसके मन में तीव्रतम वैराग्य झलक उठा और कुछ दिन वहाँ रह लेने के बाद रामरती भी वहाँ से कहीं बनों को निकल गई। रामरती के भक्त समुदाय में से जिस किसी को भी उसके कहीं दर्शन प्राप्त हुए किन्तु कोई भी यह जान न सका कि देवी रामरती आजकल इस जंगल में कहाँ वास करती है। रामरती के मुख से निकले बरदानों को पाकर वहाँ के स्त्री-पुरूष सब प्रकार से कृत-कृत्य हो गये और वनवासिनी हो जाने पर भी रामरती के मठ में ठहरकर निरन्तर उसका स्मरण करते रहे। आजकल भी रामरती के चिन्तन करने वाले लागे कही-कहीं मिलते हैं, जिनको रामरती के किये हुए उपकारों का बराबर स्मरण है।

रामरती जितने दिन भी वहाँ रही, लोगों ने उसको जगदम्बा भवानी के रूप में देखा। वह अनुपम तपस्विनी एवं परम योगिनी दिखाई देती थी। रामरती के सत्संग में जो भी आया और उस वातावरण में आकर बैठा, वहाँ आने से उसका मन स्वतः ही एकाग्र हो गया और उस वातावरण में आकर उसने लाभ को प्राप्त किया। यह उस कृपामय की कृपा है जिसको निमित्त बनाकर वह परम करूणार्वय योग-योगेश्वर कृपा करते हैं। वहाँ पर सब प्रकार से साधुपरित्राण व दीन-दुखियों का संरक्षण होता है।

७.२ बरहन ग्राम के ठाकुर दास पर प्रभु कृपा

इसी भ्रमण काल में घूमते हुये योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज हाथरस से छोटे–छोटे गाँवों में विचरते हुये बरहन गाँव में पहुँचे। वहाँ ठाकुरदास नाम के एक तपस्वी भक्त वहां निवास करते थे। वह श्री प्रभुजी के दर्शन पाकर कृत–कृत्य हो गये। कुछ दिन श्री प्रभुजी ने बरहन में निवास किया और अनेक प्राणियों का योग के सरल साधनों द्वारा भला किया और भक्त ठाकुर दास को अनेकों आयुर्वेदिक अनुभूति–योग बता कर दुःखी लोगों की निष्काम चिकित्सा करने का आशीर्वाद दे सवांई गाँव को चले गए।

७.३ सवाँई में द्वितीय पदार्पण (ई० सं.1911)

सवांई में प्रथम पदार्पण (ई0सन् 1909) के 27 दिन के निवास काल के वाद भक्तों के प्रेम वश श्री प्रभु जी ने फिर आने का वचन दिया था। उसी के अनुरूप योगेश्वर श्री रामलाल प्रभु नेपाल हिमालय की वापस यात्रा पर सवाँई पधारे।

भक्त प्यारेलाल पटवारी गाँव के बाहर विचर रहे थे कि अकस्मात श्री प्रभुजी (बाबाजी) के दर्शन प्राप्त हुये। श्री प्रभु चरणों में प्रणाम कर व विनीत भाव से प्रार्थना कर वह उन्हें अपने स्थान पर ठहरा कर सेवा करने लगे। दर्शनार्थी लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। इधर–उधर से आकर लोग सत्संग लाभ करते थे और अपने ऊपर हुई अनेकों प्रकार की कृपाओं को देख कर श्री प्रभुजी को परिपूर्ण महापुरूष के रूप में देखते थे।

श्री प्यारे लाल के घर में सकल सम्पत्तियाँ बास करने लगीं और सकल व्याधियाँ दूर हो गई। घर धन धान्य से पूर्ण हो गया और पौत्र का जन्म हुआ। भक्त प्यारेलाल ने श्री प्रभुजी से विशेष सेवा के लिए प्रार्थना की। श्री प्रभुजी ने प्रसन्नता में आकर आज्ञा दी कि हम एकान्त वास करना चाहते हैं इस लिये तुम एक गुफा तैयार कराओ जिसमें हम हर प्रकार के जन समुदाय से अलग रह सकें। उसके साथ एक तालाब भी बनवाओ जिस में हम स्नान कर सकें।

७.४ सिद्ध गुफा का निर्माण व तालाब में शक्तिपात

भक्त प्यारेलाल ने आज्ञा अनुसार अपने बाग में एक तालाब खुदवाया और उस के निकट ही दो बार गुफा बनाने का प्रत्यन किया पर सफलता नहीं मिली। तब वहाँ के भक्तों ने योगेश्वर राम प्रभु से प्रार्थना की ''प्रभो! आप कृपा करके जिस स्थान की आज्ञा देंगें, उसी स्थान पर हम गुफा का निर्माण करेंगे।'' श्री प्रभुजी ने उन की प्रार्थना पर बाग के दक्षिणी भाग में नीमों के नीचे कंकरीली जमीन में गुफा बनाने की आज्ञा प्रदान की। लोगों ने बड़े उत्साह के साथ प्रेम पूर्वक कई दिन लगा करके वहाँ गुफा का निर्माण किया। इस गुफा में श्री प्रभुजी ने काफी दिन निवास किया। बाद में यह गुफा ''सिद्धगुफा'' के नाम से विख्यात हुई।

ग्राम वासियों के पवित्र प्रेमभाव से प्रसन्न हो कर श्री प्रभुजी ने तालाब में शक्तिपात किया और कहा कि इस तालाब में जो भी चर्म रोगी स्नान करेगा उस की तकलीफ दूर हो जायेगी और सूखे की बीमारी के बच्चे स्नान मात्र से ठीक हो जायेंगे। जो लोग गुफा की पवित्र रज को सेवन करेंगे और इस पवित्र अमृतकुण्ड में स्नान करेंगे उन के सब प्रकार के दुःख दूर हो जायेंगे । परिणाम बिल्कुल वही हुआ। श्री प्रभुजी के वरदान के बाद सैकड़ों

रोगी ठीक हुये। चर्म व सूखवाय के रोगियों के लिये श्री प्रभुजी ने नियम रखा था कि ये लोग सवस्त्र तालाब में स्नान करें और बाद में गीले वस्त्र उत्तार कर वहाँ फैंक दें और नये वस्त्र पहन कर घर जायँ। ऐसा करने से वह बिल्कुल निःरोग हो जायेंगे ।

७.५ श्री प्रभु जी के दो आज्ञाकारी कुत्ते

जिस स्थान पर श्री प्रभुजी धूनी लगा कर बैठा करते थे वहाँ पर ''दो कुत्ते'' उन की सेवा में निरन्तर बैठे रहते थे। उन कुत्तों को श्री प्रभुजी की इच्छाओं का बराबर ज्ञान होता रहता था। स्त्री जाति के लिये श्री प्रभुजी का आदेश था कि उन के पास कोई स्त्री नहीं आ सकती थी और वह न ही किसी स्त्री के हाथ का भोजन किया करते थे। अगर कोई स्त्री बाग में आने का प्रयत्न करती तो यह दोनों कुत्ते भाग कर उसे काट लिया करते थे। इन कुत्तों के भय से कोई स्त्री बाग में प्रवेश नहीं करती थी। सब से बड़ी आश्चर्य की बात यह थी कि परिचित अपरिचित कोई भी पुरूष आता तो यह दोनों कुत्ते बिल्कुल कुछ नहीं कहते और बाग में चुपचाप बैठे रहते थे।

७.६ श्री महादेव जी के रूप में प्रभु दर्शन

एक बार सूर्य उदय से पहले कुछ भक्तों ने बाग में प्रवेश किया और दर्शन की तीव्र अभिलाषा लिये गुफा के द्वार तक पहुँचे। तो देखा कि सामने चबूतरे पर श्री प्रभुजी विराजमान हैं–जटायें नीचे तक लटकी हुई हैं–बड़ा सुन्दर व्याघ्र चर्म कटि प्रदेश से बँधा है और हजारों की संख्या में सर्प उन के गले में, सिर पर, जंधा प्रदेश से स्कन्ध पर्यन्त यज्ञोपवीत की आकृति धारण करके लिपटे हुए हैं। दो सर्प दायें और बाँये भुजाओं पर अपने फन को ऊँचा उठाये उत्कार कर रहे हैं। इस भयंकर दृश्य को देख कर वह चुपचाप पीछे हट गये तथा निराश हो कर लौटने लगे। तब श्री प्रभुजी ने उन को बुला कर कहा, –''भाई डरो मत ये सर्प तुम्हें कुछ न कहेंगे। किन्तु आगे से तुम इतना जल्दी जब तक कि सूर्य उदय न हो तब तक मेरे पास नहीं आना।''

७.७ विश्वरूप दर्शन

श्री प्यारेलाल और ठा० कर्णसिंह श्री प्रभुजी के अनन्य सेवकों में से थे किन्तु इनके मन में श्री प्रभुजी के अलौकिक ऐश्वर्य के दर्शन करने की बड़ी तीव्र लगन थी। एक दिन श्री प्रभुजी प्रसन्नता से बैठे हुये थे कि इन्होंने आकर अपने मन के भाव प्रभु चरणों में व्यक्त किये। श्री प्रभुजी उनके ह्रदय के सरल व विशुद्ध प्रेम भाव को देख मुस्करा पड़े और कहा–''कि आकाश की ओर देखो।'' उन्हों ने बड़ा ही अद्भूत आश्चर्य देखा। जो श्री प्रभुजी सामने विराजमान थे वही आकाश में विश्वरूप से सामये हुये हैं। उन के सहस्त्रों मुख और भुजायें हैं। जिस अंग कि ओर अपनी दृष्टि घुमाते थे उसी एक अंग में बड़े–बड़े अद्भुत दृश्य दिखाई देते थे। कहीं पर बड़े बड़े दिव्य तेज वाले ऋषि मुनि स्तुति कर रहे हैं और श्री प्रभुजी दिव्य तेजोमय स्वरूप से सामने विराजमान हैं। उन का वही रूप कभी द्विभुज कभी चतुर्भुज और कभी सहस्त्रभुज नजर में आता है। कहीं पर धारा प्रवाह दिव्य पुष्पों की वृष्टि हो रही है। कहीं पर देव कन्यायें दिव्य मंगल गीत गा रही हैं। आरती कर रही हैं। कहीं पर दिव्य ऋषि मुनि वेद ध्वानि कर रहे हैं। कहीं पर भृगीं–नाद से दिव्य ध्वनियाँ सुनाई दे रही हैं। कहीं देवगण दिव्य स्तुति कर रहे हैं। कहीं पर जीवों की कर्म व्यवस्था हो रही है। इस प्रकार अनेक विलक्षण रूपों में उन्हों ने श्री प्रभुजी के अनेकों

रूपों को देखा और दोनों ही व्यक्ति आश्चर्य चकित हो गये। श्री प्रभुजी ने उन को भयभीत व चकित देख उस अलौकिक दृश्य को अन्तर्हित कर लिया और पुनः उसी प्रकार अपने सौम्य जटाधारी साधू स्वरूप से सान्त्वना दी और समझाया कि भाई डरना नहीं चाहिये ये सब दृश्य तो बड़ी कृपा से देखने को मिलते हैं। इस घटना के बाद वह दोनों श्री प्रभुजी को अलौकिक योग योगेश्वर पुरूष मान कर अपना अधिक से अधिक समय सेवा में लगा कर जीवन को सफल बनाने लगे।

७.८ सवाँई के कुएँ में गंगाा जी के दर्शन

कोई पुण्य पर्व का दिन था सवांई से लोग इस पुण्य पर्व में स्नान करने श्री गंगाजी धड़ाधड़ जा रहे थे। कुछ भक्त श्री प्रभु चरणों को ही सर्वे–सर्वा समझ प्रभु सेवा में ही रहे। उन लोगों ने प्रार्थना की कि बाबा आज पर्व का दिन हैं, स्नान करने की इच्छा वाले लोग चले गये। किन्तु हम भी रह गये और आप भी रह गये। श्री प्रभुजी हंस पड़े और कहने लगे, हाँ भाई गुलाब सिंह अब क्या करें ? हम भी रह गये और तुम भी रह गये। अब तो रह ही गये। किन्तु कोई बात नहीं जाओ तुम इस कुएँ (यह कुआँ अब भी श्री सिद्ध गुफा से थोड़ी दूर पर ठाकुर गुलाब सिंह की ठहार पर बना हुआ है। यह पुराने जमाने का लम्बा चौड़ा कुआँ है।) में घुस कर स्नान कर आओ। सम्भव है प्रभु सुन लें और तुम्हें पर्व का फल प्राप्त हो जाये। उन्होंने आज्ञा अनुसार कुएँ में प्रवेश किया और जल का स्पर्श होते ही कुएँ का आभास न रह कर श्री गंगा जी के दर्शन होने लगे। इन लोगों ने देखा कि जो लोग पर्वस्नान के लिये वहां गये थे वे लोग तो अभी पर्व स्नान से दूर ही हैं और ये लोग गंगा जी के पवित्र प्रवाह में स्नान कर रहे हैं। मकर वाहिनी भगवती अपने कर कमल उठा कर आशीर्वाद दे रही हैं और कह रही हैं ''बेटा! तुम धन्य हो। सद्गुरू कृपा से तुम ने पुण्य पर्व लाभ किया।'' जब यह लोग कुएँ के जल से बाहर निकले व ऊपर आये तो पूर्ववत् वह कुआँ, कुआँ ही दिखाई देने लगा। बाद में यह सब भक्त श्री प्रभु जी को अलौकिक पुरूष समझ कर सेवा में लीन रहने लगे।

७.९ कृपा की चवन्नी

ठा० जोहरी सिंह का जीवन अत्यन्त कलेशित रहा करता था। अर्थाभाव के कारण घर में अनवरत कलेश बना रहता था। कुटुम्ब के पालन पोषण का कोई उपाय नजर नहीं आता था। सौभाग्यवश श्री प्रभुजी के चरणों में नियम से आने–जाने की लगन बनी रहा करती थी। किसी प्रकार की प्रार्थना करने का कोई साहस नहीं होता था। एक दिन कृपानाथ श्री प्रभुजी स्वयं रीझे और आवाज देकर बुलाया कि जौहरी सिंह चिन्ता मत करो। यह चवन्नी ले जाओ, तुम्हारे सब कार्य यह कर देगी। श्री प्रभुजी की दी हुई चवन्नी के प्रसाद को पाकर वह निहाल हो गया। चवन्नी के पाते ही घर में चारों ओर से धनधान्य उमड़ने लगा। आज तक उनका घर सब प्रकार से धनधान्य से परिपूर्ण है। यह केवल श्री प्रभुजी की दी हुई चवन्नी का प्रताप हैं। जिस को उन्होंने अभी तक सम्भाल कर रखा है।

७.१० अद्भुत माला

ठा० चन्दन सिंह श्री कृपा सागर प्रभुजी के अनन्य भक्तों में से एक थे। इन का मन श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में अनन्य निष्ठा व प्रेम से परिपूरित रहा करता था। उन के घर में अर्थाभाव रहता था। कोई कोई समय बड़ी कठिनता से व्यतीत होता था। काफी

प्रयत्न करने पर भी कहीं नौकरी नही मिली। इसी चिन्ता से वे खिन्न मन होकर के निराश बैठे थे और विचार कर रहे थे कि कुटम्ब पालन के लिये क्या किया जाय ? अपने अनन्य निष्ठ भक्त बालक की इस प्रकार की स्थिति को देख करके श्री प्रभुजी हँसे और अपने गले से एक माला उतार करके चन्दनसिंह को पहना दी और कहा–''बेटा जाओ चिन्ता को छोड़ो। जब तक यह माला तुम्हारे साथ रहेगी तुम्हारे सभी कार्य सफल होंगे। अब तुम जहाँ भी जाओ इस माला को गले में पहन कर जाना तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी।'' दूसरे रोज उस माला को पहन करके अपनी नौकरी के लिये किसी ओफिसर से मिलने के लिये गया तो उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि वह आफिसर पहले से ही उस का इन्तजार कर रहा था। आफिसर ने बड़े आदर के साथ बुलाया और कहा कि आओ और अपना कार्य शुरू करो। ठा0 चन्दनसिंह ने वह माला कई वर्षों तक अपने पास रखी और अपने सभी साध्य और असाध्य कार्य बड़ी सुगमता से श्री प्रभु कृपा द्वारा किये और श्री प्रभुजी के अभय चरण–कमलों का स्मरण करते रहे।

७.११ ठाकुर दास को चार पुत्रों का दान

सँवाई के ठाकुर दास श्री प्रभु चरणों में बड़े प्रेम से आया करते थे। उन के दो विवाह हो चुके थे और उन की दोनों स्त्रीयाँ मर गई थीं। वह सन्तान न होने के कारण बड़ा दुःखी था और रोता रहता था। एक दिन कृपालु प्रभु ने उसे रोता हुआ देख लिया और अपने पास बुला कर कहने लगे ''ठाकुरदास रोते क्यों हो ? ये विभूति खाओ, अभी तुम्हारी एक और शादी होगी। उस स्त्री से तुम्हें चार पुत्र पैदा होंगे।'' उस विभूति के खाने के बाद जल्दी ही उनकी शादी हो गई और चार लड़के पैदा हुये। वे श्री प्रभुजी के दिये हुये चारों गुलाम अब भी मौजूद हैं। ठाकुर दास ने श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को उन के सवांई आश्रम रहने पर (ईसवी 1943–44) में प्रार्थना की कि श्री प्रभुजी के इन चार गुलामों को अपने जान कर आश्रम की किसी भी प्रकार की सेवा में आवश्यकता पड़े तो कृपया बुला लेना। ये मेरे नहीं हैं बाबा के हैं। यह कह कर वयोवृद्ध ठाकुर दास श्री प्रभुजी के कृपामय चरण कमलों को स्मरण कर गदगग कंठ होकर चुप हो गये।

७.१२ श्री प्रभुजी का एक ही समय तीन शरीर प्रकटाना

एक वार संयोगवश कोई पुण्य पर्व का समय आया। संवाई के लोगों ने श्री प्रभुजी से गंगा स्नान के लिए उन के साथ चलने का आग्रह किया किन्तु श्री प्रभुजी ने इन्कार कर दिया और कहा कि भाई तुम लोग जाओ अभी हम नहीं चल रहे हैं, जब हमारी अभिरूचि होगी तो हम चले जायेगें। वह लोग गंगा स्नान को चले गये और उन्होंने वहाँ बड़ा आश्चर्य देखा कि श्री प्रभुजी गंगा स्नान पर उन सब के साथ रहे और वहां कई लोगों से मिले।

श्री सिद्ध गुफा के सामने, कदम के वृक्ष के नीचे, एक अखाड़ा बनाया हुआ था। उस दिन श्री प्रभुजी सँवाई के बच्चों को इस अखाड़े में कुस्ती लड़ाते रहे।

अलीगढ़ के स्टेशन पर श्री प्रभुजी ने उसी समय प्रकट होकर एक भक्त कर्णसिंह को गाड़ी के नीचे कुचले जाने से बचाया। जब कर्णसिंह सवांई में श्री प्रभु चरणों में आया तो उस ने कहा–''महाराज! आप तो अलीगढ़ से मेरे साथ गाड़ी में नहीं आये, आप स्टेशन पर ही रहे, सो अब आप यहां कौन से वाहन से वहाँ से इतनी जल्दी आये हो ?''

जब गंगा स्नान वाले वापिस आये तो श्री प्रभु के स्थान–स्थान पर मिलने की बातें

करने लगे। जो व्यक्ति उन के पास उस दिन अखाड़े में रहे वह कहने लगे कि श्री प्रभुजी तो उस पर्व वाले दिन हमें कुस्ती लड़ाते रहे। उस बात को सुनकर गाँव में आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

प्रभु की माया प्रबल है, समझे कोई सुजाना।
जिस को बुद्धि देत हैं, होय उसे ही ज्ञाना'' ।।

७.१३ प्रभु कृपा से बुद्धि का विकास

ऐत्माद पुर का निवासी पं० रामचरन मूँकवत् श्री प्रभुजी के चरणों में सिद्धगुफा पर बैठा रहा करता था। शरीर से जो बन जाती वह सेवा करता रहता था। उस की बुद्धि का बिलकुल भी विकास नहीं था। एक दिन एकान्त में अत्यन्त विनयभाव से आये उस दीन ब्राह्मण को देखकरके दीन–बन्धु श्री प्रभुजी ने कहा–''यह विभूति खाले। आज से तू पंडित माना जायगा और आसपास के समुदाय में पूर्ण सम्मानित होगा। इसी से तुझे अर्थ लाभ भी होगा।'' श्री प्रभुजी के मुखारबिन्दु से निकली हुई वाणी अमोध थी। जो कुछ मुख से निकला वह तत्काल हो गया। वह धन–धान्य से परिपूर्ण हो गया। ऊँचे पंडितों में स्थान पा गया। कैसे हैं दयालु प्रभु!

७.१४ यदृच्छा गति

प्रभु सर्वशक्तिमान, 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' की शक्ति वाले अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये क्या नहीं करते। आवश्यकता केवल एक बात की है और वह है उन के चरणों का अनन्य चिन्तन।

संवाई गाँव के परम गुरू भक्त ठा० भगवानसिंह सरल व्यक्ति थे। घर में हमेशा अर्थाभाव रहता था किन्तु उनकी प्रेम निष्ठा में कोई कमी नहीं थी। समय–समय पर उन के साथ श्री प्रभुजी की विलक्षण कृपायें घटित होती रहती थीं। ठा० भगवान सिंह को आवश्यक कार्य की सूचना तब मिली जब वहाँ पहुँचने के लिए कोई भी साधन उपलब्ध नही था। जिस गाड़ी से गन्तव्य स्थान पर जाया जा सकता था उस के स्टेशन पर पहुँचने के समय में केवल पाँच मिनट बाकी थे। जिस स्टेशन पर पहुचना था वह गाँव से आठ मील की दूरी पर था। पाँच मिनट के अन्दर ८ मील पर पहुंचा देने का कोई साधन नहीं था। भगवान सिंह को अत्यन्त मानसिक कलेश हुआ। उन्होंने मन ही मन आर्त्तभाव से प्रार्थना की ''हे! दीनबन्धु आप आर्त हरण हैं। सिद्धों के महासिद्ध योग योगेश्वर मेरी सहायता करो और कृपाकर मुझे गन्तव्य स्थान पर पहुँचावो ताकि मेरा यह कार्य बन सके।'' भव भय हारी योग योगेश्वर श्री प्रभुजी ने अपने बच्चे की आर्तपुकार को सुना। आकाश–वाणी हुई, ''बेटा चलो!'' यह सुन भगवानसिंह गद्गद् हो उठे। श्री प्रभुजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके ठा० भगवान सिंह जी चल पड़े। बड़ा ही आश्चर्य हुआ। ज्योंही वह कदम उठा कर आगे को रखते थे उन का एक एक कदम कई कई फलांग पर पड़ता था। जो व्यक्ति अभी एक क्षण के अन्दर 2–3 फर्लाग आगे दिखलाई देता है वह कदम उठाते ही कई फर्लाग पीछे दिखलाई देता था। बड़ी भारी आश्चर्य की बात यह हुई कि देखते ही देखते 10–15 कदम चलनेपर ही भगवान सिंह रेलवे स्टेशन पहुंच गये। वहाँ जा कर घड़ी देखी तो वही पाँच मिनट ज्यों के त्यों बकाया थे। वह ठीक अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच गये। जिस कार्य को वह लक्ष्य करके गये थे, पहुंचते ही वह पूरी तरह सफल हो गया। श्री प्रभुजी का अपने ऊपर इतना अनुग्रह देख ठा० भगवान सिंह कृतकृत्य हो गये।

७.१५ ठा० बाबू राम को चरण पादुका का दान

ठा० बाबूराम विलक्षण संत सेवी सज्जन थे। श्री प्रभुजी के चरणों पर तन मन से न्यौछावर थे। उन की एक लड़की थी। घर में पैसे का बहुत अभाव था। भक्त बाबूराम युवा बेटी के विवाह की चिन्ता होते हुए भी प्रभु के चरणानुराग में बिल्कुल लापरवाह थे। लड़की का विवाह निश्चित हो गया। बारात के आतिथ्य का कोई साधन दिखलाई नही दे रहा था। मन में भावना थी कि जैसे उन कृपा निधि जी की इच्छा होगी सब शुभ होगा। लोग बाबूराम के भोलेपन व आत्म समर्पण्ता को देखकर उपहास करने लगे। लोग कहते थे देखें अब बाबूराम क्या करेगा और क्या उस के बाबाजी करेंगे। बाबूराम श्री प्रभु चरणों में प्रणाम कर कहीं चुपचाप अन्यत्र प्रस्थान का सोच रहा था। ऐसा सोचता वह श्री प्रभुजी के चरणों में पहूँचा। घट–घट की पहचानने वाले भक्त वत्सल श्री प्रभुजी अपने आसन पर बैठे मुस्करा रहे थे। बाबूराम को चिन्तित होते देख कर बोले ‘‘क्यों बाबूराम तुम्हारा मन अत्यन्त उदास क्यों दिखाई दे रहा है। क्या तुम अपने मन की दारूण व्यथा हम को बतलाओगे ?’’ श्री दीनबन्धुजी के ऐसे करूणा वचन सुन ठा० बाबूराम ने अपनी करूणा कहानी कह सुनाई। बाबूराम की उस विनय को सुन करके श्री प्रभुजी का हृदय द्रवित हो उठा और मुस्कराते हुए बोले कि ‘‘बस इतनी सी बात के लिये तुम घर छोड़कर जा रहे हो, यह लो हमारी चरण पादुका ले जाओ इन को भण्डारे में एक चौकी पर रख देना। भण्डारे के सामने पर्दा रखना उस में हर कोई व्यक्ति प्रवेश न करे। भण्डारे में रखी हुई यह चरण पादुकायें तुम्हें मनोवांछित फल देंगी। भण्डारे से जिस वस्तु की आवश्यकता हो उसे तुम निकाल लिया करना। तुम्हें सभी अभीप्सित वस्तुयें मिलती रहेंगी। जिस दिन बारात विदा हो जाये, उसी दिन बारात की विदाई के बाद हमारी चरण पादुकायें हमें लौटा जाना।’’ बाबूराम ने श्री प्रभुजी की वाणी पर विश्वास करके वैसा ही किया। सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। बाबूराम का भण्डारा भरपूर हो गया। सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि बारात की विदाई के बाद जिस दिन चरण–पादुका लौटाई उस दिन पूर्वोपार्जित सामग्री ज्यों की त्यों शेष थी। जो लोग उपहास करना चाहते थे इस आश्चर्य को देख करके सभी लोगों के मुख बन्द हो गये।

जाको राखै साइयाँ, मार सकै नहि कोय।
बाल ने बाँका हो सकै, जो जग बैरी होय।।

७.१६ कृषक पर कृपा

सवाँई गाँव के एक कृषक ने कई बीघा जमीन में घिया की बेलें लगाई थी। ‘‘जीवन तत्व साधन’’ करने वाले साधक उसी से कच्ची सब्जी लिया करते थे। किन्तु कच्ची सब्जी खाने वालों की संख्या इतनी बढ़ी कि उस के सारे खेत में एक भी घीया उपलब्ध नहीं हो पाई। श्री प्रभु जी ने स्वयं खेत वाले को बुलाकर कहा कि ‘‘भाई आज एक छोटी सी घिया तू हमारे लिये ला दे।’’ वह श्री प्रभुजी की आज्ञा पाकर के बड़े हौंसले से अपने खेत में गया किन्तु पूरा प्रयत्न करने पर भी उसे सारे खेत में एक भी धीया नही मिली। उस ने लौट करके बड़े दीन भाव से श्री प्रभु चरणों पर गिर करके प्रार्थना की कि हे दीनबन्धु! ‘‘मेरे बहुत प्रयत्न करने पर भी सोर खेत में एक भी धीया नही मिली। प्रभो मेरा बड़ा ही मंद भाग्य है जो आप ने एक छोटी सी धीया मुझ से मंगाई किन्तु वह भी पूरा प्रयत्न करने पर नही मिली।’’ कृषक की आंखों में आंसु थे व मन में बड़ा पश्चाताप था। योगेश्वर राम प्रभु का हृदय उस की दीन पुकार पर अत्यंत द्रवित हुआ और प्रसन्न

मुद्रा में कृषक को कहने लगे, ''अरे भाई तू कैसे कहता है कि तूझे धीया नहीं मिली, चल हम स्वयं चलेंगे और तेरे खेत में घिया ढूँढ़ेंगे।'' श्री प्रभुजी स्वयं साधन करने वालों के साथ चल कर उसके खेत में गये। ज्यों ही श्री प्रभु जी ने खेत में प्रवेश किया त्यों ही स्थान पर बड़ी–बड़ी लम्बी धीया बेलों पर लगी हुई दिखाई देने लगीं। श्री प्रभुजी ने एक घिया अपने हाथों उतार कर खेत वाले से कहा–''ले देख, तू तो कहता था कि हमारे खेत में धीया ही नही है, किन्तु इतनी बड़ी लम्बी–लम्बी घीया तेरे खेत में पड़ी हैं।'' साधक खानेवाले उन धीयों को खा कर तृप्त हो गये। उस दिन से उस के खेत में धीयाओं का पारावार न रहा। दूसरे दिन से साधकों के लिये जितनी भी वह सब्जी खा सकते थे, उस कृषक ने सेवा रूप मुफ्त देनी आरम्भ कर दी। अभी तक भी सवांई गांव के वासी इस विलक्षण घटना को निरंतर स्मरण करते रहते हैं।

७.१७ जवाहर पहलवान का गर्व

श्री प्रभुजी सिद्ध गुफा (संवाई) के पास अखाड़े में बच्चों को कुश्ती करना सिखाते थे ताकि उन का तन और मन चुस्त बने। वहाँ का एक ज्वाहर नाम का पहलवान अपने अभिमान के कारण किसी को कुछ भी नही समझता था। इस पहलवान के शिष्य अखाड़े में कुश्ती करने वाले बच्चों को कई वार धमकाते थे। एक दिन पहलवान के शिष्यों ने उसे कहा कि आप को बाग वाले बाबा के बालक कुछ भी नही समझते। पहलवान को क्रोध आया और वह गुरू के वाग में गया। वहाँ श्री प्रभुजी के कुछ वाल कसरत कर रहे थे। ज्वाहर पहलवान ने उन में दोष निकालने आरम्भ कर दिये। उस पर एक बालक ने पहलवान को कहा कि ''तुम चाहो तो मुझ से कुश्ती करके देख लो। इस पर अहंकारी ज्वाहर पहलवान ने कहा कि तुम बालक मेरे साथ कुश्ती तो क्या लड़ोगे (अपनी लात को आगे कर) तुम या तुम्हारे गुरू मेरी इस लात् को उठा कर दिखा दो।'' उस बालक को श्री प्रभुजी के लिए पहलवान का बोल बहुत बुरा लगा उस ने कहा ''कि तुम अपनी लात को ऐसे ही रहने दो'' और वह बालक अपने घर चला गया। पहलवान की लात टेढ़ी ही रह गई और वह लंगड़ाता हुआ अपने स्थान पर गया। पहलवान ने बहुत ईंलाज करवाये 17 साल उस की लात टेढ़ी ही रही। ई सन् 1930 में कृपानिधान श्री प्रभुजी पुनः संवाई पधारते हैं तब जवाहर पहलवान आर्त होकर पुकार करता है कैसे ? यह प्रसंग आगे यथा स्थान पर मिलेगा।

७.१८ सिद्धगुफा सवाँई से योग योगेश्वर श्री प्रभु राम लाल जी महाराज का आकाश गमन (ई०सन्1913)

सवाँई में श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में लोगों का आकर्षण दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा था और सभी की हार्दिक इच्छा थी कि योगेश्वर राम लाल प्रभु के कृपामय चरण कमलों से कभी भी बिछोह न हो।

एक दिन श्री प्रभुजी ने उन्हें आज्ञा दी कि आज सभी लोग हमारे पास से चले जायें क्योंकि हम अन्दर गुफा में जाकर के समाधि लगाना चाहते हैं। वे लोग जाना नहीं चाहते थे। उन के इस आग्रह को देख कर श्री प्रभुजी ने कहा कि भाई इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हो, लो हम अन्दर गुफा में चले जाते है और तुम लोग अपने विश्वास के लिये बाहर की कुण्डी लगा कर ताला लगा जाओं। फिर तो हम कहीं नही चले जायगे। किन्तु यह याद

रखना कि कोई भी ताला खोल कर अन्दर न आने पाए। हमारी समाधि में कोई विध्न न हो। श्री प्रभुजी का ऐसा आदेश सुन करके लोग चुप हो गये और अपना अहोभाग्य समझा कि श्री प्रभुजी यहाँ ही समाधि लगा रहे हैं। लोगों ने गुफा की कुण्डी लगा ताल लगा दिया और ताला लगाने के बाद भी कुछ लोग गुफा के द्वार पर लेटे रहे। यह भोले गांव वाले उन योगेश्वर रामप्रभु के चरित्र को कैसे समझ सकते थे। उन के लिये तो गुफा में से निकलने का यही एक द्वार था जिसे वह ताला लगा कर बैठे हुये थे। श्री प्रभुजी गुफा में जा कर समाधिस्थ हो गये और लगभग अर्द्धरात्रि के समय अणिमा के द्वारा अपने स्थूल शरीर को अणुवत बना करके बाहर निकल आये और आकाश मार्ग से हरिद्वार की ओर चले गये। जिस समय श्री प्रभुजी ने आकाश मार्ग से गमन किया उस समय ग्राम के वासी प्रायः सो चुके थे। आश्विन का महीना था। अतः रात्रि को हल जोतने वाले लोग अपने-अपने खेतों में हल जोत रहे थे। उन्हीं में एक परम भाग्यशाली व्यक्ति 'सूखा' नामक धीमर था। वह भी अपने खेत में हल जोत रहा था। उसकी दृष्टि आकाश की ओर उठी तो सहसा देखा कि दिव्य जटाधारी स्वरूप है और प्रभु जी बड़ी तेजी के साथ आकाश से होते हुये जा रहे हैं। उस भोले-भाले व्यक्ति के लिये वह पहला मौका था। वह अत्यन्त भयभीत हो गया। उसने अपने मन में विचार किया यह क्या बला है ? मनुष्य आकाश में उड़ता जा रहा है। मुझ पर कोई संकट आने वाला न हो या यह कोई भूत प्रेत या कोई बला न हो। इसी भय से अत्यन्त भयभीत होकर उसने हल छोड़ दिया और इच्छा की कि मैं शीघ्र ही दौड़ कर घर चला जाऊं। किन्तु वह दीनबन्धु जी उसकी दीन दशा को सहन नहीं कर सके और आकाश मार्ग से जाते जाते पुनः लौट कर आ गये और आकाश में ठहर कर कहा ''अरे सूखा तू हमें पहचानता नहीं, हम गुफा वाले बाबा हैं, तू हमें बला समझता है ऐसी बात कुछ नहीं है। चिन्ता को छोड़ कर अपना हल जोत, हम वही गुफा वाले बाबा हैं जिनके पास तू सैकड़ों बार आया जाया करता है। अब यहाँ से गाँव में जाकर के हमारी हिमालय चले जाने की बात तुम किसी से कहना नहीं।'' इतने शब्द कह करके श्री प्रभु जी पुनः उसी आकाश मार्ग से हरिद्वार को चले गये। उधर सूखा धींमर से न रहा गया। वह तत्काल हल को छोड़कर गाँव चला आया और गाँव में आकर उसने लोगो को स्पष्ट कह दिया कि भाई आज तो गुफा वाले बाबा आकाश मार्ग से उड़ते हुये हिमालय को चले गये हैं। सूखा धींमर के मुख से निकलते ही यह बात कर्ण परम्परा से सब गाँव में फैल गई। गाँव के लोग तत्काल दौड़े हुये आये। वहाँ पर जो लोग बाहर ताला लगा करके गुफा पर सो रहे थे। उनसे आकर कहा कि भाई तुम यहां सो रहे हो, बाबा तो आकाश मार्ग से चले भी गये। रात्रि को उन्हें आकाश से जाते हुये सूखा धींमर ने देखा है। इन सब बातों को सुनकर लोगों ने तत्काल कुटिया का ताला खोला। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात थी कि भीतर से श्री प्रभु जी ने कुण्डी लगाई हुई थी। अतः कोई भी गुफा में प्रवेश न कर सका। किन्तु सभी के मन में महान कौतूहल था और यह जानने की तीब्र लालसा थी कि वह योग योगेश्वर परम पुरूष श्री प्रभु जी अभी गुफा में ही हैं या सचमुच ही चले गये हैं। अन्दर से कुण्डी बन्द थी इसलिये कोई उपाया नहीं सूझता था जिससे कि गुफा में प्रवेश कर सकें और यह जान सकें कि श्री प्रभु जी यहाँ हैं या नहीं। अन्ततः सब प्रकार से विचार कर लेने के बाद यही निश्चय हुआ कि दीवार तोड़ कर अन्दर घुसा जाय तभी यह निश्चय हो सकता है कि तथ्य बात क्या है। अन्ततः सूर्योदय के बाद कुटिया की दीवार को तोड़ करके एक ठा० ज्वालाप्रसाद को जो अभी भी मौजूद है अन्दर घूसाया। कुटिया की दीवार को तोड़ देने के बाद ज्वाला प्रसाद धीरे-धीरे निस्तब्ध भाव से पैरों को दबा कर गुफा में घुसे। अन्दर जाकर देखा कि श्री प्रभु जी वहाँ नहीं थे। केवल मात्र एक लोटा और एक पुस्तक रखी थी। ज्वालाप्रसाद ने बाहर आकर के सबको बतला दिया कि वह कृपा निधि

जी अपने विचारानुसार हिमालय के बनों को चले गये। हमारी तुम्हारी पाबन्दियाँ व पहरेदारी, उन पर किसी भी प्रकार से सफलीभूत न हो सकीं। जिस समय यह समाचार ठा0 ज्वालाप्रसाद के मुख से सभी प्रेमियों ने सुना तो सभी के मन अत्यन्त व्याकुल हो उठे। अत्यन्त आर्तभाव से फूट–फूट कर रोने लगे और प्रार्थना की कि हे प्रभो! हमारे हृदयों को आपने अपना घर बनाया है। योगेश्वर! फिर आप दीनों की तरह से हमें छोड़कर चले गये। हम आपके बच्चे हैं। अनाथों की तरह से मारे–मारे फिरेंगे। इसलिये कृपा नाथ अपने दीन बच्चों की संभाल करो और दर्शन दो। जिस समय यह सब व्याकुल मन से अन्तर हृदय से प्रार्थना कर रहे थे उसी समय गुफा के अन्दर से एक आवाज सुनाई दी और वह यह थी ''भाई! तुमने हमारे साथ जिद की, इसलिये ऐसा हुआ। अब डरो मत। लगभग 12 वर्ष बाद हम फिर आवेंगे। उस समय जो पहचान सको तो पहचान लेना।'' इस वारणी के सुनाई देने के बाद फिर कोई शब्द सुनाई नहीं दिया। सभी भक्त समुदाय अपने हृदय से श्री प्रभु जी का गुणानुवाद करते हुए अपने–अपने कार्यों में लग गये।

७.१९ श्री प्रभुजी का हरिद्वार में आगमन और योग प्रचार

श्री सिद्धगुफा सवांई से योग योगेश्वर श्री रामलाल प्रभु आकाश–मार्ग द्वारा ब्रह्मपुरी आकर वहां गुफा में रहकर ई0 1915 के हरिद्वार कुम्भ से कुछ समय पहले वह हरिद्वार पहुंचे। वहां गंगा जी के दक्षिण तट पर मन्दिर हैं और वायें तट पर एकान्त में साधु लोग रहते थे। श्री प्रभुजी भी श्री गंगा जी के बायें तट पर एकान्त स्थान में रह कर श्री महाप्रभुजी का ध्यान और समाधि लगाने लगे। श्री प्रभुजी कुछ मास वहाँ पर योग साधना करते रहे। फिर जब साधुसमाज को श्री प्रभुजी के वहाँ समाधिस्थ साधना करने का पता चला तो वह योग का ज्ञान प्राप्त करने श्री प्रभुजी के पास आये। वहाँ एक युवक साधु ने श्री प्रभुजी को प्रार्थना कर मन को वश में करने का साधन पूछा। श्री प्रभुजी ने फरमाया कि जो साधक अपने मन को वश में करना चाहता है उसे पहले योगाभ्यास द्वारा प्राण रोकने की साधन करनी होगी। मन और प्राणों का बड़ा गहरा सम्बंध है। मन तब रूके गा जब प्राण रूकेंगे और प्राणों के उखड़ने पर मन भी उखड़ जायेगा। जिस भक्त को अपने गुरू चरणों में श्रद्धा और विश्वास हो, सम दृष्टि हो और अपनी इन्द्रियों पर कोन्टरोल हो वह एकांत में मन को शांत करके आसन पर बैठ योगाभ्यास द्वारा प्राणों की सिद्धि को प्राप्त करता है। श्री प्रभुजी का योग पर उपदेश कई दिन चलता रहा और श्री प्रभुजी ने साधुयों को योग सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर दे उन की शंकायों का निवारण किया।

७.२० हरिद्वार 'कुम्भ' पर लोगों को दर्शन व शिक्षा

कुम्भ के अवसर पर श्री प्रभु जी रात को हरिद्वार के मन्दिर में ठहरे और प्रातः काल नित्य कर्म से निपट कर वहां पर ध्यान मग्न हो गये। कुंभ के लोग श्री प्रभु जी के दिव्य तेज को देख उन के चरणों में प्रणाम कर उन से शिक्षा पाने के लिए प्रार्थना करने लगे हे प्रभो! ''कुंभ के समय ऋषिगण हिमालय से जब यहाँ आते हैं तो उन के दर्शन व उपदेश पाने के लिए हम लोग बड़े दूर दूर स्थानों से यहां आते हैं, सो कृप्या हमें कुछ शिक्षा दीजिए जिस से हमारा जीवन धन्य हो सके।'' उन की प्रार्थना पर श्री प्रभुजी ने फरमाया कि ''भक्तो सब के घट में एक जोत है जिस को आत्मा कहते हैं और जैसे नभ में सूर्य का प्रकाश है एसे ही घट में आत्मा का प्रकाश विद्यमान है। जब हमारा अन्तःकर्ण

शुद्ध हो तो आत्मज्ञान होता है और इस आत्मा के प्रकाश का अनुभव हो पाता है। यह ज्ञान केवल मानव तन में ही सम्भव है। इस लिए विषयों से मन को मोड़ कर योगी गुरू को पा कर, उन के बताये साधन द्वारा इस मन को एकाग्र कर आत्म साक्षात्कार द्वारा अपना जीवन धन्य करने का प्रयत्न करो''। श्री प्रभुजी के दर्शनों के लिये बहुत जन समूह वहाँ उमड़ा और हर रोज बढ़ता गया। श्री प्रभुजी उन को योग का उपदेश और शिक्षा देते, जिसे सुन कर वह श्री चरणों पर बलीहारी जाते।

७.२१ घरवालों का योगेश्वर राम को ढूँढने हरिद्वार 'कुम्भ' पर जाना (ई 1915)

अमृतसर से भाई तीर्थराम, श्री मती सुभद्रा आदि गंगा जी के तट पर स्नान ध्यान कर कुम्भ के मेले में श्री प्रभु रामलाल जी को ढूंढने लगे। तब श्री तीर्थराम को लोगों ने बताया कि प्रातः हर रोज एक विख्यात योगी यहां सत्संग करते हैं और प्रेमीयों का समुह उन के दर्शन करने के लिए उमढ़ आता है। इस पर सब ने उस योगी महात्मा के दर्शन करने का विचार बनाया।

जब श्री तीर्थ राम ने उन योगी महात्मा जी के, सब के साथ, दर्शन किये तो उन को वह श्री रामलाल जैसे ही लगे। तो उन्होंने विनय भाव से प्रार्थना की कि ''हे योगिराज! ''हम दूर अमृतसर नगर से अपने भाई रामलाल को, जो अपने पिता श्री गंडाराम जी के गोलाक सिधारने के बाद, घर त्याग कर सात साल पहले चले गए थे, उन को ढूढं–ढूढं कर हार चुके हैं। कृप्या आप हमारी सहायता करें''

निर्मोही योगिराज को संसार कैसे बांध सकता है। जैसे ही तीर्थ राम ने प्रार्थना की तो देखा कि वह योगिराज अपने आसन से लोप हो गए और सभी लोग पछताने लगे। उन की व्याकुलता को देख कृपालु योगेश्वर राम उन सब के मध्य में प्रकट होकर अपनी योग यात्रा द्वारा श्री महादेव भगवान सदा शिव को श्री सत्गुरू रूप में प्राप्त करने का वृतान्त सुनाते हुए कहा कि उन की आज्ञा अनुसार हिमालय को छोड़ जग में यहां कुम्भ के मेले में रामलाल आप के सम्मुख आसन पर बैठा हुआ है। जब तीर्थ राम ने श्री प्रभुजी से यह रहस्य जाना तो बड़े प्रेम से उन को अपने गले लगाया। श्री मती सुभद्रा जी ने श्री प्रभु चरणो को अपने प्रेम भरे अश्रुओं से नहलादिया। सारी जनता ने जय जयकार की और देवों ने दिव्य पुष्पों की वर्षा कर श्री प्रभुजी के जग प्रवेश पर स्वागत किया। अमृतसर से आये घर वालों की घर चलने की आर्तपुकार को सनुकर श्री प्रभुजी कुम्भ पर्व स्नान के बाद अमृतसर कटराभाई संतसिंह में पधारे।

७.२२ अमृतसर में चाची के साथ हुई अलौकिक घटना

सब अमृतसर निवासी श्री प्रभु जी के जटाधारी तेजोमय दिव्य स्वरूप को देख प्रभावित हो उठे। पड़ोस में रहने वाली एक देवी, जिसे सब चाची कहा करते थे, उसने श्री प्रभु रामलाल जी महाराज के दर्शन कर वार्तालाप करते हुए पूछा–''आपने जटाएँ ही बढ़ाई हैं या कुछ प्राप्त भी कर आये हो''। उत्तर में श्री प्रभु जी ने कहा–चाची! ''सब कुछ प्राप्त

कर लिया है''। चाची बोली–''कुछ तो दिखाओं''! इतना सुन आप चुपचाप घर की ओर चले आये। तदुपरान्त उस चाची को अपने मकान में सर्प ही सर्प दिखाई देने लगे। वह डर के मारे, आप को कुछ दूरी पर सामने मुस्कराते देख, जोर जोर से आवाजें लगाने लगी। आप पुनः चाची के पास चले गये और कहा–''चाची! यह सर्प विषधर नहीं हैं। आप को कुछ नहीं कहेंगे''। परन्तु चाची को अब सारे मकान में बल्कि सीढ़ियों में भी जब सर्प ही सर्प दृष्टिगोचर होने लगे, तब वे बहुत घबराई। चाची को इस प्रकार घबराई देख श्री प्रभुजी ने सर्पों को आज्ञा दी, ''जाओ भाई, जाओ! हमारी चाची डर रही है''। इतना सुनते ही सब सर्प लुप्त हो गए। तब चाची की जान में जान आई।

७.२३ भक्त की प्रार्थना

सर पे मेरे अगर हाथ रख दो प्रभु, मैं यूँ ही मस्त चरणों में बैठा रहूँ।
भूल जाऊँ मैं दुनियाँ के रंजों आलम, और यूँ मस्त चरणों में खोया रहूँ।। सर पे मेरे ...
न खाने की सुध हो न पीने का गम, बस यूँ ही तेरे नाम को रटता रहूँ।
देखता ही रहूँ तेरी सूरत को मैं, जलवा हर दम इसी का ही पाता रहूँ।। सर पे मेरे ...
हे मेरे ईश्वर मेरे दाता प्रभु, मन के मन्दिर में तुमको बिठाता रहूँ।
और न आये कोई भी दिल में मेरे, तेरे गुणगान हरदम मैं गाता रहूँ।। सर पे मेरे ...
न जीने की चाह हो न मरने का गम, तेरे चरणों में सब कुछ लुटाता रहूँ।
ऐसी कृपा कोई मुझ पे कर दो प्रभु, कि मैं तेरी ही मस्ती में खोया रहूँ।। सर पे मेरे ...
रामलाल तुम ही, मेरे सत्गुरु तुम्ही नाम माला में हरदम ये रटता रहूँ ।
मेरे राम तुम ही, मेरे कृष्णा तुम्हीं, तुमको हरदम मैं संग अपने पाता रहूँ।।
अपने तन मन की सुध मुझको हो न प्रभु, तेरे नगमें मैं हरदम सुनाता रहूँ।।। सर पे मेरे

७.२४ भजन

नजर भर देख ले मुझको शरण तेरी मैं आया हूँ, कोई माता पिता बन्धु सहायक है नहीं मेरा ।
काम और क्रोध दुश्मन ने बहुत दिन से सताया हूँ।। नजर भर.....
भुलाकर याद को तेरी पड़ा दुनिया की लालच में, माया के जाल में चारों तरफ से मैं फसाया हूँ।
कर्म सब नीच हैं मेरे, तुम्हारा नाम है पावन।। नजर भर.....
तार संसार सागर से, गहन जल में डुबाया हूँ, छुड़ा कर जन्म बंधन से चरण में राख ले अपने।
वो ब्रह्मानंद मैं मन में यही आशा को लगाया हूँ।। नजर भर.....

८ योगशक्ति सम्पन्न महापुरुष

८.१ गृहस्थी रूप में योग योगेश्वर प्रभु श्री राम लाल जी महाराज

अमृतसर घर आने पर श्री प्रभुजी ने जगत की मर्यादा रखने के लिये अपने जटाजूट वन वेश का त्याग कर सधारण पंडित वेश में रहना प्रारंभ कर दिया, ताकि कोई उनके वास्तविक स्वरूप एवं सामर्थ्य को पहचान न सके। उस समय आनन्दकन्द योगयोगेश्वर प्रभुजी महाराज अमृतसर के भाई के कटरे में निवास करते थे। उनके प्रखर तेज से आकर्षित होकर समय–समय पर कितने ही संस्कारी जीव श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ आया करते थे। जिन लोगों को श्री कृपानिधि जी की कृपा से दिव्य अनुभूतियाँ होती थीं, वे लोग प्रभुजी का पूजन सदैव ईश्वरीय बुद्धि से करते थे एवं उनकी असीम शक्ति के अनुरूप ही अनेकों दिव्य स्तुतियाँ भी करते थे। इस प्रकार पण्डित वेश में छिपे होने पर भी अनेकों प्राणी उनकी शक्ति–सामर्थ्य से परिचित होते जाते थे; एवं उनके चरण–कमलों की महिमा नगर भर में फैलती जाती थी।

८.२ डा० रामगोपाल (ब्र० गोपालानन्द जी) का जीवन दर्शन

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द का जन्म ई० सं० 1899 (सम्वत् 1956) में हलद्वानी जिला नैनीताल के एक अग्रवाल वैश्य परिवार में हुआ था। उन का बचपन का नाम रामगोपाल था। उन्होंने आयुर्वेदिक कालेज लाहौर से शिक्षा पूर्ण कर हलद्वानी में चिकित्सा कार्य आरम्भ किया। उन के मन में लगन थी कि पूर्णा योगी सत्गुरू द्वारा योग विद्या को प्राप्त करूँ। एक योगाभ्यासी महात्मा उन्हें अलमोड़ा में मिले जिन से योगदीक्षा लेने की उन्होंने प्रार्थना की। वह महात्मा ध्यानमग्न हो बाद में उन से बोले, ''बेटा! तुम अधिकारी अवश्य हो, पर मैं तुम्हारा गुरू नहीं हूँ। कुछ समय बाद तुम्हें परिपूर्ण गुरु की प्राप्ति होगी। उन का गौर वर्णा है, पंजाबी शरीर है। दीन जनों के उपकार के लिए वे हिमालय से उत्तर कर आयेंगे। उन्हीं के द्वारा तुम्हारा पूर्ण कल्याण होगा।'' मुरादाबाद में एक और योगी महात्मा का सत्संग लाभ उन्हें हुआ और उन्होंने इन महात्मा जी से दीक्षा ले ली, पर ब्रह्मचारी जी उन से भयभीत रहते थे क्योंकि उन के गुरू का स्वभाव कुछ कटु था।

८.३ आनन्दकन्द श्री सद्गुरु देव पं० रामलाल जी महाराज के परम प्रिय कृपा पात्र ब्र० गोपालानन्द जी को प्रभु दर्शन व ध्यानानुभव

श्री प्रभु रामलाल जी महाराज भक्तों की प्रार्थना पर सहारनपुर (यू०पी०) पधारे हुए थे। ब्रह्मचारी जी ने उन की कीर्ति सुनी और दर्शन के लिये गये। गुरू पूर्णिमा का दिन था। भक्त मण्डली ने पुष्पों से सिंहासन सजा कर श्री प्रभुजी को गंगा जल, दही, दूध आदि से स्नान करा, अच्छे वस्त्र पहनाकर आरती पूजन किया।

डॉ० रामगोपाल इस को ब्रह्मणों की पोप–लीला समझ, मन में अविश्वास की भावना लेकर चल पड़े। थोड़ी दूर जाने पर उन के एक मित्र मिल गये वह श्री प्रभुजी की प्रभुता से भली भांति परिचित थे। वह रामगोपाल जी की बात सुन, सब समझ गये और उन को उद्यान में बिठाकर श्री प्रभुजी के चरणों में आये और प्रार्थना की कि प्रभो! डा० रामगोपाल आप के चरणों में बड़ी आशा से आये थे और निराश लौटे जा रहे हैं। आप

उन्हें अपने चरण कमलों का अवलम्बन देकर कृतार्थ करें। श्री प्रभुजी ने कहा–''उन्हें बुला लाओ''। वह रामगोपाल जी को बुला लाये। श्री प्रभुजी ने हंसते हुये रामगोपाल से कहा–''भाई यहाँ तुम्हारी श्रद्धा कैसे होगी। तुम किसी ऐसे योगिराज महात्मा को ढूंढो जिस के सिर पर लम्बी जटाये हो। चेहरे पर विभूति हो और जो दम्भ से रहित हो''। अपने मन के भावों को इस प्रकार श्री प्रभुजी के मुख से व्यक्त होते देख कर डा0 रामगोपाल के हृदय में श्रद्धा का समुद्रा उमड़ पड़ा। उन्होनें हाथ जोड़कर प्रार्थना की ''प्रभु! मैं आप के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ सका। उपरी चीजों को देखकर मेरा मन अपने दम्भ में बह गया। मुझे क्षमा करें, मैं आपका एक दीन बालक हूँ।''

उस की दीन वाणी सुनकर दीनबन्धु प्रभु का हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने मिट्टी की एक डेली उठाकर दी और कहा–''इसे खा जाओ और एकान्त में बैठ कर अपने गुरू के बताये मंत्र का जप और ध्यान करो''। श्रद्धा पूर्वक वह डेली मुहँ में डालकर डाक्टर रामगोपाल ध्यान में बैठ गये। उन का हृदय आनन्द से भर उठा। कृत कृत्य होकर डा0 जी ने श्री प्रभुजी के चरणों में दंडवत प्रणाम किया और अपने गुरू के स्थान को लौट पड़े। डा0 रामगोपाल को देखकर उन के गुरू बिगड़ उठे। उन्होंने रोष पूर्वक कहा कि तुम्हें गुरू तो परिपूर्ण मिल गये हैं इस में कोई सन्देह नहीं। वह पूर्ण सिद्ध योगिराज हैं किन्तु यहाँ का भी तो कुछ प्रसाद लेता जा। आज से शेष जीवन में:–

1. तू जीवन भर रोगी रहेगा।
2. तेरी औषधियों में विष हो जायगा और चिकित्सा कार्य में विफल रहेगा।
3. जीवन भर तू दरिद्र रहेगा।
4. अन्त में तू सदगति को नहीं पा सकेगा।

सहसा चार शाप एक साथ मिल गये। डा0 रामगोपाल का हृदय काँप उठा। शाप पाते ही वह बीमार पड़ गये। उन्हें तीव्र ज्वर हो आया। श्री प्रभुजी उस दिन अमृतसर चले गये थे। जब ज्वर का बेग कुछ कम हुआ तो डा0 रामगोपाल ने श्री प्रभुजी को एक पत्र लिखा, जिस में शापों की कथा विस्तार से लिख दी। भक्त हितकारी श्री प्रभुजी ने लौटती डाक से उत्तर दिया–उस में लिखा था कि चिरञ्जीव नैपाल वाले देवों के देव महादेव सदा शिव लम्बा चिमटा लिये सदैव तुम्हारे साथ है। महात्मा ने तुम्हें जो शाप दिये हैं। उन का भुगतान उसी दिन दोपहर 12 बजे से रात 8 बजे तक कर दिया गया है। अब तुम स्वस्थ होंगे। मेरा पत्र पाने के बाद उन शापों का विपरीत फल होगा।

अब शेष जीवन में :–

(1) जीवन भर तुम स्वस्थ रहोगे।

(2) तुम्हारी औषधियों में अमृत का वास होगा। अपने चिकित्सा कार्य में तुम सफल होंगे ।

(3) चाहोगे तो इस से बहुत बड़े धनिक बन जाओगे।

(4) अन्त में तुम्हें सद्गति प्राप्त होगी।

रामगोपाल बारम्वार श्री प्रभुजी का पत्र पढ़कर गद्गद् हो गये। फिर उन्होंने ध्यान में धन का परिणाम भी देख लिया। उनके अंतःकरण में वैराग्य का सागर उमड़ पड़ा। वह अपने को रोक नहीं सके और आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ अमृतसर पहुँच गये।

डा० रामगोपाल को परम विरक्त भाव से आया हुआ देखकर श्री प्रभुजी ने उन पर अपनी अहैतुकी करूणा की वर्षा की व प्रसन्न होकर श्री प्रभुजी ने कहा-''बेटा! अब तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण होगा। तुम लाखों दुःखी जीवों के कल्याण का कारण बनोगे''। डा० रामगोपाल के पिता जी ने अपने पुत्र की तीव्र वैराग्य और परोपकार की भावना से पिघलकर स्वयं वस्त्र खरीद कर और अपने हाथों से रंग कर श्री प्रभुजी से उसे ब्रह्मचर्य दीक्षा देने का स्वयं आग्रह किया। श्री प्रभुजी न डा० रामगोपाल को ध्यान में प्रतिज्ञायें करवा कर ब्रह्मचर्य की दीक्षा प्रदान कर आशीर्वाद दिया-''बेटा! अब तूम संसार के लाखों जीवों के कल्याण का कारण बनोगे। तुम्हारे रोम रोम में भगवान श्री कृष्ण का प्रेम व्याप्त हो जायगा। उस प्रेम की विह्वलता में तुम हरि कीर्तन कराओगे। तुम्हारे संकीर्तन में शक्ति का संचार होगा। तुम्हारे द्वारा कराया गया संकीर्तन थोड़े समय वाद भारत के कोने कोने में फैल जायेगा। देश-विदेश के लाखों प्राणी इस संकीर्तन में डुबकी लगा कर भगवत् चरण अनुरागी बन कर कृतार्थ होंगे।'' श्री डा० रामगोपाल अब गोपालानन्द हो गये। इस वरदान के बाद ब्रह्मचारी गोपालानन्द श्री प्रभुजी के ध्यान में अहर्निश मग्न रहने लगे। बीच बीच में श्री प्रभुजी उन्हें एकान्त वास के लिए वनो में भेज देते थे। उन की ध्यान स्थिति इतनी ऊँची बढ़ी कि वे हर समय समाधि में लीन रहेन लगे।

८.४ भैरव सिद्ध महात्मा को दण्ड

अमृतसर में दुर्ग्याना नामक स्थान पर पक्के जलाशय से घिरा हुआ लक्ष्मीनारायण जी का एक विशाल मन्दिर है। श्री लक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर के सामने दक्षिण भाग में एक प्राचीन भैरवजी का मन्दिर बना हुआ है, जहाँ पर भैरवजी की उपासना एवं सिद्धि के लिए साधु-महात्मा आया करते हैं। दीपावली के अवसर पर तो देश-विदेश के साधुओं का यातायात काफी संख्या में रहता है। श्री भैरवजी के मन्दिर में अनायास ही ऐसे महात्मा आए जिन्होंने बड़े प्रयास से भैरव सिद्ध किया था। वह महात्मा लोगों से मान प्राप्त करने के लोभ में अपने सिद्ध किए भैरवजी की शक्ति से लोगों के कई प्रकार के अच्छे और बुरे कार्य करते रहते थे। संयोग से श्री प्रभुजी से ईर्ष्या रखने वाले लोगों को भी उस महात्मा के दर्शन प्राप्त हुए। अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए उपयुक्त अवसर आया जानकर उन लोगों ने अत्यन्त विनम्रता से उन महात्माजी से प्रार्थना की-''यहाँ पर एक गृहस्थ ब्राह्मण ने बड़ा दम्भ रचाया हुआ है। उनके शिष्य उन्हें साक्षात् भगवान सदाशिव, विष्णु आदि कहकर उनकी पूजा करते हैं। न जाने उन्हें कौन सी सिद्धि प्राप्त है, जिसकी शक्ति से अपने पास आने वाले हर व्यक्ति को वे अपना बना लेते हैं। उनके सम्मोहन में बंधे सभी व्यक्ति उनकी सब प्रकार से उत्तम सेवा करते हैं। आप अपनी योगशक्ति से उनके इस प्रपंच को छिन्न-भिन्न करके जन साधारण का भला कीजिए। यदि इस पाखण्ड का निवारण हो गया तो हम सभी लोग अधिक से अधिक तन, मन, धन से आपकी सेवा करेंगे।'' महात्मा ने इन लोगों का दुराग्रह स्वीकार कर लिया एवं बड़े अहंकार में भरकर श्री प्रभुजी के दरबार में आ पहुंचे। महात्मा के मन में अपने भैरवजी की शक्ति का बड़ा ही अभिमान था। वह अपनी शक्ति के सामने किसी की गिणना नहीं समझता था। इसी अभिमान के वशीभूत उसने वहां पहुंचते ही बड़े अपशब्दों का प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया-अरे ब्राह्मण! ''यह क्या पाखण्ड फैला रखा है ? तू स्वयं को ईश्वर कहकर पुजवाता है। यह पाखण्ड छोड़कर शीघ्र ही यहां से दूर हो जा अन्यथा हम अपनी योग शक्ति से तुम्हें सीधा कर देंगे।'' श्री लीलानिकेतन उसके अज्ञान पर मन में हंसे, परन्तु ऊपर से

अनजान जैसा व्यवहार करते रहे। कटुबचनों से जरा भी क्षुब्ध हुए बिना धीर एवं संयत वाणी में बोले–''अरे महात्मन्, हम तो साधारण ब्राह्मण हैं और आप बड़े महात्मा हैं। साधु तो स्वभाव से दयालु होते हैं, आप को ऐसे कटु शब्दों का प्रयोग करना शोभा नहीं देता।'' श्री प्रभुजी के इस प्रकार मान दिए जाने पर भी वह दुर्मन शान्त नहीं हुआ, न ही वह उनके इन भाव-गम्भीर शब्दों का आशय ही समझा। वह पूर्ववत् कुछ कुछ कहता रहा, परन्तु श्री प्रभुजी शान्त ही रहे। सर्वान्तर्यामी श्री प्रभुजी की अभिलाषा उन महात्मा का अपमान करने की नही थी। वह जानते थे कि वह थोड़ी देर तक बकवास करके स्वयं ही शान्त हो जाएगा और उसके भैरवजी की शक्ति भी यहाँ व्यर्थ ही रहेगी। अतः साधु के इस प्रकार बड़बड़ाने का परिणाम ही क्या हो सकता है ? अन्ततः उसे निराश लौटना ही पड़ेगा।

उस समय ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी भी श्री प्रभुजी के चरण कमलों के समीप ही बैठे थे। गुरूदेव की भक्ति से ओत-प्रोत उनका हृदय अधिक न सह सका और आवेश में भरकर श्री करूणानिधान के आन्तरिक भावों का विचार किए बिना ही वह ताड़ना के स्वर में उस महात्मा से बोले–''अरे नीच महात्मन्! मैं तुम्हें और तुम्हें यहाँ भेजने वालों को खूब जानता हूँ। इन करूणार्णव त्रिलोकपावन की दिव्य शक्ति को तुम क्या समझ सकते हो ? क्या देख सकते हो ? तुम्हारे जैसें के ऐसे भाग्य कहाँ कि इनके दिव्य स्वरूप के दर्शन प्राप्त कर सको।'' फिर सम्मुख बैठी एक आठ वर्ष की बालिका की ओर संकेत करते हुए ब्रह्मचारी जी ने कहा–''अरे, तू इन सर्वशक्तिमान की शक्ति को क्या देखेगा ? यह बालिका ही तुझे सब कुछ दिखा देगी। आँख खोल कर देख तेरे सामने यह कौन बैठी है ? ब्रह्मचारी जी के ऐसा कहने के बाद ज्योंही उस महात्मा ने आँख उठा कर देखा तो बड़े आश्चर्य में पड़ गया। अब सम्मुख बालिका नहीं अपितु साक्षात् अष्टभुजी महामाया भगवती दुर्गा एक दिव्य सिंहासन पर बैठी दिखाई दी। तीव्र तप उपासना के बाद सिद्ध किया हुआ भैरव उस महात्मा का संग छोड़कर अपनी मां दुर्गा की गोद में बैठ गया। भैरव ने भगवती से करवद्ध प्रार्थना की–माँ, क्या आज्ञा है ? क्या सेवा करूं ? भगवती ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी–''बेटा भैरव, इस दुर्मन महात्मा को तीव्र ताड़ना देकर यहाँ से भगा दो। इसने नित्य-चेतन परब्रह्म का अपमान करने का प्रयत्न किया है, यह इसकी परम दुर्मति है।'' माँ भगवती दुर्गा का आदेश पाते ही भैरव ने उस महात्मा का त्रिशूल उठाकर उसे पीटना प्रारम्भ किया। ताड़ना से व्याकुल होकर महात्मा ने श्री प्रभुजी की ओर रक्षा के अभिप्राय से देखा तो उसे उनका सदाशिव स्वरूप दिखाई दिया। यह अलौकिक दृश्य देखकर उसे बोध हुआ और उन अगाध कृपासागर के चरण कमलों में विनम्र करबद्ध प्रार्थना करने लगा–''हे प्रभु जी, आप के इस योगेश्वर्य को मैं नहीं जानता था। अतः अज्ञान में कहे गए कटु शब्दों के लिए बारम्बार क्षमाप्रार्थी हूँ। कृपा करके मेरी रक्षा कीजिए। हे दयानिधे, भैरवजी की कृपा से ही मेरा संसार में मान है। मेरे सारे काम बन रहे हैं। अतः भैरवजी को लौटाने की कृपा करें।''

अकारण दयालु श्री प्रभुजी उसकी करूण-पुकार से द्रवित हो गए। उसका भैरव लौटा दिया और महात्मा जी को एकदम अमृतसर छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी। महात्मा जी श्री प्रभुजी का आदेश शिरोधार्य कर तत्काल अमृतसर से कहीं प्रस्थान कर गये और उनको बहकाकर लाने वाला दुर्जन समुदाय भी निराश होकर लौट गया। परन्तु साथ ही इन लोगों के मन में भी यह धारणा बन गई कि श्री रामलाल जी महाराज कोई साधारण ब्रह्मण नही हैं। कोई सर्व समर्थ पूर्ण पुरूष अपने को इस वेश मे छिपाए हुए हैं, जिनकी महिमा प्रत्येक व्यक्ति नहीं जान सकता है।

इस प्रसंग में ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी ने जो कार्य किया था, वह श्री प्रभुजी को प्रिय नहीं था। उस महात्मा के चले जाने के बाद श्री प्रभुजी ने ब्रह्मचारी जी को आज्ञा दी-तुमने हमारे सामने हमारी इच्छा के विरूद्ध आपनी शक्ति का परिचय दिया है। अतः तुम हमारे पास से चले जाओ। श्री प्रभजी का यह कठोर आदेश सुनकर श्री ब्रह्मचारी जी ने विह्वल होकर उन कुपामय के चरण कमलों में बारम्बार विनयपूर्वक प्रार्थना की-''प्रभो! आप सर्वसमर्थ हैं। आप अपने चरण कमलों से छुड़ाकर मुझे कहाँ भेज रहे हैं? आपके चरण-कमलों के अतिरिक्त मेरे लिए और कौन सा स्थान है? दीनबन्धु जी, कृपा करके बताइये कि मैं कहाँ चला जाऊँ?'' ब्रह्मचारी जी के करूणापूर्ण वचनों को सुनकर दयासागर जी को दया आ गई। बोले-''बेटा, अब मेरे मुख से वचन निकल गया है। एक बार तुम्हें जाना ही है परन्तु शीघ्र ही लौटकर आजाओगे। तुम मौन होकर कहीं भी चले जाना। जो भी प्रथम व्यक्ति तुम्हें बुलाएगा और भोजन करायेगा-तुम उसी के साथ यहाँ वापिस आ जाना। वह व्यक्ति हमारा भक्त होगा और उसका यहाँ से सब प्रकार से भला होगा।''

८.५ महन्त बालकृष्ण दास पर अनुग्रह

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी का यह आदेश पाकर तत्काल ही ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी वहाँ से चल पड़े। इसी प्रकार चलते-चलते दो-तीन मील अमृतसर से आगे निकल गए। ब्रह्मचारी जी मौन होकर श्री कृपानिकेतन के चरणकमलों का ध्यान करते हुए अर्धोन्मीलित नेत्रों से चले जा रहे थे। अमृतसर से काफी दूर निकल जाने पर मार्ग में एक बाग पड़ा, जिसमें वैरागी महात्माओं की छावनी पड़ी हुई थी। इस छावनी के महन्त श्री बालकृष्णदास वैरागी थे, जिनका आसन मध्य में लगा हुआ था। सिर पर सुनहरी छत्र था। उनकी जटाएँ बहुत लंबी बढ़ी हुई, नीचे लटक रही थीं। ब्रह्मचारीजी को वहाँ से निकलते देखकर महन्त बालकृष्णदासजी ने पुकारा-''ब्रह्मचारी इधर आओ। तुम किसके ब्रह्मचारी हो? अब कहाँ जा रहे हो? तुम्हारे अर्धोन्मीलित नेत्र तुम्हारी उच्च अन्तः स्थिति को प्रकट कर रहे हैं। यह महती कृपा तुम्हें कहाँ से उपलब्ध हुई है? तुम किसके शिष्य हो? इस समय ध्यान में तुम किसे देख रहे हो?'' महात्मा के इस प्रकार के बचनों को सुनकर ब्रह्मचारीजी ने उत्तर दिया-''महाराज! जीवों पर परम अनुग्रह करने वाले योगयोगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज का मैं शिष्य हूँ और उन्हीं सर्वशक्तिमान की परम कृपा से मुझे हर समय दिव्यानुभव होते रहते हैं।'' यह सुनकर महन्त बालकृष्णदास ने अत्यन्त आदरपूर्वक ब्रह्मचारी जी को अपने पास बैठाकर भोजन कराया। भोजनोपरान्त बालकृष्णदास ने अपनी लालसा प्रकट करते हुए ब्रह्मचारी जी से कहा-''भाई! अपने उन सर्वसमर्थ सद्गरुदेव के चरणों में मुझे भी ले चलिए, जिससे उनकी परम कृपा को प्राप्त कर मैं भी कृतार्थ हो सकूँ।'' श्री प्रभुजी के वचनों को स्मरण करके ब्रह्मचारी जी उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उनको श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में लिवा लाए।

वैरागी बालकृष्णदासजी के मन में अपने विरक्त वेश का अभिमान तो था ही, फलतः श्री प्रभुजी के चरणकमलों में प्रणाम आदि नहीं किया। प्रत्युत दोनों हाथ उठाकर 'महाराज, आपकी जय हो' शब्द उच्चारण करके एक प्रकार से आशीर्वाद सा देने का ही प्रयास किया। अन्तर्यामी श्री प्रभुजी उस महन्त के अन्तर्गत भावों को पहिचान गये और उसको आदरपूर्वक एक आसन पर बैठा दिया। थोड़ी देर बाद प्रसंग चलने पर महन्त जी ने जिज्ञासा की-''प्रभो, क्या इस कलिकाल में भगवान श्री रामचन्द्र जी के दर्शन हो सकते हैं।'' उत्तर में श्री प्रभुजी ने प्रेमपूर्वक कहा-''हाँ, दर्शन हो सकते हैं।'' तो उन्होंने प्रार्थना

की-''कृपा करके मुझे दर्शन कराइये।'' श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी-''यदि तुम दर्शन के इच्छुक हो तो जो भजन तुम किया करते हो उसे ही हमारे सामने बैठ कर करो।'' श्री प्रभुजी की आज्ञा पाकर बालकृष्णदासजी ने अपना नैत्यिक मन्त्र-जाप प्रारम्भ किया और फलस्वरूप मन की एकाग्रता को पाकर कृतकृत्य हो गए। उसी समय से उन्हें दिव्य-दर्शन होने प्रारम्भ हो गए। इस अलौकिक कृपा को पाकर उन्होंने अपने को कृतार्थ समझा और छावनी के महन्त-पद का लोभ छोड़कर अपना शेष जीवन भी प्रभुजी के चरणों में ही व्यतीत करने का पूरा-पूरा निश्चय कर लिया। अपने सभी साथियों को यथास्थान चले जाने का आदेश देकर स्वयं श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में रहने लगे और नित्य-प्रति उत्तरोतर ध्यान-समाधि में प्रगति करने लगे।

८.६ ब्र० गोपालानन्द जी को महाप्रभु भगवान सदाशिव के दर्शन

एक दिन ध्यान में गोपालानन्द जी ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि प्रभो! ''कृपाकर अपने गुरु महाराज के दर्शन कराइए''। बस फिर क्या था सहसा नेपाल वासी महाप्रभु सदाशिव के दर्शन होने लगे। कोटि सूर्य समान महान् प्रकाश था। दृष्टि स्थिर होनी मुश्किल हो गई। शरीर में कम्पन होने लगा। तब ब्र० गोपालानन्द जी ने प्रार्थना की कि हे दीनबन्धु! ''मैं आपके तेज को कैसे सहन कर सकता हूँ। तब श्री प्रभुजी के हृदय में वही प्रकाशमय स्वरूप दीखने लगा। सूर्य की किरणों के समान चक्षुओं के परम पटल (अर्थात भवें) दीखने लगे। पुनः वाणी हुई कि मेरी शक्ति इसके द्वारा संसार में जिज्ञासु समुदाय को ज्ञानमार्ग में प्रवृत करायेगी जो कि योग-द्वारा प्राप्त होता है। तथा आस्तिक, नास्तिक सभी के कल्याण का कारण बनेगी।''

८.७ गुरु नानक देवजी के दर्शन और बलाकर्षक साधन की प्राप्ति

एक दिन ब्रह्मचारी जी के मन में संकल्प हुआ कि मैं ध्यान में गुरु नानक देव के दर्शन प्राप्त करूँ। आँखें बन्द करके ध्यान-मग्न हो गये, तो देखा गुरुनानक देव एक शोभायमान बगीचे में सामने बैठे हैं। गुरु नानक देव को देखकर ब्रह्मचारी जी ने प्रणाम किया और प्रार्थना की कि ''महाराज! मैं एक प्रबल साधन चाहता हूँ जिससे मेरे शरीर में अतिशय बल बढ़ जाय सो मैं आपसे इसी प्रकार का साधन चाहता हूँ।'' गुरुनानक देव जी ने आशीर्वाद देते हुए कहा-''जिनकी कृपा से तुम मेरे पास आ सके हो, ये साधन तुम उन श्री प्रभुजी से सीखो, जो सब प्रकार से परिपूर्ण परात्पर शुद्ध ब्रह्म हैं और सृष्टि के आदि से अन्त तक रहने वाले पूर्ण सिद्ध हैं।'' किन्तु जब ब्रह्मचारी जी ने बहुत आग्रह किया तो गुरुनानक देव ने बलाकर्षक प्राणायाम की एक विधि बता दी। उन्होंने ब्रह्मचारी जी से कहा-इस साधन को तुम अपने गुरुदेव जी की आज्ञा से ही करना अन्यथा सफल नहीं हो सकोगे। गुरुनानक देव जी से उपदेश प्राप्त कर ब्रह्मचारी जी समाधि से उठे और आनन्दकन्द परम कल्याणधन श्री प्रभुजी के बिना पूछे ही बलाकर्षक प्राणायाम कर डाला। उस साधन के करने से उनके शरीर में अदभुत बल का संचार हुआ, किन्तु वह उसको संभाल न सके। उनका शरीर फटने लगा। ब्रह्मचारी जी के मन में बड़ा दुःख हुआ तो फिर ध्यान मग्न होकर गुरुनानक देव की शरण ली और रक्षा की प्रार्थना की। गुरु नानक देव ने कहा-''हमने तुमसे पहले ही कह दिया था कि श्री प्रभुजी की आज्ञा प्राप्त किये बिना यह साधन मत करना। परन्तु तुमने अनाधिकार चेष्टा की है, अब उन्हीं कृपानिधी की शरण में जाकर प्रार्थना करो, उन्हीं की कृपा से यह ठीक हो सकता है।'' गुरुनानक देव के कथनानुसार श्री ब्रह्मचारी जी समाधि से उठे और श्री करुणार्णव प्रभुजी की शरण में आकर

प्रार्थना की और अपनी भूल पर पश्चाताप किया तब श्री कृपानाथजी ने कृपाकर ब्रह्मचारी जी के शरीर पर मक्खन तथा कपूर मिलाकर मालिश कराई इसके फलस्वरूप उनके शरीर में जो वायु कुपित हो गया था वह शांत हो गया। इस उपद्रव के शान्त हो जाने पर ब्रह्मचारी जी ने अपने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा की कि अब कभी भी श्री प्रभुजी की आज्ञा के बिना कोई साधन नहीं करूँगा।

८.८ ब्र० गोपालानन्द जी महाराज को जगदम्बा कालिका के स्थूल दर्शन

श्री ब्रह्मचारी जी जब कलकत्ते में आयुर्वेदिक परीक्षाओं की तैयारी कर रहे थे उस समय उनके मनमें यह भी उत्कण्ठा बनी रहती थी कि उन्हें जगदम्बा कालिका के स्थूल दर्शन हों और अपनी अभीष्ट सिद्धि का कोई आशीर्वाद प्राप्त करें। किन्तु 18 दिन की कठिन तपश्चर्या और कठिन व्रत के बाद भी जगदम्बा के दर्शन उन्हें प्राप्त नहीं हुए। उन्होंने मन में विचारा कि यह सब भ्रान्ति की ही बातें हैं। इस प्रकार दर्शन किसको कहाँ होता है। किन्तु समय आया जब ब्रह्मचारी जी ने श्री प्रभुजी के चरण कमलों का प्रसाद प्राप्त किया। कलकते में 18 दिन तक घोर अनशन व्रत के बाद भी जिनका दर्शन प्राप्त नहीं हुआ, आज वही महामाया कालिका अनायास प्रगट हुई। वह ब्रह्मचारी जी के सामने आकर खड़ी हो गई। उस समय श्री ब्रह्मचारी जी ऋषिकेश से 9 मील ऊपर ब्रह्मपुरी के जंगल में समाधिस्थ थे। समाधि से उनकी आँखें खुली और अकस्मात् सिंहवाहिनी जगदम्बा को सामने खड़ी देखा। उन्होंने अत्यन्त विनय से जगत जननी को प्रणाम किया, जगदम्बा ने प्रसन्न होकर वर मांगने को कहा। श्री ब्रह्मचारी जी ने हाथ जोड़कर विनय की कि हे जगदम्बा! ''वर मांगने से पूर्व मैं यह जानना चाहता हूँ कि उस समय घोर अनशन व्रत करके भी मुझें आपके दर्शन प्राप्त क्यों नहीं हुए और आज जबकि मेरे मन में कोई विचार भी नही था आपके दर्शनप्राप्त कर रहा हूँ''। माता ने प्रसन्न होकर कहा-''बेटा! उस समय तुम्हारा अन्तः करण शुद्ध नहीं था। मैं तुम्हारे पास रहती थी किन्तु तुम मुझे देख नहीं सकते थे। अब सदगुरू की पूर्ण कृपा से तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो चुका है। इसलिए तुम्हें मेरे दर्शन हो रहे हैं। अब तुम जो कुछ चाहो व मांग सकते हो''। ब्रह्मचारी जी ने विनयपूर्वक कहा-जगदम्बे! ''यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे इस योग के कल्याणकारी र्माग का दर्शन कराने वाले इन्हीं सद्गुरू की पूर्ण भक्ति दे दो जिससे उनकी परम कृपा मेरे ऊपर सदैव बनी रहे और जीवन का उत्थान होता जाय''। माता ने प्रसन्न होकर कहा-बेटा! ''यह वस्तु तो उनकी कृपा से ही तुम्हें प्राप्त होगी, कोई और वर माँगो। घर, पुत्र, स्त्री, दुनिया में मान-सम्मान जो भी तुम चाहते हो मैं तुम्हें दे दूंगी''। ब्रह्मचारी जी ने कहा माता, आपकी सदा कृपा बनी रही। जगदम्बा तथास्तु कहकर बड़ी तेजी के साथ चली गई। ब्रह्मचारी जी ध्यान से उठकर कृपामय श्री प्रभुजी के चरण कमलों में आ गये और सम्पूर्ण घटना श्री प्रभुजी के चरण कमलों में निवेदन कर दी।

८.९ ब्र० गोपालानन्द जी की माता को सद्गति

श्री ब्रह्मचारी जी की माता का देहावसान इनकी बहुत छोटी आयु में ही हो गया था। एक दिन इनके मन में ख्याल पैदा हुआ कि वह किसी प्रकार इस बात को जान सकें कि उनकी माता जी का दूसरा जन्म कहाँ हुआ है? इसी विचार को मन में रखकर वह ध्यान मग्न हो गए। ध्यान में देखा कि उनकी माता किसी मछियारे के घर में पैदा हुई है और मछली पकड़ रही हैं। ब्रह्मचारी जी को अपनी माता जी की यह गति देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने ध्यानावस्था में ही श्री प्रभुजी के चरण कमलों में प्रार्थना

की–प्रभो! ''पवित्र अग्रवाल घराने में जन्म लेने पर माता की यह गति क्यों हुई ?'' उनकी यह प्रार्थना सुनकर श्री प्रभुजी ने उनकी माता के देहावसान के समय के संस्कार दिखलाये और बतलाया कि तेरी माता का मन देहावसान के समय मछली के तेल में लगा हुआ था उस भावना के कारण इसका जन्म मछियारे के घर में हुआ। ब्रह्मचारी जी ने समाधि अवस्था में ही अपनी माता की सद्गति के लिए श्री प्रभुजी से प्रार्थना की और उनको सद्गति दिलवाई। ध्यान से उठने के बाद ब्रह्मचारी जी ने अपनी बड़ी सहोदरा बहन रूक्मिणी देवी से पूछा उनकी माता की मृत्यु कैसे हुई थी तो उन्होंने बताया कि माता जी के पेट में अफारा (पेट फूला) था। बहुत उपचार कराये थे किन्तु किसी से उनके पेट को आराम नहीं हुआ। उनके इस रोग को ठीक करने के लिए किसी डाक्टर ने मछली के तेल का उपयोग बतलाया था। किन्तु उस समय वह उपलब्ध नहीं हो सका व उन का देहावसान हो गया। अपनी माता जी की यह गति देख व कारण का ज्ञान होने पर श्री ब्रह्मचारी जी को श्रीमद्भागवद् गीता का यह श्लोक स्मरण हो आया।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा सद्भावभावितः।।

अर्थात् अन्तिम समय में प्राणी जिन भावों का स्मरण करता हुआ देह–त्याग करता है वह उन्हीं भावों से प्रेरित होकर उस ही प्रकार का जन्म पाता है।

८.१० ब्र० गोपालानन्द जी महाराज को सृष्टि की उत्पत्ति का दर्शन

एक दिन ध्यान में गोपालानन्द जी ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि इस सृष्टि का विस्तार समझ में नहीं आता और न ही इसका स्वरूप समझ में आता है। इतना कहते ही एक गोला नील वर्ण आकाश में छूटता हुआ प्रतीत हुआ। उस गोले से इतना शब्द हुआ कि मन–बुद्धि जड़वत हो गए। उस गोले में से अनेक चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन चिनगारियों पर दृष्टि गई तो उनमें देश देशान्तर दीखने लगे। किसी चिनगारी के अन्दर मछली का शरीर और धड़ मनुष्य का सा प्रतीत होता, किसी में कछुआ के शरीर का मुख मनुष्य का सा प्रतीत होता, किसी में जल ही जल था, किसी में कृमिसृष्टियाँ नजर आने लगीं, किसी–किसी में अग्निकाण्ड ही हो रहा था। इस प्रकार गोपालानन्द जी आश्चर्य में पड़ गया, तो फिर श्री प्रभुजी ने कहा कि तुझको यह सूक्ष्म रूप सृष्टि का दिखाया है। मेरी सृष्टि का स्वरूप अनन्त है। फिर ब्र० ने श्री प्रभुजी से पूछा कि सृष्टि का पालन–पोषण विष्णु भगवान करते हैं, ऐसा सुना है। इतना कहना था कि विष्णु भगवान श्री प्रभुजी के हृदय में दीखने लगे। उनकी माला के जो तेजस्वी मनके थे, उन मनकों में अनेक लोक लोकान्तर दीखने लगे। पुनः वही माला श्री प्रभुजी के गले में दीखने लगी। इसके पश्चात उनके मन में दुकान खोलने का संकल्प आते ही आखें खुल गई।

८.११ ब्र० गोपालानन्द जी के ध्यान में पूर्व जन्म ज्ञान व प्रारब्ध क्षय

एक बार प्रातः ऋषिकेश आश्रम में कुएं के ऊपर ब्र० गोपालानन्द जी बरकतराम व उनके भाई स्नान कर रहे थे। वहाँ काई अधिक थी, उससे ब्र०गोपालानन्द जी का पैर फिसल गया और खुली साबुन की डिब्बी से हाथ का अंगुठा कुछ छिल गया और उससे खून बहने लगा। हथेली की भी कुछ खाल उतर गई। श्री प्रभुजी ने कहा, ''यह क्या हो

गया है ?'' ब्र0 ने संकोच पूर्वक संक्षेप में वृतान्त कह दिया। श्री प्रभुजी ने हंस कर कहा ''इसके दबाने से मेरे टाँगों में दर्द होने लगा था। आज तो आराम मिलेगा''। इसके बाद भाई मुलखराज जी ने भगवान कृष्ण की भक्ति का भजन गाया फिर श्री प्रभुजी ने गोपालानन्द को ध्यान मग्न कर दिया। श्री प्रभुजी कृष्ण के अनेक रूपों से रास दिखला कर मेरा मन हरने लगे। इसी बीच ब्र0जी ने प्रश्न किया कि ''प्रभु जी आज यह चोट क्यों लगी। आप तो कहते थे कि हम अपने बच्चों को कोई कष्ट नहीं देते हैं। मुझे इसका और कोई कष्ट नहीं है। किन्तु आज यह हाथ भली भाँति श्री चरण सेवा नहीं कर सकता'' इतना सुनकर श्री प्रभुजी ने गोपालानन्द को मथुरा में गौघाट के पास गली में ले जाकर एक मकान दिखलाया और कहा पिछले जन्म में तू इस मकान में रहता था। तेरा नाम रामनारायण था। तू गौड ब्राह्मण था। तेरी स्त्री भी थी। तेरे घर में गौ रहती थी। तू भक्त था और तूने निर्जला एकादशी का व्रत किया था। उसी दिन तू रनछोर ग्राम में एकादशी महात्म्य की कथा सुनने गया और अपनी स्त्री से कह गया था कि गौ के लिए कुट्टी (चारा) काटकर सन्ध्या समय में सानी कर देना। तेरी स्त्री एक के घर में जन्मोत्सव देखने चली गई। उसने गौ को सानी नहीं खिलायी। तू जब ग्राम से लौट कर आया तब तूने अपनी स्त्री को बहुत भला–बुरा कहा और कुट्टी काटने लगा। वह रोकने लगी। गड़ाँसा उसके हाथ पर पड़ा और उसका हाथ कट कर अलग हो गया, वह पास के कुएँ में गिर गया। तू उसे तड़फती छोड़कर भय तथा क्रोध से भाग गया। तेरी स्त्री अपनी माता के घर चली गई और हाथ की तकलीफ से उसकी मृत्यु हो गई। इसके दण्ड स्वरूप आज तेरे हाथ को कट कर तुझे मृत्यु को प्राप्त होना था। उसी का फल तुझे इतने से भुगता दिया क्योंकि इस समय तू प्रभु की शरण में है व विवेक ख्याति की ओर बढ़ रहा है। श्री प्रभु जी की परम कृपा का अनुभव कर गोपालानन्दजी ध्यान से उठ गया, व उन कृपामय के चरण–कमलों से लिपट गये।

८.१२ ब्र0 गोपालानन्द जी महाराज को भगवान कृष्ण चन्द्र जी महाराज के दर्शन व आकर्षण विद्या का ज्ञान

एक दिन श्री प्रभु जी ने बातों बातों में कहा कि भगवान का कृष्ण नाम कृष्ण इसलिए पड़ा कि उनमें आकर्षण शक्ति अधिक थी। उसके बाद श्री प्रभुजी ने ब्र0 गोपालानन्द को ध्यान–मग्न कर दिया। मन में भगवान श्री कृष्ण के दर्शन का संकल्प आया। संकल्प उदय होते ही भगवान श्री कृष्णचन्द्रजी के दर्शन हुए। उन्होंने प्रसन्नता से कहा, कहो पुत्र क्या शंका है ब्र0 जी ने कहा–प्रभो! ''आप आकर्षण–विद्या के ज्ञाता है। अतः कृपा कर आकर्षण विद्या बतलाइये''। उन्होंने कहा –सुनो! ''हर प्राणी के नासिका–रन्ध्रों से श्वास धारा के साथ तेजोमय परमाणु निकलते हैं। ये परमाणु जिसका जितना आत्मोत्थान हो चुका है। उतने ही अधिक चमकीले व बलिष्ठ होते है और केवल मात्र दिव्य दृष्टि (ध्यान–दृष्टि) से ही देखे जा सकते हैं। ध्यानावस्था में अपने दिव्य तेजस्वी परमाणुओं से जिस किसी के भी दुर्बल परमाणुओ को खींच कर आकर्षित किया जा सकता है। परन्तु अपने से तेजस्वी पर यह आकर्षण नहीं चलता''।

८.१३ ब्र0 गोपालानन्द जी को शबरी के दर्शन व मूर्च्छा कुम्भक का ज्ञान

(उन्हीं के शब्दों में)

एक बार अन्तर्मुख हुआ तो श्री प्रभुजी का दर्शन हुआ। श्री प्रभुजी ने पूछा ''क्या देखना चाहता है''। मैंने प्रार्थना की प्रभो!– ''कर्म और प्रारब्ध में कौन बलवान है'' ? श्री

प्रभुजी ने कहा कि उद्धव जी से इसका उतर दिलवाते है। इतने में ही उद्धव जी भी आ गये। उन्होंने कहा-यह प्रश्न शिव भगवान से करना चाहिए। इतने में ही भगवान शकंर के दर्शन हुए। इसी बीच में, मैं अपने प्रश्न को भूल गया और शबरी के प्रेम के स्वरूप को देखने की इच्छा मन में हुई तो मै शबरी के आश्रम में पहुंच गया। वहाँ शबरी एक झोपड़ी में ध्यान-मग्न बैठी थी। प्रभुजी ने मुझसे कहा-इसके नेत्रों पर लक्ष्य करो मैं उसकी ओर देखने लगा। थोड़ी देर बाद वह उठ कर बाग की ओर चल दी। पेड़ों पर मीठे बेर लगे थे। वह हर एक पर टकटकी लगा कर देखती थी किन्तु सब बेर सुन्दर व पके दीखते थे। मैने श्री प्रभुजी से पूछा-प्रभो! ''यह क्या देखती है''। श्री प्रभुजी ने कहा-''चलो इसके ह्रदय के अन्दर चलें! यह कहते ही मैं और श्री प्रभुजी उसके हृदय पट पर जाकर उसकी आकांक्षा को देखने लगे। वह जिस बेर पर नजर डालती थी उस पर यदि राम के दर्शन होते थे तो उसको चखकर देखती थी। जिसमें श्री राम के दर्शन नहीं होते थे उसको नहीं तोड़ती थी। कुछ ही देर में वह बेरों का संग्रह करके कुटिया में आकर ध्यान मग्न हो गई और एक लम्बा श्वांस खींचा। मैंने श्री प्रभुजी से पूछा कि ''इस ने यह क्या किया'' ? श्री प्रभुजी ने मुझे बतलाया कि इसी को मूर्च्छा कुम्भक कहते हैं। यह आकर्षण गुरू और ईश्वर पर भी किया जा सकता है। इतने में ही देखा कि शबरी के हृदय, व रोम-रोम में श्री राम ही श्री राम दीख रहे हैं। वह सामने बैठकर बेरों का भी भोग लगा रहे हैं।

८.१४ ब्र० गोपालानन्द जी को गुरु-भक्तों की गति का अनुभव *(उन्हीं के शब्दों में)*

एक दिन श्री प्रभुजी ने मुझे ध्यान में बैठाया तो श्री प्रभुजी कृष्ण स्वरूप में सामने प्रकट हुए, चक्राकार श्री प्रभु का प्रकाश फैल रहा था। मैंने श्री प्रभुजी से प्रश्न किया कि जो व्यक्ति इस मार्ग के साधन-सम्पन्न होते हैं। उनकी मृत्यु किस प्रकार होती है ? श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि ऐसे भक्तों की तीन श्रेणियाँ होती है। प्रथम वह जो गुरू को अपना आधार समझते तथा उनमें ही विश्वास करते हैं। उनमें ध्यान और योग की समार्थ्य नहीं होती और न किसी प्रकार का विचार होता है। द्वितीय वह जो गुरू को अपना कर्ता-धर्ता समझते हैं तथा पुण्य फल के दाता व सब प्रकार के रक्षक, हर समय संग रहने वाले समझते हुए धारणा करते हैं तथा योग भ्रष्ट हो जाते हैं। तृतीय वह, जो अपने तन-मन और धन को अपना समझते ही नहीं है तथा सब कुछ गुरू के अर्पण कर देते है। उन्हें संसार के किसी भी पदार्थ से सुख-दुःख नहीं होता। वह योग में पूर्ण होते है। जो प्रथम अवस्था की विश्वासमयी धारणा किये हुए हैं उनकी मृत्यु अवस्था का स्वरूप देख, इतना कहकर ध्यान-अवस्था में ही काशी में एक मकान देखने में आया। वहाँ पर एक व्यक्ति मरणासन्न दिःखाई पड़ा। श्री प्रभुजी ने कहा-इसके अन्दर प्रवेश करो। अन्दर प्रवेश कर देखा कि नाभि के प्राण उठकर हृदय में आये। ह्रदय से कण्ठ में और कण्ठ से नेत्रों द्वारा बाहर निकल गये। तब श्री प्रभुजी ने कहा कि यह भगवान बुद्ध का शिष्य था। अब इसके सूक्ष्मशरीर में प्रवेश करके देखो। जब मैंने उसके सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश किया तो उसके सूक्ष्म शरीर के सामने बुद्ध भगवान का स्वरूप था और उस स्वरूप के ऊपर उसकी दृष्टि थी। उसका कर्म-भोग नरक लोक में था। वहाँ राक्षस उसको सता रहे थे। उसके शरीर में भाले भेदते थे किन्तु वह प्रसन्न था। उसके किसी प्रकार का कष्ट प्रतीत नहीं होता था और उसके भाले नहीं लगते थे तथा न उसके घाव ही होते थे। श्री प्रभुजी ने कहा-इसकी धारणा गुरू के अन्तः करण में थी। इसलिए अन्तःकरण की धारणा नेत्रों द्वारा निकलकर प्राण को ले चली थी। इसके पश्चात् श्री प्रभुजी ने कहा कि यह इसी प्रकार

वासनाओं से मुक्त होता आ रहा है। फिर जिस स्थान पर बुद्ध भगवान बैठे थे वह उसी स्थान पर कुत्ता भी बना। मैने पूछा कि यहाँ आकर भी यह कुता बना। श्री प्रभुजी ने कहा कि यह इसी प्रकार कुत्ता भी बना क्योंकि कुत्ता बनने के संस्कार तो थे ही, साथ ही साथ गुरू से निश्चल प्रेम भी था। इस कारण यहाँ का कत्ता बना। एक दिन भगवान बुद्धदेव की दृष्टि कुत्ते पर पड़ी तो उसके प्राण निकालकर स्वर्ग भेज दिया। स्वर्ग में भोग भोगने के पश्चात् उसने योगी कुल में जन्म लिया। फिर दूसरे कोटि के मनुष्यों की हालत दिखाई। एक मनुष्य के हृदय में प्रकाश हुआ और प्रकाश विद्युत स्वरूप में सूक्ष्म शरीर में आया। उसका प्रकाशमय सूक्ष्म शरीर कण्ठ में आया। कण्ठ से पिछले स्थान में गया। वहाँ से भ्रूकुटि में आया और फिर वहाँ से नेत्रों द्वारा बाहर हुआ। अब उसके सूक्ष्म शरीर में श्री प्रभुजी ने मुझको लेकर प्रवेश किया तब फिर मैं क्या देखता हूँ कि गुरू की गोद में वह लेटा हुआ है। सब देव–योनियों में भी प्रवेश करके स्वर्गादिकों को भोगता हुआ साक्षी रूप में रहता है। इसको सुख दुःख की भावना भी प्रतीत नहीं होती, बाद में वह पवित्र योगियों के कुल में जन्म लेकर मोक्ष पाता है। फिर तीसरी कोटि के मनुष्यों की हालत दिखलाई। एक बार एक योग साधक शिष्य नें ध्यान में गुरूदेव से पूछा कि मेरे भोग संस्कार हैं या नही ? तब उनके गुरूदेव ने उत्तर में कहा कि अब शरीर छोड़ सकते हो। संस्कार शेष नहीं है। तब उसने गुरूदेव का ध्यान किया और उस ध्यान से प्राणों को प्राण कोष से खींचकर हृदय में आ गए। हृदय से प्रकाश युक्त गोल मण्डल ऊपर कण्ठ में आया व कण्ठ से पीछे को गया। फिर भ्रूकुटि में आया। भ्रूकुटि के मध्य में एक इंच लम्बा पर्दा उठा। गोल मंडल ने उसमें प्रवेश किया। प्रवेश करके ब्रह्म रन्ध्र के मध्य में चक्र लगाना आरम्भ किया। वहाँ से उसने संकल्प उठाया कि यह कहना चाहिए। उसके संकल्प मात्र से ही ब्रह्म रन्ध्र फट गया। वह गोल मन्डल उसमें से निकलकर निराकार में लीन हो गया।

८.१५ सिद्ध योगी का प्रभु दर्शन करने अमृतसर आना

हिमालय की गुफा से एक सिद्ध योगी श्री प्रभुजी के दर्शन करने और उन की कृपा से साधना में आई बाधा को दूर करवाने सन्त राम की धर्मशाला, हाथी गेट, अमृतसर में आकाश मार्ग द्वारा आकर दिन रात समाधिस्थ रहने लगा। सारे नगर में इस सिद्ध की चर्चा चल रही थी कि उस को कई दिन यहाँ समाधि में हो गये हैं न तन पर कोई कपड़ा है और न ही भूख प्यास। नगर के लोग उस योगी के दर्शन कर अपने अपने मन की मनोकामनाओं की पूरती होते देख, सेवा में पुष्प फल, धन आदि रख देते, पर वह योगी ध्यानास्थ ही रहता और किसी भी वस्तु को हाथ नहीं लगाता।

श्री प्रभुजी के पास भक्तों ने आकर प्रार्थना की कि आपने हमें कई योगियों के बारे में सुनाया है पर प्रभु जी ऐसा सिद्ध योगी आप ने शायद ही कभी देखा होगा। आप कृपा कर उस योगी को देखने हमारे साथ चलें। श्री प्रभुजी ने उन की प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब कुछ दिनों के बाद भक्तों ने श्री प्रभुजी को वहाँ साथ लेकर जाने के लिए बहुत हठ किया। तब कृपालु प्रभु उन भक्तों के साथ सिद्ध योगी के आसन पर जाकर उस की पीठ के पीछे खड़े हो गये। श्री प्रभुजी के दिव्य स्वरूप के दर्शन कर सिद्ध का आसन घूमा और योगेश्वर राम को प्रणाम कर प्रार्थना करने लगा कि प्रभो! अपने सत्गुरू के प्रताप से ही मैं यहां आ पाया हूँ। आप ने यहाँ पधारने की बड़ी कृपा की अब दया कर मेरी साधना का विध्न अपनी कृपा से दूर कर दो। श्री प्रभुजी ने आशीर्वाद देकर उस की

खेंचरी मुद्रा सिद्ध करवा दी और उस को अपनी गुफा में जाकर योग साधना करने की आज्ञा दी। आज्ञा अनुसार वह सिद्ध योगी प्रभुजी को प्रणाम कर आकाश मार्ग से अपनी कन्दरा में चला गया। श्री प्रभु जी भक्तों के साथ अपने स्थान पर आ गये इस अद्भुत घटना से श्री प्रभुजी की चरण महिमा का विस्तार सारे अमृतसर में फैल गया।

८.१६ आनन्दकन्द श्री सत्गुरुदेव पं० रामलाला जी महाराज की परम कृपा पात्रा महात्मा ऋषिदेवी जी का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव

महात्मा श्री ऋषिदेवी जी का जन्म अमृतसर के पवित्र क्षत्रिय-कुल में हुआ था। तत्कालीन प्रथानुसार इनका पाणिग्रहण संस्कार बाल्यावस्था में ही हो गया था किंतु अपने प्रारब्धवश विवाह के बहुत थोड़े दिन बाद ही इनके पति का देहावसान हो गया। तत्पश्चात् यह अपने पिता के घर पर रहकर ही यथा-तथा अपने वैधव्य-जीवन को बिता रही थीं। प्रारम्भ से ही इनकी रूचि धर्म एवं ईश्वर की ओर रहा करती थी। कदाचित इसीलिए जगदम्बा ने पूर्ण विरक्त करने के लिए ही इनको यह महान दुःख दिया था। अब इन्होंने ठाकुर जी की सेवा, गौ-सेवा, सन्त-ब्राह्मणों की सेवा को ही अपनी दिन चर्या बना लिया। कर्ण परम्परा से इन्होंने भी श्री प्रभुजी की महान महिमा को सुना। श्री आनन्दकन्द प्रभु जी के चरण कमलों में, भक्ति संस्कार होने के कारण, इन्हें अन्तः प्रेरणा सी हुई और इनके मन में यह प्रगाढ़ लगन लग गई कि मैं किसी प्रकार से उन अकारण कृपालु के दर्शन प्राप्त करूँ। मन में बार-बार यह भाव आने लगे कि किसी प्रकार उन दीनबन्धु जी के कृपामय चरण-कमल मिल जायें। आयु छोटी थी, लोक मर्यादाओं की दीवारें सामने थीं। अतः मन में अत्यन्त प्रगाढ़ लगन होने पर भी जल्दी ऐसा साहस न कर सकीं जिससे वह अपने सामाजिक बन्धनों को तोड़कर साहसपूर्वक उन अखिल कल्याणस्रोत श्री प्रभुजी के दर्शन प्राप्त कर सकें। किन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते थे, मन में वैराग्य की धारणा बराबर बढ़ती थी। ऐसी स्थिति में उनको यह साहस करना ही पड़ा। उन्होंने अपनी माता और भाई के सम्मुख श्री प्रभुजी की अकारण कृपालुता का वर्णन करके योग-दीक्षा प्राप्त करने की प्रबल उत्कण्ठा व्यक्त की। घर वालों ने आत्म-कल्याण की इस भावना को देखकर सहर्ष अनुमति दे दी। तब यह श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में पहुंच गयीं और वहाँ जाकर अत्यन्त दीनभाव से करबद्ध प्रार्थना की-हे दीनबन्धु पतित-पावन! आपके कृपामय चरणों का चिन्तन करते हुए बड़ी कठिनता से सामाजिक-बन्धनों को तोड़ कर आपके दर्शन प्राप्त कर सकी हूँ। हे कृपानिधे! कृपा करके मुझ दीन को अपनी शरण में लीजिए।'' श्री कृपासिन्धुजी ने इनकी विनीत वाणी को सुनकर कृपा करके अपनी चरण शरण का दान दिया व योग दीक्षा दी।

दीक्षा के बाद अखिलेश्वर श्री प्रभुजी की परम अनुकम्पा से उनकी ध्यान स्थिति दिन-दूनी बढ़ने से बड़े-बड़े दिव्यानुभव हुए। आनन्दकन्द श्रीप्रभुजी ने इनको कुण्डलिनी-योग की दीक्षा दी थी। ज्योंहि दीक्षा-सम्बन्ध के पश्चात् श्री प्रभुजी ने शक्ति-पात किया, त्योंहि इनकी स्थिति एकदम उन्नत होती गई। शनैः-शनैः ऐसा हुआ कि यह भगवान् सदाशिव के अर्धनारीश्वर रूप में लीन रहने लगीं अर्थात् स्वयं को ऐसा देखने लगीं कि उनका अर्ध भाग भगवान् सदाशिव का है और आधा भाग पार्वती का है। हर समय ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ उनका साथ देने लगीं। सबसे बड़ी विशेषता की बात यह थी कि शक्ति-सम्पन्ना होते हुए भी उन्होंने कभी किसी को श्राप नहीं दिया। जब उनकी स्थिति इस प्रकार ऊँची बढ़ी तब श्री प्रभुजी ने उनको योग प्रचार का अधिकार दिया। उनके

द्वारा बहुत से जीवों का कल्याण हुआ इनके सत्संग में कितनी ही देवियाँ आयीं जो आधि-व्याधि से पीड़ित थीं वे सब इनके आशीर्वाद को प्राप्त कर दुःखों से मुक्त होकर कृतकृत्य हो गईं। श्री प्रभुजी अपने मुखारविन्द से इनको ''महात्मा'' कहकर बुलाया करते थे। इसका कारण यह था कि महात्माओं की तरह ही यह शान्त रहती थीं। किसी पर क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि नहीं करती थीं। इनका जीवन पूर्ण परोपकारमय चला। स्वयं अनेक प्रकार के कष्ट उठाकर भी प्राणिमात्र के लिए कल्याणकारी कार्यों में यथासम्भव संलग्न रहीं। अमृतसर के भूषणपुरा में सती-आश्रम नाम का इनका अपना आश्रम है, जिसमें इनका नैत्यिक सत्संग का कार्यक्रम चलता है। श्री प्रभुजी ने इन्हें नारीओं को दीक्षा देने का अधिकार दे दिया था। इन की अनेकों शिषयाऐं हैं। ई0 सन् 1970 में उन्होंने गोलोक की यात्रा कर भौतिक शरीर छोड़ दिया।

८.१७ महात्मा ऋषिदेवी जी के ध्यानानुभव

महात्मा श्री ऋषिदेवी जी को कुछ-कुछ अनुभव अपने बाल्यकाल से ही होते रहते थे। इसका कारण केवल मात्र यह था कि उनका संस्कार सद्गुदेव आननकन्द योग-योगेश्वर श्री प्रभुजी द्वारा ही हुआ था। जो-जो भी उच्च संस्कारी महात्मा श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में आये, उनका कारण भी उनकी पूर्वानुभूतियां ही थी। महात्मा श्री ऋषिदेवी जी भी इसी प्रकार की संस्कारी महात्माओं में से एक हैं। जिनको अपने बाल्य-काल में ही थोड़ा बहुत लोकाचार रूप से भजन, स्वाध्याय आदि करने से ही दिव्य अनुभूतियाँ हुआ करती थी। उनको अपने बाल्य-काल में दीक्षा सम्बन्ध से पूर्व ही आनन्दकन्द प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन हुऐ थे। पूर्व संस्कार-वश इनकी योग प्रवृत्ति भी जन्म से ही स्वाभाविक थी और वह स्वतः ही ध्यानाभ्यास का प्रत्यत्न करती रहती थीं। इनके मन में सात्विक भावों का उदय भी स्वाभाविक ही था। प्राणिमात्र के लिए उपकार की भावना, गौ सेवा, साधु सत्संग की भावनाएं मन में उत्कृष्टता से भरी थीं। इन्होंने अपने वाल्यकाल में एक गौ की अत्यधिक प्रेम से सेवा की, जिसके फलस्वरूप उस गौ को यह अपनी एकाग्रावस्था में बड़े दिव्य-रूप में देखती रहीं और उससे कई प्रकार के आशीर्वाद प्राप्त किए। समय आने पर ही अपनी लगभग अट्ठाइस वर्ष की अवस्था में आनन्दकन्द श्रीप्रभुजी के चरण-कमलों के दर्शन प्राप्त किए और फिर कुछ दिन बाद योग-दीक्षा प्राप्त की। दीक्षा-ग्रहण के बाद से ही इनको सहसा दिव्य अनुभूतियों की उपलब्धि होती रही।

हमारे सद्गुरूदेव योगेश्वर रामलाल जी महाराज का एक नियम था कि जो भी भाई-बहिन इस मार्ग में चलते थे और जिनके मन की एकाग्रता अच्छी बन जाती थी, उनको पहिले से हीं लोक-लोकान्तरों के दर्शन करा दिया करते थे। महात्मा ऋषिदेवी जी ने भी अपने पूर्वाभ्यास काल में ही स्वर्गादि लोकों के दृश्यों को बार-बार देखा। ध्यानावस्था में वह जिस जिस लोक में भी जाती थीं वहाँ प्रत्यक्ष देखती थीं कि सभी देवी-देवता श्री प्रभुजी की बारम्बार वन्दना एवं आरती आदि कर रहे हैं और उनकी आज्ञाओं की प्रतीक्षा में अनवरत बने रहते हैं। ध्यानावस्था में ही चारों वेद, भागवत, पुराण, महाभारत इत्यादि शास्त्रों का ज्ञान इनको श्री प्रभु जी ने कृपा करके कराया था। सृष्टि के प्रलय इत्यादि के दृश्य भी उन्होंने देखे। इसके बाद निरन्तर अभ्यास करते करते ही यह समाधिस्थ हो गईं। समाधी अवस्था में यह स्वयं को भगवान शिव मे लय होता देखा करती थी। श्री प्रभुजी की कृपा से ऐसी स्थिति बनी कि अनवरत सात-सात दिन तक समाधिस्थ रहकर दैविक भोग प्राप्त करती रहीं। यह इनकी समाधि सम्प्रज्ञात होती थी। ध्यान में ही श्री प्रभुजी की आज्ञा प्राप्त कर इन्होंने सती आश्रम की स्थापना की और

शरीर के वृद्ध हो जाने पर भी निरन्तर देवियों में योग प्रचार करने में लगी रहती थीं। अब भी यहाँ आकर अनेकों देवियां श्री प्रभुजी की विलक्षण कृपाओं का अनुभव करती हैं। सती आश्रम का वातावरण पूर्णतः सात्विक एवं शांत है। दोनों समय योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी की आरती वन्दना का कार्यक्रमा नित्य-नियम से हुआ करता है। महात्मा जी का जीवन अत्यन्त सादगी एवं संयम से युक्त था।

८.१८ प्रयाग के कुम्भ स्नान पर मैंडु मल्लाह पर कृपा

कुछ समय पश्चात् तीर्थराज प्रयाग में कुम्भ मेले का अवसर आया। श्री प्रभु जी के कुम्भ मेले पर प्रयाग-गमन का समाचार सुनकर श्री बालकृष्ण दास, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी आदि अन्य गुरू भाई एवं बहिने काफी संख्या में पूर्ण उत्साह के साथ श्री प्रभुजी के साथ चलने को उद्यत हो गए। अवसर आने पर श्री प्रभुजी ने सबके साथ प्रयाग के लिए प्रस्थान किया। कुम्भ मेले में आने के बाद श्री प्रभुजी सभी सत्संगियों को साथ लेकर प्रतिदिन त्रिवेणी स्नान के लिए जाया करते थे।

उन दिनों वहाँ मैंडू नामक एक मल्लाह बहुत ध्यानी व्यक्ति था। वह हर समय श्री प्रभुजी की स्मृति में मग्न रहा करता था। साधु सेवा को उसने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। एक दिन ध्यान-मग्न होकर मैंडू ने यह देखना चाहा कि इतने भारी इस कुम्भ मेले में कितने सिद्ध पुरूष आए हैं। एवं उन सबमें परिपूर्णतम् कौन हैं ? ज्यों ही मैंडू इस संकल्प के साथ ध्यान में बैठा, त्यों ही उसको परम करूणार्णव, सिद्धों के महासिद्ध, योगयोगेश्वर श्री प्रभुजी के दर्शन प्राप्त हुए। श्री प्रभुजी के अखण्ड ज्योतिर्मय दर्शन पाकर मैंडू कृतकृत्य हो गया। उसने ध्यान में ही प्रार्थना की-हे प्रभो! ''यदि मैं आप की चरणधूलि का कोई एक कण हूँ, तो कृपा करके त्रिवेणी पर पर्वस्नान के लिए आकर मेरी ही नाव को अपनी पग-धूलि से पवित्र करें और किसी भी प्रकार की उतराई (रूपया पैसा) देने का नाम न लें। आपकी इस परम कृपा को प्राप्त करके मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। प्रभो, आप परम सद्गुरू हैं एवं भवसागर के मल्लाह हैं। कृपा करके मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें।'' प्रभुजी ने उसके दीन भाव के विनयपूर्ण बचन सुनकर स्वीकृति दे दी।

दो दिन बाद पर्व काल में श्री प्रभुजी सबके साथ त्रिवेणी-स्नान के लिए चल पड़े। घाटी पर बँधी सुन्दर नौकाएँ देखकर भक्त समुदाय श्री प्रभुजी को नौकाएँ पर चढ़ने का आग्रह करता। किन्तु श्री प्रभुजी के इनकार के आगे किसी की चल नहीं पाती थी। अतः फिर सब चुपचाप चल पड़ते थे। अन्ततः श्री प्रभुजी मैंडू मल्लाह की नाव तक पहुँच गए। मैंडू एक पैर से खड़ा श्री प्रभुजी की प्रतीक्षा कर रहा था। इससे पूर्व उसने सभी यात्रियों को नौका पर ले जाने से इनकार कर दिया था। चिर-प्रतीक्षित अवसर पाकर मैंडू का हृदय अत्यन्त आल्हादित था। उस नाव के समीप पहुँचते ही श्री प्रभुजी ने सभी को नाव पर चढ़ जाने का आदेश दिया। सबको बैठ जाने का आदेश दिया सबके बैठ जाने पर अकारण-दयालु श्री प्रभुजी ने मैंडू को नाव चलाने का आदेश दिया। आदेश पाकर अति पुलकित मन से मैंडू ने नाव चलाना प्रारम्भ किया। एक बार पुनः त्रेता-युग का केवट-प्रसंग उपस्थित हो गया। हर्ष विभोर मैंडू प्रभुजी के संकेत पर इधर-उधर बड़े उत्साह से नाव ले जाता था। श्री प्रभुजी बार-बार इधर-उधर ले जाने का आदेश दिया करते थे। सब लोग बड़े भारी आश्चर्य में थे कि प्रत्येक आज्ञा के साथ मल्लाह का आनन्द बढ़ता जाता था। उसके इस सीमातीत आल्हाद का कारण अन्तर्यामी के अतिरिक्त और कोई जानता नही था। काफी समय व्यतीत हो जाने पर श्री प्रभुजी का आदेश पाकर मैंडू ने नाव किनारे पर लगाई। नाव किनारे पर लगते ही श्री प्रभुजी का संकेत पाकर सभी

नाव से उत्तर कर चल दिए। सब आश्चर्य में थे कि सबसे बड़े दाता ने उस मल्लाह को इतनी देर श्रम कराके भी उतराई के रूप में कुछ भी रूपया आदि नहीं दिया और सब लोग श्री प्रभुजी की इच्छा मानकर यह बात भूल गए परन्तु बालकृष्णदास वैरागी निरन्तर यही सोचते रहे-बड़ा अन्याय हुआ। बेचारे मल्लाह को उतराई अवश्य मिलनी चाहिए थी। अन्तर्यामी उनके भीतरी भाव समझ गए और पूछा- वैरागी, क्या सोच रहे हो ? मन की बात छिपाकर बालकृष्णदास बोले-नहीं प्रभुजी, कुछ नही। परन्तु उनके मन में वह भाव घूमते ही रहे। श्री प्रभुजी ने फिर पूछा, तब भी वह अपने भाव संकोच वश न बता सके। अन्ततः करूणासागर जी ने उनकी शंका निवारण करने का निश्चय किया। अचानक याद आ जाने जैसा अभिनय करके बोले-अरे, बड़ा अन्याय हो गया। उस मल्लाह को हम उतराई देना भूल गए और तुम लोगों ने भी याद नहीं दिलाया। अपने मन के भाव श्री प्रभुजी के मुखारविन्द से सुनकर बालकृष्णदास जी एकदम बोले-हाँ प्रभुजी में भी बड़ी देर से यही सोच रहा था परन्तु संकोच वश आपके पूछने पर भी कह नहीं सका। श्री प्रभुजी बोले-कोई बात नहीं। तुम मल्लाह को पहिचानते तो होंगे। यह दस रूपये ले जाकर उसे दे दो। कह देना कि उस समय भूल हो गई थी। बालकृष्णदास प्रसन्न मन से तत्काल रूपये लेकर चल पड़े। मन में सोचते जाते थे अच्छा हुआ, प्रभुजी को याद आ गया। अन्यथा अनर्थ हो जाता। मल्लाह रूपये पाकर प्रसन्न हो जाएगा। वास्तव में बालकृष्णदास जी मल्लाह के अन्तर्गत भावों से अनभिज्ञ थे, अतः अपने ही दृष्टिकोण से विचार कर रहे थे। उधर मैंडू मल्लाह अपनी ध्यानावस्था से सब कुछ जान रहा था। उसे लग रहा था कि वैरागी बालकृष्णदास मेरे परिश्रम पर पानी फेरने आ रहे हैं। बड़े भाग्य से आज संसार सागर से पार उतारने वाले परम करूणासागर योग योगेश्वर श्री प्रभुजी के दर्शन एवं कुछ सेवा करने का सुअवसर मिला था किन्तु यह वैरागी मेरी उस जरा सी सेवा का मूल्य यहीं पर दे देने को आ रहा है। यह तो इसने बड़ा बुरा किया। इन्हीं विचारों में मग्न मैंडू के पास बालकृष्णदासजी आ पहुंचे और बोले-''अरे भाई मल्लाह, अभी थोड़ी देर पहिले जो महाराज जी तुम्हारी नाव से त्रिवेणी स्नान करके गये हैं, वह तुम्हें दस रूपया देना भूल गये हैं। वही रूपये लेकर उन्होंने हमें भेजा है, अतः तुम ये रूपये ले लो।'' मल्लाह यह वचन सुनकर अत्यन्त क्रोध में भरकर बोला-''अरे वैरागी, तुम्हारे सिर पर इतनी लम्बी जटाएं हैं, सारे शरीर पर विभूति लगाई हुई है। कंठ में लम्बी-लम्बी तुलसी की मालाएं पहिने हो, फिर भी तुम्हारी यह दशा है। यह तुम्हारा मन बड़ा दुष्ट है जो श्री सद्गुरूदेव की लीलाओं में अन्याय की भावना करते हो। तुम्हारे इस पाप के कारण तुम्हें अभी कुष्ठ क्यों न हो जाय'' ? मैंडू के मुख से इन शब्दों के निकलते ही वैरागी को तत्काल कुष्ठ रोग हो गया। ऐसा कठोर दण्ड पाकर तत्काल ही वह श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में लौट आए और सारा वृतान्त सुना कर मल्लाह के वचन से हुए कुष्ठ रोग के चिन्ह दिखाए। श्री प्रभुजी ने यह देखकर मन में बड़ा कष्ट माना और कहा-उसने यह ठीक नहीं किया। अच्छा यह मिट्टी लेकर लगाओ। इससे ठीक हो जायेगा।आदेश पाकर श्री बालकृष्णदास जी ने मिट्टी अपने सारे तन पर मली और ऐसा करने से तत्काल ठीक हो गये।

८.१९ 'योग साधन आश्रम छेहरटा (पंजाब) का निर्माण: ई सन्-1920

अमृतसर के भक्तों ने श्री प्रभुजी के चरणों में प्रार्थना की हे प्रभु जी अगर आप आज्ञा दें तो यहाँ कहीं खुली जगह (भूमि) लेकर उस में बाग बगीचा, कूप और आप के एकान्त के लिये गुफा का निर्माणकर वहां आश्रम बनाया जाए। श्री प्रभुजी ने उनकी लोक कल्याण हित प्रर्थना को स्वीकार कर कहा कि आप कोई सुन्दर स्थान देख कर हमें

बताना। भक्तों ने नगर में और उस के आस पास सुन्दर खुले स्थान देखे, पर उनकी एक राय न बन सकी। एक दिन प्रातः श्री प्रभुजी पांच सात भक्तों को साथ लेकर रेलवे लाईन के साथ साथ लगभग पांच मील दूर निकल गये और छेहरटे के गुरूद्वारे के पास वाली सुन्दर भूमि श्री प्रभुजी को पसंद आ गई। श्री प्रभुजी ने योग साधन आश्रम का निर्माण करने के लिए छेहरटा में भूमि खरीद ली। भक्तों ने बड़े प्रेम से उस भूमि की चार दीवारी बनाई। श्री प्रभुजी ने अपने कर कमलों से वहाँ कई पेड़ पौधे लगाये। वहाँ पर भवन का निर्माण कर श्री प्रभुजी ने अपने एकान्त वास के लिए एक गुफा भी खुदवाई। नगर के लोगों ने वहाँ आश्रम में आ कर योग साधन करने आरम्भ कर दिए। श्री प्रभुजी वहाँ आश्रम में ही लोक कल्याण हित रहने लगे।

८.२० 'छेहरटा आश्रम' की भूमि पर हकशुफे का केस

श्री प्रभुजी आश्रम में योग साधनों द्वारा लोगों के तन मन के दुःख दूर करने लगे और उन को अपने धर्म पर चलने की सीख और योग उपदेश देने लगे। अपने दुःख निवार्ण के लिये लोग वहाँ आ कर साधन करने लगे। इस से वहाँ की भूमि की कीमत बढ़ गई। लोभ के कारण, जिस से आश्रम के लिए भूमि खरीदी थी उस ने अदालत में श्री रामलाल जी के नाम पर हकशुफे का केस कर दिया। श्री प्रभुजी को अदालत ने हकशुफे के केस की सुनवाई तारीख पर स्वयम् आकर जवाव देने को कहा। जज के पिछले जन्मों के कुछ अच्छे संस्कार थे जिस से वह जज भगवान का प्यारा भक्त था। जज को भगवान् श्रीकृष्ण जी से बड़ा प्रेम था। हकशुफे की सुनवाई तारीख से एक रात पहले लीला–धारी प्रभु ने उस संस्कारी जज पर कृपा कर उसे भगवान कृष्ण के रूप में दिव्य दर्शन दिये। भक्त जज ने अपने इष्ट भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन कर उन के चरणों को अपने प्रेम आंसुओं से धो– कर प्रार्थना की प्रभु! ''मुझे आप के स्थूल रूप में दर्शन कब होंगे''। तब भगवान श्रीकृष्ण ने अपने प्यारे भक्त को कहा कि ''हम कल तुम्हारी अदालत में आ रहे हैं, पहचान सको तो पहचान लेना।'' यह कह कर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हो गए। प्रातः काल का समय था जज बिस्तर से उठा अपने मन्दिर में जाकर भगवान् कृष्ण को प्रणाम कर, रात को देखे हुऐ दिव्य स्वपन को याद कर, श्रीभगवान् के स्थूल रूप में दर्शन करने की बाट सजोने लगा।

जज का अन्तः करण शुद्ध था। इस लिये जब श्री प्रभु जी को हेकशुफे वाले केस में पेश होने की आवाज पड़ी और श्री प्रभुजी पगड़ी धारी गृहस्थी रूप में अदालत में जैसे ही दाखिल हुए तो जज की अन्तर आत्मा ने जज को बता दिया कि यह ही पगड़ी धारी गृहस्थी रूप में छिपे हुए उस के इष्ट भगवान् श्रीकृष्ण हैं। जज अपनी कुर्सी से अपने प्रभु का स्वागत करने के लिए उठ खड़ा हुआ और उन को वहाँ विराजने की प्रार्थना करने लगा। श्री लीला धारी प्रभु मर्यादा रखने के लिये जज से कहने लगे कि आप को कोई गलती लगी है,। मेरा हकशुफे का केस आप की अदालत में है और आप ने मुझे पेश होकर उस का जवाब देने को कहा था। श्री प्रभुजी के साथ उन के एक भक्त अमृतसर के प्रसिद्ध वकील भी थे। उन्होंने अदालत को बताया कि उस भूमि पर लोक कल्याण हित योग साधन आश्रम का निर्माण कर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सैकड़ों लोगों के तन मन के दुःख दूर कर रहे हैं और ध्यान समाधि द्वारा योग के गूढ़ रहस्यों को समझा रहे हैं। इस कार्य में इन का कोई अपना स्वार्थ नहीं है, केवल लोक हित की भावना है। यह सुन कर जज ने विचार कर हकशुफे के केस को खारिज कर दिया, और भूमि वाले को कह दिया कि इस जन हित कार्य में उसे भी सहयोग देना चाहिए।

९ पूर्ण समर्पित महापुरूष

९.१ आनन्दकन्द श्री सद्गुरु देव पं० रामलाल जी महाराज के परम प्रिय कृपा पात्र-'राजा' मुलखराज जी का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव

श्री मुलखराज जी महाराज का जन्म– पंजाब प्रान्त के जिला गुरूदासपुर की तहसील बटाला के अन्तर्गत दलेरपुर नाम के गाँव (सम्वत् 1885) में एक क्षत्रिय कुल के अरोड़ा वंश में हुआ। श्री मुलखराज जी के पिता जी का नाम लाला देवीदास और माता जी का नाम रत्न देवी था। लाला देवीदास जी अपने व्यवसाय को बढ़ाने की लगन से अमृतसर में रहने लगे। वहीं पर श्री मुलखराज जी का लालन–पालन हुआ। इन का बाल्यकाल संतों जैसा पवित्र था और पांच वर्ष की आयु में इन्हों ने मुनीमी विद्या का अध्ययन आरंभ किया सन्त चरित्र व भगवत कथायें इन को बहुत प्यारी लगती थीं। इन की चाची के देहान्त के बाद मन में वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे। जहां भी सत्संग होता वहां जाकर ध्यान से सुनते और प्रभु दर्शन प्राप्ति के उपाय जानने की चेष्टा करते। श्री मुलखराज जी का विवाह 20 वर्ष की आयु में मोहन कौर जी से हुआ और वे अपने पिता जी के साथ दुकान का कार्य करते थे।

९.२ श्री प्रभु जी का साक्षात्कार (ई सन् 1920)

जाको जा पर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलै न कछु संदेहू।।

गोसाँई तुलसीदास की इस उक्ति के अनुसार श्री मुलखराज जी का उज्जवल प्रारब्ध सामने आया। उन दिनों कांग्रेस का आन्दोलन धूमधाम से चल रहा था। बराबर जुलूस निकलते थे, लीडरों की जय बोली जाती थी। लोगों के मन में बहुत बड़ा उत्साह था। एक रोज श्री मुलखराज जी काँग्रेस के एक भारी जुलूस में गीत गाते जा रहे थे। ''हिन्द दा तख्तोताज असाँ नहीं छड़ना''। मन में बड़ा भारी जोश था। हम मर जायेंगे जेल जायेंगे या स्वराज्य लेकर रहेंगे। इन दिनों उनकी वे वैराग्य की धारायें, अब देश सेवा के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी। बड़ी ऊँची उमंगों के साथ, श्री मुलखराज जी जुलूस में जा रहे थे। उनदिनों सद्गुरूदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज अमृतसर में ही निवास कर रहे थे।

श्री प्रभुजी प्रायः अपने स्थान पर ही रहते। किसी प्रकार के जलसे तमाशे व सभाओं में नही जाते थे। किन्तु उस दिन उन शाँत सागर के मन में भी एक तरंग आई वह भी काँग्रेस का जुलूस देखने के लिए बाजार में निकल पड़े। काँग्रेस का जुलूस, चौंक मल्लासिंह, की तरफ से जा रहा था। श्री प्रभुजी सब प्रकार से परिपूर्ण योग–योगेश्वर एक दुकान पर खड़े हुए जुलूस की शोभा को देख रहे थे।

इसी समय जोशीले गीत गाते हुए श्री मुलखराज जी सामने से निकले। उन की उम्र उस समय लगभग 24 या 25 वर्ष की होगी। श्री प्रभुजी की दृष्टि उनके शरीर पर पड़ी, पूर्व संस्कारों का प्रत्यक्षीकरण हुआ। श्री प्रभुजी का हृदय द्रवित हो उठा और गद्गद

कण्ठ होकर पूछ उठे, ''बेटा! आज कल तुम कहाँ हो ? तुम्हारा जन्म किस जगह हुआ है। तुम्हारा नाम क्या है'' ? किन्तु श्री प्रभुजी की ये बातें मुलखराज जी के मन को अच्छी नहीं लगीं। श्री प्रभुजी उस समय साधारण सूती मिल के कपड़े पहने हुए थे।

श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभुजी को उत्तर दिया, ''यह देशद्रोहियोंके मिल के कपड़े पहले उतारो व फूँक कर आओ व शुद्ध खद्धर के वस्त्र पहनकर आओ तब मैं तुमसे बात करूँगा''। श्री मुखराज के मुख से निकले हुए ऐसे कड़े शब्द सुनकर अपने ममत्व के नाते मन में तो प्रसन्न ही रहे किन्तु बाहरी लौकिक मर्यादा से चुप ही रह गए व लौट कर अपने स्थान पर चले आये। वहाँ पर बहुत से सत्संगी बैठे हुए थे। ध्यान योग की चर्चायें चल रही थीं किन्तु श्री प्रभुजी के मन का दृश्य कुछ और ही प्रकार का था। मनोमुद्रा से प्रसन्न दिखलाई दे रहे थे, किन्तु साथ ही कुछ गम्भीर दिखलाई देते थे। कभी-कभी मुख पर साधारण हंसी आ जाती थी और उसको रोक जाते थे। इस सब दृश्य को सभी सत्संगी देख रहे थे और मन ही मन यह सोच रहे थे कि आज यह क्या विलक्षण कृपा है।

इसी बीच में पंडित रामरत्न जो एक पुराने सत्संगी थे उन्होंने पूछा प्रभुजी! ''आज यह क्या विचित्र दृश्य है, आज आप बार-बार किसको स्मरण करके हंस रहे हैं'' ? श्री प्रभुजी कुछ थोड़े हँस कर बोले-''बेटा! आज हमें एक तुम्हारा भाई मिला है। वह जन्मों से बिछड़ा हुआ है किन्तु हमारा ही बालक है। हमने उसको देख लिया है। इसलिए कुछ ममत्व के संस्कार मन में बन आए हैं, वैसे उसके मिलने का संस्कार काल अभी आठ वर्ष बाद का है किन्तु जब हमने उसको देख लिया है अब उसके यह आठ वर्ष, आठ दिन में निबट जायेंगे और आज के आठवें दिन हमारा बच्चा हमारे पास अवश्य-अवश्य आ जायेगा।'' रामरत्न ने प्रार्थना की ''प्रभो! मुझे आज्ञा दीजिए अमृतसर में ऐसा कौन-सा बच्चा है जो आपके पास न आ सके। मैं उसको जल्दी ही बुला लाऊँगा।'' श्री प्रभुजी ने कहा-''नहीं वह आठ दिन के अन्दर स्वयं ही अवश्य-अवश्य आ जायेगा, संस्कार उसको ले आयेगा''। शनैःशनैः वे आठ दिन निकल गये। सभी सत्संगियों को मन में बड़ा उल्लास था।

सब यह चाह रहे थे, देखें आज आठवाँ रोज है, कौन वह बालक है, जिसको श्री प्रभुजी आज इतने दिन से याद कर रहे हैं। आज आठवाँ दिन है, हम भी उस बड़ भागी बालक को देखें जो आते ही श्री प्रभुजी के महान अनुग्रह को पायेगा। सभी सत्संगी इसी विचार में निमग्न थे। प्रातःकाल लगभग 9 बजे का समय होगा, दर्शनार्थी स्त्री-पुरूषों का आगमन प्रारम्भ हो चुका था। सभी लोग अपने-अपने मन की कामनाएं श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में बतला रहे थे। श्री प्रभुजी लोगों की भावना अनुसार उनके भले के लिए उपयोगी साधना बतला रहे थे। इतनी देर में एक 24 या 25 साल का नवयुवक सामने आया। उसके हाथ में उसकी अपनी जन्मपत्री थी। उसको किसी ने बतलाया था कि श्री रामलाल जी महाराज योगीराज हैं और जन्म पत्री को देखकर के भूत भविष्य की बातें कहते हैं। मैं भी अपनी भविष्य की बातों के प्रारब्ध को जानूं-इसी आशा को लेकर के यह नवयुवक श्री प्रभुजी के चरणों में उपस्थित हुआ था। किन्तु बड़े भारी आश्चर्य की बात यह थी कि जिस उमंग व उत्साह के साथ जन्म-पत्री को हाथ में लिए हुए यह बालक श्री प्रभुजी की ओर आगे बढ़ रहा था, वह अद्वितीय था।

श्री प्रभुजी के दर्शन पाते ही उसकी वह उमंग व उत्साह भंग हो गया। मन कुछ गिर सा गया, धीरे से पीछे हटना चाहा, किन्तु श्री कृपानिधि जी ने इसको देख लिया था। श्री दीनानाथ जी बोल उठे, बेटा! ''क्यों, तुम पीछे क्यों हट रहे हो। आओ हमारे सामने आओ हम तुम्हारे भूत-भविष्य की बातें बतलायेंगे।'' यह वही बालक था जिसने आज से

आठ रोज पहले कांग्रेस के जुलूस में जाते हए श्री प्रभुजी को कुछ कड़े शब्द प्रयोग किये थे किन्तु था यह उनका अपना, जिसका इन्तजार आठ रोज से सभी सत्संगी कर रहे थे। अपना जानकर श्री प्रभुजी ने स्वयं उसको अपने पास बुला लिया और उसकी जन्म–पत्री देखनी आरम्भ कर दी।

९.३ आनन्दकन्द श्री प्रभुजी महाराज की महान् कृपा

श्री प्रभु जी ने थोड़ी देर में जन्म–पत्री को देख करके व उसके पृष्ठों को उलट पुलट कर के श्री कृपानिधि जी ने फलादेश बतलाया, बेटा! ''तुम्हारी जन्म–पत्री में लिखा है कि आज से ही तुम योगी बन जाओगे! आज से तुम्हें अपने भूत–भविष्य का ज्ञान स्वतः ही होने लगेगा। तुम्हारी आँखों बन्द होंगी किन्तु बन्द आँखें होते हुए भी तीन लोक के नज़ारे तुम यहीं बैठे देख सकोगे।'' श्री प्रभुजी फलादेश कह रहे थे किन्तु उनकी कृपामयी वाणी को सुन करके आने वाले बालक के मनमें अत्यन्त आश्चर्य व जिज्ञासा बढ़ती ही जा रही थी। वह यह समझाता था, कि ये क्या कह रहे हैं। आज ही मैं भूत–भविष्य का ज्ञाता बन जाऊँगा, आज ही मुझे भगवान के दर्शन मिल जायेंगे, यह कैसे सम्भव हो सकता है। सुनने वाले अन्य सत्संगियों के मन में भी बड़ा आश्चर्य था और सभी इस आकाँक्षा में थे देखें इस बालक को अभी–अभी श्री प्रभु जी किस महान कृपा का दान देने वाले हैं।

सभी के कौतूहल को बढ़ाते हुए श्री प्रभुजी ने बालक को अपने पास बुलाया व कान में कुछ बतलाया और आज्ञा दी, ''बेटा आँखों बन्द करके बैठ जाओ''। वह बालक श्री प्रभुजी की आज्ञा को पा कर के अपनी साधना पर बैठ गया। साधन में बैठते ही ध्यानानुभूति जारी हो गई। भूत भविष्य के नजारे सामने आने लगे। उसको बाहर के बरामदे में ध्यान में बैठा करके और मकान में ताला बन्द करके श्री प्रभुजी ओकाड़ा मण्डी चले गये।

श्री प्रभुजी के कल्याणकारी कृपामय चरण–कमलों में योगोपदिष्ट हो जाने के बाद इन्होंने ध्यान योग में ब्रह्मलोकादि उत्तमोत्तम दृश्यों को देखा। श्री प्रभुजी ने इनको मूलाधार कमल में ऋद्धि सिद्धि सहित गणपति जी के ध्यान करने की आज्ञा दी थी, किन्तु श्री प्रभुजी जब तक ओकाड़ा मण्डी से लौट कर आये तब तक श्री मुलखराज जी ने षटचक्रों के सभी देवताओं के दर्शन पा लिये थे।

९.४ श्री प्रभु जी की अपार कृपा द्वारा पूर्व जन्म का ज्ञान

श्री गणपति जी ने उनको पूर्व जन्म का दर्शन कराया। श्री मुलखराज जी ने ध्यान में देखा कि एक बहुत सुन्दर पहाड़ है। वहाँ एक गाँव दिखाई दे रहा है। उस गाँव वालों का रहन–सहन बहुत सुहावना है। पहाड़ से पानी के स्त्रोत झर–झर कर निकलते दिखाई दे रहे हैं। इस गाँव में एक मकान है। जिसका एक द्वार पूर्व की ओर और एक पश्चिम की ओर। पूर्व द्वार के सामने एक जलाशय सा दिखाई देता था। उसके आस–पास कुछ सुहावने वृक्ष खड़े हुए थे। मकान में लगभग तीन या चार कमरे थे। उस मकान में एक परम तेजस्वी ब्राह्मण और एक दिव्य देवरूपा देवी दिखलाई दी। श्री गणपतिजी ने बताया कि यही तुम्हारा पूर्व जन्म का गाँव है। यही तुम्हारा घर और यह तेजस्वी ब्राह्मण तुम्हारे पिता हैं।

और यह तुम्हारी माता है! श्री मुलखराज जी जिस समय अपने पूर्व जन्म के दृश्य को देख रहे थे उस समय उनको अपने इस जन्म की सुध–बुध बिल्कुल भूल गई थी। उन्होंने अपने आपको भी उस पूर्वजन्म की आकृति में देखा।

अपने पूर्व जन्म के माता–पिता को ही माता–पिता जाना! पूर्व जन्म के भाई–बहनों को ही भाई–बहिन जाना और अपने पूर्व जन्म के गाँव के मित्रों को मित्र जाना। यह ध्यान दृष्टि से बार–बार अपने पूर्व जन्म के घर में जाते थे! जिस समय इनकी पूर्वजन्म की स्मृति भंग हुई तो श्री गणपति जी से प्रश्न किया कि महाराज मेरे माता–पिता अब कहाँ है ? मैं जानना चाहता हूं, मेरे उस जन्म वाले माता–पिता इस समय कहाँ वास करते हैं। श्री गणपति जी ने उसी समय हाथ का इशारा करते हुए श्री प्रभुजी की ओर बताया, यही तुम्हारे पूर्व जन्म के पिता हैं। जिस समय श्री माता जी को जानने की इच्छा हुई तो श्री माता जी का दर्शन एक देवलोक में कराया। उनका वर्ण बहुत उज्जवल और तेजोमय था। शरीर काफी लम्बा था। वह बहुत मृदु भाषिणी थी। श्री माताजी ने देवलोक से ही इन्हें आशीर्वाद दिया। इसके अतिरिक्त और कई प्रकार के दृश्य ध्यान में श्री मुलखराज जी ने देखे। इन्हीं आठ दिनों के अन्दर श्री गणपति जी के दर्शन हर समय खुली आँखों और बन्द आँखें से उनको होत रहे। आठ दिन के बाद जिस समय श्री प्रभुजी ओकाडा मण्डी से लौट कर आये तो श्री प्रभु जी ने श्री मुलखराज जी की ओर मुस्कराते हुए देखकर कहा– ''कहो बेटा! तुम्हारे प्रश्नों का जवाब तुम्हें मिल गया है ?'' श्री प्रभुजी के दर्शन पाते ही श्री मुलखराज जी ने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और प्रार्थना की, हे प्रभु जी ''आपने अपने भटकते हुए बालक को पकड़ लिया है।'' श्री मुलखराज जी के अत्यन्त विनययुक्त शब्दों को सुन करके श्री प्रभुजी ने करूणा कर उनको कण्ठ से लगा लिया और हार्द दीक्षा देकर के एक दम तुरीय स्थिति प्रदान कर दी।

९.५ श्री मुलखराज जी की तुरीय स्थिति की दिव्य घटना

श्री मुलखराज जी इस मस्ती के नशे में इस प्रकार झूमते–झामते चलते थे जिसमें उनको बिल्कुल बाह्य ज्ञान नहीं रहता था। किन्तु एक बड़ा भारी आश्चर्य था और वह यह कि जिस समय वह अमृतसर के 'कर्मो ड्योढ़ी' व 'हाल बाजार' आदि बड़े–बड़े बाजारों से निकलते थे उस समय भी किसी मोटर, ताँगा, रिक्शा व साधारण मनुष्यों से भी उनकी भिड़न्त नहीं होती थी। श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द श्री प्रभुजी के साथ बाँई ओर चल रहे थे उधर तथा दाहिनी ओर श्री मुलखराज जी चल रहे थे उस समय श्री ब्रह्मचारी जी ने श्री प्रभुजी से पूछा कि प्रभुजी यह क्या बात है, श्री भाई जी की आँखें बिल्कुल बन्द रहती है और ऐसी स्थिति में भी यह सभी मोटर ताँगों रिक्शों से बचकर कैसे निकल जाते हैं और इस स्थिति में क्या आनन्द है ? श्री प्रभुजी ने उनको जवाब दिया, ''बेटा इसको जो आनन्द है, उसको तो यही जानता है। यह आनन्द बतलाने में वाणी का विषय नहीं है। जिस आनन्द को किसी ने अभी तक देखा ही नहीं जो हर किसी को उपलब्ध भी नहीं है, उस आनन्द का वर्णन जीभ क्या करके बतलायेगी। दूसरी बात तुमने पूछी है कि इनकी भिड़न्त क्यों नही हो जाती सो इसको ले जाने वाला ड्राईवर सर्व शक्तिमान है जो सभी का उर प्रेरक है इसलिए ऐसी स्थिति में कभी भी भिड़न्त नहीं हुआ करती और न ही ऐसी स्थिति में पहुंचे हुए योगी को कोई किसी प्रकार का नुकसान पहुँचा सकता है।''

९.६ उड्डयन गति द्वारा काँगड़े के पहाड़ से नीचे आना

एक बार श्री प्रभुजी श्री मुलखराज जी को व श्री गोपालानन्द जी को साथ लेकर के कांगड़े के पहाड़ पर गए। साथ में और भी बहुत से गृहस्थ शरीर थे। अन्य साथ में जाने वाले सत्संगी लोगों ने जब इन दोनों की ऐसी दशा देखी कि पल पल में मूर्छित हो जाते थे और इनके शरीर चेतनाहीन होकर जड़वत पत्थर की तरह गिर जाते थे, तो लोगों ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि प्रभो आप ले तो आये हें किन्तु पहाड़ से नीचे कैसे उतारेंगे तो प्रभुजी हँसे और कहा कि ''भाई यह तुम लोगों से पहले जायेंगे और कोई नुकसान भी होगा नहीं।'' लोगों ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की महाराज हम यह देखना चाहते हैं कि यह लोग पागलों जैसी स्थिति में रहने वाले कैसे पहाड़ से नीचे उतर जाते हैं। लोगों की इस हार्दिक भावनाओं को देखकर श्री प्रभुजी ने कहा कि अच्छा अभी हम तुम्हारे सामने नीचे उत्तर देते हैं। ऐसा कहकर श्री प्रभुजी ने दोनों को खड़ा कर लिया और निर्दयभाव से गर्दन पकड़ करके पहाड़ की चोटी से नीचे को धकेल दिया, सभी लोगों ने देखा कि श्री गोपालानन्द जी दार्दुरी वृति से नीचे जा रहे हैं और श्री मुलखराज जी उड्डयन गति से नीचे जा रहे हैं। सभी लोग पहाड़ी पर ही खड़े थे। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ और लोग धन्य–धन्य कहने लगे।

९.७ श्री मुलखराज जी की राजयोग अवस्था

श्री मुलखराज जी के पिता जी इनकी अलोकिक अवस्था से अपरिचित होने के कारण अपने सम्बन्धियों को साथ ले जाकर इस अवस्था से उत्थान कराने के लिए श्री आनन्दकन्द प्रभुजी से अनेक बार आग्रह करते कि मेरे बालक की इस अवस्था को, जिससे यह सांसारिक कार्य व्यवहार से बिल्कुल उपराम सा हो रहा है, आप बदल दें ताकि यें भजन के साथ–साथ हमारा कारोबार भी करता रहे। श्री प्रभु जी ने फरमाया–''यह अवस्था देवताओं को भी दुर्लभ है किन्तु आप लोगों के विशेष आग्रह करने पर हम इतना कर देते हैं कि जिससे यह बालक भजन ध्यान में 24 घंटे तद्रूप रहता हुआ मुंदी हुई आंखों से भी आप के साथ दुकान का उचित व्यवहार कार्य, गृह कार्य, आदि कर सकेगा।''

यह सुनकर उनके पिता जी ने कहा–''महाराज! मुंदी हुई आंखों से दुकान का कार्य या मार्ग में चलना, उचित व्यवहारकार्य, गृह कार्य कैसे कर सकेगा। उसमें तो पग–पग पर गिरने तथा हानि होने का भय है।'' श्री प्रभुजी ने फरमाया– ''यदि यह मार्ग में कहीं गिर जाये, व्यवहार–कार्य में हानि करें अथवा उचित बर्ताव जब न हो, तब आप आकर हमें बताना; फिर हम इसकी आंखें खोल देंगे। किन्तु ऐसा होने से पूर्व हमारे पास आकर इसकी कोई शिकायत न करना। हमने आपके घर में आग जला दी है। इससे अनुकुल उचित लाभ प्राप्त कर लेना; विपरीत प्रयोग से हानि होगी; इस मस्ती एवं ध्यान अवस्था वाले बालक के हृदय को दुखित करने वाले स्वयं दूःखी होंगे और उचित प्रेम व्यवहार करने वाले सुख की प्राप्ति करेंगे।''

ऐसी आश्चर्य की बात सुन कर मुलखराज जी के पिता जी आनन्दकन्द प्रभुजी के चरण कमलों में सादर प्रणाम कर आशीर्वाद ले वहाँ से चल दिये। भक्तों के हृदय में अनन्त शक्तियों का संचार करने वाले प्रभुजी की आज्ञानुसार समाधि अवस्था में परिवर्तन हो गया। आप मुंदी आंखो ध्यान में तद्रूप रहते हुए उचित रूप से सब कार्य

व्यवहार करने लगे। दुकान पर अनाज खरीदने वाले व्यापारियों को अनेकों बोरियाँ तराजू से तोल देते; रूपया पैसा लेते–देते और सब उचित व्यवहार, वार्तालाप, मुंदी आँखों ही करते, किन्तु रूपया पैसा लेना देना किसी भी कार्य में कोई त्रुटि न आती देख कर घरवाले और अन्य लोग आश्चर्य चकित होते थे कि मुंदी आंखें सब काम उचित रूप से कैसे करते हैं ? इसी प्रकार वह कई वर्ष तक दुकान और सब व्यवहार आदि कार्य करते हुए समाधि में तद्रूपता को प्राप्त रहे।

श्री मुलखराज जी की दिनचर्या इस प्रकार से थी प्रातः चार बजे चारपाई से उठ कर नित्य कर्म से निपट कर सूर्य उदय होने तक ध्यान समाधि में स्थित रहते थे। उत्थानावस्था होने पर मुंदी आँखें मस्ती में झूमते हुए कटरा भाई सन्त सिंह में अपने आनन्दकन्द प्रभुजी के पास चले जाते और चरण कमलों से लिपट जाते। अन्य सत्संगी बहिन–भाई उन की इस नित्य–स्थित तुरीया को देख कर बारम्बार प्रभुजी की सराहना करते, तथा वैसी अवस्था की प्राप्ति के लिए कई एक बार नम्रभाव से प्रार्थना भी करते। इस प्रकार दो घंटे के बाद दुकान का समय होते देखकर प्रभु जी उन को दुकान पर भेज देते। प्रातः दस बजे से साय चार बजे तक भोजन तथा दुकान के कार्य व्यवहार से निपट कर वह तीन घंटे ध्यान समाधि में समाधिस्थ रहते। उसके बाद सायंकाल उत्थानावस्था होने पर वह फिर कटरा भाई सन्त सिंह में श्री प्रभु जी के चरणों में आ जाते, सेवा करते व उनकी जीवन घटनायें सुनते। जब रात्रि के दस या साढ़े दस बजे का समय होता तो भक्तवत्सल श्री प्रभुजी तारा मण्डल की ओर संकेत करते हुए फरमाते–''बेटा! देखो, वापिस गृह जाने का समय हो रहा है। माता पिता तुम्हारी प्रतीक्षा करते होंगे।'' तो प्रभुजी की आज्ञा पा आशीर्वाद ले मुंदी आंखें मस्ती में झूमते हुए वापिस गृह आकर चारपाई पर वह ध्यान में ही लेट जाते और प्रातः ध्यानावस्था में ही उठ कर नित्य कर्म से निपट कर फिर समाधि मे चले जाते।

९.८ दिव्य दृष्टि का प्रादुर्भाव

श्री मुलखराज जी चारपाई पर रात्रि को लेटते समय श्री प्रभुजी के दिव्य अविनाशी स्वरूप में तल्लीन हो सोया करते और प्रातः उठते ही श्री प्रभुी जी को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त करते थे। अतएव हर समय उनको अपने श्री प्रभुजी के दिव्य दर्शन होते रहते थे। एक रात्रि वह श्री प्रभुजी के चरण कमलों से लिपट कर योगनिद्रा लेने लगे। प्रातः साढ़े चार बजे के लगभग इन को ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रभुजी इनकी चारपाई से उठ कर भूमि पर खड़े हो अन्तर्ध्यान हो गये। इसके बाद इन को ऐसा दृष्टिगोचर हुआ कि अमृतसर स्टेशन के प्लेटफार्म न.2 पर श्री प्रभुजी ने अपना एक चरण रेलगाड़ी में और दूसरा चरण जो प्लेट फार्म पर रखा हुआ था उस चरण के साथ लिपटते हुए इन्होंने सूक्ष्म शरीर से प्रार्थना की–''प्रभुजी! बालक को भी साथ ले चलो।'' इतनी प्रार्थना कर आज्ञा पा इन्हों ने शीघ्रता से वस्त्र पहने और स्टेशन की ओर अपने गृह से चल दिये। जब रेलवे स्टेशन प्लेटफार्म न.2 पर पहुंचे तो देखा कि श्री भक्त वत्सल प्रभु एक चरण प्लेट–फार्म पर और दूसरा चरण गाड़ी में रख कर खड़े हुए बालक की ओर करूणामय मुस्कराहट से निहार रहे हैं। श्री मुलखराज जी ने वहां पहुंच कर श्री चरण कमलों मे गिर कर प्रणाम किया। प्रभुजी ने कण्ठ से लगाकर आशीर्वाद दिया और इन को गाड़ी में अपने साथ लेकर बैठ गये। किन्तु इन को मस्ती ही हालत में विशेष लीन देखकर इन्हें अपनी जंघा पर लिटा लिया। समाधि अवस्था में इनको प्रभुजी के इस प्रकार दर्शन हुए कि स्वाधिष्ठान चक्र में

श्री माता गायत्री जी ब्रह्म जी के साथ विराजमान हैं और दोनों के चतुर्भुज दिव्य अलौकिक रूप के दर्शन किये। फिर श्री ब्रह्मा जी से पूछा महाराज! आपके हाथ में ये पुस्तकें कैसी हैं? श्री ब्रह्माजी-''ये चारों वेद हैं।'' ''महाराज! इनके नाम क्या-क्या हैं''? श्री ब्रह्मा जी-''ऋग्वेद, युजर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।'' ''महाराज! कृपा करके इनका उच्चारण कीजिये। श्री ब्रह्मा जी-''सुनिये, हमें भी भक्तों को सुनाने में विशेष प्रसन्नता होती है। ब्रह्मा जी के चार मुखों से चार वेदों का उच्चारण मधुर अलौकिक ध्वनि से हुआ, जिसका वर्णन पराबुद्धि विचारो की शक्ति से बाहर है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि थोड़े ही श्रवण में वृतिया इतनी लय हो गई कि चांद चकोर की तरह दृष्टि श्री ब्रह्मा जी के स्वरूप में अपने स्वरूप की सुधि को भूल गई। इस प्रकार कुछ समय के पश्चात् श्री ब्रह्म जी ने उनके सिर पर हस्त रख कर फरमाया-''कुछ सुन रहे हो''? श्री मुलखराज जी ने कहा ''महाराज! सुन तो रहा हूँ किन्तु इस श्रवण के आनन्द में मन आनन्द रूप होकर अपनी अवस्था के भूल गया था। तब माता गायत्री जी ने कहा ''भक्त धन्य हो; धन्य हो।''

जब गाड़ी लाहौर पहुँची तो श्री आनन्दकन्द प्रभुजी ने मुलखराज जी को ध्यान समाधि से उठा कर और गाड़ी से नीचे प्लेटफर्म पर ले जाकर बैंच पर बिठा दिया क्योंकि गाड़ी लाहौर से बदल कर दूसरी गाड़ी ओकाड़े जानी थी। श्री आनन्दकन्द प्रभुजी ने आशीर्वाद देते हुए फरमाया-''राजा जी! अपनी गाड़ी की लीला सुन लो - जब गाड़ी अमृतसर से अटारी पहुंची तो वहां टी. टी. आई ने आकर गाड़ी में बैठे सब मुसाफिरों के टिकट देखे। हमारी टिकट देखने के पश्चात् वह तुम्हारे सामने बैठ गये। और दो मिनट तक तुम्हारे चेहरे की ओर देख कर मुस्कराते रहे। जब उठ कर जाने लगे तो हमने उनसे तुम्हारा टिकट देखने के लिये कहा।

टी. टी. आई - ''इनको कृपया आराम करने दें।'' श्री प्रभुजी - ''क्या यह आपके सम्बन्धी हैं?''

टी.टी. आई - महाराज! ''सम्बन्धी तो नहीं हैं, परन्तु दिल को बहुत प्यारे लग रहे हैं।''

इतना कह कर टी. टी. आई दूसरे डिब्बे में चले गये। इसके पश्चात् जब गाड़ी मुगलपुरा स्टेशन पर पहुंची तो एक नए टी. टी. आई ने आकर हम सब के टिकट देखे तो तुम्हारे सामने थोड़ी देर खड़े होकर जब वह जाने लगे तो हमने टी. टी. आई से कहा ''कि इनका टिकट भी देखों।'' तो उसने कहा-''महाराज! इन्हें आराम करने दो।'' इतना कह कर टी. टी. आई नीचे उतर गये।

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी से यह लीला सुनकर वह उनके चरणों से लिपट गये। श्री सतगुरु देव जी ने फरमाया-''राजे जी! ओकाड़ा जाने वाली गाड़ी का पता लगाओ। अभी उसके जाने में कितनी देर है? इन्होंने पता लगाकर श्री प्रभु जी के चरणों में प्रार्थना की-''महाराज गाड़ी जाने में अभी डेढ़ घंटा बाकी है'' इतना कहने पर इन्होंने दूसरे प्लेटफार्म पर ले जाकर श्री आनन्दकन्द प्रभुजी को बेंच पर आसन बिछाकर विराजमान करा दिया और स्वयं प्रभुजी को भोग लगाने के लिये दूध, आहार आदि लेने चले गये। जब लेकर वापिस आये तो हाथ धुलवाकर जलपान करने के लिये श्री प्रभुजी से प्रार्थना की। तब श्री प्रभु जी ने स्वयं भोग लगाकर इनको भी प्रसाद दिया और पूछा-''हलवाई से बर्तन लाने में कुछ रूपया पैसा रख आये हो?'' तो इन्होंने नत्मस्तक हो उत्तर दिया-''महाराज! आपकी कृपा से मुझ से तो उसने यह भी नही पूछा कि आप बर्तन कहाँ ले जा रहे हो'' और न मुझे ही मिठाई आदि के पैसे देने याद रहे। यह सुनकर प्रभु जी मुस्करा दिये और कहा-''जाओ, बर्तन और दाम दे आओ।'' तब इन्होंने स्टेशन से बाहर

आकर हलवाई को बर्तन तथा मिठाई के दाम दे दिये और इन्टर क्लास का टिकट लेकर श्री प्रभुजी के पास पहुंच गये।

श्री प्रभु जी-''पुत्र! क्या टिकट ले आये हो ? मुलखराजजी-(टिकट दिखाते हुए) हाँ! प्रभुवर। ये टिकट ले आया हूं।'' श्री प्रभु जी-''हम तो तीसरे दर्जे में बैठेंगे और राजा जी इन्टर क्लास में।''

श्री मुलखराज''न महाराज! आपके पास। प्रभुजी! अमृतसर स्टेशन प्रवेश करते समय चांद चकोरवत आपकेचरण कमलों में वृति लय हो रही थी, अतएव टिकट लेने की सुध न रही थी। लाहौर स्टेशन के बाहर और भीतर भी बाबू को बिना टिकट दिखलाए ही बारम्बार आते जाते रहे। हलवाई को मिठाई के पैसे गिनकर देत हुए नीति का भान हुआ। तब टिकट लेने की याद आई और यह भी विचार हुआ कि अमृतसर से लाहौर तक का टिकट न ले सके थे, अतः अब लाहौर से ओकड़ा तक इन्टर का टिकट लेना चाहिए ताकि रेलवे वालों को पिछले टिकट के भी दाम पहुंच जाए।'' यह सुनकर श्री करूणामय प्रभुजी मुस्करा दिये थोड़ी देर बाद गाड़ी के आने पर उनको लेकर उसमें सवार हो ओकाड़ा जा पहुंचे। वहाँ के भक्तों ने श्री प्रभु जी का यथोचित पूजन किया। ओकड़ा में दो दिन ठहर वहां के भक्तो को आशीर्वाद देकर अपने बालक को साथ ले श्री आनन्दकन्द प्रभुजी स्टेशन पर आ गये। स्टेशन पर पहुंच कर देखा कि गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी हुई है। सो इनको आज्ञा दी कि समान गाड़ी पर रखवाओ और प्रभु जी स्वयं टिकटलेने चले गये। श्री मुलखराज जी सामान गाड़ी में रखा कर बैठ गये और दो मिनट बाद गाड़ी वहां से चल दी। तो इन्होंने खिड़की से देखा कि आनन्दकन्द प्रभु जी टिकट लेने के लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं। गाड़ी चलने की तेजी के कारण सामान को गाड़ी में ही छोड़ स्वयं नीचे उतर आये तो आनन्दकन्द प्रभुजी ने सामान के सम्बन्ध मे पूछा-''बेटा सामान कहाँ है ?'' वह विशेष मस्ती के कारण मुहँ से न बोल सके ओर गाड़ी की ओर संकेत करते हुए कहा-''वह जा रहा है।''

श्री भक्त वत्सल प्रभु जी-''क्या घर जाने पर तुम्हारी गुरू माता जी तुम्हें पूछेंगी नहीं'' ? माता जी के स्वभाव की याद आते ही सामान जाने का कुछ कष्ट प्रतीत हुआ। तब तत्क्षण उस गाड़ी का अगला सिगनल टूट गया ओर गाड़ी वहीं रूक गई। तो मुलखराज जी ने प्रसन्न-चित मुस्कराते हुए प्रभुजी से प्रार्थना की-''महाराज! आप टिकट ले आयें; गाड़ी रूक गई है।'' फिर वह श्री प्रभुजी के साथ जाकर गाड़ी में सवार हुए ओर कुछ देर बाद गाड़ी वहाँ से चल दी। ओकाड़ा से चलकर गाड़ी अभी दो तीन स्टेशन आगे बढ़ी होगी कि इन के पेट में सख्त दर्द होने लगा।

श्री प्रभु जी-''बेटा! क्या बात है ?'' ''प्रभो! पेट मे सख्त दर्द हो रहा है। श्री प्रभु जी-''पुत्र! थोड़ा सा सूर्य भेदी प्राणामय कर लो तो ठीक हो जाओगे। ऐसा अभ्यास करते ही पेट की पीड़ा जाती रही और वह श्री प्रभुजी के चरण कमलों से लिपट गये। तत्पश्चात् उनको ऐसा दृष्टिगोचर हुआ कि एक ऋषि जी ने सूक्ष्म दिव्य शरीर से आकर श्री प्रभुजी को साष्टांग प्रणाम किया। मुलखराज जी ने श्री प्रभुजी से पूछा-''प्रभो! यह ऋषि कहां से पधारे हैं'' ? प्रभु जी-''हिमालय से! किन्तु हमारे स्थूल शरीर को अनेक स्थानों पर ढूंढते हुए अब गाड़ी में आकर मिले हैं।'' तब वह कुछ समय तक प्रभुजी के चरण कमलों से लिपटे रहे और वापिस अमृतसर अपने स्थान पर आ गये।

९.९ वस्त्र स्पर्श से भूत का उतरना

एक दिन एक देवी व्याकुल ह्रदय से गिड़गिड़ाती हुई प्रभुजी के चरणों में गिर गई। श्री प्रभु जी द्वारा कारण पूछने पर उस देवी ने कहा-''महाराज! एक मास के लगभग

गुजर चुका है मेरे पति देव तन–मन की सुध को खो कर घर में पागलों की तरह बर्तन तोड़ना, फोड़ना, वस्त्र फाड़ना, आदि करते हैं। यदि घर का कोई व्यक्ति समीप चला जाये या कोई व्यक्ति खबर लेने आये तो उसे भी पीट देते हैं। अतः कई सम्बन्धियों ने निश्चय किया है कि इनमें किसी अधोगति के भूत–पिशाच आदि का आवेश है। हम किसी मंत्र–यंत्र करने वाले को बुलाते हैं तो वह उसे भी पीट डालते हैं। इस पर श्री प्रभु जी ने फरमाया–''मंत्र–यंत्र करने वाले अधूरे होंगे; ऐसा कष्ट तो किसी योगी बालक का वस्त्र स्पर्श होते ही कट जाता है। अतएव हमारे इस बालक मुलखाज को कोई एक साधारण कमीज नई सिलवा कर ला दो और इस के शरीर पर धारण की हुई कमीज को ले जाकर प्रथम अपने पतिदेव के सिर पर गिरा देना। कमीज के गिरते ही उस का आवेश शान्त हो जायेगा। फिर वही कमीज उस के गले में पहना देना तो वह बिल्कुल अच्छा भला होकर अपने कार्य–व्यवहार में प्रवृत हो जायेगा।'' यह आज्ञा पाकर वह देवी चली गई। दूसरे दिन जब आई तो महाराज जी के समक्ष नम्र निवेदन किया–''महाराज! मै यह नई कमीज ले लाई हूं । कृपया अपने बालक की कमीज दिलवा दीजिये।'' सो मुलखराज जी श्री प्रभु जी की आज्ञा पाकर पहनी हुई कमीज उत्तार कर देवी को दे दी और नई धारण कर ली दूसरे दिन उस देवी ने आकर बताया कि महाराज! ''आपके बालक की कमीज से स्पर्श होते ही मेरे पति देव का कष्ट दूर हो गया। प्रथम तो उनका शरीर बेसुध होकर गिर पड़ा, थोडी देर के पश्चात् सुध आने पर उन्होंने जलपान करने की इच्छा प्रकट की। हमने जलपान कराया, तब वे सोच विचार की अच्छी बातें करने लगे और अपनी बे सुधि की घटनाओं को सुन कर लज्जित हो रहे हैं। इसी लज्जा के कारण अभी घर से नही निकले। घर पर आने वाले मित्र समाज के साथ अच्छी तरह बातचीत कर रहे हैं।'' तब श्री प्रभुजी ने आशीर्वाद देकर आज्ञा दी–''देवी! तुम्हारे पति देव का कष्ट भगवान ने हर लिया है। जाओ, नित्य परिवार सहित भगवान का भजन करना। यह भी भजन का प्रताप है, जो भजन बालक के वस्त्र का स्पर्श होते ही तुम्हारे पति देव का कष्ट कट गया है।'' तब उस देवी ने नित्य भजन–ध्यान करने की प्रतिज्ञा की और प्रभुजी से आशीर्वाद प्राप्त कर घर को चली गई।

९.१० कुम्हार का माल उठाकर ले जाना और श्री प्रभु जी का रोकना

एक दिन श्री मुलखराज जी की दुकान पर आकर एक कुम्हार ने कुछ बोरियां बिनौले आदि माल खरीदा और तराजू से तुलवा कर बोरियाँ चबूतरे से नीचे रख दी और कहा–रूपये हम अभी बाजार से लौटते हुए देंगे। कुछ देर के बाद जब वह कुम्हार लौटकर आया तो उसने इनको नशेमें विचार कर बोरियाँ अपने गधों पर लाद्दी और बिना पैसे दिये ही चल दिया। कुछ देर के बाद जब कनिष्ट भ्राता जी आये तो उन्होंने इनके कंधों को झुलाकर पूछा–''भ्राता जी! क्या कुम्हार से रूपये ले लिये हैं'' ? तो उत्तर में इन्हों कहा–''नही''! तब वह साईकल पर सवार होकर इधर–उधर निकट के बाजारों में तथा नहर की ओर कुम्हार को ढूंढकर वापस लौट आये और आकर कहा–''पीछे तो कुछ वर्ष इस मस्ती की अवस्था में कार्य करते हुए कोई हानि नही हुई किन्तु अब तो आपकी जिम्मेदारी लेने वाले गुरूदेव जी को कुम्हार द्वारा उठाए बिनौलों का मूल्य देना पड़ेगा''। यह वार्तालाप हो ही रहा था कि इन के पूज्य पिता जी भी दुकान पर आ गये और उनसे कनिष्ठ भ्राता जी कुम्हारा द्वारा बिना मूल्य दिये माल उठाने के सम्बन्ध में कुछ कह ही रहे थे कि हाथ में रूपये लिये आकर कुम्हार हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा–''हम जान–बूझकर बिनौलों का रूपया न देकर चले गये परन्तु जबहम थोड़ी दूर पहुंचे ही थे कि एक गौरवर्ण दीर्घ–काय व्यक्ति गधों को रोक मार्ग में खड़े हो गये और धमकी देकर कहने लगे कि बिनौलों की कीमत देकर रसीद लाओ, तब आगे जाने दूँगा। यह सुन कर पिता

जी ने रूपये ले लिये और रसीद काटकर दे दी और मन में विचार किया कि हमारे दो बालकों के अतिरिक्त और ऐसा कौन व्यक्ति है जो गधों को मार्ग में जा कर रोक लेता ?

रूपया देकर कुम्हार जब शहर से बाहर आया तो उसको अपने गधों के समीप एक पेड़ की आड़ में वही व्यक्ति खड़ा दृष्टिगोचर हुआ। समीप जाने पर कुम्हार ने पेड़ के चारों ओर देखा परन्तु वह व्यक्ति अन्तर्ध्यान पाया। तत्पश्चात् कुम्हार हैरान हो गधों को लेकर अपने गांव को चल दिया। दो दिन बाद वही कुम्हार जब आपकी दुकान पर आया तो उसने आप बीती उपरोक्त घटना कह सुनाई।

९.११ योगी की निर्भय अवस्था

सम्वत् 1978 विक्रमी वैशाख मास में अमृतसर में हिन्दू मुसलमानो की लड़ाई ने ऐसा विकराल रूप धारण किया कि नगर के सब बाज़ार तीन दिन तक बन्द रहे। अपने-अपने बाज़ारों मुहल्लों में मुसलमान लोग एकत्र होकर जिस किसी अकेले दुकेले व्यक्ति को आते-जाते देखते तो उसे पीटते और लूट लेते तथा अनेक स्थानों पर वध भी कर देते थे। किन्तु श्री मुलखराज जी श्री प्रभुजी के दर्शन करने को नित्य नियमानुसार मस्ती में झूमते हुए आते जाते थे। मार्ग में प्रथम इनको गूजरों, दूसरे पटरंगों और तीसरे कटरा भाई सन्त सिंह में प्रवेश होने से पूर्व चौंक में अली! अली! करते हुए मुसलमानों के समूहों के मध्य से गुजरना होता था, जो परस्पर एकत्र होने के अतिरिकत अपने पास लाठियां, कुल्हाड़ियां आदि भी रखते थे। इन लोगों से भयभीत होकर ही कटड़ा भाई सन्त सिंह में रहने वाले हिन्दू लोग अपने तीनों कूचों के दरवाजों को भीतर से ताले लगा कर एक स्थान पर लाठियों सहित एकत्रित होकर बैठ जाते थे। जब राजा जी कूचे के दरवाजे के आगे जाते तो भीतर खड़े हिन्दू लोग मुसलमानों द्वारा लूटे जाने के भय से खिड़की का दरवाजा खोलने से इन्कार कर कह देते-''वापिस लौट जाओ''। तुम तो बन्द आंखें चले आते हो किन्तु हम लोगों को दरवाजा या खिड़की खोलने पर मुसलमानों से लूटे जाने का भय है। किन्तु जब श्री मुलखराज जी दरवाजे के साथ देर तक बन्द आंखें खड़े रहे तो कुछ व्यक्तियों ने कहा-''आज जल्दी से खिड़की खोला कर इन्हें भीतर कर लो। यदि कल आये तो दरवाजा नहीं खोला जायेगा। तत्पश्चात् खिड़की खोलकर आपको भीतर लिवा लिया गया।

मुलखराज जी दुनियाँ और मरने-मारने की सुध न होने से बन्द आंखें मस्ती की अवस्था में झूमते हुए लोह चुम्बक की भांति खिंचे हुए चले आते थे। जब दूसरे दिन भी पूर्ववत् उसी समय बन्द आंखें मस्ती में झूमते हुए वह कूंचे के बाहर आकर खड़े हो गये, तो उनमें से कुछ व्यक्तियों ने कहा-''आज इन्हें बाहर ही खड़ा रहने दो। परन्तु कुछ भक्तों ने कहा-'' खिड़की खोल इन्हें साथ ले जाओ और श्री गुरूदेव जी से इन्हें रोकने के लिये कहना; वे रोक देंगे''। जब वे तीनों व्यक्ति इनको साथ लेकर श्री प्रभुजी के चरण कमलों में गये और जाकर उन्होंने श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के चरण कमलों में प्रार्थना की-''महाराज! इनको दो चार दिन के लिए यहां आने से रोक दीजिए ताकि लड़ाई के दिनों में इनको या इनके कारण दरवाजा खोलने वालों को हानि न हो''। श्री प्रभुजी ने दो व्यक्तियों को तो समझा देंगे इतना कह कर नीचे भेज दिया किन्तु तीसरे वृद्ध तिलकधारी भक्त को अपने पास बिठला कर फरमाने लगे -''भाई! आप तो तिलक लगाए भक्त मालूम पड़ते हो और लम्बे-लम्बे तिलक भी धारण किये हुए हो। सोचते क्यों नहीं कि मुसलमानों के भय से तो आप लोगों ने भीतर से कूचे का दरवाजा बन्द कर ताले लगाए हुए हैं किन्तु यह बच्चा बन्द आंखे मस्ती में झूमता हुआ चौक में हिन्दुओं को मारने के

लिये एकत्रित हुए मुसलमानों के झुण्ड में से गुजर कर आता है और इसके अतिरिक्त पटरगों और गूजरों के दल में से इसी प्रकार निकल कर आता है। भक्त जी! इसी अवस्था को ही शास्त्रकारों ने तुरीय-अवस्था कहा है। सो ऐसी अवस्था वाले भक्त का बरसाती हुई गोलियों वाली मशीनगनों के सामने से गुजरने पर भी बाल बाँका नहीं हो सकता।

यह सुनकर वह वृद्ध सज्जन बहुत लज्जित हुआ और हाथ जोड़ कर क्षमा माँगने लगा-''महाराज! हमने अज्ञानतावश जो कुछ कहा है कृपया उसके लिये क्षमा करें। यह कह कर वे चल दिये।

९.१२ मजीठ मंडी अमृतसर वाले भक्त पर प्रभु कृपा

सम्वत् 1981 में एक दिन श्री मुलखराज जी बाज़ार बाँसवाला में अपनी दुकान के चबूतरे पर विराजमान हो ध्यान मग्न हो रहे थे कि एक व्यापारी ने आकर माल खरीदने के लिये इन को झुलाकर उठाया और माल मोल ले वह चला गया। उस समय इनकी दुकान के सामने दो वृद्ध ब्राह्मण ध्यान के विषय में इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे।

एक ब्राह्मण-''कहो भैया तुम ध्यान में नित्यप्रति बैठते हो या नहीं?'' दूसरा ब्राह्मण-''27 वर्ष पूर्व मैंने श्री गुरू महाराज जी से उपदेश लिया था। तब से अब तक ध्यान में नित्य नियमानुसार बैठता हूँ, किन्तु मूलाधार चक्र स्थान पर कभी-कभी ऋद्धि-सिद्धि सहित गणपति जी के अति छोटे से चित्र की भांति अणुमात्र दर्शन होते हैं।''

पहला ब्रह्मण-''आप धन्य हैं, जो तब से अब तक नियम को निभाते चले आ रहे हैं। हमने तो कुछ वर्ष अभ्यास किया किन्तु दर्शन न होने के कारण अब केवल पूजन, तथा वार्ता श्रवण एवं सत्संग ही करते हैं।

यह बात कह कर जब पहला ब्राह्मण चला गया तो श्री मुलखराज जी ने उपरोक्त दूसरे पंडित जी को बुलाकर पूछा-''पंडित जी 27 वर्ष तक नित्य नियम पूर्वक अभ्यास करने से आपको एक बार भी गणपति जी कि दिव्य स्वरूप में दर्शन नहीं हुए'' ?

पंडित जी-''महाराज! यह एक ही जन्म का काम थोड़े ही है, कई जन्म तक अभ्यास करने से दर्शन होते हैं।''-''भैया! हमारे पूज्य श्री सत्गुरूदेव जी की अनुकम्प से जिज्ञासु शरणागतों को शीघ्र दर्शन हो जाते हैं।

पंडित जी-''तभी आप की आँखों में मस्ती छाई हुई है। श्री मुलखराज जी-''भैया! इस घट में तो अनाथ नाथ श्री सत्गुरूदेव जी अपनी अपार कृपा से 24 घण्टे दिव्य दर्शनों का आनन्द प्रदान कर रहे हैं। कभी दो भुज, कभी चतुर्भुज, कभी ऋद्धि-सिद्धि सहित गणपति जी का, भीतर बाहर रोम-रोम अणु-परमाणु सब स्थानों में दर्शन करा रहे हैं।''

पंडित जी-''महाराज! हम पर भी कुछ कृपा कर दीजिए।'' श्री मुलखराज जी-भैया! आप कल सायंकाल को हमारे श्री प्रभु स्थान पर आ जाना। आशा है कि प्रभुजी आप पर अवश्य कृपा करेंगे।

यह सुनकर पंडित जी मन ही मन विशेष प्रसन्न हो, प्रणाम करके चल दिये। सायंकाल में श्री मुलखराज जी ने श्री आनन्दकन्द प्रभुजी को उपरोक्त दोनों ब्राह्मणों का सारा वृतान्त कह सुनाया और प्रार्थन की-''महाराज! इस बालक के मुख से आपने यह भी कहलवा दिया है कि आपकी भक्ति सफल होगी।''

श्री प्रभुजी -''बेटा! उसे 27 वर्ष निरन्तर अभ्यास का फल तुम्हारे द्वारा ही प्राप्त होना था। इस कारण तुम्हारे मुख से ऐसा निकला है। कल ही उसे बड़ी स्पष्टता से दर्शन हो जाएंगे।'' दूसरे दिन उन्हीं पंडित जी ने आकर साष्टांग प्रणाम किया। तब श्री प्रभुजी ने उस वृद्ध ब्राह्मण देवता से कहा- ''आज रात्रि को ध्यान में बैठना; फिर जैसी अवस्था हो, कल हमें यहां आकर सुनाना''। दूसरे दिन वही ब्राह्माण प्रभुजी के दरबार मन्दिर में प्रवेश कर विशेष प्रसन्न चित मुस्कराते हुए खिलखिलाकर हंसने लगा। कुछ देर बाद जब प्रभुजी ने उसे उठा कर मर्यादा रूप सब वृतान्त पूछा तो पंडित जी ने हाथ जोड़कर निवेदन किया-''महाराज! रात्रि को ध्यान में बैठते ही श्री गणपति जी के ऋद्धि-सिद्धि सहित अलौकिक दिव्य प्रकाशमय दर्शन हुए। उनका दिव्य शरीर बड़ा ही विशालकाय था। तत्पश्चात् मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि गणपति जी ने मुझे अपनी गोद में ले लिया। तब मैं आश्चर्य चकित होकर उनके मुख मण्डल सूंड पर हाथ फेर कर मन ही मन विचारने लगा कि कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा। तब श्री गणपति जी ने फरमाया-''परेशान होकर स्वप्न का विचार क्यों कर रहे हो ? हमारा यह दिव्य अलौकिक दर्शन उन प्रभु स्वरूप श्री सत्गुरूदेव जी महाराज की कृपा का ही परिणाम है जिनके आशीर्वाद को ग्रहण कर गत रात्रि को आप ध्यान में बैठे थे। इस प्रकार कुछ काल तक ध्यान मग्न रहने के पश्चात् उत्थान अवस्था हो गई। आज प्रातः जब पुनः ध्यान में बैठा तो आपजी की अपार कृपा से श्री गणपति जी के पुनः दिव्य दर्शन हुए और रात्रिवत् उठा लिया। प्रभु देव! आपकी असीम अनुकम्पा का मैं किस प्रकार वर्णन कँरू कि गत 27 वर्षों से मेरा जो प्रयास सफल नही हो रहा था आज आपके अनुग्रह से इस वृद्धावस्था में मेरी युग-युगान्तर की मनोकामना को पूर्ण कर आपने इस दास को कृतार्थ किया है। इतनी बात कह कर पंडित जी फिर प्रभुजी के चरणों में लिपट गये। कुछ समय नित्य ही आकर इसी प्रकार अपनी ध्यान की अवस्था श्री प्रभुजी के चरणो में सुनाते रहे और यही कहते रहे-''नाथ इस मनुष्य तन में छिपे हुए आपको वे ही जान सकते हैं जिन को आप अनुग्रह कर अपनी चरण-शरण में ले लेते हैं।''

९.१३ माला देवी का उद्धार

एक दिन श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभुजी के चरणों में प्रणाम किया और देखा कि बाँई ओर 70 वर्ष के लगभग आयु वाली वृद्धा माला देवी का सूक्ष्म लिंग शरीर कुछ सहमा हुआ सा बैठा है। जब इन्होंने श्री प्रभुजी से प्रार्थन कर पूछा-''महाराज! इस सूक्ष्म शरीर में यह माला देवी किस कारण सहमी हुई है'' ? तब भवसागर के त्राता प्रभुजी ने फरमाया-''पुत्र! हम इस को भजन ध्यान में बैठने के लिये नित्य कहा करते थे। आगे से यह उत्तर दिया करती थी-महाराज! कुटुम्ब परिवार बहुत अधिक है, अतएव उनकी सेवा से अवकाश नहीं मिलता। सो आज छत से गिरकर इसका स्थूल शरीर से सम्बन्ध तो वहीं समाप्त हो चुका है। नित्य दर्शन के लिए आने के कारण इस की वृत्ति हमारी ओर रही। इसलिए अब यह हमारे पास आकर बैठ गई है सो हम विचार कर रहे है कि इसने कोई यज्ञ, दान, तप, योग, ध्यान आदि तो किया नहीं अब इसे कहां भेजें ?'' तो इन्होंने प्रार्थना की-''नाथ! जब यह आपकी कृपा से आप जी के चरणों में आ गई है तो फिर इसे दिव्य लोक का दान प्रदान कीजिये''। यह सुन कर श्री भक्त वत्सल प्रभु प्रसन्न हो मुस्करा दिये और ऊपर आसमान की और देखा कि तत्क्षण आकाश मार्ग से चतुर्भज दिव्य रूप देव वस्त्र व आभूषणें से सुशोभितपुष्प विमान पर चढ़े दिव्य पुष्पों की वर्षा करते हुए एक दम नीचे श्री प्रभुजी की ओर आ रहे हैं। तब पतित-पावन प्रभु जी ने माला देवी को आशीर्वाद दिया और कहा-''जा मरी, बैठ जा इसमें''। श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के कर कमलों का

स्पर्श होते ही माला देवी का शरीर दिव्य और चतुर्भुज होकर बारम्बार प्रणाम करता हुआ दिव्य सिंहासन पर जाकर बैठ गया। तब वे माला देवी का दिव्य चतुर्भुज शरीर और पुष्प विमान लाने वाले देव हाथ जोड़कर बारबार प्रभुजी के चरण कमलों में प्रणाम कर जय-जयकार करते हुए आकाश मार्ग द्वारा दिव्य धाम को चले गए।

९.१४ श्री मुलखराज जी महाराज की लाहौर में पूर्वजन्म वाले महात्मा से भेंट

एक बार श्री मुलखराज जी नन्दलाल नामक अपने सम्बन्धी के बुलाने पर लाहौर पधारे तो उस ने अपने गुरू महात्मा की प्रशंसा करते हुए उनके दर्शन करने के लिए इनको भी अपने साथ ले जाना चाहा, किन्तु इन्हों ने उत्तर में कहा-''जिस मन में इच्छायें वास करती हैं उस मन को तो प्रभुजी ने कृपा कर अपने स्वरूप में तद्रूप कर लिया है। अब इसमें कहीं जाने-आने की इच्छा शेष नहीं रही।'' किन्तु लाला नन्दलाल जी आग्रह करके इनको लाहौरी और शालमी दरवाजे के मध्य बाले बाग में उपरोक्त महात्मा जी के पास ले गये। वहां जाकर इन्होंने देखा कि महात्मा जी के चारों ओर भक्त समाज बैठा हुआ है। इनमें से कई एक हिन्दी इंगलिश में पाँच-सात मिनट लगा कर प्रश्न करते हैं। किन्तु वे महात्मा एक ही मिनट में उतर देकर चुप हो जाते हैं, किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। यह देख कर वे प्रश्न करने वालों से पीछे हटकर मस्ती की हालत में झूमते हुए एक तरफ बैठ गये, और ध्यान-समाधि में समाधिस्थ हो गये। कुछ समय बीतने पर वे महात्मा जी अपने आसन से उठकर श्री मुलखराज जी के सम्मुख आ खड़े हुये। योग की विशेष शक्ति एवं प्रभाव से इनको ध्यान में लीन देखकर महात्मा जी ने अपनी आत्मिक ज्योति का प्रकाश इन के सूक्ष्म शरीर पर डाला। तब इनको एक तेजस्वी दिव्य स्वरूप महात्मा ध्यान में अपने सम्मुख दृष्टिगोचर हुए और ध्यान में ही महात्मा जी के संकेत को पाकर इन्होंने समाधि से उत्थान अवस्था में आकर आंखें खोली।

महात्मा जी-''क्या आप हमारी कुटिया तक चलेंगे?'' श्री मुखराज जी-''जैसे आपकी इच्छा।'' महात्मा जी-''तो आइये।'' इतना कह कर अपने एक शिष्य सहित वे महात्मा इन को साथ लेकर शीतला मन्दिर के ऊपर एक कमरे में पधारे। महात्मा जी-''मालूम है कि आपको हम किसलिये यहाँ लाये हैं?'' श्री मुलखराज जी-''आप ही फरमा दें'' महात्मा जी-''क्या इस जन्म में इससे पूर्व भी आप से हम मिले थे?'' श्री मुलखराज जी-''जहाँ तक मेरा विचार है, इस शरीर में तो यह मिलाप पहली बार ही हो रहा है।'' महात्मा जी-''जो कुछ शारीरिक और मानसिक साधन आपके सत्गुरूदेव जी ने आप को कृपा कर दिये हैं और जो समाधि-स्थिति आपको प्राप्त है वह सब यदि हम बतला दें, तब तो आपको विश्वास होगा कि हम जो कुछ और कहना चाहते हैं; वह सत्य है?'' श्री मुलखराज जी ''हां महाराज! फरमाइये।'' महात्मा जी-''आपको स्वाधिष्ठान चक्र में पूर्ण स्थिति (तद्रूपता) प्राप्त है तथा शारीरिक भी अमुक-अमुक कई साधन आपने किये हैं।''

श्री मुलखराज जी ''हां महाराज! यह सब ठीक है; अब कृपया जो कुछ विचार आप प्रकट करना चाहते हैं, सो कहिये।'' महात्मा जी-''हम पिछले जन्म में आपके स्थान पर कुछ दिन आपके प्रेमवश ठहरे थे। एक दिन सायंकाल के समय ग्राम के बाहर भ्रमण के विचार से गये तो समीप के दूसरे ग्राम के अन्य भक्तों के संस्कार समय को देखकर आप को बिना सूचना दिये उसी ओर चल दिये। जब आपको पता चला तो आप हमें मार्ग में आ मिले तथा वापिस लौटने के लिए आपने प्रेमपूर्वक आग्रह किया।'' तब हमने

आपकी प्रेम विह्वल अवस्था को देख कर कहा आज तो संस्कार वश हमको अवश्य जाना है, किन्तु फिर कभी मिलेंगे। तब आप वापिस लौट गये और जन्म में दोबारा हम आपको न मिल सके। उसी वचन के संस्कार समय को देख कर हमने आपको सम्बन्धी के गृह से अपने पास बुलाना चाहा, किन्तु हृदय में आपके पूर्ण योगेश्वर सत्गुरूदेव जी का वास देख कर हम आपके शरीर को अपनी ओर खींचने में असमर्थ रहे। तब आपके सम्बन्धी के हृदय में प्रेरणा कर आपको सत्संग स्थान पर लाये किन्तु आप हमारे यहां पहुंच कर भी समाधि में समाधिस्थ हो गये। तब हमने योग की विशेष शक्ति अत्मिक ज्योति के प्रकाश को आपके ध्यान मग्न सूक्ष्म शरीर पर डाला और आपको उत्थान अवस्था में लाकर यहां साथ ले आये हैं। सो पूर्व जन्म में आपको दिये हुए वचन का अब पालन हुआ। इसी प्रकार मनुष्य तन में आकर जो जीव जिस जिस से जैसा वचन व्यवहार करते हैं, उसका भुगतान सब को भुगतना होता है। आपके ऊपर सत्गुरूदेव जी का पूर्ण अनुग्रह देख कर हम आपसे इतनी बात और कहते हैं कि आपके श्री सत्गुरूदेव पृथ्वी से पाप का बेझा हरने तथा अनन्त जीवों का कल्याण करने के लिए मानुष तन धारण कर विचर रहे हैं। जब-जब भी प्रसनन्ता में आकर कुछ वरदान के लिये फरमायें, तो केवल उन्हीं के चरणकमलों का अटल निवास मांगना। इन बस्तियों में संस्कारी जीवों का कल्याण तथा पृथ्वी का बोझा हरने के बाद प्रभु वनों में ऋषियों में ऋषि बनाकर अपने चरणकमलों में अटल निवास दान प्रदान करेंगे। हम भी इन्हीं श्री सत्गुरूदेव जी के आसरे इन बस्तियों में निर्भय विचर रहे हैं। श्री मुलखराज जी -''बहुत अच्छा महाराज! इस पर महात्मा जी ने आशीर्वाद देकर फरमाया-''अब आप चाहें, तो जा सकते हैं''। आप महात्मा जी को प्रणामकर अपने सम्बन्धी के स्थान पर वापिस आ गये।

९.१५ कुण्डलिनी जागरण

एक दिन श्री मुलखराज जी अपने घर पर ध्यान समाधि में बैठे हुए थे कि इनको मूलाधार चक्र के समीप एक लम्बा सर्प लपेटों को खोलता हुआ फन फैला सम्मुख आकर खड़ा हुआ दिखाई दिया। ऐसा दृश्य इससे पूर्व कभी दृष्टिगोचर न होने के कारण इनकी ध्यान से उत्थान अवस्था हो गई और इन्होंने यह सब वृतान्त आनन्दकन्द श्री करूणावतार श्री सत्गुरूदेव जी को सुनाया। उन्होंने फरमाया पुत्र! ''यही सर्पनी नाड़ी, सुषुम्ना को साढ़े तीन लपेटें देकर अपनी पूछ को अपने मूंह में देकर सो रही है। इसी प्रकार भस्त्रिका प्राणायाम द्वारा जागृत कुण्डलनी होने पर योगी प्राणों को सुषुम्ना में प्रवेश कर षट् चक्रों को बेधन करता हुआ ब्रह्मरन्ध समाधि में समाधिस्थ हो जाता है।'' फिर श्री मुलखराज जी ने प्रार्थना की-''प्रभो क्या खेचरी के बिना भी ब्रह्मरन्ध्र-समाधि लग जाती है ?'' श्री प्रभुजी -''बेटा! सत्गुरू व्यापक रूप होते हैं। अतएव उनकी इच्छा हो तो वे खेचरी के बिना भी प्राणों को सुषुम्ना में प्रवेश कराकर ब्रह्मरन्ध्र समाधि में समाधिस्थ कर देते हैं''।

९.१६ सिद्धों की पहचान

एक बार श्री प्रभुजी श्री मुलखराज जी व अन्य सभी सत्संगियों को लेकर ई0सन् 1926 में हरिद्वार कुम्भ मेले पर आये। कुम्भ मेले में हजारों जटाधारी महात्मा थे उनमें से ये पहचान नहीं की जा सकती थी कि कौन-कौन महात्मा अच्छी पहुँच वाले आये हैं।

बाहरी वेश-भूषा से सब सामान्य ही दिखाई देते थे। यह प्रश्न श्री प्रभु जी से श्री मुलखराज जी महाराज ने ध्यान में किया कि प्रभो! ''यह कैसे पहचान की जा सकती है।

कि उनमें से कौन महात्मा कितनी पहुँच वाला है''। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया-''बेटा जिस-जिस की जैसी उपासना होती है उतना-उतना ही उस व्यक्ति का तेजो-मण्डल बढ़ता ही चला जाता है। तेज पुंज की उपासना से मनुष्य का तेज बढ़ता है और अन्यान्य उपासनायें करने से वही तेज लालिमा और कालिमा को लिए हुए दिखलाई देता है। सो इस कुम्भ मेले में जितने महात्मा आये हैं। उनको तुम ध्यान-दृष्टि से उनके सूक्ष्म शरीर के तेजो मण्डल को देखो कि उनके सिर के आस-पास कितना तेज मण्डल है।''

श्री प्रभुजी के उपदेशानुसार-''कुम्भ मेले में आने वाले साधुओं के तेजोमंडल को श्री मुलखराज जी ने जब देखना प्रारम्भ किया तो उन सभी साधुओं में केवल मात्र चार ही इस प्रकार के सिद्ध पुरुष दिखलाई दिए कि जिनका तेज-मण्डल देश भर में फैला दिखाई देता था। उसके बाद श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभुजी के तेज-मण्डल को देखना प्रारम्भ किया तो उनके तेज का आदि-अन्त न पा सके।'' अन्त में श्री प्रभुजी ने उनको उठा दिया और लाड़ व प्रेम में कहा-''बेटा हमसे ही उपाय पूछा और हमारा ही इम्तहान लेना शुरू कर दिया''।

९.१७ तीसरे नेत्र की प्राप्ति

एक दिन बाग झण्डासिंह (अमृतसर) के समीप जब श्री मुलखराज जी नर-नारी भक्त समाज को ध्यान, भजन, सत्संग आदि से कृतार्थ कर रहे थे तो ''मोहनी सूरत, स्वामी! दिल में समा रही है''। यह भजन उच्चारण करते हुए वह अपनी वृतियों को लय कर तन की सुध को भूल श्री प्रभुजी की गोद में सिर रखकर पड़े रहे। जब सत्संग समाप्त हुआ तो पतित पुनीत प्रभुजी ने इनको अपने सामने बिठला लिया और आज्ञा दी-''पुत्र! तुम्हारे मस्तिष्क में दोनो भवों के मध्य में ऊपर की ओर कुछ विशेष तपश मालूम हो, तो हमें बतला देना''। इतना फरमाकर श्री आनन्दकन्द प्रभु जी ने अपनी दृष्टि को उन के भृकुटि स्थान पर जोड़ दिया। तब उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि भृकुटि स्थान के ऊपर कुछ गढ़ा और ज्योति उत्पन्न होती चली जा रही है। वह गढ़ा लम्बाई में कुछ बढ़ गया और ज्योति भी विशेष बढ़ गई। जब जलन भी विशेष प्रतीत होने लगी तो मुलखराज जी ने कहा-''प्रभुजी! अब जलन कुछ विशेष प्रतीत होती है''। तब श्री प्रभु जी ने तत्क्षण दृष्टि को नीचे गिरा लिया और फरमाया-''पुत्र! आज इस बालक को प्रभुजी ने तीसरा नेत्र दिया है।'' यह सुनकर वह प्रभु जी के चरणों से लिपट गये। श्री अनाथ नाथ जी की कृपा से उस तीसरे नेत्र में 24 घन्टें अटल रूप से पूर्ण स्थिति रहने लगी।

९.१८ गजरक्षा की भाँति भक्त वत्सल प्रभु जी का नँगे पाव धाना

एक दिन कटड़ा भाई सन्त सिंह में श्री प्रभु जी मुलखराज जी को अपने करुणा कण्ठ से लिपटाये विराजमान थे कि कुछ भक्तों ने इस प्रकार प्रार्थनाा की-''महाराज! भ्राता मुलखराज जी बन्द आँखे मस्ती की हालत में झूमते हुए नित्य आकर श्री चरणो में लिपटे रहते है। और कुछ घण्टों बाद आप इन्हें उठाकर वापिस घर भेज देते हैं। कृपा करके इन्हें उठाकर कुछ सुध दिलवाकर आँखें खोल दें ताकि हम भी इनके मुखारविन्द से सुन पायें कि इनको आप के किस विलक्षण रूप के दर्शन होते हैं। या क्या बात होती हैं ?'' तब श्री आनन्दकन्द प्रभुजी ने भक्तों की प्रार्थना सुन इनके मस्तक को अपने वरद् हस्त से स्पर्श कर ऊपर उठाया तो भिन्न भिन्न घटो की रचना देखकर आप प्रसन्नतामय बहुत देर तक खिल-खिलकर हंसते रहे। इस पर एक पड़ौसी दुकानदार लाला निहालचन्द हलवाई ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना कर पूछा-''महाराज! पहले तो भ्राता मुलखराज जी मस्ती में झूमते हुए आकर श्री चरणकमलों में कई घंटे पड़े रहते थे। आज लगभग एक घंटे से लगातार हंसते

ही चले जा रहे है। क्या कारण है ?'' आनन्दकन्द श्री सत्गुरूदेव जी ने फरमाया-''आज इस बालक पर महाप्रभुजी की विशेष कृपा अनुग्रह हो रही है इस प्रकार की योग अवस्था करोंड़ो में किसी एक को प्राप्त होती है।'' तत्पश्चात् संसार की मर्यादा को विचारते हुए श्री आनन्दकन्द प्रभु जी ने इनकी वृतियों कों बाहर से भीतर लय करने के लिये करूणाकंठ से लिपटा लिया और थोड़ी देर के बाद इनको घर की ओर भेज दिया। जब श्री मुलखराज जी चौक बाग झंडा सिंह में पहुंचे तो वहां कुछ देर से दो सांड आपस में लड़ रहे थे। लाठियां लिए चबूतरे पर खड़े कुछ लोग बाजार में आने जाने वाले नर-नारियों को बचाने व सांडो को हटाने का प्रयत्न कर रहे थे। श्री मुलखराज जी मस्ती में झूमते हुए बाजार में सांडो की ओर चलते जा रहे थे। इनको सांडो की ओर सीधा जाते देख, खड़े हुए व्यक्तियों ने बचों। बचों! की आवाजें लगाई फिर भी वह सांडो के बीच में से टकराते हुए आगे को निकल गए श्री प्रभु जी ने लड़ते हुए सांडो से इनकी रक्षा की। इस दुश्य को देखकर सभी लोग हैरान रह गए। यह सब घटना देख, भाई के कटड़े में विराजमान भक्त वत्सल श्री प्रभुजी अपने आपको स्थिर न रख सके और गज रक्षा की भांति इनके गृह की ओर नगें पांव ही उठ धाए। वहां इनके पिताजी को गृह के बाहर खड़े देख कर पूछा-''हमारा लाल कहां है ? तो इनके पिता जी हाथ जोड़ प्रणाम कर प्रार्थना करने लगे ''महाराज! आज तो बड़ी कृपा की है कि आप स्वयं हमारे गृह पर पधारे हैं। उस समय स्वाभाविक रूप से श्री मुलखराज जी को अपने प्रभु जी की आवाज सुनाई दी और वह तुरन्त भीतर से बाहर आकर श्री चरण कमलों से लिपट गये। भक्त वत्सल प्रभु जी ने आपको उठाकर अपने श्री करूण कंठ से लगाया और श्री करूणावतारजी ने बारबार आशीर्वाद देते हुए उपरोक्त सारा हाल बताया और फरमाया कि बचो! ''बचो! की आवाज को सुनकर बालक को सांडो से बच कर निकला हुआ देखते हुए भी हम अपने आपको स्थिर न रखसके और शीघ्रता से उठ आए।'' कुछ देर बाद उनको पूर्ववत् मस्ती की अवस्था में वहीं लिटा कर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी वापिस लौट आए।

९.१९ भजन --विनोद अगवाल

मेरा आप की दया से, सब काम हो रहा है। करते हो तुम कन्हैया, मेरा नाम हो रहा है।।

पतवार के बिना ही, मेरी नाव चल रही है, हैरान है जमाना, मंज़िल भी मिल रही है।

करता नही मैं कुछ भी, सब काम हो रहा है, करते हो तुम कन्हैया, मेरा नाम हो रहा है।।

मेरा आपकी.....

तुम साथ हो जो मेरे, किस चीज की कमी है, किसी और चीज़ की अब दरकार ही नही है।

तेरे साथ से गुलाम अब गुलफाम हो रहा है, करते हो तुम कन्हैया, मेरा नाम हो रहा है।। मेरा आप की.....

मैं तो नही हूँ काबिल तेरा पार कैसे पाऊँ, टुटी हुई वाणी से गुनगान कैसे गाऊँ।

तेरी प्रेरणा ये तमाम हो रहा है, करते हो तुम कन्हैया मेरा नाम हो रहा है।।

मेरा आपकी .....

मुझे हर कदम-डगर पर तुने दिया सहारा, मेरी जिंदगी बदल दी तूने कर के इक इशारा।

एहसान पे तेरा ये एहसान हो रहा है, करते हो तुम कन्हैया मेरा नाम हो रहा है।।

मेरा आपकी .....

तूफान-आँधियों में तूने ही मुझ को थामा, तुम कृष्ण बन के आए मैं जब बना सुदामा

तेरा करम ये मुझ पर सरेआम हो रहा है, करते हो तुम कन्हैया मेरा नाम हो रहा है।।

मेरा आपकी .....

१० अद्भुत काश्मीर यात्रा

१०.१ आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव पं० रामलाल जी महाराज की कृपा पात्रा 'चतुर्भुजा' द्रौपदी देवीजी का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव

श्री द्रौपदी देवी जी का जन्म अमृतसर के एक पवित्र क्षत्रिय कुल में हुआ। माता-पिता के लाड़-प्यार में बाल्यावस्था व्यतीत हो चुकने पर इनका विवाह अल्पायु में ही कर दिया गया। परन्तु विधाता का विधान ऐसा रहा कि इनका सौभाग्य बहुत दिन नहीं रह सका। बचपन से ही इनकी रूचि ईश्वर-भक्ति, कीर्तन, सत्संग की ओर रही थी अतः वैधव्य दुःख प्राप्त कर यह सब ओर से मन हटाकर प्रभु की तरफ और भी अधिक प्रवृत हो गईं।

१०.२ बहिन द्रौपदी देवी जी पर परम अनुग्रह

श्री प्रभु जी के चरणारविन्दों की प्राप्ति में एक विशेष घटना कारण बनी। द्रौपदी जी अमृतसर में कहीं दर्शनार्थ गई थीं। जब यह अमल साहिब के पास से निकल रही थीं तो अचानक आँखों के सम्मुख एक विचित्र दृश्य आया, जिसे देखकर यह अत्यन्त बिस्मित हो गई। मन में सोचने लगीं-''इस घोर कलिकाल में यह कैसे सम्भव हो सकता है। बात यह थी कि सामने से श्री मुलखराज जी महाराज आ रहे थे। उस समय वे श्री प्रभुजी के ध्यान में लीन मस्तों के समान चले आ रहे थे। द्रौपदी जी ने स्पष्ट देखा कि सम्मुख आ रहे महापुरूष की आकृति भगवान सदाशिव के समान ही आभासित हो रही थी। तीसरा नेत्र बिल्कुल स्पष्ट दीखता था, और एक दिव्य प्रकाश निकलकर सामने पड़ रहा था, और वह आगे बढ़ते जाते थे। इनकी वेशभूषा साधारण गृहस्थिओं जैसी दिखाई देती थी, किन्तु मुख के चारों ओर एक विशेष प्रकार का दिव्य तेज-मण्डल आभासित हो रहा था। द्रौपदी जी निरन्तर इन्हें देखती रही, मन में संशय होता था क्या-स्वयं सदाशिव हैं? शंका मिटाने को बार-बार देखती, तीसरा नेत्र अब भी है या नहीं? परन्तु इन्हें वह तृतीय नेत्र भी निरन्तर ही दीखता रहा।

स्वाभावतः इन महापुरूष के विषय में इन्हें जिज्ञासा हुई, परन्तु स्वयं उनसे पूछने का साहस न कर सकीं। अतः आस-पास के व्यक्तियों से साहस करके पूछा-इस घोर कलिकाल में ये कौन महापुरूष हैं? जिनका मुख-मण्डल दिव्य तेज से युक्त है जिनकी आकृति स्वयं भगवान सदाशिव से मिलती है। श्री मुलखराज जी महाराज के साथ वाले व्सक्तियों ने बताया-बहिन जी, ये योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के परम कृपामय शिष्य श्री मुलखराज जी महाराज हैं। परम कृपानिधि श्री प्रभु ने अपनी कृपा से इनको 'तुरीय स्थिति' प्रदान की है। इस कारण इनके नेत्र चौबिसों घण्टें बन्द रहते हैं और अन्तर्जगत् के दिव्यानुभव से हर समय जागृत रहते हैं। इस प्रकार की बातें सुनकर द्रौपदी जी को वर्णनातीत हर्ष हुआ और श्री प्रभुजी का निवास-स्थान पूछकर तत्काल ही दर्शनार्थ चल पड़ीं। वह जिस समय श्री प्रभुजीके दरबार पहुंचीं उस समय वहाँ नियमानुसार सत्संग चल रहा था। अनेकों सत्संगी स्त्री-पुरूष बैठे थे, ध्यानानुभव इत्यादि चर्चायें चल रही थीं। कोई-कोई भगवान के अनुराग में आकर भजन आदि भी सुना रहे थे। बहिन श्री द्रौपदी जी को भी भजन गाकर सुनाने की हार्दिक इच्छा हुई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों के सम्मुख बैठकर प्रेम में मग्न होकर द्रौपदी जी ने भी एक भजन गाया। श्री मुलखराज जी उस समय श्री प्रभुजी के निकट ही बैठे हुए थे, द्रौपदी जी का भजन सुनकर उनका मन

बड़ा प्रसन्न हुआ। श्री प्रभुजी अभी तक यही विचार कर रहे थे कि इस देवी को क्या दिया जाय? संस्कार बहुत थोड़ा सा दिखाई देता था। किन्तु श्री मुलखराज जी, जो उस समय तुरीय स्थिति में थे, यह भजन सुनकर गद्गद् हो उठे उन्होंने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की-''हे अगाध करूणा-सागर! कृपा करके इस देवी को आप चुड़ाला की सम्पति प्रदान करें। यह सब प्रकार से दया की पात्र है''। मुलखराज जी की यह बात सुनकर श्री प्रभुजी कुछ विचार में पड़ गये और सोचने लगे- ''अरे, इसने यह बहुत बड़ी बात कह दी है। चुड़ाला तो परस योगिनी थी। उस महती शक्ति की यह अधिकारिणी नहीं है।'' जब श्री प्रभुजी इस प्रकार विचार मग्न थे। उसी समय अकस्मात् एक विलक्षण घटना घटी। वह नेपाल वाले सदाशिव, जो हमारे दादागुरू हैं, जिनकी आयु का कोई पता नहीं लगा सका है। जो प्रातः काल बच्चे दिखाई देते हैं। मध्यान्ह में युवक एवं सांयकाल में बिल्कुल वृद्ध दिखाई देते हैं, वही स्वयं आकाश में दिखाई दिए। वहीं खड़े खड़े प्रसन्न मुद्रा में कहने लगे-''कोई बात नहीं। बच्चे के मुख से निकला है, दे दो। यह देवी अधिकारिणी हैं।'' श्री महाप्रभुजी का यह उदारतापूर्ण आदेश सुनकर श्री प्रभुजी ने द्रौपदी जी पर तत्क्षण गहरा शक्ति पात किया। तत्काल ही प्रभाव हुआ, और उन की ध्यान-स्थिति बहुत ऊँची चलने लगी। प्रतिक्षण प्रभुजी का दिव्य साक्षात्कार बना रहने लगा। भगवान श्री हरि के चतुर्भुज रूप का दर्शन करते-करते वे स्वयं चतुर्भुजा बन गई। श्री हरि के स्वरूप में वह स्वयं को लीन रखा करती थीं। उन्हें स्वयं के चतुर्भुजा होने का भान रहता था। उनके इस ध्यान का यह प्रभाव पड़ा कि वह अन्य ध्यानी भाई-बहिनों को भी चलती चतुर्भुज दिखाई देती थी। स्वयं श्री प्रभुजी भी प्रसन्न मुद्रा में उन्हें चतुर्भुजा कह कर बुलाया करते थे। कृपासागर जी के मुखारविन्द से निकलने के कारण इनका चतुर्भुजा नाम प्रख्यात हो गया।

१०.३ 'चतुर्भुजा' द्रौपदी जी के आह्वान पर भगवान कृष्णा का भोग लगाना

द्रौपदी जी की ध्यान-स्थिति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। खुली आँखों से विश्व मोहन को सर्वत्र देखती थी। वह अखिल लोकपावन श्री हरि इनके साथ विविध क्रीड़ाएँ किया करते थे। इनकी स्थिति इतनी ऊँची बढ़ी कि भगवान् श्री कृष्ण जी इनके आह्वान पर स्वयं आकर भोजन किया करते थे। जब यह भोग लगाती थीं तो इनकी थाली से एक दो फुल्का घट जाया करता था। यह विलक्षण बात द्रौपदी जी ने श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में निवेदन की। श्री प्रभुजी ने आदेश दिया, द्रौपदी, श्री प्रभुजी की तुम पर महान कृपा है। परन्तु अपनी यह स्थिति तुम किसी को बताना नहीं। परन्तु होनहार ऐसी कि उन के मुख से यह बात निकल गई, इतनी बड़ी बात मन में नहीं रख सकीं। यह सुनकर सभी सत्संगी भाई बहिन इस चमत्कार को प्रत्यक्ष देखने को उत्सुक हो गये एवं श्री प्रभुजी से बारम्बार प्रार्थना करने लगे-हे प्रभो, ''यह चमत्कार तो हमें दिखा ही दीजिए।'' कृपानिधि श्री प्रभुजी ने द्रौपदी जी को आदेश दिया-''तुमने यह काम ठीक नहीं किया जो यह घटना सबको बता दी। अब जब सबसे कह ही दिया है तो सबके सामने भोग लगाकर दिखाओ।'' श्री प्रभुजी की आज्ञा पाकर सब सत्संगी भाई-बहिन बैठ गए। बहिन जी ने एक थाली में भोजन परोसा और श्री हरि को निवेदन करने लगीं। उस समय उन्होंने स्वयं का बनाया हुआ एक भजन गाया था, जो इस प्रकार है-'बैकुण्ठवासी हे प्रभुजी, भोग लगा जा, आ जा।' मैं लिए बैठी हूँ अपने थाल में भोजन, दर्श दिखा जा, आ जा।' जिस समय ध्यान-मग्न हो द्रौपदी जी ने यह प्रार्थना की तो सबने आश्चर्य से देखा कि रोटी का ग्रास टूटता है और विलीन हो जाता है। ध्यानाभ्यासी लोगों ने देखा कि भगवान् श्री कृष्ण स्वयं भोजन पा रहे हैं। इस अचिन्त्य घटना को देखकर सभी सत्संगी भाई-बहिनों के मन में अतिशय उत्साह बढ़ा। वे दृढ़ता के साथ अपना ध्यानाभ्यास करने लगे।

१०.४ चतुर्भुजा द्रौपदी जी पर कामी पुरुष की कुदृष्टि का फल-प्राणान्त

'चतुर्भुजा' द्रौपदी जी की दिव्यानुभूति दिन–प्रतिदिन उच्च–स्तर की बनने लगी। शनैः–शनैः ये तुरीय–स्थिति में रहने लगीं। इनके मुख–मण्डल पर दिव्यता झलकने लगी। स्वभाव में सात्विकता घर करती चली गई। एक दिन बहिन जी ध्यान–मग्न हुई, श्री प्रभु जी के दर्शनार्थ, भाई के कटरे की ओर जा रही थीं। तुरीय स्थिति में होने के कारण यह उन्मादिनी सी चल रही थीं। जाति से एक कामी यवन पुरुष की कुदृष्टि इन पर पड़ी और उसने अपने हाथ से इनका शरीर स्पर्श करने की चेष्टा की। इनकी वृत्ति भंग हो गई, आँखें खुल गईं तो देखा कि नेपाल वाले सदाशिव स्वयं आकाश–मार्ग से इनके साथ–साथ चल रहे हैं। द्रौपदी जी ने उनसे विनयपूर्वक कहा–'हे सर्व शक्तिमान् महाप्रभु! मैं आपकी पुत्री और यह घृणित मन्द–बुद्धि पापी, आपके चरणारविन्दों के सम्मुख इसने यह दुःसाहस किया है। इसका फल यह अभी भोगे।'' बहिन जी के मुख से उक्त वचन निकलते ही वह व्यक्ति अकस्मात् गिर पड़ा और उसका प्राणान्त हो गया। उपरोक्त घटना को देखने वाले सभी व्यक्तियों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और परस्पर कहने लगे– ''यह देवी तो स्वयं शक्तिस्वरूप है, जिसके वचन–मात्र से यह व्यक्ति इस दशा को प्राप्त हुआ है।''

जिस समय बहिन द्रौपदी जी श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में पहुंची तो देखा श्री प्रभुजी बहुत ही रूष्ट–मुद्रा में थे। ज्यों ही वह प्रणाम करने को आगे बढ़ीं तो प्रभुजी बड़े ही ताड़ना भरे शब्दों में बोले–''तू इस प्रकार रोज पाप करेगी। आज एक को मारा, कल दो चार को मारेगी। इस पाप को कौन भोगेगा? तुझे क्या आवश्यकता थी जो तूने महाप्रभुजी से प्रार्थना की कि इसे दण्ड मिल जाना चाहिए। वह तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता था। उसमें कया शक्ति थी? वह केवल तुम्हारी साधारण ताड़ना–मात्रसे मृतप्राय हो जाता और दुबारा किसी देवी के प्रति ऐसा दुःसाहस कभी न करता। तूने उस का प्राणान्त करके बड़ा बुरा किया। इस लिए जाओ एकान्त में बैठकर प्रायश्चित्त करो।'' बहिन द्रौपदी जी श्री प्रभुजी का आदेश पाकर लौट आयीं और कुछ दिन लगातार अपने आहार–विहार पर नियन्त्रण करके उन्होंने कठोर तपश्चर्या की, जिसके फलस्वरूप इनकी योगशक्ति और भी बढ़ गई। प्रायश्चित पूर्ण हो जाने पर श्री प्रभुजी से आज्ञा पाकर पुनः सत्संग में जाने लगीं।

१०.५ अबोध बालक घुग्घू पर श्री प्रभुजी की अनुपम कृपा

उन्हीं दिनों श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में बड़े नम्र–स्वभाव का एक बालक आया। उसका वास्तविक नाम कृष्ण कुमार था, परन्तु लाड़ में माता–पिता उसे घुग्घू कहकर पुकारते थे। माता–पिता ने बड़ी सद्दीक्षा देकर उसे सभी गुरुजनों को नमन करना सिखाया था। जिस दिन वह श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में आया, अपने स्वभाव के अनुसार उसने सभी को नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और बाद में श्री प्रभु जी को प्रणाम करके स्वयं ही उनकी गोद में जाकर बैठ गया। इस होनहार बालक की इस चेष्टा को देखकर श्री प्रभुजी के हृदय में वत्सलता जाग उठी और उन कृपामय ने प्रेम से उसे कण्ठ से लगाकर प्यार किया और अपने गले से उतार कर एक माला उसे पहिना दी। फलस्वरूप घुग्घू को हर समय भगवान श्री कृष्ण जी का साक्षात्कार बना रहने लगा। वह नित्यप्रति श्री प्रभुजी को अपने अनुभव बताने लगा–आज श्रीकृष्ण जी गेंद खेल रहे थे, आज गाय चरा रहे थे। आज वंशी बजा रहे थे, आज पहाड़ पर खड़े थे, मुझको बहुत प्यार किया आदि। सभी सत्संगी उस छोटे से बच्चे के मुख से इस प्रकार की बातें सुन–सुनकर विस्मित होते थे।

१०.६ घूग्घू द्वारा माता को प्रभु दर्शन

एक दिन घुग्घू की माता ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की-हे प्रभो, ''सात-आठ वर्ष के अबोध बालक के ऊपर आपने इतनी कृपा की है, जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को सहज प्राप्त नहीं है। इसके ऊपर यह आपका महान् अनुग्रह है किन्तु मुझे कोई भी अनुभव नहीं होता, मैं तो इसकी माता हूँ, मुझ पर भी अनुग्रह करें जिससे मेरा जीवन सफल हो जाये।'' उसकी प्रार्थना सुनकर श्री प्रभुजी हँस पड़े और कहने लगे-देवी, ''तुम पर तो यह घुग्घू ही दया कर सकता है।'' घुग्घू की माता ने प्रार्थना की-''हे सर्व शक्तिमान! यदि यह कार्य इस प्रकार ही होना है तो घुग्घू से ही करा दीजिए। करण-कारण सब प्रकार से आप ही हैं।'' श्री प्रभुजी ने हँसते हुये बालक घुग्घू से कहा-अरे बेटा! ''अपनी माँ पर भी कृपा कर दे। अपने मित्र कृष्ण के दर्शन इसे भी करा दे।'' घुग्घू ने उतर दिया-''प्रभुजी, इसको मैं दर्शन नहीं कराऊँगा, क्यों कि यह कभी भी बाज़ार में खाने पीने के लिए पैसा नहीं देती।'' इस पर प्रभुजी हँसे और उसकी माता से कहा- ''अब भी मौका है। दे इसे पैसे, फिर यह तुझे भगवान कृष्ण के दर्शन करा देगा।'' प्रभुजी के कहने पर उसकी माता ने बस एक या दो पैसा ही निकालकर दिया। बालक उससे ही प्रसन्न हो गया और बोला-''जा दर्शन हो जायेंगे।'' घुग्घू के ऐसा कह देने पर सन्तुष्ट होकर माता अपने घर चली गई और अपने घर के कामों में लग गई। थोड़ी देर बाद किसी कार्य के लिए वह अपने मकान के ऊपर चौबारे पर गई। वहाँ उसने बड़ा अद्भुत दृश्य देखा। चौबारे में एक आराम-कुर्सी पड़ी थी, उसी कुर्सी पर आनन्दकन्द अखिलेश्वर भगवान श्री कृष्णचन्द्र महाराज विराजमान थे। उनके कर कमल में वंशी सुशोभित थी। उनका सुन्दर रूप बहुत ही सुहावना लग रहा था। ऐसा दृश्य देखकर घुग्घु की माँ के मन में आया कि मैं कुटुम्ब की अन्य देवियों को भी यह दर्शन करा दूँ। ज्योंहि वह विश्वात्मा की ओर से दृष्टि फेर कर औरों को बुलाने चली, त्यों ही भगवान् श्री कृष्ण जी अन्तर्ध्यान हो गये और फिर दोबारा उसे दर्शन प्राप्त नहीं हुए। तब श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में आकर उसने सारी घटना निवेदन की और प्रार्थना की-हे ''प्रभो! ऐसे दर्शनों से क्या लाभ, जो एक बार मन भर के देख भी नहीं पाई।'' श्री प्रभुजी हंस पड़े और कहने लगे-देवी, ''तुम्हारा कोई दोष नहीं, जैसी हो भवतव्यता तैसी उपजे बुद्धि। कोई बात नहीं, अब तुम सन्तोष करो और धैर्य से समय की प्रतीक्षा करो।''

१०.७ घुग्घु का 'चतुर्भुजा' द्रौपदी जी को श्राप

घुग्घु का नैत्यिक कार्यक्रम उसी प्रकार चलता रहा। अपने स्वभावानुसार नित्य ही वह सबको नमस्कार किया करता था। जैसे ही वह नमस्कार करने लगता वैसे ही बहिन द्रौपदी जी अपने पैरों को जल्दी से हटा लिया करती थीं। नित्य ही ऐसा होता था। एक दिन बालक घुग्घू जब उनको प्रणाम करने बढ़ा तब बहिन जी के पैर हटा लेने के कारण वह गिर पड़ा। घुग्घू के मन में बड़ा भारी रोष हुआ। वह बोला-''जा, तेरे पैर नमस्कार करने लायक हैं ही नहीं। मैं नमस्कार नहीं करता।'' यह वचन सुनते ही श्री प्रभुजी ने बहिन जी से कहा-''क्यों देवी, अब तो ले लिया इनाम।'' बहिन जी समझी नहीं बोली- प्रभो, ''कैसा इनाम ?'' श्री प्रभुजी ने कहा ''इस घुग्घु की बाणी अब खाली नहीं जायेगी। जो कुछ इसके मुख से निकला है, वह होकर ही रहेगा। वास्तव में तेरे पैर नमस्कार योग्य ही नहीं रहेंगे।'' श्री प्रभुजी से भी घुग्घू के वचनों की ही पुष्टि सुनकर बहिन द्रौपदी भी

चिन्तित हो, मन में सोचने लगी-पता नहीं, अब क्या होनहार है। सत्संग समाप्त होने पर जब वह सीढ़ियों से नीचे उत्तरने लगी तो उनका पैर अचानक सीढ़ियों में लगी एक कील पर पड़ा। वह कील बहिन जी के पैर के पार निकल गई, जिसके फलस्वरूप पैर में बड़ा घाव हो गया। अनेक उपचार करने पर भी पैर ठीक होने में नहीं आता था। छः महीने इसी दशा में व्यतीत होने पर अकस्मात् उनके मन में यह विचार आया-सम्भव है, यह घुग्घू के उसी श्राप के कारण ऐसा हुआ हो, जिसकी पुष्टि स्वयं श्री प्रभुजी ने भी की थी। यह विचार आते ही वह तांगे में बैठकर परम दुःखित भाव से श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में पहुंची और विनम्र प्रार्थना की-हे प्रभो! ''घुग्घू के श्राप का कष्ट छः महीने से अनवरत भोग रही हूँ। बहुत दण्ड पा चुकी, अब कृपा करके इस श्राप का अन्त कीजिए।'' श्री प्रभुजी ने हंसकर कहा-''देवी, इसका अन्त घुग्घू ही कर सकता है, यह हमारे वश की बात नहीं है। इसको निराकृत वही करेगा।'' उस समय पास ही बैठा धुग्घू एक दम बोल उठा-''नहीं प्रभुजी, यह मुझे नमस्कार नहीं करने देते। इनके लिए यही उचित है।'' तब दयामय श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी-''नहीं बेटा, द्रौपदी तुम्हारी बड़ी बहिन है अब वह तुम्हें अवश्य नमस्कार करने देगी। तुम उसके पैर को ठीक कर दो।'' उस समय घुग्घू के पास ही सरसों का एक पीला पत्ता पड़ा था। उसको उठाकर बहिन जी को देते हुए बोला-''लो, इस पत्ते को पैर में बांध लो।'' द्रौपदी जी को शंका हुई-कि इस पत्ते से क्या होगा? श्री प्रभुजी उनके मन की भावना जानकर हंस पड़े और कहने लगे-''अरी मरी जल्दी पत्ता लेकर बांध ले। प्रभु ने तेरी सुन ली है।'' बहिन जी ने श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार तत्काल ही वह पत्ता अपने पैर पर बांध लिया। थोड़ी ही देर बाद घुग्घू ने पत्ता खोलने की आज्ञा दी। ज्यों ही बहिन जी ने वह पत्ता खोलकर देखा तो वह पैर बिल्कुल ठीक मिला।

१०.८ श्री प्रभु जी द्वारा द्रौपदी जी को देवियों में योग-प्रचार कार्य की आज्ञा

अब उन द्रौपदी जी का जीवन सब प्रकार से आदर्श तत्वों वाला बन गया। श्री प्रभुजी ने उन्हें योग्य समझकर दवियों में योग-प्रचार करने की आज्ञा दी। द्रौपदी जी ने योग-साधनों द्वारा कई देवियों के इलाज किए और अनेको को श्री प्रभुजी की कृपा का परम कल्याणमय मार्ग दिखाया। इनके सत्संग में आने मात्र से बहुतों में आत्म-शक्ति का विकास हुआ। अब भी इनके यहाँ सत्संग में बड़ी संख्या में देवियों कुवी वेरी, गली खेमसिंह, किला भंगीआं, अमृतसर।) सत्संग करने आती हैं और प्रभुजी की कृपा लाभ कर जीवन को कृतार्थ कर रही हैं। उनके यहाँ सत्संग में प्रभुजी के परम कृपामय चरित्रों की चर्चा, भगवद्भक्तों की वार्ताएँ इत्यादि परमार्थिक बातों के अतिरिक्त सांसारिक वार्ताएँ नहीं होती। जिसके फलस्वरूप सत्संग का वातावरण परम शुद्ध एवं पवित्र भावों को जागृत करने वाला रहता है। सत्संग में जाने पर मन में स्वतः ही भगवद्भक्ति के संस्कार उदय होने लगतें हैं। जितने दिन श्री प्रभुजी अमृतसर में निवास किया करते थे, उतने दिन माता द्रौपदी जी नित्य नियम से उनके दर्शनार्थ सत्संग में जाया करती थीं। आनन्दकन्द अखिल ब्रह्माण्डनायक विश्वात्मा भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी के चरण-कमलों में द्रौपदी जी की अटल श्रद्धा एवं प्रेम था। अभी हाल में ही उन्होंने ने अपना भौतिक शरीर छोड़ कर गोलोक की यात्रा की है।

१०.९ श्री प्रभु जी के कृपा पात्र गृहस्थ संत श्री पारसनाथ जी का जीवन दर्शन

श्री पारसनाथ जी अपने पिता जी के साथ 'चम्पारण' में रहते थे। एक बार श्री पारसनाथ जी इलाहाबाद के कुंभ पर गये और वहाँ पर किसी अच्छे दिव्य दृष्टि के दाता श्री सद्गुरुदेव जी की तलाश शुरू कर दी फिर घूमते–फिरते अयोध्या में कुछ दिन रहने के बाद वह श्री वृन्दावन के लिए चल दिये। अन्त में निराश हो कर घर वापस आने के लिए वे रेलवे स्टेशन पहुँच कर एक बेन्च पर गहरी नींद में सो गये। तब उन को स्वप्न में योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज जी के दर्शन हुए और कृपालु श्री प्रभुजी ने ऋषिकेश आश्रम दिखा कर, ट्रेन का नाम बताया और कहा ऋषिकेश स्टेशन पर उतर जाना फिर उन्होंने पूरा रास्ता आश्रम तक जाने का बताया और आदेश दिया की तुम वहीं आश्रम में आजाओ। तुम जिस गुरु की तलाश कर रहे हो वो गुरु तुम्हें ऋषिकेश आश्रम पर ही मिलेंगे। इस के बाद नींद टूट गई और वे थोड़ी देर स्वप्न पर विचार करने के बाद, पैसे के अभाव में, पैदल ही वृन्दावन से ऋषिकेश के लिए चल दिये। जब चलते–चलते थक गये और बहुत भूख–प्यास लगी तो एक नदी के किनारे, अंजलि से पानी पी कर, आंखे बन्द कर विश्राम करने लगे। जब आँखे खुलीं तो सामने पत्थर पर सत्तू दिखाई दिया, पानी मिला कर खाया, तो सरी भूख समाप्त हो गई। फिर वहाँ से वे चले और ऋषिकेश स्टेशन पर पहुँच गये। स्वप्न में श्री प्रभु जी ने जैसा दिखाया था ठीक वैसा ही स्टेशन से आश्रम का सारा रास्ता व आश्रम के अन्दर का दृष्य दिखाई दिया। थोड़ी देर बाद, श्री लीलाधारी प्रभु जी ने एक बच्चे को बाहर भेजा कि एक आदमी गेट पर बैठा हुआ है उसे बुला लाओ। श्री पारसनाथ ने श्री कुरूणासागर प्रभु जी के बुलाने पर आश्रम के अन्दर जाकर श्री प्रभु जी को एक चौंकी पर विरजमान देखा, जैसा स्वप्न में देखा था ठीक वैसा ही और उन्हें एसा लगा कि मंजिल मिल गई। श्री पारसनाथ श्री प्रभु जी के चरणों में रहने लगे और पाँच–सात दिन रहने के उपरान्त उन्हों ने श्री प्रभु जी से दीक्षा के लिए विनती की। श्री लीलाधारी प्रभु जी ने आदेश दिया तुम यहाँ पर बिना दीक्षा के ही ऐसे ही रहो। श्री पारसनाथ जी के बार–बार प्रार्थना करने पर श्री प्रभु जी ने फरमाया कि–''तुम को मैं दीक्षा एक शर्त पर दूँगा जब मैं आज्ञा दुँगा तब तुम घर जाओगे।'' इस शर्त पर श्री पारसनाथ जी ने श्री प्रभु जी से दीक्षा ग्रहण कर ली। अब उन्हें माता–पिता से अधिक प्यार श्री करूणानिधान जी से मिलने लगा। इस प्रकार वह अपना घर परिवार सब कुछ भूल गए।

समय धीरे–धीरे बीतता गया और कई साल बीत गये। श्री पारसनाथ जी के पिताजी अपने घर बिस्तर पर बहुत बिमार पड़े हुए थे। श्री अन्तर्यामी प्रभु जी ने श्री नरसिंह मूर्ति जी को उन के गाँव मैरीटार (चम्पारण) भेजा कि वहाँ जाकर खबर कर दो कि उन का लड़का यहाँ है और योग साधन आश्रम ऋषिकेश से अपने बच्चे को ले जायें पारस को घर जाना बहुत जरूरी है। तब उन के चाचा जी ऋषिकेश आश्रम में आये पर श्री पारसनाथ को पहचान नहीं पाये। तब श्री प्रभु जी ने पारसनाथ जी को बुला कर आदेश दिया कि ''अब घर जाना पड़ेगा और यह सही वक्त है घर जाने का। तुम जाओ हम हर क्षण हर पल तुम्हारे साथ रहेगें।'' श्री प्रभु जी के आदेश पर अपने चाचा जी के साथ घर आ गये। उस के बाद कभी ऋषिकेश नही गये।

१०.१० ऋषिकेश आश्रम का कुआँ

योग–साधन आश्रम ऋषिकेश में जब कुआँ बन रहा था तो एक बहुत बड़ा पत्थर बीच में आ गया जो पानी के रास्ते में रूकावट था। उस शिला को तोड़ने का बहुत प्रयास किया किन्तु नहीं टूटी। आठ–दस मजदूर उसको निकालने में लगे रहे किन्तु न तोड़ पाय

न निकाल पाये। अन्त में श्री प्रभुजी ने उस पत्थर को देखा और कहा–अरे! ''तुम लोग जोर तो लगाते नहीं हो, निकले तो निकले कैसे?'' हमारी गुरु बहिन द्रौपदी देवी बतलाती थीं कि श्री प्रभु जी ने एक क्षण में ही उस भारी पत्थर को उठाकर बाहर निकाल दिया और उस कुअे में गंगा जल का फुवारा फूट निकला।

१०.११ सवाँई (आगरा) में प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का तृतीय पदार्पण

श्री प्रभु जी सवाँई (जुलाई ई0 सन् 1926) में केवल एक रात के लिए ठहरे और सवाँई के भक्तों ने जैसे–तैसे उस समय श्री प्रभुजी को उनकी कृपा से पहचान लिया कि वे वही जटाधारी बाबा इस गृहस्थि वेश में अब पधारे हैं। श्री प्रभु जी का सवाँई में यह पदार्पण 1913 में आपने दिये गये वचन–(''भाई! तुम ने हमारे साथ जिद की, इस लिये ऐसा हुआ। अब डरो मत। लगभग 12 वर्ष बाद फिर आवेंगे। उस समय जो पहचान सको तो पहचान लेना'') को पूरा करने के लिए ही होगा। यह श्री प्रभु का सवाँई में प्रकट होना उन की दिव्य लीला थी। इस रहस्य का बोध अमृतसर के भक्तों को भी नहीं हुआ क्योंकि श्री प्रभुजी अमृतसर से जुलाई ई0 सन् 1926 में कहीं गये ही नहीं थे।

१०.१२ ॥ प्रभु राम दा आना॥

प्रभु आना तोरा युग–युग अन्दर, अपने किए कौल इकरार बदले।
बदले सुरज व चांद जमीन बेशक, पर तेरा न कौल इकरार बदले।
नाथ नाम तोरा तारे पत्थरों को, बान्धा पुल था रावण के पाप बदले।
दिया राज विभीषण को धर्म कारण, निभाया पिताका वचन न राम बदले।
भीलनी भीलनी पुकारदे राम आये, खाये बेर जूठे केवल प्रेम बदले।
महांवीर जी को प्रेम दान दीना, फोड़ा छाती को राम दिदार बदले।
आओ सिखिये मिल सब प्रेम करना, आये राम हैं योग करान बदले।
प्रेम राम को प्यारा है प्राण मानिद, प्राण वारिये राम दिदार बदले।
सेवा राम दी आज्ञा विच रहना, 'मुलख' मंगदा दान निभान बदले।

१०.१३ आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की 'लोक कल्याण' काश्मीर यात्रा

श्री प्रभुजी, गुरु माता जी और मुलखराज जी को साथ लेकर कश्मीर की यात्रा के लिए तैयार हुए। श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी को आज्ञा दी–''जाओ घर वालों से जाकर कह दो कि हम अपने प्रभुजी के साथ कश्मीर जा रहे हैं'' उन्होंने घर जाकर अपना विचार प्रकट किया तो उनकी धर्मपत्नी ने भी अति नम्रता से साथ जाने की प्रार्थना की। तब गुरु माता जी ने कहा–''बेटा! तुम सेवा तथा ध्यान में रहते हो, परदेश में तुम्हारी धर्म पत्नी के शरीर को कष्ट हुआ तो उसकी सेवा में तत्पर रहने से प्रभुजी की सेवा से वंचित रहोगे।'' इतनी बात सुनकर श्री मुलखराज जी ने घर में कह दिया–''सेवक को सेवकों की जरूरत नहीं है। इस कारण हम श्री प्रभुजी के चरण कमलों के साथ अकेले ही जायेंगे।'' तब इन्होंने अपने माता पिता जी को प्रणाम किया और श्री प्रभुजी के साथ काश्मीर जाने के लिये गाड़ी में सवार हो गये। व 'रावलपिण्डी' पहुंच कर वहां कुछ दिन ठहरे। यहां पर भक्तों ने शारीरिक आत्मिक स्थिति के लिए उपदेश प्राप्त किया। एक भक्त ने श्री प्रभुजी से

निवेदन किया-''महाराज! रावलपिण्डी में एक भक्त ने शीर्षासन का महत्व पढ़कर अभ्यास किया तो उसको भूख का रोग इतना बढ़ गया कि वह हर समय भोजन आदि कुछ न कुछ पदार्थ सेवन करता ही रहता था। तब श्री प्रभुजी ने फरमाया-''भाई! ग्रन्थों में ऋषियों ने यह पहले से ही वर्णन किया हुआ है कि देखे दिखाए करे योग, छीजै काया बढ़े रोग' अतएव बिना गुरू के योग का कोई साधन सिद्धि देने वाला नहीं होता। क्रिया, प्राणायाम तथा आसनों की समुचित मात्रा का बोध न होने के कारण साधन अवश्य हानिकारक हो जाता है।'' कुछ दिन रावलपिण्डी में रहने के बाद वहां से सबको साथ ले, बस में सवार हो, श्री प्रभु जी काश्मीर चल दिये। जब 'कोहमरी' स्थान में पहुंचे तो श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की महाराज! ''इन पर्वतों का दृश्य तो यात्रा में चलने से पहले आपने अमृतसर में ही कृपा करके दिखला दिया था।'' तो प्रभु जी ने फरमाया-''बेटा! दिव्य स्थिति वाले बालकों को ध्यान द्वारा संस्कारी स्थानों और जीवों के सम्बन्ध में पहले से ही बोध हो जाया करता है। जैसे तुम्हारी कश्मीर में रहने वाली मौसी का मिलाप रावलपिण्डी में ही हो गया और उसने कहा-''प्रभुजी! मुझे आपके दर्शन स्वप्न में हुए थे और आपने मुझे पंचभौतिक जगत से तारने के लिए दिव्य योग मार्ग का उपदेश दिया। तब उसने रावलपिण्डी में ही उपदेश के लिये प्रार्थना की थी जिस पर हमने कहा था कि काश्मीर में जाकर तुम्हारे पतिदेव सहित तुमको योगोपदेश दिया जावेगा और अब यह तुम लोगों के साथ रावलपिण्डी से काश्मीर जा रही है और अपने गृह में ही हम लोगों को ठहराने के लिए प्रेममय आग्रह कर रही है और हमने कहा है कि कश्मीर पहुंचकर ही ठहरने के विषय में बतलायेंगे। ऐसे ही संस्कारी बालकों को कई बातों का प्रथम ही बोध हो जाया करता है।'' जब श्री प्रभु जी 'श्रीनगर' (काश्मीर) पहुंचे तो श्री मुलखराज जी की सम्बन्धी देवी के पतिदेव व पुत्र ने भी श्री आनन्कन्द प्रभुजी को अपने यहां ठहरने के लिए प्रेमपूर्वक आग्रह कर प्रार्थना की। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी भक्तों के शुद्ध ह्रदय की प्रार्थना को सुनकर उन के यहां मुलखराज को साथ लेकर ठहर गये।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का बच्चों के हितार्थ यह सिद्धान्त था कि जहां-जहां भी भक्तों को साथ लेकर जाते थे, वहाँ के दर्शनीय प्रसिद्ध स्थान अपने साथ ले जाकर दिखला देते थे। श्री मुलखराज जी की दिन-रात चौबीस घन्टों ध्यान-स्थिति, भक्ति व तुर्यावस्था को देख कर इनके सम्बन्धी मन ही मन प्रसन्न होकर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी से योगोपदेश का, अत्यन्त नम्रता एवं भक्ति भाव पूर्वक लाभ प्राप्त करते रहे। ला. कर्मचन्द दारोगा जेल ने कई बार श्री प्रभुजी से प्रार्थना की-''महाराज! आप कृपा करके हमारी कोठी में भक्तों सहित दर्शन दें और उपदेशामृत से कृतार्थ करें। श्री आनन्दकन्द प्रभुजी ने पूर्ण श्रद्धा में कुछ कमी देख कर टालते हुये फरमाया-''हाँ भाई! फिर किसी दिन चलेंगे।''

इन दिनों एक भक्त (जो कि बैंक में क्लर्क था) श्री प्रभु जी के पास आया करता था। इस क्लर्क भक्त को बाबू कर्मचन्द दरोगा जेल एक दिन अपने साथ तांगे में बिठला कर अपनी कोठी की ओर ले गये और मार्ग में उनसे ध्यान अवस्था और श्री प्रभुजी के पूर्ण सत्गुरू होने के सम्बन्ध में वार्तालाप करते हुए मील-डेढ़ मील की दूरी पर जाकर इस भक्त से कहा कि अब आप प्रसन्नता से वापस अपने घर को जा सकते हैं। ऐसा कह कर तांगे से उतार दिया। तांगे से उतर कर भक्त जी ने विचारा कि हमें तांगे में बिठा कर दारोगा जेल अपने संशय की निवृति के लिए यहां लाये थे। इनको चाहिए था कि अपने स्थान पर पहुंचकर कोचवान से हमारे घर तांगे पर पहुंचवाते। यह इनको अपने अफसर होने का अभिमान है जो इन्होंने इतनी दूरी पर लाकर हमें तांगे से नीचे उतार दिया। इस प्रकार भक्त जी का ह्रदय दुःखित हुआ। तब श्री सर्वाधार श्री प्रभुजी ने क्लर्क भक्त के

ध्यानकी अवस्था तथा मस्ती को समाप्त कर दिया। जब यह भक्त श्री सद्गुरु देव जी के स्थान पर पहुंचा और प्रभुजी को प्रणाम किया तो श्री मुलखराज जी ने उनकी ध्यान अवस्था को न देखकर अपने प्राणनाथ श्री प्रभुजी से संकेत पूर्वक पूछा-''महाराज! इसका क्या कारण है? तब श्री सर्वान्तर्यामी श्री प्रभुजी ने इनको संकेत कर रोक दिया और फरमाया-''ठहरो!'' इतने में उपरोक्त भक्त की आँखें जल से भर आई। श्री प्रभुजी ने भक्त से आँखें भरने का कारण पूछा तो भक्त जी ने दुखित हृदय से तांगे वाली घटना का सारा वृतान्त निवेदन किया। भक्त जी को समझाते हुये आनन्दकन्द श्री प्रभु जी ने फरमाया-''बेटा! जो कुछ देगची में होता है वही कुछ कड़छी में आता है। जीवों का संस्कार वश जैसा स्वभाव होता है वैसा ही व्यवहार वे करते हैं। अतः दुखित न होकर विरोधी भाव एवं संस्कारों से बचना चाहिये तथा ध्यान भजन में वृति को स्थित रखना चाहिये।'' इस प्रकार समझा कर भक्त जी को अपने गृह पर जाने व भोजन आदि करने के लिए श्री प्रभुजी ने आज्ञा प्रदान की तो वह भक्त अपने घर को चल दिया। भक्त जी के चले जाने के पश्चात् आनन्दकन्द श्री प्रभु जी ने श्री मुलखराज जी को कहा-''पुत्र! बाबु कर्मचन्द दारोगा जेल के बर्ताव से इस क्लर्क भक्त का ह्रदय वहीं सड़क पर दुखी हुआ तो पश्चिम की ओर से एक भयंकर आँधी अनेक जीवों को हानि पहुँचाती हुई दारोगा को कष्ट पहुंचाने के कारण उत्पन्न हुई थी। जिस कारण इस क्लर्क भक्त के मन में बदला लेने का संकल्प उत्पन्न हुआ था। तब हमने यह विचार किया कि इतने जीवों को कष्ट पहुंचाने वाली आंधी इसके ध्यान को समाप्त कर इसे नर्क की ओर ले जाने वाली होगी। अतः जिस ध्यान के प्रभाव से वह आँधी उत्पन्न हुई थी। हमने उस ध्यान को समाप्त कर इसकी नर्ककुण्ड से रक्षा कर दी है। इस प्रकार की अवज्ञा करने से जिस साधक का ध्यान समाप्त हो जाता है। उस भक्त को फिर इस जन्म में ध्यान द्वारा भगवान के दर्शन और ब्रह्मानन्द रस की प्राप्ति अति कठिन और दुर्लभ हो जाती है। फिर वह अपने जीवन को जीवन हीन ही देखता है। अन्य भक्त समाज को इस घटना से शिक्षा लेकर अपने आपको श्री सत्गुरुदेव जी के प्रति समर्पण करते हुये हानि लाभ से परे हर दशा में उन्हीं के प्रेम ध्यान में मग्न रहना चाहिए। भक्त वत्सल श्री सत्गुरुदेव सर्व व्यापक और सर्वशक्तिमान होने के कारण अपने भक्तों के छोटे बड़े कर्मों के द्रष्टा होते हैं। अतएव सबको कर्मफल अवश्य देते हैं साधक के ह्रदय में क्षमा, दया और भक्ति का ही वास होना चाहिए।''

उपरोक्त घटनाओं के कुछ दिन बाद दरोगा कर्मचन्द जी बड़े ही शुद्ध भाव से प्रभुजी के पास उपदेश, दर्शन आदि के लिये नियमित रूप से आने लगे। एक दिन हार्दिक श्रद्धा के साथ आपने प्रार्थना की-''महाराज! हमारे गृह को भी अपने चरण- कमलों के स्पर्श से पुनीत करने की कृपा कीजिये और भक्तजनों सहित हमारे यहाँ भोजन का निमन्त्रण स्वीकार कीजिऐ।''

आपकी श्रद्धा और विनय को देखकर श्री प्रभुजी भक्त समाज सहित आपके यहाँ पधारें। सत्संग, उपदेश, भोजन आदि के पश्चात् दरोगा जी ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की-''महाराज जी जेल के भीतर पधार कर वहाँ का कार्य-क्रम देखने की कृपा कीजिये।'' उत्तर में श्री प्रभुजी ने फरमाया-''भीतर जाकर जिस कैदी को हम कहें। उसे छोड़ सकते हो तो हम भीतर जायेंगे। तब दारोगा जेल ने निवेदन किया -''यह काम मेरे वश में नही है। हां, जिस कैदी पर आप प्रसन्न हो आज्ञा करेंगे उसे हर प्रकार से आराम पहुँचा सकता हूँ।'' इस पर श्री प्रभुजी ने भीतर जाने से इन्कार कर दिया। तब दारोगा जी ने श्री मुलखराज जी की ओर देख कर संकेत किया और भीतर चलने के लिए प्रार्थना की। इस

पर श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभुजी के चरण–कमलों की ओर देखा तो भक्त वत्सल श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी–''पुत्र! चाहो तो जा सकते हो।''

जेल में एक यवन महात्मा पड़े हुए थे जिनके सूक्ष्म शरीर को श्री प्रभुजी ने गोद में लिया हुआ था– ऐसा श्री मुलखराज जी को दृष्टिगोचर होता था। अतएव श्री मुलखराज जी चाहते थे कि स्थूल शरीर से भी वे महात्मा श्री प्रभुजी का आशीर्वाद प्राप्त कर सके इस विचार से वे उस कैदी महात्मा की ओर चल दिये। जेल का दरवाजा गुजर कर इन्होंने देखा कि बायें हाथ कुछ कमरों में कैदी अपना अपना कार्य कर रहे हैं। किन्तु वह जेल के मैदान के मध्य से उस महात्मा जी के समीप जाकर खड़े हो गये और मन ही मन उस महात्मा जी से कहने लगे–''भैया! तुम्हें श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में जाकर विशेष आशीर्वाद को प्राप्त करना चाहिए।'' तब वह कैदी महात्मा कहने लगे–''इस से पूर्व भी एक बार श्री प्रभु जी मिले थे और करूणा करके पुनः दर्शन देने के लिए भी फरमाया था। अब हम उन्हीं के चरण–कमलों में पड़े हुए हैं।'' इतनी बात कह कर वे महात्मा भूमि पर औंधे लेट श्री प्रभुजी के चरण कमलों से जा लिपटे। तब दारोगा जी ने राजा का किला, जो कि पास ही था देखने के लिये प्रार्थना की तो प्रभुजी ने फरमाया–''राजा जी से पूछ लो।'' (श्री करूणासागर प्रभु परम प्रसन्नता में राजा जी शब्द का प्रयोग मुलखराज जी के लिये ही किया करते थे) तब श्री मुलखराज जी ने निवेदन किया–''महाराज! यदि इन भक्तों की इच्छा हो रही है तो आप चलियेगा; वहाँ के रहने वाले जीवों को भी आपके दर्शनों का सुख प्राप्त हो जायेगा।'' तब श्री आनन्दकन्द भक्त वत्सल प्रभु अपने भक्त समाज सहित किले की ओर चल दिये। मार्ग में पागल खाने में भी एक फकीर की सूरत मुलखराज जी को नजर आई। इन्होंने उस फकीर को दर्शन देने के लिये श्री प्रभुजी से प्रार्थना की। उत्तर में आनन्दकन्द श्री प्रभु जी ने फरमाया–''हम बाहर यहाँ बैठते हैं तुम भीतर जाकर उत्पन्न हुये संकल्प को निपटा आओ।'' एक आसन पर श्री प्रभुजी को विराजमान करवा कर वह भीतर चले गये तो देखा कि सामने जंगले में एक यवन महात्मा लेटे हुए हैं। इनके वहां जाकर खड़े होते ही वो महात्मा जी उठे और गले में चोगा पहनकर आपके सम्मुख खड़े हो गये। तब श्री मुलखराज जी उस महात्मा को श्री आनन्दकन्द जी से मिलने का संकल्प किया किन्तु वह महात्मा अभिमान में डूबे हुये होने के कारण कुछ बुड़बुड़ाने लगे तो इन्होंने उस महात्मा को प्रभु–दर्शन के योग्य न जान कर फटकार दिया और वापिस लौट आये और प्रभु जी के साथ किले की ओर चल दिये। वहां जाकर मन्दिर तथा देवताओं के स्थानों का दर्शन किया और तत्पश्चात् श्री प्रभुजी के साथ वापस अपने स्थान पर आ गये।

मार्ग में बाजार के नाले के किनारे पर एक यवन महात्मा पड़े थे जो दूर से ही श्री प्रभुजी के दर्शन पाकर हाथ जोड़कर बैठ जाते थे। श्री प्रभु जी के कुछ दूर चले जाने पर भी वे महात्मा श्री प्रभु जी के चरण निहारते रहते थे। जब श्री प्रभु जी दाएं–बाएं लौटते, तो महात्मा फिर अपने स्थान पर लेट जाते। भक्त नर–नारी श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में आकर शारीरिक व मानसिक कष्टों की निवृत्ति योग दिव्य मार्गके द्वारा नित्य प्राप्त कर कृतार्थ होते रहे।

एक दिन श्री मुलखराज जी श्री नगर के बाजार से अपने श्री प्रभु जी की आज्ञानुसार रसोई का कुछ आवश्यक सामान लेकर आ रहे थे कि मार्ग में इनको अनुभव हुआ कि इन की धर्मपत्नी इनके माता–पिता के यहां पलंग पर लेटी हुई 'स्वामी जी' शब्दों का उच्चारण कर अन्त समय इनके दर्शनों के लिये व्याकुल हो रही हैं और माता जी उस देवी से कुछ दूरी पर एक बच्चे को भुजा पर बिठाये और दूसरी बच्ची को उंगली से लगाये खड़ी हैं और मन ही मन यह कह रही हैं कि बहू के अन्त समय यदि मुलखराज जी यहां

होते तो इसकी आत्मा शान्ति पूर्वक स्वर्गारोहण करती। अब मालूम नहीं कि यह शरीर कितने घंटो का मेहमान है।

श्री मुलखराज जी इस घटना को देख कर अपने श्री प्रभुजी की इच्छा में यह सर्वलीला विचारते हुए श्री प्रभुजी के चरण कमलों में पहुंचे और सब सामान गुरू माता जी के चरणकमलों में सौंप दिया। तब गुरू माता जी ने पूछा–''पुत्र! किस विचार में आज वृति को लगाया हुआ है। तब आपने मार्ग में देखी घटना का वर्णन किया तो माता जी ने उत्तर में कहा–आप हमारी आज्ञानुसार उस देवी को वहाँ छोड़ आये हो, इस कारण आपको ऐसा देखने में आया है। तब श्री मुलखराज जी ने कहा–''माता जी! बच्चों के साथ यह सब घटनाएं श्री भक्त वत्सल श्री प्रभुजी की अपार कृपा–रूप ही होती हैं। अतएव प्रभु जी जो कुछ भी करते हैं उन सब में बच्चों का कल्याण होता है।'' इस बात को अभी दो दिन ही व्यतीत हुए थे कि आप के घर से तार आया–''आपकी पत्नि का स्वर्गवास हो गया है।''

मर्यादा पुरूषोतम भक्तवत्सल श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी को आज्ञा दी–''पुत्र! अमृतसर पहुँच कर अपनी धर्मपत्नी का क्रिया–कर्म करवाओ।'' इस पर इन्हों ने प्रार्थना की–''महाराज जी! उस देवी को तो आपने अपनी परमानन्द अविनाशी दिव्य गोद प्रदान कर दी है। अतः इस बच्चे को अपने चरण कमलों की सेवा से कृपया अलग न कीजिए।'' इस पर श्री प्रभु जी ने फरमाया–''पुत्र! हम गृहस्थी, बस्तियों में रहते हैं, इस कारण मर्यादा निर्वाह के लिये सभी कर्मों को समय–समय पर करना उचित है। प्रभु हर समय तुम्हारे साथ भीतर–बाहर प्रत्यक्ष रूप से रहते हैं उनके दर्शन आशीर्वाद के साथ–साथ सांसारिक कर्मों से निपट आओ।'' उसी दिन ही श्री मुलखराज जी को लारी में बिठलाकर मस्ती की अवस्था में भीतर–बाहर दर्शन देते हुए श्री प्रभु जी ने अमृतसर की ओर भेज दिया। अमृतसर पहुँचकर वह सब सम्बन्धियों से मिले तथा दो तीन दिनों के पश्चात् माता–पिता व ब्राह्मणों और वेद शास्त्रों के कथना अनुसार अपनी धर्मपत्नी का क्रिया–कर्म करवा रहे थे कि इतने में इनकी बहन, धर्मपत्नी का नाम तथा योग्य गुणोच्चारण एवं रूदन करती हुई घर के दरवाजे में दाखिल हुई। जिससे श्री मुलखराज को भी अपनी धर्मपत्नी की सेवा शुश्रूषा सम्बन्धी कई बातों का स्मरण होने लगा कि रात्रि का जब 12 बजे श्री प्रभु जी के चरण कमलों से लौटना होता था तो वह नित्य ही ड्योढ़ी के दरवाजे को बन्द कर द्वार के निकट बैठी होती थी। ताकि उन को आवाज न देनी पड़े। क्योकि आवाज लगने से पिता जी या परिवार वाले नींद खुल जाने से कष्ट मानेंगे और इन के श्री प्रभुजी के पास नित्य प्रति जाने में विध्न डालेंगे। इसी प्रकार प्रातः भी उस धर्मपत्नी का समय से पूर्व उठ कर नित्य कर्म से निपटाने के पश्चात् स्नान आदि करा कर आसन आदि बिछा ध्यान में बैठने के लिये प्रार्थी होना इत्यादि, सब दिनचर्या उस देवी की सेवा रूप ही थी। इस प्रकार की कुछ बातों की याद आते ही मुलखराज जी का हृदय भर आया। तब इनके ऊपर एक दम अनन्त दिव्य ज्योतिर्मय प्रकाश की प्रकाशिका श्री मुलखराज जी की धर्मपत्नी दिव्य रूप में दिव्य वस्त्र आभूषणों से सुशोभित श्री मुलखराज जी के सम्मुख हाथ जोड़े खड़ी हो गई। जिनके दिव्य सौंदर्य का वर्णन इस बुद्धि बल से बाहर है तब दिव्य शरीर धारी उन की धर्मपत्नी जी ने अपने पती जी से प्रार्थना की–''महाराज! आपके इन चरण कमलों को श्री अनाथ नाथ भक्त वत्सल प्रभुजी ने (हाथ की अंगुली से आकाश की ओर संकेत करते हुए कहा) वह दिव्य अलौकिक श्री करूणाधाम प्रदान किया है। जिसके आनन्द को मैं वर्णन करनेमें असमर्थ हूं। फिर आपने यह मन क्यो भरा है। आपके इस मन भरने के कष्ट ने मुझको अनन्त दिव्य परमानन्द रूप सिंहासन से नीचे मृत्यु–लोक में पटक दिया है।'' तब श्री मुलखराज जी ने आकाश की ओर दृष्टि उठा कर देखा तो उस अनन्त ज्योतिर्मय दिव्य प्रकाश का दिव्यमार्ग दिव्यलोक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता था।

अतएव दिव्य सिंहासन जिसके ऊपर से वह दिव्य देवी नीचे तक पटक दी गई, उस दिव्य मंन्दिर, दिव्य वाटिका का इतना महान अलौकिक सौंदर्य था कि दृष्टि जिधर जाती उस में रमण करती हुई अन्य स्मृति को भूल जाती थी। व दिव्य सिंहासन पूर्व की ओर से खाली पड़ा था और पश्चिम की ओर दिव्य वस्त्राभूषणों से सुशोभित कुछ दिव्य दासियां पूर्व की ओर मुख किये बड़े आश्चर्य की दृष्टि से मृत्यु–लोक की ओर देख रही थीं और मन ही मन कह रही थी–‘‘न मालूम किस कारण से हमारी स्वामिनी एक दम नीचे मृत्यु लोक में उतर गई है।’’ जब उन्हों ने यह सब दिव्य अलौकिक घटना खुली आंखों प्रत्यक्ष रूप से देखी तो मन ही मन अपने श्री प्रभुजी का धन्यवाद करते हुए दिव्य रूप देवी से कहा–‘‘जब हमारे जीवनाधार आत्मपरमात्म देव श्री प्रभु जी ने करूणा कर ऐसा अपना दिव्य धाम आपको प्रदान किया है और तुम इसी में प्रसन्न मग्न हो तो जाओ जाकर अलौकिक दिव्य परमानन्द सालौक में रमण करो।’’ तब उस दिव्य रूप देवी ने आपके हृदय में आनन्द कन्द श्री प्रभुजी के दिव्य दर्शन को पाते हुए श्री चरणों में सिर को झुका कर प्रणाम किया और आशीर्वाद लेकर आकाश मार्ग से श्री प्रभु जी के प्रदान किये दिव्य सालोक को गमन किया। श्री मुलखराज जी ऊपर दृष्टि उठा कर देखा तो वह दिव्य प्रकाश जो दिव्य लोक से इन तक दिव्य मार्ग बना हुआ था उन देवी के साथ साथ ही अन्तर्धान हो गया। श्री पंडित जी ने जो श्री मुलखराज जी से कुछ क्रिया करवा रहे थे पूछा–‘‘महाराज की आप कभी ऊपर और कभी नीचे मुख निहारते हुए प्रसन्न वदन मुस्करा रहे थे, सो क्या बात थी’’? इन्होंने उत्तर दिया–‘‘पंडित जी! कुछ ऐसी ही श्री प्रभुजी की करूणा कृपा लीला थी।’’

१०.१४ भजन

संसार है गुण गा रहा प्रभु रामलाल के। तुम भी भजो उसी को संशय निकाल के।।

संसार का पिता, रहे तुम से न दूर है। अंतरमुखी हो देख लो, किसका कसूर है।।

क्यों जान के फंसा, चक्र माया जाल के।। तुम.....

भर भर के झोली दे रहा, पीरों का पीर है। दिखने में लगता वह, इक सादा फकीर है।।

तेरा भाग्य बदल देगा, एक निगाह डाल के।। तुम.....

जिसने लिया है आसरा, उस शक्तिमान का। बिना माँगे मिलता सुख उसे, सारे जहान का।।

मिट जाते सादा के लिये, भय महाकाल के ।।। तुम.....

हैं भक्त उनके और वह, भक्तों के प्राण हैं, इस बात के संसार में, मिलते प्रमाण हैं।।

देखे सुने न होंगे, कभी करिश्में कमाल के।।। तुम.....

हीरे जन्म को व्यर्थ में, क्यों तू है खो रहा, मिलने पे सत्गुरू के, भी गफलत में सो रहा।।

कह दे अपने मन को, प्रभु चरणों में डाल के।।। तुम.....

११ योग विभूति साक्षात्कार

आनन्दकन्द श्रीसद्गुरुदेव पं० रामलालजी महाराज के प्रिय कृपा पात्र-'ब्रह्मचारी' श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव

(श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के शब्दों में)

११.१ पूर्व जन्म-साक्षात्कार

एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में विविध प्रकार की चर्चायें चल रही थीं तथा हर व्यक्ति अपने–अपने मति भेद के अनुसार प्रश्न कर रहे थे। इसी बीच में एक प्रकरण चला और वह यह कि किस व्यक्ति का कहां जन्म होता है और जन्म के साथ–साथ क्या उसको कोई उन जन्मों के संस्कारों की अनुभूति होती है या नहीं होती ? इसी प्रकरण में श्री प्रभुजी के चरणाविन्द में सहसा मेरे मुख से निकला कि, प्रभु जी! जिस समय आप नेपाल धाम से आये थे। उस समय तो मेरा जन्म भी नहीं हुआ होगा। इसके उत्तर में श्री प्रभुजी ने कहा, कि ''जब हम नेपाल से आये थे उस समय तुम्हारी उम्र डेढ़ साल की थी।'' मैं ने श्री प्रभु जी से कहा'' प्रभुजी! मैं कहां से आया ? श्री प्रभुजी ने हँसते हुये उत्तर दिया, ''यह हमें क्या पता ? तुम स्वयं सोचो साधु कहाँ से आया करते हैं ? जा, गंगा किनारे जाकर ध्यान में बैठ और वहां बैठने पर जैसी अनुभूति हो उस पर विचार कर लेना।''

मैं गंगा किनारे जाकर ध्यान में बैठा। मैनें देखा एक पहाड़ी नदी पत्थरों के बीच से बहती हुई आ रही है। उसके पश्चिम तट पर छोटा सा बगीचा है और उस बगीचे के साथ में एक छोटी सी कुटिया बनी हुई है। कुटिया के साथ में भगवान श्री कृष्ण का मन्दिर भी दिखलाई दे रहा है और उसके दूसरी ओर नदी किनारे एक शिवालय दिखाई देता है। उस कुटिया में मैंने अपने आप को देखा। मेरा शरीर बहुत ही वृद्ध एवं दाढ़ी जटाओं वाला है। उस नदी के पुल को पार करके मैं एक तुम्बे का कमण्डल लिये हुये नित्यकर्म की निवृत्ति के लिये नदी के उत्तर भाग की ओर जा रहा हूँ। उत्तर भाग में आगे चलने पर भगवती महामाया दुर्गा का दो बार साक्षात्कार प्राप्त किया और उनका आशीर्वाद लेकर के मैं पुनः पुल पार करके अपनी कुटिया की ओर आ गया। उस समय मेरे मन में यह आभास बिल्कुल नहीं था कि मैं आजकल के सोलह या सतरह वर्ष के शरीर वाला कोई नया लड़का हूँ। ज्ञान यही था कि यह कुटिया मेरी है और मैं काफी समय से यहीं रह रहा हूँ। दो एक साधु ब्रह्मचारी और दिखलाई दिये। मेरे मन में यह आभास था कि ये लोग मेरे अपने ही शिष्य हैं जो भगवान की आरती पूजा का कार्य धूमधाम से करते हैं। इतनी अनुभूति होते ही मुझे यह विचार हुआ कि मेरा शरीर अब बदल रहा है। यह सब अनुभूति होने के बाद मेरा ध्यान खुल गया। मेरे मन में यह शंका बनी रही कि यह जगह कौन सी है ? ऐसा मालुम पड़ता था कि इस स्थान पर मैं सैकड़ों वर्ष तक रहा हूं। उस स्थान के बाग बगीचे व कुटिया–मन्दिर की स्मृति मेरे मन मे ज्यों की त्यों कायम है। यह सब दृश्य देखकर मैं श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के चरणों में पहुंचा। श्री प्रभुजी मुस्करा रहे थे। मुस्कराते हुए कहा कि, देख आया, तुम कौन हो और कहाँ से आये हो'' ? श्री प्रभुजी से मैंने, निवेदन किया कि ''प्रभुजी! मैंने यह नजारा देखा है। किन्तु मुझे अब तक भी यह पता नहीं है कि यह जगह कौन सी और कहां है'' ? श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि–''यह भी तुम

स्वयं ही पता लगा लो, हम से क्यों पूछता है''। दूसरे दिन फिर मैं उसी प्रकार से श्री गंगा जी के तट पर ध्यान में बैठा और वही दृश्य फिर सामने आया। उसी समय आकाश से एक आवाज सुनाई दी। इस नदी का नाम गण्डकी है और गण्डकी का यह पूर्वाचल पुल है। जिसके ऊपर से उतर कर के शौच आदि की निवृति के लिये पार जाया करता था। उस नदी के किनारे मैंने यह अनुभव किया कि मैं छोटे स्वरूप से आकाश में इधर-उधर उड़ता फिरता हूं। अस्तु! मेरे मन में यह आभास है श्री आनन्दकन्द प्रभु जी ने गण्डकी के तट पर ही उसी साधु रूप में अपने पवित्र चरण कमलों में निवास दिया हुआ है और उस वृद्ध शरीर में से निकल करके मैंने अपने आप को आकाश में घूमते हुये देखा। यह भावी जन्म की सूचना थी। अस्तु। यह दृश्य सब क्या था व कैसे था? यह तो वे सर्वशक्तिमान ही जाने। मैंने कितनी ही बार अपने इस जीवन में गण्डकी नदी के पूर्वाचल पुल पर जाने की दृढ़तर इच्छा की किन्तु चाहते हुये भी मैं अभी तक वहां नहीं पहुच पाया। अब यह शरीर भी काफी बड़ी अवस्था का हो गया है। वह स्थान पहाड़ी व पथरीला स्थान है, कहा नहीं जा सकता पहुंच सकूंगा या नहीं। इस शरीर में से निकल जाने के बाद मैंने अपने आप को सूक्ष्म तेज के रूप में इधर उधर काफी घूमते हुए देखा और अब शरीर का जहाँ जन्म स्थान है वहां उस मकान पर भी मैंने अपने आप को काफी घूमते देखा किन्तु इससे आगे मैंने श्री माता जी के उदर में कैसे प्रवेश किया व कैसे मेरा जन्म हुआ इसकी मुझे विशेष स्मृति नहीं है।

११.२ श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का जन्म एवं शिक्षा

इस जन्म के विषय में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि हरियाणा जिला करनाल की तहसील पानीपत के अलुपुर गाँव में मेरा जन्म हुआ। मेरा जन्म गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ। मेरे पिता जी का नाम श्री पं. देवीराम जी शर्मा था। उनके छोटे भाई आर्थात् मेरे चाचा जी पं० शिव- नारायण शर्मा थे। श्री माता जी का नाम श्री मती चरती देवी था। मेरे पिताजी लाहौर में महात्मा हंसराज और भाई परमानन्द के जमाने में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के एक योग्य व कुशल उपदेशक थे। जन्म लेने के बाद मुझे अपने बाल्यकाल में दो-तीन या चार वर्ष की आयु में ही विशेष प्रकार की अनुभूतियां होती रहीं जिसमें अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र महाराज का अनुग्रह बहुत ही विशेष था जिनको, यह कौन हैं कितने प्यारे हैं, यह पहचान से बाहर था। उनकी कृपा के अनुभव चलते-फिरतें उठते-बैठते होते थे। अक्सर आकाश-गमन के स्वप्न मुझे अधिक आते रहते थे। एक बार इन सब बातों को मैंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में जिक्र किया तो श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया, यह आकाश गमन की सिद्धि है। जन्म जन्तान्तर के संस्कार वश ऐसा दीखता है। कालान्तर में यह सिद्धि तुम्हें हो जायेगी। मैंने श्री प्रभुजी से पूछा, प्रभु जी यह सिद्धि कब हो जायेगी? ''इस के उत्तर में श्री प्रभु जी ने कह दिया यह सब समय की बात है। समय ही बतायेगा।''

मेरे पिता जी मुझे उपनिषदों की कथायें सुनाया करते थे और ऋषि-मुनियों के आश्रमों का वर्णन किया करते थे। उन सब बातों का मेरे मन पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा और मैं अपने पिता जी से बार-बार यह कहने लगा कि ''पिता जी एक आश्रम जंगल में हम भी बनवायेंगे और वहीं रहा करंगे।'' इस प्रकार से लगभग दस वर्ष की आयु तक यह ग्रामीण स्कूली शिक्षा होती रही। मेरे श्री पिता जी बहुत चाहते थे कि वे शिक्षा के लिये मेरा प्रवेश किसी उत्कृष्ट गुरुकुल में करा दें किन्तु श्री माता जी ने अपने ममत्व व प्यार के कारण ऐसा नहीं होने दिया। मुझे बाद में लाहौर डी.ए.वी. कॉलेज के संस्कृत विभाग के

अन्तर्गत श्री मद्दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय में मुझे प्रवेश कराया गया। वहां मेरी उच्च शिक्षा प्रारम्भ हुई। विद्यालय में लगभग दसों अध्यापक थे। वे सभी लोग भिन्न–भिन्न विषय पढ़ाया करते थे। उस विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री आचार्य विश्वबन्धु जी थे। श्री आचार्य जी बहुत ऊंचे विचार के व्यक्ति थे। अपने छात्रों पर उनका पूरा–पूरा नियन्त्रण था। हर ब्रह्मचारी उनकी चरण–शरण में रहकर के अपने निजी माता–पिता को भूल जाता था। आचार्य जी की शिक्षा बहुत महान थी जो उनके चरणों में रहने वाले ब्रह्मचारियों के हृदय में घर कर गई।

११.३ स्वप्न में सद्गुरुदेव श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन व आशीर्वाद

एक दिन रात के समय आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के पगड़ीधारी स्वरूप के दर्शन हुए। वे कुंएँ पर खड़े थे और लोगों को पानी पिला रहे थे। मैं भी उस कुएँ पर पहुँच गया। मुझे प्यास लगी थी। श्री प्रभुजी ने कुएँ डोल से खींचकर मुझे पानी पिलाया और मेरे हाथ में एक डोल दे दिया और कहा–अब तू इन सबको पानी पिला दे। मेरे डोल उठाते ही पानी पीने वालों की भीड़ बहुत अधिक मात्रा में उमड़ पड़ी। किन्तु मैं भी थका नहीं, पानी पिलाता ही रहा। किन्तु मेरे मन में यह बहुत बड़ा आश्चर्य था कि ये कौन थे जिन्होंने मुझे पानी पिलाया तथा अन्य लोगों को पानी पिलाने की आज्ञा दी। मैं इसी चिन्ता में था कि दूसरे दिन फिर स्वप्न में अनुभव हुआ कि उसी पंडित वेष में योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी मेरे सामने खड़े हैं और कह रहे हैं कि अब तू हमारे पास चला आ। इतना अनुभव होते ही निद्रा खुल गई और मैं सोचने लगा कि कल के स्वप्न मे तो इन्होंने पानी पिलाया था और आज के स्वप्न में मुझे चले आने की आज्ञा दी किन्तु ये कौन हैं ? मैं कहाँ चला आउँ। यह मैं कुछ भी समझ नहीं सका। तीसरे दिन ठीक उसी प्रकार से फिर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन हुए और उन्होंने फिर मुझसे दोबारा कहा, अब तू चला आ। इसके उत्तर में मैंने स्वप्न में ही प्रार्थना की कि, आप कौन हैं ? और मैं कहाँ चला आऊँ। इसके उत्तर में श्री प्रभुजी ने कहा कोई चिन्ता मत कर अब तू चला आयेगा।

११.४ 'योग साधन आश्रम' ऋषिकेश में श्री प्रभु जी के दर्शन एवं दीक्षा

श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश में श्री प्रभुजी सामने कमरे में दाहिनी ओर पलंग पर बैठे हुए थे। मन को ऐसा आभासित हुआ जैसे वे मेरा ही इन्तजार कर रहे हो। जब मैं प्रभुजी के चरणों में पहुँचा तो मेरा सिर अनायास ही झुक गया। यह पहला दिन था कि श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में सिर झुकाकर मैंने प्रणाम किया। प्रणाम करने के बाद श्री प्रभुजी हँस कर बोले ''क्यों ? तू आ गया ? रास्ता तुझे मिल गया ? तू तो कहता था कि बिना पते कहाँ व कैसे आऊँगा। अब देख तू बिना पते और बिना बुलाये अपने आप ही आ गया।'' श्री प्रभुजी की बातें सुन करके मैंने प्रार्थना की–''गुरू जी मुझे आप योग सिखाइये।'' मेरी बात सुन करके श्री प्रभु जी गंभीर हो गये और गंभीरता में ही उत्तर दिया। ''योग तो तुम्हें सिखा देंगे किन्तु तुम्हारे घर के क्या कहेंगे। तुम अभी बच्चे हो। पढ़ने का मौका है। इस समय तुम्हें पढ़ना चाहिये। बाद में तुम योग ध्यान सीखना।'' श्री प्रभु जी के इस उत्तर को सुन करके में चुप हो गया और गंगा–किनारे घूमने चला गया। दूसरे दिन मैंने पुनः योग सिखाने की प्रार्थना की और कहा कि ''गुरू जी मुझे ऐसा योग सिखाओ जिस योग में भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी चटपट मिल जायें।'' श्री प्रभुजी हंस पड़े वे कहने लगे, ''अच्छा! तू ऐसा योग सीखेगा जिसमें चटपट श्री कृष्ण मिल जायें और

कोई योग तो तू सीखेगा नहीं। अच्छा! जा गंगा किनारे घूम आ स्नानादि कर आ, उसके बाद आ जाना यहीं आकर भोजनादि कर लेना। तब तुम्हें योग सिखाने की देखेंगे।'' श्री प्रभु जी की आज्ञानुसार मैं गंगा किनारे स्नानादि करने चला गया। शाम को लगभग पांच बजे लौटकर आश्रम में पहुंचा। मुरादाबाद के काफी गरू भाई-बहिन वहाँ मौजूद थे। मुरादाबाद के ही एक गुरू भाई बाबू राम नाम के थे। ब्राह्मण कुल में उनका जन्म हुआ था। गंगा स्नान से लौटा हुआ मुझे देखकर उन्होंने कहाँ-अरे भाई! तू कहाँ चला गया था? यहाँ तो दोपहर को श्री कृष्ण जी आये थे। उन्होनें तुम्हें बहुत याद किया। जब तुम नहीं ही आये तो कृष्ण जी तो गये किन्तु एक बड़ा कटोरा हलुआ का तुम्हारे लिए छोड़ गये और कह गये हैं कि जब वह गंगा जी से लौटकर आये तो यह उसे खिला देना। सो भाई, तुम्हारा हलुआ का कटोरा रखा हुआ हैं। कृष्ण जी दे गये हैं। तू अपना हलुआ खा ले। वह दिन गुरू पूर्णिमा का दिन था। हमारे गुरू भाई-बहिनों ने आनन्दकन्द श्री प्रभुजी को मोर मुकुट पीताम्बर आदि धारण करा करके पूजन किया था। बात यथार्थ भी थी। किन्तु में नहीं समझ सका। मैंने हलुआ का कटोरा लेकर प्रसाद पा लिया। एक दो दिन इसी प्रकार से व्यतीत हुए।

श्री गुरू माता जी को श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी कि, ''यह मेरा ही लड़का है इसको ठीक समय पर भोजनादि करा दिया कर।'' श्री प्रभुजी की आज्ञा पाकर के उन्होंने मुझे अपना जन्म जना बच्चा जान करके भोजनादि कराया। दूसरे दिन आनन्दकन्द श्री प्रभु जी ने मुझे योग दीक्षा दी और ध्यान करने की विधि को समझाया। बाद में मुझसे पूछा-''बेटा! अब तुम्हारा कहाँ जाने का विचार है? मैंने उत्तर दिया-प्रभु जी! मैं श्री वृन्दावन जाना चाहता हूँ। श्री प्रभुजी ने मुझे श्री वृन्दावन जाने की आज्ञा दे दी। श्री प्रभु जी की आज्ञा पाकर दूसरे दिन मैं श्री वृन्दावन चला गया। वृन्दावन जाते समय श्री प्रभु जी ने और आज्ञा दी, कि जाओ! श्री वृन्दावन में रहते हुए प्रातःकाल पांच से सात बजे तक अपने ध्यानाभ्यास में अवश्य-अवश्य बैठा करना। यह नियम कभी नहीं तोड़ना।

११.५ मानिकचन्द दलाल पर अद्भुत प्रभु कृपा (*श्री चन्द्रमोहन जी के शब्दों में*)

अपनी बाल्यावस्था, लगभग 14-15 वर्ष की आयु में, जब मैं अमृतसर में विद्याध्ययन किया करता था, मेरे गुरुभाई ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी, श्रद्धेय श्री मुलखराज जी के साथ एक बार अमृतसर में आए हुए थे। गोपालानन्दजी के दर्शन इससे पूर्व मैं ऋषिकेश में अपने दीक्षा-काल में कर चुका था। अतः इन महानुभावों के आगमन की सूचना पाकर मैं उनके दर्शनार्थ गया। उस समय दोनों महात्मा अमृतसर रेलवे स्टेशन के समीप ही गागरमल की धर्मशाला में ठहरे हुए थे। बड़े गुरुभाई होने के नाते मैं उन दोनों को प्रणाम करके बैठ गया। ब्रह्मचारी जी उस समय ध्यानस्थ थे। थोड़ी देर बाद मेरे सामने ही इस प्रकार कहते हुए ध्यान से उठे-'हे प्रभो, हे करुणासागर, हे दीनबन्धो, आप आप ही हैं।'

उन्हें प्रेम विह्ल होकर बारम्बार स्तुति करते हुए देख कर मैंने पूछा-भाई जी, ''क्या कारण है? आज आप श्री प्रभुजी की बहुत स्तुति कर रहे हैं।'' श्री ब्रह्मचारी जी का मुखमंडल उस समय आन्तरिक प्रेममय भावों से अत्यन्त शोभायुक्त एवं विनम्र दिखाई दे रहा था। मेरी बात का कोई उत्तर न देकर वह पुनः ध्यानस्थ हो गए। किन्तु थोड़ी देर बाद बीच-बीच में ज्यों ही उनके नेत्र खुलते, मैं बारम्बार यही प्रश्न करता रहा और मन में सोचता था-किसी प्रकार ब्रह्मचारी जी अपना आज का अनुभव तो मुझे बतला ही दें। मेरे बारम्बार पूछने पर और मेरी तीव्र जिज्ञासा एवं प्रगाढ़ लगन देखकर ब्रह्मचारी जी मुस्काए,

और हँसते हुए बोले-''अरे भैया अभी तुम बच्चे हो। तुमने अभी तक ऐसी बातें सुनी भी नहीं होंगी। मैं तुम्हें बता तो दूँ परन्तु कह नहीं सकता कि तुम उस अद्भुत लीला को सत्य मान सकोगे या नहीं।'' उनकी बतलाने की प्रवृत्ति देख कर मेरे मन में जानने का हठ और अधिक हो गया। अन्ततः ब्रह्मचारी जी को मेरा अत्यधिक आग्रह देखकर सत्य वृत्तान्त कहना ही पड़ा। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी कहने लगे-अरे भैया! ''उन परम कृपासागर की लीला क्या कहूँ? आज तो योग योगेश्वर अगाध दया निधि श्री प्रभुजी ने किसी तपेदिक के मरणासन्न रोगी के अत्यन्त कष्टदायक रोग का संस्कार अपने शरीर पर आकर्षित किया है। अब तीन दिन और तीन रात्रि तक निरन्तर इस रोग को स्वयं कृपानाथजी भोगेंगे। और वह रोगी व्यक्ति बिल्कुल रोगमुक्त होकर पूर्ण स्वस्थ हो जाएगा।''

यह वृत्तान्त सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। यद्यपि मैं दीक्षित हो चुका था। योगयोगेश्वर श्री प्रभुजी की अनुपम कृपाओं का अनुभव मेरे मन को अवश्य था और मेरा मन शक्तिपात दीक्षा के महत्व को भी भली-भाँति समझ चुका था। किन्तु इस प्रकार के अद्भुत कार्य भी होने सम्भव हैं इस विषय का मन में ज्ञान नहीं था। अतः सहसा मन विश्वास न कर सका और मैंने ब्रह्मचारी जी से निवेदन किया-भाई जी, ''यदि यह बात सत्य है तो मैं आश्रम में अपने आप जाकर देखना चाहता हूँ।'' ब्रह्मचारी जी ने कहा-''प्रसन्नता से जाओ और उन कृपानाथ जी की इस अनुपम कृपा को देखो।''

ब्रह्मचारी जी के वचनों को सुनकर मेरे मन में श्री प्रभुजी के चरण कमलों में ऋषिकेश जाने की उमंग भर गई। परन्तु संस्कार वशात् मैं दो दिन नहीं जा सका। तीसरे दिन शाम की गाड़ी से अमृतसर से चलकर अगले दिन प्रातः ऋषिकेश पहुँचा। आश्रम में प्रवेश करके देखा। सामने आराम कुर्सी पर नेपाली काला धुस्सा (एक विशेष प्रकार का काला कम्बल) ओढ़े हुए श्री प्रभु जी बैठे थे। उनका मुख-मण्डल प्रसन्न होते हुए भी क्लान्ति के स्पष्ट चिन्हों से युक्त था। उनके चरण कमलों के समीप ही एक व्यक्ति बैठा हुआ था। जो बिल्कुल क्षीणकाय एवं तेजहीन मालुम पड़ता था। बस अस्थिपंजरावशेष ही दिखाई देता था।

मैंने श्री प्रभुजी के चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम करके विनम्र शब्दों में पूछने का साहस किया-हे दीनबन्धो! ''आज आप उदास से कैसे हो रहे हैं।'' श्री प्रभुजी ने अत्यन्त गम्भीर वाणी में उत्तर दिया-''क्यों, कैसे हो रहे हैं?'' मैं तो कृपानाथ जी की वाणी सुनकर चुप हो गया। किन्तु श्री प्रभुजी के पास बैठे उस क्षीणकाय व्यक्ति का कण्ठ भर आया और वह एक दम रोने लगा। मैंने आश्चर्य में आकर उससे पूछा-भैया, ''तुम कौन हो? और किस कारण से रो रहे हो!'' इसी बीच में श्री प्रभुजी शान्त भाव से अत्यन्त मधुर वाणी में उसे सान्त्वना दे रहे थे भाई, ''रोता क्यों है। इस प्रकार के कार्य तो यहाँ होते ही रहते हैं''। मैंने उस व्यक्ति से आग्रह करके पूछा-भाई, ''सत्यबतलाओ तुम्हारे इस प्रकार रो पड़ने का क्या कारण है? उस व्यक्ति का नाम मनिकचन्द था और वह अमृतसर में सोने चाँदी की दलाली करता था। मानिकचन्द दलाल ने बड़े विनम्र शब्दों में मुझसे कहा-''भाई जी, श्री प्रभुजी का शरीर जो आपको दुर्बल सा दिखाई दे रहा है। इसका कारण मैं ही पापात्मा हूँ। मैं इन दीनबन्धु जी की दया का क्या बदला दे सकूँगा? और क्या ही इन परम कृपालु की सेवा कर सकता हूँ? ये करूणानिधि अकारण कृपालु हैं। दीनबन्धु हैं, अनाथों के नाथ हैं, शरणागतों के रक्षक है।'' यह कहकर मानिक चन्द ने जो आप बीती कथा सुनाई थी। वह निम्न प्रकार से है।

उसने मुझसे इस प्रकार बतलाया–मैं तपेदिक का इलाज कराने सोलन गया हुआ था और धर्मपुर पहाड़ पर रहकर डाक्टरों से चिकित्सा करा रहा था। परन्तु मुझे वहाँ जरा भी लाभ नहीं हो सका। अन्ततः डाक्टरों ने मेरे रोग को असाध्य घोषित करके कह दिया–अब तुम किसी भी प्रकार बच नहीं सकते। बस अधिक से अधिक दस–पन्द्रह दिन के और मेहमान हो। धर्मपुर के डाक्टरों की यह राय सुनकर मेरा मन जीवन से बिल्कुल निराश हो गया। मेरी स्त्री भी परम दुःखी होकर सबके अन्तिम आश्रय भगवान् को स्मरण करने लगी। अकस्मात् रात्रि में मेरी स्त्री ज्ञानदेवी को स्वप्न में भगवान् श्री कृष्ण जी के दर्शनों की अनुभूति हुई। उसे अनुभव हुआ कि भगवान् कह रहे हैं–अपने पति को ऋषिकेश ले जाओ। वहाँ पर एक पूर्ण योगिराज हैं, उनके साथ इसका संस्कार भी है। उनकी कृपा से इसका जीवन बच जायेगा।

भगवान् की पवित्र प्रेरणा से मेरी स्त्री के मन में मुझे ऋषिकेश ले जाने का दृढ़ संकल्प बन गया। मेरे मन में भी विचार आया–ऋषिकेश ही चलें और कुछ न भी हुआ तो कम से कम श्री गंगा जी का पवित्र तट तो अन्तिम समय मिल ही जायेगा। मेरी स्त्री बड़ी कठिनाई से मुझे ऋषिकेश तक ले आई। मेरी अवस्था मरणासन्न थी। बड़ी कठिनता से मेरी पत्नी ने मुझे तांगे में डाला और आश्रम के द्वार पर ही किसी प्रकार मुझे उतरवा कर डाल दिया। उस समय श्री प्रभुजी भ्रमणार्थ गए हुए थे। उनके अनुपम चमत्कारों के विषय में सुनकर वह स्वाँति–नक्षत्र की बूंद के लिए चातक के समान श्री प्रभुजी की प्रतीक्षा करने लगी। भ्रमण से लौटने पर श्री प्रभुजी ने दरवाजे पर मुझे पड़ा देखकर पूछा–''यह कौन है ? क्यों आया है ? कहाँ से आया हैं'' ? मेरी पत्नी ने मेरा सारा बृतान्त आदि से अन्त तक श्री चरणों में निवेदन किया। मेरे असाध्य रोग की बात सुनकर बाहरी मर्यादा का पालन करते हुए श्री प्रभुजी ने भी उत्तर दे दिया–''ऐसे रोगी का हम क्या कर सकते हैं ? यह न कोई साधन कर सकता है और न यौगिक– क्रियाएं करने की शक्ति ही शेष है। ऐसी दशा में औषधि–सेवन ही ठीक रहेगा। और कहीं ले जाकर इसका इलाज कराओ''। अनाथ नाथ जी के ऐसे दयाशून्य वचन सुनकर मेरी पत्नी का हृदय अत्यन्त दुःखी हुआ और उसके नेत्रों में जल भर आया। उसने अत्यन्त कातर–वाणी में दीन बन्धुजी से प्रार्थना की–''हे प्रभो, अब संसार में आपके चरण कमलों के अतिरिक्त हमारा कोई सहारा नहीं है। जो कुछ भी होगा, आप के चरण कमलों में होगा। अब हम दूसरी जगह कहीं नहीं जायेंगे। हमारी पहुँच तो यहीं तक थी। इससे आगे और कहीं जाने की हमारी शक्ति नहीं है। उसके दीन वचनों को सुनकर दीनबन्धुजी के मन में कृपा की लहर आ गई। प्रसन्नता से बोले–''अच्छा, अच्छा, देखा जायेगा।'' फिर मेरी पत्नी से बोले–''अपने पति से पूछो कि कौन सी वस्तु खाने की रूचि है ? मेरे मन में उस समय खटाई पड़ी, तेल में तली, बैगन की पकौड़ी खाने की इच्छा हुई। मेरी स्त्री ने मेरी यह इच्छा श्री प्रभुजी के चरण कमलों में निवेदन करदी। यद्यपि तेल की तली यह पकौड़ी उस समय मेरे लिए महान कुपथ्य थी, फिर भी श्री प्रभु जी ने पूर्ण प्रसन्नता से आज्ञा दी–''यह जो कुछ भी खाना चाहता है, अवश्य प्रेम से इन्हें खिलाओ।'' श्री प्रभुजी का आदेश पाकर चकित सी मेरी पत्नी तेल की तली वैसी पकौड़ी ले आई और मुझे खिलादी। उन्हें खाते ही मेरा शरीर चेतना शून्य हो गया। मेरी यह दशा देखकर मेरी पत्नी व्याकुल होकर रोने लगी। किन्तु उधर मेरे साथ इन कृपानिधि जी की कुछ और ही लीला हो रही थी। मुझे उसी बेहोशी में एक स्वप्न सा दीखा–महान् तेज मण्डल के साथ श्री प्रभुजी मेरे समक्ष खड़े होकर कर रहे थे। मानिकचन्द तू अब इस कष्ट को नहीं भोग सकता। यदि भोगेगा तो तीन दिन में ही त्रिलोकी से बाहर हो जायगा। अतः ला, अब तेरा यह शेष कष्ट हम लेकर भुगता देते हैं। मुख खोल। जब मैंने मुख खोला; तो एक अद्भूत आश्चर्य हुआ। मेरे मुख से एक भयंकर

काला– काला सा गोला निकल कर श्री प्रभुजी के मुख के प्रविष्ट हो गया। मेरी स्त्री क्या समझती कि अनाथों के नाथ परम कृपासागर उस समय मेरे ऊपर कैसी कृपा कर रहे थे ? परदुःख कातर प्रभु ने मेरा रोग अपने शरीर पर ले लिया था–यह वह अज्ञानी कैसे जान सकती थी। अतः वह मेरे अनिष्ट की आशंका के कारण व्याकुलता में निरन्तर रोती रही।

उधर श्री प्रभुजी ने एक कमरे में एक निबार का पलंग बिछवा लिया था। अकस्मात् पूर्ण रूप से नीरोग एवं स्वस्थ उनके शरीर में मेरे रोग के पूरे–पूरे लक्षण प्रकट हो गए। मेरे समान ही बुखार, खाँसी एवं दस्त श्री प्रभुजी को ज्यों के त्यों लग गए। मेरी पत्नी का रोना सुनकर श्री दीनबन्धु जी ने उसके पास एक लड़का भेजा कि उससे जाकर कहना कि रोने घबराने की कोई बात नहीं है। उसका पति एक घन्टे में राजी होकर बोलेगा। लेकिन अज्ञान के कारण वह इसको केवल मात्र साधारण आश्वासन ही समझी और पूर्ववत् व्याकुल होती रही। थोड़ी देर बाद चेतना हुई और मैंने स्वयं कहा–''अरी, तू रोती क्यों है! देख मेरे रोगों को कृपानाथ श्री प्रभुजी अपने शरीर पर लेकर स्वयं भोग रहे है। तू ऊपर चबूतरे पर जाकर देख तो, मेरा सारा कष्ट दीनरक्षक ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। वह स्वयं मेरा रोग भुगतान कर रहे हैं और मैं बिल्कुल राजी हो गया हूँ।'' मेरी स्त्री ने जब उन कृपानिधि की ऐसी दशा देखी तो बड़े आश्चर्य में पड़ गई और प्रभुजी की अनुपम कृपा का स्मरण कर गद्गद् हो गई।

मेरे कष्ट को श्री प्रभुजी ने अपने तन पर निरन्तर तीन दिन और तीन रात्रि भोग कर आज ही समाप्त किया है। अब ये कृपानाथ जी घनघोर बादलों से मुक्त हुए निर्मल चन्द्रमा के समान शान्त–भाव से हम लोगों के मध्य बैठे हैं। श्री प्रभुजी ने भगवान् सदाशिव की भाँति मेरे रोग रूपी गरल का जो पान किया है, उसी की यत्किंचित् क्लांति मुख–मण्डल पर शेष है।

यह सम्पूर्ण बृत्तान्त सुनकर मुझे ब्रह्मचारी जी के वचनों का स्मरण हुआ। अब विश्वास न कर सकने का तो प्रश्न ही नहीं था। फिर भी मन में बड़ा आश्चर्य लगा कि दूसरे के कष्ट को इस प्रकार भी भोगा जा सकता है। जैसा कि अखिल लोकपावन दीनबन्धु जी ने मानिकचन्द दलाल के निमित्त भोगा था। मेरे सामने सपत्नी मानिकचन्द दो मास के लगभग वहाँ रहे। वे लोग काली कमली वालों के क्षेत्र में ठहरे हुए थे। एवं प्रभुजी की आज्ञानुसार योग–साधन करने के लिए नित्य आश्रम आया करते थे। श्री प्रभुजी उसको जीवन–तत्व साधन कराया करते थे। नेपाल हिमालय से लौटकर, इस विशेष साधन को स्वयं श्री प्रभुजी ने अपने मन से प्रगट किया था। इसमें क्रमशः 9 क्रियाएँ है :–

(1) सर्वोत्तान	(2) स्कन्ध–चालन	(3) पग–चालन
(4) जानु–प्रसार	(5) नाभि चालन	(6) बाल–मचलन
(7) बालक का ध्यान	(8) नाड़ी–चालन	(9) उत्क्षेण

इस सब क्रियाओं के मध्य में इस जीवन–तत्व साधन से सम्बन्ध रखने वाला एक प्राणायाम भी कराया करते थे। इतना कथन ही यहाँ पर्याप्त है कि इस जीवन तत्व–साधन की नौ क्रियाओं को नियमपूर्वक करने से साधन करने वाले व्यक्ति के शरीर में एक दिव्य बल का संचार होता है और उसको वृकाग्नि उत्पन्न हो जाया करती है। उस समय मैंने श्री प्रभुजी के चरण कमलों में इस साधन का आश्चर्यजनक प्रभाव देखा था। उन करूणानिधान जी की कृपा से जीवन–तत्व साधन करने वाले व्यक्तियों का कायाकल्प हो

जाता था। श्री प्रभुजी इस साधन को दिन में तीन बार कराया करते थे। इसको निर्विध्न एक माह तक करने के बाद वृकाग्नि उद्दीप्त हो जाती थी और साधन करने वाले नित्य पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस सेर तक कच्ची सब्जी, भिगोई हुई दाल या चने, फल, दूध इत्यादि खाकर पचा लिया करते थे। इस साधन को श्री प्रभुजी दो घण्टा सुबह, दो घण्टा दोपहर और दो घण्टा संध्या समय कराते थे। बाल-मचलन क्रिया के बाद इस जीवन तत्व साधन में बालक का ध्यान कराया जाता है। साधन करने वालों को बच्चा सम्मुख दिखाई देता है और वह स्वयं अपने आप को भी बच्चा समझकर शरीर में बालकों जैसी स्फूर्ति एवं बल का अनुभव करते हैं। शरीरिक-स्वास्थ्य के साधन-काल में होने वाला यही बालक का ध्यान बाद में ईश्वरीय दिव्य ध्यान में बदल कर आध्यात्मिक उन्नति का द्वार खोल देता है। श्री प्रभुजी के चरण कमलों में अनेकों व्यक्ति रोगमुक्त होकर स्वस्थ होने के लिये आये और शरीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के अनन्तर ये लोग योग-मार्ग के सच्चे और अभ्यासी साधक बन कर गए।

मानिकचन्द दलाल भी इसी प्रकार के साधकों में से एक थे। मेरे सामने मानिकचन्द अपनी पत्नी के साथ लगभग दो माह तक आश्रम में नित्य आते थे और श्री प्रभुजी की आज्ञा से जीवन तत्व साधन करते थे। साधन करने में श्री प्रभुजी की अनुपम कृपा से कोई विध्न नहीं हुआ। साधन-काल में छः सात सेर कच्ची सब्जी तीन चार सेर दूध, दो तीन सेर चने की भिगोई गई कच्ची दाल, घी, कई-कई सेर फल, दही इत्यादि नित्य खाते हुए उनको मैंने स्वयं देखा है। दो महिने की नियमित साधना के बाद उनका स्वास्थ्य किसी पूर्ण स्वस्थ युवक के समान ही बलवान हो गया। शारीरिक-स्वास्थ्य के इसी साधना-काल में मानिकचन्द की आत्मिक-साधना भी श्री प्रभुजी की कृपा से चल पड़ी। श्री प्रभुजी के चरण कमलों में मानिकचन्द ने सपत्नीक योग-दीक्षा भी ग्रहण की और दोनों का ही ध्यान-योग में दिन दूना रात-चौगुना प्रवेश नित्य बढ़ता गया। शरीर भी उनका पूर्ण स्वस्थ और निरोग हो गया नियमित ध्यानाभ्यास से उनकी स्थिति उच्चतर होती गई।

संसार परिवर्तनशील है। यह पंचभौतिक शरीर एक न एक दिन जाने के लिए ही इस संसार में आता है। लगभग दस बारह वर्ष अपने अभ्यास में मग्न रहने के बाद एक दिन मानिकचन्द ने अपनी ध्यान-समाधि में देखा-मेरा मृत्युकाल समीप आ गया है। श्री प्रभुजी उस समय स्थूल रूप में अमृसर में विराजमान थे। मानिकचन्द ने श्री प्रभुजी के चरण कमलों में निवेदन किया-प्रभो, मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि आठ दस दिन में मेरा सम्बन्ध इस पंच भौतिक शरीर से छूटने वाला है। क्या यह सत्य है ? श्री प्रभुजी सुन कर हँस पड़े और बोले-''घबराता क्यों है यह तन तो नश्वर है ही, देर सबेर इससे वियोग होना निश्चित ही है। तत्व विजयी तो तू है नहीं जो इस तन को अधिक काल तक कायम रख सके।'' मानिकचन्द ने विनय पूर्वक पूछा-''हे प्रभो, आप सर्व समर्थ हैं। कृपानिधान हैं। क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है कि मैं इस शरीर में और कुछ समय तक रह सकूँ।'' श्री प्रभुजी ने कहा-हाँ, केवल एक उपाय है वह यह कि हमारे पास आने के बाद से ध्यान-समाधि का निरन्तर अभ्यास करके दस बारह वर्षों में तुमने जो पुण्य-संचय किया है, उसका संकल्प कर दो। उसके फल से दस-पाँच वर्ष और तुम्हारा यह शरीर तो बना रहेगा, परन्तु फिर तुम्हारी यह ध्यान-स्थिति समाप्त हो जायेगी। घर जाकर अपनी पत्नी बाल-बच्चों के साथ विचार करके कल हमें आकर अपना निश्चय बता देना।

मानिकचन्द घर गया। इधर उसकी धर्मपत्नी ज्ञानदेवी ने ये सब बातें अपनी ध्यान-स्थिति में पहिले ही देख ली थीं। उसने आते ही अपने पति को समझाना प्रारम्भ कर दिया कि यह बहुत अच्छा सुयोग बना है। तुम्हारी संप्रज्ञात योग की बड़ी उच्चावस्था

बन चुकी है और कल्याण–धन आनन्द कन्द श्री प्रभुजी सशरीर सामने विराजमान हैं। घर में किसी का पैसा भी लेना–देना शेष नहीं है। बाल–बच्चे सब प्रकार से सुखी हैं। भविष्य का समय कैसा होगा–कहा नहीं जा सकता। ध्यान–योग का पुण्य संकल्प कर देने के बाद पुनः ऐसी स्थिति नहीं बन सकेगी, ऐसा स्वयं श्री प्रभुजी के मुखारविन्द से निकला है। ध्यान–स्थिति नष्ट हो जाने पर फिर आप शरीर धारण करके भी क्या प्राप्त कर सकेंगे। आपकी इतनी उच्च ध्यान–स्थिति, सम्मुख स्वयं कृपा सागर श्री प्रभुजी का विराजमान होना, घर गृहस्थी के सब प्रकार के कार्यों का पूर्ण हो चुकना इससे बढ़कर और कौन सा उत्तम समय होगा। यदि आनन्दकन्द श्री प्रभुजी कृपा करके मुझे भी ऐसा सुयोग दें, तो मैं कभी भूल कर भी पीछे नहीं हटूँगी। मेरे विचार में संसार के मोह पास में फँस कर इस सुअवसर को छोड़ना उचित नहीं है। परम साध्वी अपनी धर्म पत्नी के ये हितकारी वचन मानिकचन्द के हृदय में घर कर गये और उसने इस सुअवसर को न खोने का निश्चय कर लिया।

अगले दिन मानिकचन्द ने श्री प्रभुजी के चरण कमलों में जाकर विनयपूर्वक निवेदन किया–''हे दीनबन्धु! बड़े सौभाग्य से यह इतने आनन्द का दिन आया है। मेरे परम पुण्य हैं जो आपके दर्शन करते करते ही मैं लीन हो जाऊँगा। कुछ दिन पूर्व ही कृपा करके आपने यह ज्ञान करा दिया, यह तो आपका बड़ा अनुग्रह है। अपने सारे काम समाप्त करके अब इस अल्पावधि को आपके पावन चरण कमलों के चिन्तन में ही व्यतीत कर सकूँ–ऐसी कृपा कीजिए। अनन्त ज्योति करूणासागर, मैं आपकी शरण में हूँ। कृपा करके अपने चरणों में लीन कर लीजिए।''

कृपानिधान श्री प्रभुजी ने मानिकचन्द के इन पवित्र एवं विनय भरे वचनों को सुनकर प्रसन्न मन से आज्ञा दी–''अच्छा, जाओ। एक सप्ताह तक पवित्र गंगा–जल तुलसी पत्र, दूध और फलादि सात्विक आहार का सेवन करते हुए खूब ध्यान का अभ्यास करने में तत्पर रहो। आठवें दिन तुम्हारा इस शरीर से सम्बन्ध छूटने वाला है।'' मानिकचन्द ने श्री प्रभुजी की आज्ञा का अक्षरशः पालन करते हुए, अत्यन्त सूक्ष्म आहार लेकर अहर्निश ध्यान–योग का अभ्यास किया। सब प्रकार के पारिवारिक सम्पर्कों को त्याग कर, एकान्त कमरे में स्वच्छ वायुमण्डल में स्वच्छ वस्त्र धारण करते हुए पूर्ण पवित्रता से इस कार्यक्रम को निभाया। आठवें दिन प्रातः अपनी पुण्यवती धर्म–पत्नी को आज्ञा दी–आज हमारा यह शरीर जाने वाला है। तुम पूर्ण प्रसन्नता से भूमि लीप कर मेरे लिए भू–शैया का प्रबन्ध करो। उनकी आज्ञाकारिणी साध्वी पत्नी ने आज्ञा का पालन किया। मानिकचन्द श्री प्रभुजी के चरण कमलों का ध्यान करते हुए भू–शैया पर बैठ गए और ध्यान–मग्न हो गए। उनके मुख–मण्डल पर अपूर्व शान्ति एवं तेज विराजमान था और वह पूर्ण रूप से आनन्दित प्रतीत होते थे। इसी बीच में उनके किसी कुटुम्बी ने आकर उनसे कहा–''मानिकचन्द जी, सुना है आज आपकी परलोक यात्रा हो रही है। किन्तु आज पंचक लग गए हैं, अतः आज आपके शरीर का छूटना शेष कुटुम्ब के लिए बहुत अनिष्टकारी होगा।'' मानिकचन्द हँसे और बोले–''अच्छा, पंचक लग गए हैं।'' फिर पुत्र हीरानन्द को बुला कर आज्ञा दी–''बेटा, उन योग योगेश्वर श्री प्रभुजी के चरणों में जाकर निवेदन करो कि पंचक लग जाने के कारण कुटुम्बी जन शकिंत हैं। ऐसी दशा में आपकी क्या आज्ञा है?'' हीरानन्द ने श्री प्रभुजी के चरणों में पहुँच कर अपने पिता का सन्देश निवेदन किया। श्री प्रभुजी सुनकर हँसे और अपने गले से उतार एक पुष्प माला प्रसाद के रूप में हीरानन्द को देकर बोले–''जाओ, मानिकचन्द को यह पुष्प माला पहिना कर कहना कि प्रसन्नता से पंचक का समय निकाल ले।''

हीरानन्द ने आकर अपने पिता को माला पहिना दी और श्री प्रभुजी की आज्ञा निवेदन कर दी। श्री प्रभुजी की ऐसी आज्ञा पाकर मानिकचन्द पांच दिन के लिए पुनः सचेत होकर पूर्ववत् पवित्र वातावरण में अपना ध्यानाभ्यास करते रहे। पांच दिन तक उनके और रूक जाने के चमत्कार से मानिकचन्द के कुटुम्बियों को बड़ा आश्चर्य हुआ और मोह के कारण वे लोग श्री प्रभुजी से प्रार्थना करने लगे–''मानिकचन्द को आप अभी कुछ महीनों तक और भी संसार में बना रहने दें।'' किन्तु यह बात मर्यादा विरूद्ध होने के कारण श्री प्रभुजी ने स्वीकार नहीं की। मानिकचन्द ने अपने प्रयाण के दिन एकादशी की पुण्य–बेला में उन त्रिभुवन वन्दित अनुपम चरण कमलों में अनुपम योग–विधि से मन को लीन करके अपने नश्वर तन को त्याग दिया। वहाँ उपस्थित श्री प्रभुजी के कृपापात्र भक्त, समाज ने देखा कि मानिकचन्द के शरीर से एक तेज–धारा निकल कर श्री प्रभुजी के चरण कमलों में लीन हो गई।

११.६ जीवन-तत्त्व साधन

जीवन तत्त्व साधन योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की अमर देन हैं। जिसके करने से साधक के प्रत्येक अंग, स्नायु मण्डल एवं कोशिकायों को पूरा–पूरा बल मिलता है और वह पूरी तरह से ठीक काम करने लगते हैं। सभी प्रकार के रोगियों के लिए परम श्रेयकर एवं हितकर साधन है। इस की नौ क्रियायें हैं जिसको दस वर्ष के बच्चे से लेकर ९० वर्ष के वृद्ध तक कर सकते हैं, इनका छः मास तक विधि पूर्वक अभ्यास करने से मनुष्य जीवन का कायाकल्प हो जाता है।

११.७ विशेष लाभ प्राप्ति के नियम

प्रातःकाल सूर्योदय से दो धण्टे पूर्व, शौच, दन्त धावन, नेति (सूत्र व जल) क्रिया के बाद, इन साधनों को बिना नागे, समय विधान के अनुसार (घड़ी देख कर), तथा लंगोट या कोपीन पहनकर करने से विशेष लाभ होता है। यदि सम्भव हो सके तो सारे साधनों के बाद नासका से सोंठ मिला दूध पी लेना चाहिए। अथवा खीर, दलिया, भीगे अंकुरित चने व चना दाल, धीया आदि पदार्थ खा लेना चाहिए।

साधकों को निश्चित समय पर उचित मात्रा में सात्विक आहार का ही सेवन करना चाहिए और इन क्रियाओं को किसी जानकार से अथवा ''योग साधन'' व ''योग अभ्यास'' आश्रमों के योगाचार्यों से निःशुल्क सीख कर इन का अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

११.८ जीवन तत्त्व साधन की पहली क्रिया 'सर्वोत्तान' (२ मिनट)

आज के वैज्ञानिक युग ने मनुष्य के जीवन को इतना जटिल बना दिया है कि उसे कभी शान्ति नहीं मिलती। सदैव भय, चिन्ता व तनाव युक्त जीवन जीने से हृदय रोग व नए–नए रोग उत्पन्न हो रहे हैं। यदि मनुष्य शिथिलीकरण की क्रिया को जान जाय तो उसकी अनेक समस्याएँ दूर हो जायें और उसे सुखी व तनाव रहित जीवन जीने की कला मालुम हो जाए। शिथिलीकरण से शरीर व मस्तिष्क दोनों को आराम व स्फूर्ति मिलती है। सर्वोतान तनाव व शिथिलीकरण अर्थात् (Tension & Relaxation) करने का सर्वोत्तम विधान है।

११.९ सर्वोत्तान करने की विधि

पीठ के बल चित लेट जाओ। यह ध्यान रखना चाहिए कि जीवन तत्व साधन की क्रियाएँ करने के लिए किसी तख्ते या जमीन पर दरी, कम्बल या कालीन बिछा कर अभ्यास करना चाहिए। यदि आसन कड़ा होगा तो कष्ट मालुम होगा। अतः आराम देय (दो इंच मोटा) आसन पर लेट जाओ, हाथों को बगल में डाल दो और सारे शरीर को ढीला छोड़ दो। अब दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में डाल कर और उल्टा करके प्रथम नाभि के पास रखना चाहिए। अब धीरे–धीरे श्वास लेते हुए फेंफड़ो को वायु से भर दो। श्वास इस तरह लेनी चाहिए कि फेफड़े नीचे से ऊपर तक वायु से भर जावें और छाती ऊपर उठ जावे। इसके बाद ही सारे शरीर को तानो हाथ पैरों तथा शरीर के सभी अंगों को जितना तान सको उतना तानो। फिर श्वास भरे हुए और शरीर को ताने हुए दोनों हाथों को सिर के पीछे ले जाना। श्वास भरना, शरीर को तानना व हाथों को पीछे ले जाना यह तीन क्रिया कहने में अलग–अलग जान पड़ती हैं किन्तु करने में एक साथ ही की जाती हैं। हाथ पीछे ले जाने के बाद तुरन्त ही शरीर को धीरे–धीरे ढीला छोड़ते जाना चाहिए और श्वास को धीरे–धीरे निकालते हुए हाथों को सिर के पास से लाते हुए नाभि तक ले जाना चाहिए। और फिर बगल में डाल देना चाहिए और शरीर को शिथिल कर देना चाहिए। कुछ सेकेण्ड के बाद यही क्रिया पुनः दोहरानी चाहिए अर्थात् दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में डालकर और उल्टा करके श्वास भरते हुए व शरीर को तानते हुए हाथों को पीछे ले जाना चाहिए और फिर श्वास निकालते हुए व शरीर शिथिल करते हुए हाथों को नीचे लाना चाहिए।

यह क्रिया केवल तीन बार करनी चाहिए। एक बार की क्रिया करने में अनुमानतः 20से 40 सेकिण्ड तक लगते हैं। इस क्रिया में जितना ही शरीर में तनाव दिया जावे उतना ही बाद को शरीर ढीला कर दिया जावे। सर्वोत्तान में तनाव व शिथिलीकरण यही दो प्रधान क्रियाएँ हैं। इस क्रिया को तीन बार करने के बाद एक मिनट तक हाथों को बगल में डाल कर और शरीर को ढीला करके बिल्कुल शान्त होकर पड़े रहना चाहिए उसके बाद जीवन तत्व साधन की दूसरी क्रिया करनी चाहिए।

११.१० वैज्ञानिक आधार

सर्वोत्तान करने में प्रधानतः दो शारीरिक क्रियाएँ होती हैं। प्रथम श्वास को भरना, रोकना व निकालना और दूसरे शरीर को तानना व ढीला करना। इन क्रियाओं से हृदय, फेफड़े, नस, नाड़ियों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इन अंगों पर पड़ने वाले प्रभाव एवं लाभ को समझने के लिए शरीर रचना पर ध्यान देना चाहिए। जब हम हृदय व फेफड़े के बनावट व क्रिया कलाप को समझ लेंगें तो हमें स्पष्ट मालुम होने लगेगा कि सर्वोत्तान को विधिवत् करने में कितना लाभ होता है।

फेफड़े

यही श्वास प्रश्वास की मुख्य इन्द्रियाँ हैं। ये कोमल छेद भरे और फैलने सिकुड़ने वाले होते हैं। इनका आकार एक मन्दिर के गुम्बद की तरह होता है, जिसका नोंकदार सिरा गर्दन की ओर होता है और उनकी तली वक्ष गह्वर में होती है। फेफड़े दो होते हैं। ये वक्ष गह्वर में ह्यत्पिण्ड के दोनों ओर रहते हैं। इनका रंग कुछ कालापन लिए हुए लाल होता है।

इनकी बनावट स्पंज की तरह छिद्रित होती है। कोमल व हल्के होते हैं। दाहिने फेफड़े में तीन और बायें फेफड़े में दो खण्ड (Lobes) होते हैं। प्रत्येक खण्ड में और भी कितने ही छोटे–छोटे उपखण्डों में बँटा है। ये दोनों खण्ड झिल्ली से अलग रहते हैं। दोनों फेफड़ों मिलकर वक्ष का करीब तीन चौथाई भाग से भी अधिक घेर लेते हैं। दोनों फेफड़ों में अनुमानतः सात करोड़ बीस लाख वायु कोष (Air Cells) होते हैं। यदि फेफड़े के कोषों को लम्बाई–चौड़ाई में फैला दिया जावे तो उसका विस्तार चौदह हजार वर्ग फीट में हो जायेगा। इन्हीं के अन्दर धमनी, शिरा और कोशिका नाड़ियाँ भरी रहती हैं। इन्हीं वायु कोषों में हवा भरती है। ये कोष एक मांस पेशी की चाल से खुलते और बन्द होते रहते हैं। जब ये कोष खुलते हैं तब एक ओर से तो हृदय से अशुद्ध रक्त और दूसरी ओर से श्वास द्वारा लिया हुआ शुद्ध वायु दोनों मिलकर इसे भर देते हैं। इन वायु कोषों से मिली हुई असंख्य छोटी नलिकायें हैं। इनके और कोषों के बीच में महीन झिल्लीदार त्वचा का परदा रहता है। प्रकृति का एक विलक्षण नियम यह है कि जिसमें जो वस्तु नहीं होती वह उसी को दूसरे से अपनी ओर खींचती है। रक्त में तो शुद्ध वायु आक्सीजन नहीं है और श्वास के द्वारा लिए हुये वायु में Carbonic Acid Gas नहीं है। इन दोनों में जब उपर्युक्त नियम काम करता है। तो रक्त में से कार्बन वायु निकलकर श्वास के साथ और श्वास के द्वारा आये हुए वायु में से ऑक्सीजन वायु निकलकर रक्त में चला जाता हैं। श्वास के साथ जो वायु जाती है उसमें 79% नाइट्रोजन तथा 21% ऑक्सीजन और 4% कार्बन और कुछ जल तत्व जाता है परन्तु प्रश्वास में 5% औक्सीजन कम हो जाता है और 5% कार्बन बढ़ जाता है। इसका फल यह होता है कि रक्त शुद्ध हेा जाता है और वायु अशुद्ध। शुद्ध रक्त तो हृदय में जाकर धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में चला जाता हैं। और अशुद्ध वायु प्रश्वास द्वारा बाहर निकल जाता हैं। यह कार्य हर समय हुआ करता है।

फेफड़े के अन्दर 200 घन इंच वायु रहती है जिसको (stationary air) कहते हैं। इसके अतिरिक्त 30 घन इंच वायु बराबर श्वास–प्रश्वास के द्वारा आया जाया करती हैं जिसको (Tidal air) कहते हैं। यदि हम दीर्घ प्रश्वास करके रेचक करें तो उस 200 घन इंच (Stationary air) में से 100 घन इंच वायुऔर बाहर निकल जाती है। उस बाहर निकल जाने वाली वायु को (Supplemental air) कहते हैं । और जो वायु 100 घन इंच फेफड़े में रह जाती है वह (Residual air) है। इस वायु को कोई नहीं निकाल सकता। यदि यह वायु भी निकल जावे तो मनुष्य की मृत्यु हो जावे। इसके अतिरिक्त यदि हम दीर्घ श्वास लेकर पूरक करें तो 100 घन इंच (Complementary air) और भर सकते हैं। इस प्रकार कुल 330 घन इंच वायु भरने पर फेफड़े पूर्णतया फैला जाते हैं। किन्तु मामूली श्वास प्रश्वास में अर्थात केवल 30 घन इंच (Tidal air) लेने में फेफड़ों का कुल भाग नहीं खुलता और दो करोड़ वायु कोषों में वायु पहुँचती है और शेष 5 करोड़ बीस लाख वायु कोष उसी प्रकार रह जाते हैं। परिणाम यह होता है कि इन 5 करोड़ बीस लाख वायु कोषों में आया हुआ रक्त शुद्ध नहीं होता और अशुद्ध रक्त ही सारे शरीर में वापस चला जाता है और अनेक रोगों को उत्पन्न करता है।

हृदय

यह शरीर का बहुत महत्व पूर्ण अंग है। यह शरीर के अन्दर रक्त का प्रधान केन्द्र है। इस शरीर में दो प्रकार की नाड़ियाँ हैं एक तो वे जो हृदय से सारे शरीर को जाती हैं और

दूसरी वे जो शरीर से हृदय में आती हैं, पहली नाड़ियाँ धमनी और दूसरी शिरा कहलाती हैं। धमनियाँ हृदय से शुद्ध रक्त को समस्त शरीर में ले जाती हैं, और शिराओं का काम यह हैं कि समस्त शरीर से अशुद्ध रक्त को शुद्ध होने के लिये हृदय में लाया करें।

हृदय के दो भाग हैं। एक दाहिना और एक बायाँ। जो रक्त फेफड़ों से शुद्ध होकर जाता है, वह हृदय के वायें भाग में जमा होता है और जो अशुद्ध रक्त सारे शरीर से बहकर आता है वह दाहिने भाग में जमा होता है। इन प्रत्येक दाहिने बायें भागों में दों–दो कोष्ठ हैं। इस प्रकार हृदय में कुल चार कोष्ठ हैं। एक–एक ऊपर औंर एक–एक नीचे। ऊपर वाले को (Left auricle) बायाँ ग्राहक कोष्ठ और (Right auricle) दाहिना ग्रहक कोष्ठ कहते हैं और नीचे वाले को (Left ventricle) बायाँ क्षेपक कोष्ठ और (Right ventricle) दाहिना क्षेपक कोष्ठ कहते हैं। इन दोंनों भागों के बीच में एक छेद होता है। उसमें परदे लगे रहते है। और इन पर्दों में छोटे–छोटे बन्धन लगे रहते हैं। जिनके संयोग से परदे खुलते और बन्द होते हैं। हृदय के चारों कोष्ठों से रक्त नालियों का सम्बन्ध रहता है। दाहिने ग्राहक कोष्ठ से शरीर के ऊपर व नीचे की दो बड़ी शिरायें मिलती है। और दाहिने क्षेपक कोष्ठ से एक बड़ी धमनी निकलती है जिसके दो भाग होकर दोनों फेफड़ों में जा मिलते हैं।

फेफड़े से भी शिरायें निकलती हैं जो बायें ग्राहक कोष्ठ में जाती हैं। इसी प्रकार बायें क्षेपक कोष्ठ से एक बड़ी धमनी निकलती है जिसकी शाखाऐ सारे शरीर में फैली हुई है प्रत्येक धमनी के मुँह पर अर्द्धचन्द्राकार परदे रहते हैं। जो धमनी की ओर खुलते हैं और क्षेपक कोष्ठ की ओर बन्द होते हैं। हम यह बता चुके हैं कि हृदय के दो भागों में से दाहिने में अशुद्ध रक्त और बाये में शुद्ध रक्त रहता है। शुद्ध लाल रक्त सारे शरीर में जाकर शरीर का विकार अपने साथ लेकर कुछ काला हो जाता है फिर वह हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में जाता है और वहाँ से उतर कर दाहिने क्षेपक कोष्ठ में पहुँचता हैं इन दोनों कोष्ठों के बीच का परदा ज्यो ही बन्द हुआ त्यों ही हृदय आकुंचित होता है और रक्त जोर से फेफड़ों में प्रविष्ट हेाता है। इधर फेफड़ों में आई हुईप्राण वायु उस काले रंग के विकार को रक्त से चूस कर प्रश्वास द्वारा बाहर फेंक देती है और रक्त शुद्ध लाल हो जाता है। इस प्रकार फेफड़ों में रक्त शुद्ध हो जाने के बाद वह हृदय के बायें ग्राहक कोष्ठ में आता है। फिर हृदय संकुचित होता है और रक्त जोर से धमनियों में प्रविष्ट होकर सारे शरीर में दौड़ता है। यह क्रिया प्रति क्षण हुआ करती है। जब दाहिने व बायें क्षेपक कोष्ठ संकुचित होते हैं तब लुप डुप की आवाज होती है। अनुमानतः 24 घण्टें में 252 किलो रक्त हृदय से फेफड़ें में शुद्ध होने के लिये आता है। यह न भूलना चाहिए के ये शिरायें व धमनियाँ जहाँ–जहाँ एक दूसरे से मिलती है वहाँ वहाँ एक प्रकार के परदे (Gate keeper) लगे हैं जो शरीर में शुद्ध व अशुद्ध रक्त का मिश्रण नहीं होने देते।

अब यह जानने की जरूरत है कि ये सात करोड़ बीस लाख वायु कोष क्या हैं ? ये धोबियों के कुंड या टब हैं। जैसे धोबी अपने कुंडियों में पानी डाल कर वस्त्र घोते हैं उसी तरह रक्त इन वायु कोषों में भर कर श्वास द्वारा ली हुई प्राण वायु से शुद्ध होता है ऐसा अद्भुत धोबी खाना संसार में और कहीं नहीं मिलेगा। आक्सीजन एक प्रकार की भाप है। आप खुली हवा में जोर से श्वास लीजिए तो नाक के भीतर की त्वचा में एक प्रकार की मीठी जलन मालुम होगी इसी आक्सीजन की तेजी से फेफड़े के उन वायु कोषों के अन्दर भरे हुए रक्त का मैल जल जाता है।

अब विचारणीय बात यह है कि हृदय से रक्त शुद्ध होने के लिये फेफड़े में जावे परन्तु

श्वास के साथ वायु फेफड़े में न पहुँचे अथवा सब वायु कोषों में जहां रक्त पहुँचा है शुद्ध वायु न पहुँचे तो उसका परिणाम क्या होगा। साधारण रीति से जो श्वास लिया जाता है, वह पूर्ण श्वास नही होता, इसलिए फेफड़े के सब भाग नहीं खुलते अर्थात् केवल दो करोड़ वायु कोषों में वायु पहुँचती है और शेष 5 करोड़ 27 लाख कोषों में वायु नहीं पहुंचती। परिणाम यह होता है कि फेफड़े के वे भाग रोगी होने लगते हैं और खांसी, दमा, क्षय, निमोनियाँ आदि अनेक रोग जो फेफड़ों से सम्बन्धित हैं होने लगते हैं। दूसरा और एक भयंकर परिणाम यह भी होता है कि हृदय से जो रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़े में आता है, वहाँ बिना शुद्ध हुए अशुद्ध रक्त ही हृदय में वापस चला जाता है। हृदय भी उसे रोक नहीं सकता, वहाँ से वह धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में पहुँचता है इसका फल रक्त विकार होता है। रक्त के विकृत होने से मामूली रोग खाज से लेकर भयंकर कुष्ठ रोग तक हो जाता है। इस लिए इन दुष्परिणामों से बचने के लिए भी आवश्यक है कि फेफड़े वायु से पूरित होते रहें और कोई कोष न ऐसा न रहने पावे जहाँ वायु न पहुँच सके। यहीं से दीर्ध श्वास प्रश्वास प्राणायाम की आवश्यकता आरम्भ होती है।

सर्वोत्तान करते समय जब हम श्वास भरते हैं और शरीर को तानते हुए हाथ पीछे ले जाते हैं तो फेफड़ों के सारे वायु कोषों में शुद्ध वायु पहुँच जाती है और हृदय से आया हुआ सम्पूर्ण रक्त शुद्ध होकर वापस जाता है और इस तरह न तो हमारे फेफड़ों में कोई रोग होता है और न दूषित रक्त के कारण शरीर के किसी अन्य भाग में कोई रोग होता है। रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाने से बल, स्फूर्ति व नवजीवन का संचार हो जाता है और यदि कोई रोग छिपे बैठे होते हैं तो वे भाग जाते हैं।

सर्वोत्तान में दूसरी क्रिया तानने व शिथिलीकरण की होती है इससे रक्त नलिकाओं में जमी हुई मैल बाहर निकल जाती है। जैसे किसी रबड़ की नली कोसाफ करने के लिए उसे दबाकर खींचते हैं और ढीला करते हैं, उसी तरह शरीर को तानने व ढीला करने से नलिकाओं में जमी हुई मैल छूट कर रक्त के साथ बाहर जाती है और शरीर के अंग जो मैल को बाहर निकालते हैं उन्हीं के द्वारा वह मैल भी बाहर चली जाती है और शरीर शुद्ध होकर रोग रहित व कान्ति मय बन जाता है।

११.११ जीवनतत्त्व साधन की दूसरी क्रिया स्कन्ध चालन (१५ मिनट)

यह जीवन तत्त्व साधन की दूसरी क्रिया है। इस को करने के लिए मनुष्य को सुखासन से बैठे जाना चाहिए और सिर को सीधा रखते हुये दोनों कन्धों को साइकिल के पैडल की तरह चलाना चाहिए। उसका ठीक प्रकार यह है। अपने दाहिने कन्धे को नीचे की ओर झुका दीजिए, जितना भी दबाया जा सके। ऐसा करने पर बायाँ कन्धा स्वाभाविक ही ऊपर उठा जायेगा। फिर दाहिने कन्धे को झुके हुए आगे ले जाकर ऊपर ले जाओ। ऊपर की ओर ले जा करके उसको पीछे को ले जाओ। ज्यों-ज्यों दाहिने कन्धे को नीचे की ओर ले जाओगे, त्यों-त्यों बायाँ कन्धा ऊपर की ओर हो जायेगा और ज्यों-ज्यों दायां कन्धा आगे की ओर झुकाओगे त्यों-त्यों बायाँ कन्धा पीछे की ओर जायेगा और ज्यों ही दायाँ कन्धा ऊपर की ओर जायेगा त्यों ही बायाँ नीचे की ओर हो जायेगा और दायाँ कन्धा ऊपर की ओर होकर के पीछे की ओर हो जायेगा। इस क्रिया को करने पर दोनों कन्धे साईकिल के पैडल की तरह गोलाकार रूप में घूमते रहेंगें। सिर सीधा रखकर सामने की ओर देखते रहना चाहिए। इस क्रिया को पन्द्रह मिनट तक करना चाहिए।

इस क्रिया को विपरीत गति से भी किया जा सकता है। यदि हम पीछे की ओर से

आगे की ओर चलाना चाहते हैं तो अपने दाहिने कन्धे को कान तक ऊपर उठाना चाहिये और बायाँ कन्धा नीचे की ओर ले जाना चाहिए। आगे की ओर झुके बायें कन्धे को गोलाकार घुमाते हुए नीचे की ओर ले जाना चाहिए। दाहिने कन्धे को नीचे की ओर झुकाने से बायाँ कन्धा स्वयं ही पीछे की ओर घूमता हुआ ऊपर की ओर चला जायेगा। इसी प्रकार दोनों कन्धे बेलनाकार घूमते रहेंगे। इस क्रिया को करने से फेफड़े सक्रिया हो जाते हैं और उसे के सुसुप्त वायु कोष खुल जाते हैं और अपना कार्य सुचारू रूप से करने लगते हैं। कन्धों हंसली एवं गर्दन के सभी विकार दूर हो जाते हैं। इस क्रिया का प्रभाव यकृत व प्लीहा पर भी पड़ता है। यकृत को जिगर व अंग्रेजी में लिवर कहते हैं। जिगर की खराबी वर्तमान युग की सभ्यता का सबसे बड़ा प्रसाद है। हमारे कुपथ्यों, दुष्कर्मों से अनियमित जीवन जीने से तथा व्यायामादि नहीं करने से यकृत बिगड़ जाता हैं और बढ़ जाता है। अंग्रेजी में कहावत है कि Life, love and liver are inseparably tied together, अर्थात् जीवन प्रेम, और जिगर इस प्रकार परस्पर बंधे हुए हैं कि वे अलग नहीं किये जा सकते। जिसका जिगर खराब, उसकी जिन्दगी बरबाद, जिसकी जिन्दगी बरबाद, उसके लिए प्रेम वैसे ही है जैसे भैंस के लिए बीन व बन्दर के लिए अदरक।

११. १२ वैज्ञानिक आधार

यकृत में एक ऐसारस रहता है जो हर प्रकार के विष को बेकार कर देता है। यकृत से एक पाचक रस निकलता है जो भोजन को पचाने में सहायता करता है। जब यह रस भोजन में नहीं मितला तो पेट में अफारा और भारीपन हो जाता है और पीड़ा होने लगती है। खून नहीं बनता और पीलिया रोग हो जाता है। यकृत आकार में बढ़ जाता है। छाती की जलन, मुँह का कडुवापन, खट्टी डकार, कड़वा कै व हरे पीले दस्त आदि रोग जिगर की ही खराबी से होते हैं। स्कन्ध चालन क्रिया करने से यकृत में खराबी नहीं आती है और यदि कोई दोष आ भी गया है तो वह दूर हो जाता है और जिगर अपना कार्य सुचारू रूप से करने लगता है।

स्कन्ध चालन क्रिया का विशेष प्रभाव Thyroid व Para Thyroid glands पर पड़ता है। यह gland क्या है और हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में इनका क्या महत्व है। इस पर हम अब विस्तार से विचार करेंगे।

Thyroid glands–यह ग्रन्थि मनुष्य की ग्रीवा के कुछ नीचे श्वास नली के दोंनों ओर स्थित होती है। इसके दो पिण्डक होते हैं जो ऊपर की ओर फैले रहते हैं, नीचे की ओर जुड़े रहते हैं। ग्रन्थि का प्रत्येक पिण्ड लगभग पाँच सेन्टीमीटर लम्बा व तीन सेन्टीमीटर चौड़ा रहता है। इसका ऊपरी भाग नुकीला और नीचे का भाग चौड़ा होता है। इस ग्रन्थि का रंग भूरा होता है। ग्रन्थि में पीले रंग का हारमोन बनता है, जिसे Thyroxin कहते हैं। थाइरोक्सिन का प्रमुख भाग आयोडिन होता है। भोजन में आयोडीन की कमी से यह ग्रन्थि फूलने लगती है और मनुष्य को घेंघा रोग हो जाता है।

इन ग्रन्थियों में रक्त के श्वेत कीटाणुओं की प्रमुख छावनी रहती है अर्थात् यह उनका सबसे बड़ा सुदृढ़ किला है। यह ग्रन्थि जब तक सशवत रहती है और अपना कार्य ठीक प्रकार करती रहती है तब तक मनुष्य के ऊपर रोगों का आक्रमण नहीं होता है और वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती है। जब यह ग्रन्थि ठीक कार्य नहीं करती तब शरीर में रोग के कीटाणु अपना प्रभाव जमाने लगते हैं और मनुष्य स्वस्थ नही रह पाता।

Para Thyroid gland –इस ग्रन्थि की संख्या चार होती है। दो ग्रीवा में थाइरोयड ग्रन्थि के ठीक पीछे स्थित रहती है। इन ग्रन्थियों का आकार छोटा लगभग 6 सेन्टीमीटर और रंग भूरा लाल होता है। दो ग्रन्थियां ऊपर व दो ग्रन्थियां नीचे स्थित रहती हैं। पैरा थाइरोयड ग्रन्थि से Para Thrin नामक हारमोन निकलता है। इस हारमोन का कार्य रक्त से कैलशियम और फास्फोरस की मात्रा पर नियन्त्रण रखना है। इस हारमोन की कमी से बच्चों की हड्डियाँ कमजोर व लचीली हो जाती हैं। जब इस ग्रन्थि की क्रियाशीलता कम हो जाती है तब मनुष्य के हाथ व पैरों में ऐंठन होने लगती है।

थोरायड ग्रन्थि के कार्य के महत्व को समझने के लिए हम एक काल्पनिक उदाहरण का आश्रय लेंगे। हमारे शरीर के रक्त में दो प्रकार के कीटाणु पाये जाते हैं। एक लाल रक्त कीटाणु तथा एक श्वेत रक्त कीटाणु। इनका आकार इतना छोटा होता है कि साधारण आँखों से नहीं देखा जा सकता। खुर्दबीन से देखने पर पता लगता है कि एक लाल रक्त कीटाणु का व्यास लगभग 1/3200 इंच तथा मोटाई लगभग 1/12000 इंच होती है। यदि एक करोड़ लाल कीटाणु एक स्थान पर सटाकर रखे जावें, तो वे केवल एक वर्ग इंच जगह घेरेंगे। श्वेत रक्त कीटाणु आकार में कुछ बड़े होते हैं। इनका व्यास 1/2500 इंच होता है। अनुमानतः हर पाँच सौ लाल कीटाणुओं पर एक श्वेत कीटाणु होता है।

श्वेत कीटाणु सैनिक हैं और लाल कीटाणु नागरिक हैं। जब कोई रोग कीटाणु शरीर में घुसता है तो श्वेत कीटाणु उसे मार डालते हैं किन्तु यदि रोग कीटाणु बलवान हुए और श्वेत कीटाणु दुर्बल हुए तो रोग कीटाणु मारते–काटते आगे बढ़ने लगते हैं। परमात्मा ने हमारे शरीर की रचना बड़ी विचित्र की है और रोगों की रोकथाम के लिए अनेक संस्थान बना रखे हैं। जहाँ–जहाँ शरीर में जोड़ हैं वहाँ–वहाँ श्वेत कीटाणु रूपी सैनिकों की छावनियाँ बनी हैं और वहाँ श्वेत कीटाणुओं की एक सेना मौजूद रहती है। सबसे बड़ी छावनी व सुदृढ़ किला थोरायड ग्रन्थि में हैं जहाँ अरबों–खरबों की संख्या में सेना मौजूद रहती है।

रोग कीटाणुओं की एक विशेषता यह है कि जब वे शरीर के किसी एक भाग से प्रवेश करते हैं, तो एक से दो,दो से चार और चार से आठ आदि क्रम से अपनी सँख्या बढ़ाने लगते हैं और श्वेत कीटाणुओं से युद्ध करते हुए रक्त–नलिकाओं द्वारा हृदय की ओर बढ़ने लगते हैं। शरीर के जोड़ों पर जहाँ सैनिकों की छावनी हैं वहाँ जमकर लड़ाई होती है। बहुधा यहीं पर रोग कीटाणु हार खा जाते हैं। और आगे नहीं बढ़ पाते किन्तु यदि रोग कीटाणु सशक्त हुए और हमारे सैनिक कमजोर पड़ गये तो वे इन छोटे किलों पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं और आगे बढ़ चलते हैं। सबसे बड़ी सेना थोरायड ग्रन्थि में रहती है, यहाँ सैनिकों की संख्या भी अधिक होती है और शरीर के अन्य भाग से भी श्वेत कीटाणु सैनिक भाग कर यहाँ सहायता देने पहुँच जाते हैं। यहाँ पर बड़ी भयंकर लड़ाई होती हैं और उस युद्ध से इतनी ऊष्मा पैदा होती है कि सारा शरीर गर्म हो जाता है और लोग कहने लगते हैं कि बुखार आ गया। इस किले पर विजय प्राप्त करना साधारण रोग कीटाणुओं के बस की बात नहीं है। यहाँ के युद्ध में रोग कीटाणु व श्वेत कीटाणु भारी संख्या में मारे जाते हैं और उनकी लाशें, मवाद, बलगम व दस्त आदि विजातीय द्रव्यों के रूप में शरीर से बाहर निकल जाते हैं। जब शरीर में कोई रोग हो जाता है तो मनुष्य औषधि का सहारा लेता है। ओषधियाँ श्वेत कीटाणुओ की संख्या को बढ़ाती हैं और उनको बलबान बनाती है ताकि वे रोग कीटाणुओं से युद्ध में विजय प्राप्त कर सकें।

यदि कोई रोग कीटाणु इतना बलवान व शक्तिमान् हुआ कि वह थोरायड ग्रन्थि के

किले को भी विजय कर ले तो वह आगे बढ़कर सीधे हृदय पर आक्रमण कर देता है और मनुष्य की जीवन लीला समाप्त कर देता है। थोरायड ग्रन्थि के आगे कोई ऐसा किला भी नहीं है। जहाँ रोग कीटाणुओं को रोका जा सके। कहते है कि हैजे के कीटाणु इतने शक्तिवान होते हैं कि शरीर में घुसने के साथ ही मिनटों में लाखों करोड़ों की संख्या में बढ़ने लगते हैं और शरीर के लाल व श्वेत कीटाणुओं को मारते हुए और बीच की छावनियों को विजय करते हुए एक घण्टे में थोरायड ग्रन्थि पर पहुँच जाते हैं। शरीर में लाशें ही लाशें हो जाती हैं और कै दस्त के रूप में बाहर निकलने लगती हैं। मनुष्य की शक्ति क्षीण होने लगती है। थोरायड ग्रन्थि के सैनिक थोड़ा मुकाबला करते हैं मगर उस समय तक हैजे के कीटाणुओं की संख्या महाशंखों में पहुँच जाती हैं। वे इस बड़े किले को भी विजय करते हुए हृदय पर पहुंच जाते हैं। और मनुष्य एक घण्टे में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से मालुम होता है कि हमारे शरीर के थोरायड ग्रन्थि का कितना बड़ा महत्व है रोग के कीटाणुओं का आक्रमण निरन्तर हुआ करता है। किन्तु हमारे शरीर के सैनिक उनको मार काट कर खा जाते हैं। यदि हमारी थोरायड ग्रन्थियाँ मजबूत हैं तो किसी रोगाणु में इतना साहस नहीं है। कि वह इस पर विजय प्राप्त कर सके। अतः रोगों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने थोरायड ग्रन्थियों को बलवान् व शक्तिमान् बनाए रखें। स्कन्ध चालन से यह ग्रन्थि सशक्त बनी रहती है और उसमें रहने वाले सैनिक कभी युद्ध में परास्त नहीं होते।

सर्वाङ्ग आसन करने से भी थोरायड ग्रन्थियों को विशेष रक्त की मात्रा मिलने लगती है और वे बलवान् बने रहते है। यदि जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को करने के बाद थोड़ा आराम करके सर्वाङ्ग आसन व मत्स्यासन कर लिया जावे तो थोरायड ग्रन्थियाँ बहुत मजबूत हो जाती हैं, और उनकी क्रियाशीलता बराबर बनी रहती है। तब तक मनुष्य नीरोग बना रहेगा और वृद्धावस्था नहीं आवेगी

११.१३ जीवनतत्व साधन की तीसरी क्रिया-पग चालन (८ मिनट)

जीवन तत्व साधन की तीसरी क्रिया का नाम पग चालन है इसको करने के लिए सीधे चित लेट जाना चाहिए। दोनों हाथ बगल में पड़े रहें। अब अपने एक पैर को दूसरे पैर के ऊपर रख करके साधारण गति से हिलाना चाहिए। हिलाने का क्रम यह होगा कि पहले हम अपने दायें पैर को बायें पैर के टखने पर रखें और दायें पैर की एड़ी को जमीन से लगायें फिर बायें पैर के अँगूठे को जमीन में लगावें। दायीं एड़ी जमीन से लगाते समय बायां अंगूठा उठ जायेगा और बायाँ अँगूठा जमीन पर लगाते समय दायी एड़ी ऊपर उठ जावेगी। इसी तरह एक बार एड़ी जमीन से मिलावें, फिर अंगूठा इसी तरह हिलाते रहें और कम से कम चार मिनट तक इस क्रिया को करें। इसके बाद पाँव बदल लें अर्थात् बांये पैर को दाहिने पैर के टखने पर रखना चाहिए और बायें पैर की एड़ी और दायें पैर के अँगूठे को बारी बारी से जमीन में मिलाते रहना चाहिए। इसको भी कम से कम चार मिनट तक करना चाहिए। अर्थात पग चालन क्रिया को आठ मिनट तक करने का विधान है। इस क्रिया को आवश्यकतानुसार और अधिक समय तक किया जा सकता है।

यह क्रिया बहुत साधारण है और करने में सरल भी है किन्तु इसका लाभ बहुत है। इस क्रिया में कमर के नीचे के हिस्से शान्त पड़े रहते हैं। इस क्रिया से पाँव की नसें यथार्थ रूप से काम करने लगती हैं जिन लोगों को कटि स्नायु बात या गृध्रसी Sciatica, का रोग हो उन्हें इस क्रिया से पूरा लाभ हो जाता है। पग चालन क्रिया का विशेष प्रभाव छोटी बड़ी आंतो पर तथा मूत्र वाहक संस्थान पर पड़ता है अतः इनकी बनावट व क्रिया के बारे में जान लेना आवश्यक है।

११.१४ वैज्ञानिक आधार पोषण संस्थान (Digestive System)

इसके अन्तर्गत् मुँह, गल कक्ष, पाकाशय छोटी व बड़ी आँतें स्थूलांत्र का अन्तिम वक्रांश, मलांत्र, क्लोम ग्रन्थि आदि आते हैं। यहाँ पर हम केवल छोटी व बड़ी आंतों के सम्बन्ध में बतायेंगे। शेष भागों के सम्बन्ध में अन्य क्रियाओं के वर्णन के समय लिखेंगे। आँत या अंतड़ी पाक स्थली के निचले भागों में रहती है। ये टेढ़े–मेढ़े नल हैं। इन नलों ने कितनी बार घूमकर उदर कह्वर की बहुत सी जगह घेरे रखी हैं। आँतों के दो भाग होते है। एक छोटी आंत व एक बड़ी आंत।

क्षुद्र अंत्र (Small Intestines)

छोटी आँत की लम्बाई करीब 20 फीट है। पाकस्थली से गये हुए भुक्त पदार्थ का न पचा हुआ भाग इसी छोटी आँत में प्रवेश करता है। पाचन के समय इस आँत में पित्त कोष से पित्त रस और क्लोम ग्रन्थि से क्लोम रस आकर मिल जाता है। इस आँत से भी एक प्रकार का रस निकलता है उसे अम्ल रस कहते हैं। पाक स्थली से न पचा हुआ अंश आँतों में आने के बाद इन तीन रसों में ही पिसा करता है।

वृहत अंत्र (Large Intestines)

यह उदर के दाहिने निम्न भाग से आरम्भ होती है जिसे कोख कहते हैं और जिससे अंत्रपुट मिले हुए हैं। अधो क्षुद्रांत्र का मुँह अंत्रपुट में खुलता है और उस स्थान पर एक कपाट रहता है जिसको कालिक वैल्व कहते हैं। बड़ी आँत तीन भागों में विभक्त है। ऊर्ध्वगामी अंत्र भाग (Ascending Colon) यकृत के भीतर से होती हुई ऊपर जाती है। यहाँ से यह टेढ़ी होकर घूमती है। उसे अनुप्रस्त अंत्र भाग (Transverse Colon) कहते हैं। इस तरह ऊपरी तलपेट को पार करती हुई प्लीहा प्रदेश में घुस जाती है। यहाँ से यह नीचे की ओर झुकती है और इसका नाम पड़ता है अधोगामी अंत्र भाग (Desceding Colon) इसका सबसे निचला भाग क्रमशः जघनिया (बृहदंत्र Itiac Colon) और श्रोणिक वृहदंत्र (Pelvic Colon) कहलाता है। यह स्थान जहाँ बड़ी आँत झुकती है वक्र भाग कहलाता है।

भोजन पहले मुँह से पेट में आता है। पेट में पाचन क्रिया शुरू हो जाती है। पेट से भोजन छोटी आँतों में आता है। भोजन का पूरा पाचन छोटी आँत में ही होता है। छोटी आँत ही पचे खाद्य पदार्थ से रस खींच लेती है और यह रस खून के दौरान में भेज दिया जाता है। भोजन का बचा–बचाया अंश जो प्रायः रस निकल जाने के बाद शरीर के किसी काम का नहीं है बड़ी आँत में आ जाता है। अगर कुछ रस बच रहा है तो बड़ी आँत उसे सोक लेती है। और तब उस बचे हुए अंश को बाहर निकाल देती है। यही अंश विष्ठा है।

स्वाभाविक नियम है कि जो कुछ भी खाया जावे अपने समय पर पचकर और शरीर को आवश्यक रस देकर मल रूप में शरीर से बाहर हो जावे किन्तु दूषित पदार्थ खाने से, अनियमित जीवन जीने से तथा व्यायाम न करने से भोजन का पूर्ण पाचन नहीं होता और अनपचा भाग बड़ी आँत में जमने लगता है। मल साफ नहीं होता और अनपचा भाग बड़ी आँत में जमने लगता है। मल साफ नहीं होता और कोष्ठबद्धता हो जाती है। अगर बड़ी आँत में यह बेकार पदार्थ अधिक दिन तक ठहरा रहे तो वहीं सड़ने लगता है और उसके सड़ने के कारण अनेक बिषैले कीटाणु उसमें पैदा हो जाते हैं। बड़ी आँत में बहुत सी

छोटी–छोटी गिल्टियां हैं जो रस सोखती हैं। ये गिल्टियाँ आँत के अन्दर सड़ते हुए मल से जहरीले पदार्थ सोखकर खुन के दौरे में डाल देती हैं। इससे सारा शरीर जहर से भर जाता हैं और अनेक प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। इसी से कहा जाता है कि संसार में जितने भी रोग हैं वे आँतों की खराबी से होते है।

आँतों की सफाई स्वाभाविक रूप में मल निकलने से होती है, लेकिन भोजन को ठीक प्रकार चबाकर न खाने से तथा अखाद्य दूषित पदार्थो के सेवन से अपच अथवा कब्ज हो जाता है। इसको दूर करने के लिए मनुष्य दवाओं का प्रयोग करता है अथवा जुलाब की गोली खाता है। दवा में खुद कोई ताकत नही होती जो पेट की सफाई कर सके। वह तो शरीर के लिए विजातीय पदार्थ हो जाता है। शरीर इस विजातीय पदार्थ को अपनी सारी ताकत से बाहर निकालने का यत्न करता है। इसी कोशिश में आँत से चिपका हुआ मल भी बाहर हो जाता है। यह दवायें आँत में उत्तेजना और जलन पैदा करती हैं। बार–बार की जलन व उत्तेजना से आँतें कमजोर हो जाती हैं और अपना मामूली काम नहीं कर सकतीं। जब आँतो की शक्ति क्षीण हो जाती है तब न कोई दवा काम आती है और न जुलाब की गोली।

आँतों में चिपके हुए मल को निकालने का सिर्फ एक ही उपाय है और वह है गुदा के रास्ते पानी चढ़कर बड़ी आँतों की नाली को धोना। आजकल डाक्टर लोग एनिमा द्वारा इस प्रकार की सफाई करते है। योगी लोग इसी को वस्ति क्रिया द्वारा करते हैं। वस्ति के द्वारा आँतों में जल चढ़ाकर नौली करने पर आँतों के सब विकार मिट जाते हैं और चिपका हुआ मल जल के साथ निकल जाता है। जिनकी आँतें खराब हो गई हों और जिन्हें भयानक कोष्ठबद्धता रहती हो उन्हें किसी योगी से वस्ति व नौली क्रिया सीखकर आँतों की सफाई कर डालनी चाहिए। इन क्रियाओं से आँतों की शक्ति भी बढ़ जाती है।

पग–चालन की क्रिया से भी आँतो पर प्रभाव पड़ता है। जब बार–बार एड़ी व अँगूठे को जमीन से लगाने के प्रयास में पैर को हिलाया जाता है। तो पैर की नसों से लेकर छोटी व बड़ी आँतों तक खिंचाव पैदा हो जाता है। पाँवों के इधर–उधर हिलाने से आंतों पर एक बार तनाव पड़ता है और एक बार वे ढीली पड़ जाती हैं। बार–बार तनाव और ढीलेपन से आंतों की दीवार पर चिपके मल छूट जाते हैं और वे साधारण मल के द्वारा बाहर निकल जाते हैं। जो इस क्रिया को नित्य नियम से करेंगें उनकी आँतों में कोई विकार नहीं आयेगा और भोजन साधारण और स्वाभाविक रूप से हजम होकर बेकार पदार्थ मल के रास्ते से निकल जायेगा।

पग–चालन क्रिया का दूसरा प्रभाव मूत्रवाहक संस्थान पर भी पड़ता है। मूत्र निकालना दो ग्रन्थियों का काम है जिन्हें मूत्र–ग्रन्थियाँ वृक्क या गुर्दा (Kidney) कहते हैं जिस जगह पर पसलियों का अन्त होता है उसी जगह कटि प्रदेश में मूत्र ग्रन्थियाँ दोंनों ओर रहती हैं इसकी शक्ल गुठली की तरह है और उस पर एक आवरण रहता है। इसके दोनों ओर से एक एक नली निकलती है जिसे मूत्र प्रणाली कहते हैं। यह मूत्र तैयार होते ही उसे मूत्राशय में पहुँचा देती है।

हमारे खाये–पीये का पतला भाग यकृत से होकर गुर्दों में आता है। उस पतले भाग में रक्त, नमक, शक्कर, प्रोटीन अनेक मूल्यवान् वस्तुएँ होती हैं। साथ ही पित्त का मैल, तेजाब, मूत्राम्ल, गन्दा मैला पानी और सड़ी गली सेलें आदि अनेक रद्दी और विषैली वस्तुएँ होती हैं। गुर्दे एक फिल्टर व छलनी का काम देते हैं उनका यह काम है कि मैले विषैले अंश मिले हुए पानी को तो मूत्र बना कर नालियों की राह मूत्राशय में भेज देते हैं

और जो शरीर के काम आने वाले अंश होते हैं उन्हें यकृत को लौटा देते हैं।, गुर्दों का एक काम रक्त को साफ करना भी है। ये रक्त के दूषित अंश को मूत्र में मिला देते हैं। और शुद्ध अंश को रक्त की नालियों में दे देते हैं।

गुर्दों का काम है कि हमारे शरीर से मल व विष को बाहर निकालते रहें। यदि वे एक दिन की भी हड़ताल करदें तो हमारे लिए मृत्यु का कारण बन जाय। हमारे कुपथ्य व खाने पीने की गड़बड़ी से गुर्दों का काम बहुत बढ़ जाता है। वह थकान से हैरान हो जाते हैं। जैसे किसी के गले में एक मन का लोहे का लंगर डाल दिया जावे और उससे कहा जावे कि दिन भर का काम करते भी रहो और बोझ को भी लादे रहो। अथवा एक इंजन जिसकी शक्ति चालीस गाड़ियाँ खींचनेकी हो पीछे अस्सी गाड़ियाँ जोड़ दी जायँ, ऐसे ही जब गुर्दों पर कार्य भार अधिक बढ़ जाता है तो वह अपना कार्य सुचारू रूप से नहीं करते। नतीजा यह होता है कि मल व विष की छनाई नहीं होती और मूत्र में भी अम्ल बढ़ जाता है। कभी शक्कर ज्यादा आने लगती है। और कभी अलब्युमिन आने लगता है। जब रेत ज्यादा बनने लगती है तो पथरी पड़ जाती है। इस प्रकार गुर्दो की खराबी से अनेक रोग हो जाते हैं। गुर्दों में कभी–कभी ऐसा दर्द उठता है कि मनुष्य की जान ही ले लेता है।

पग चालन क्रिया से गुर्दो पर भी प्रभाव पड़ता है। पैरों के हिलाने से गुर्दों में उत्तेजना होती रहती है और उनको शक्ति मिलती रहती है। जिससे वे अपना काम सुचारू रूप से करने लगते हैं। पग–चालन क्रिया करने वाला साधक यदि अपने भोजन में असंयम न करे तो उसके गुर्दे सदैव शक्तिशाली बने रहेंगे और उसमें किसी रोगके होने की सम्भावना नहीं है। मूत्र–वाहिनी नालियों के साधारण रोग तो इस क्रिया को थोड़े दिन करने के बाद आप ही आप अच्छे हो जाते हैं। पग चालन की क्रिया तो साधारण है मगर इसका प्रभाव असाधारण है। यह हमारे श्री प्रभुजी की अद्भुत देन है।

११.१५ जीवन तत्व साधन की चौथी क्रिया नाभि चालन (१५ मिनट)

जीवन तत्व साधन की चौथी क्रिया का नाम नाभि–चालन है। इसमें दाँये से बाँये व बाँये से दाँये करवट बदलने की क्रिया की जाती है। इसका यथार्थ रूप वह है कि जिस तरह कोई मगर मच्छ किसी जीव का भक्षण करके बाहर बालू में आकर अपने पेट को इधर–उधर हिलाता है और बड़े से बड़े जीव को भी हजम कर जाता है उसी प्रकार इस क्रिया को करके पेट की अग्नि को तीव्र किया जाता है।

इस क्रिया की विधि यह है कि पहले चित लेट जाओ। हाथ बगल में पड़े रहें। दोनों पैरों को मिला लो। अब बाँयी ओर करवट लो मगर पेट के नीचे का ही भाग घूमे। छाती कुछ उठेगी और दाहिना कन्धा भी कुछ उठ जायेगा। सिर वाकायदा एक ही जगह पर कायम रहेगा बाँयी करवट लेने के तुरन्त बाद दाहिनी करवट लेलो, इसमें भी धड़ का भाग ही घूमेगा। सिर एक जगह रहेगा। इसी तरह बाँये व दाँये करवट पलटते रहें। कहीं रूकने की जरूरत नहीं है। लगातार पल्टा खाते रहें। इस क्रिया को कम से कम पन्द्रह मिनट करना चाहिए और अधिकतम आधा घण्टे तक किया जा सकता है। यदि गिनती से इस क्रिया को किया जावे तो पन्द्रह मिनट में एक हजार बार करवट बदलनी पड़ेगी।

इस क्रिया को करने से भूख अधिक लगती है। खाना भी हजम हो जाता है। मन्दाग्नि समाप्त हो जाती है। जिनके पेट में हवा बनती है वह बननी बन्द हो जाती है।

११.१६ वैज्ञानिक आधार

जो भोजन मुख में डाला जाता है उसे पहले दाँतों से चबाया जाता है फिर वह गले के रास्ते से पेट में जाता है। पेट पाकस्थली या आमाशय एक नाशपाती की शक्ल की एक खोखली थैली जैसी है। यह बाँई ओर के उदर गह्वर के ऊपरी भाग में और उदर वक्ष व्यवधायक पेशी के ठीक नीचे की ओर है। पाकस्थली के तीन प्रधान स्तर हैं। सबके ऊपर वाला स्तर (Peritonem) है। इसके द्वारा यह उदर प्रचीर से संयुक्त रहता है तथा लसिका का दौरान ठीक करने में सहायता करता है।

दूसरा मध्यस्तर (Muscular Coat) है। यह माँसपेशी का बना है। पाकस्थली में भोजन का पदार्थ जाते ही ये सब मांसपेशियाँ एक के बाद एक संकुचित होकर लहरें सी उठने लगती है जिससे खाया हुआ पदार्थ तुरन्त चूर–चूर हो जाता है। तीसरा अन्तरतम स्तर (Mucous coat) है। इससे रस स्त्राव होता है। अधिक रस निकलने के लिए इसमें श्लैष्मिक झिल्ली के बहुत से छोटे छोटे छेद हैं। इसकी सेलों में कोई रक्तवाहिनी नही होती है परन्तु इसकी जड़ तक बहुत सी रक्त वाहिनियाँ जाती हैं। श्लैष्मिक झिल्ली का कार्य रक्त–स्त्राव करना है।

पेट के अन्दर झिल्ली में एक प्रकार का नमक उत्पन्न होता है। जिसे Hydrochloric acid कहते हैं। साथ ही Pepsin और Ranet नाम के दो रस और होते हैं जो कि भोजन के साथ मिलकर उसे पाचन योग्य बना देते हैं। इसके बाद भोजन बारीक होकर आँतों में चला जाता है। जब भोजन को दाँतों से अच्छी तरह नहीं चबाया जाता तब पेट का काम बढ़ जाता है और उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है। ब्यायाम न करने से अथवा अधिक खाने से व गरिष्ठ भोजन करने से तथा अधिक मिर्च मसाला आदि खाने से भी पाचन प्रणाली बिगड़ जाती है और मन्दाग्नि हो जाती है। भूख कम लगती है, खाना ठीक तरह हजम नहीं होता और पाचन प्रणाली बिगड़ने से अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। इन रोगों को दूर करने के लिए मनुष्य अनेक प्रकार की दवायें खाता है मगर उससे क्षणिक लाभ होता है।

नाभि–चालन क्रिया करने से आमाशय को बड़ी शक्ति मिलती है उसकी झिल्लियों से निकलने वाली पेप्सिन व रेनट रस की मात्रा भी बढ़ जाती है और मंदाग्नि दूर होकर भूख लगने लगती है और भोजन अच्छी तरह पच जाता है। जब पाचन प्रणाली ठीक हो जाती है तो शरीर के अन्य रोग भी दूर हो जाते हैं।

भक्ष्य भोज्य लेहा और चोष्य ऐसे चार प्रकार के अन्त होते हैं। जो चबाकर खाया जाता है। वह भक्ष्य है जैसे रोटी आदि। जो निगला जाता है वह भोज्य है जैसे दूध आदि। जो चबाया जाता है वह लेह्य है जैसे चटनी आदि और जो चूसा जाता है वह चौष्य है जैसे गन्ना आदि। भोजन के सभी पदार्थ इन्हीं चार के अन्तर्गत आ जाते है। इनका पाचन पेट की अग्नि तभी करती है, जब वह प्राण व अपान वायु से युक्त हो जाती है। जब अग्नि मन्द पड़ जाती है तब प्राण अपान से युक्त होकर भी भोजन को नहीं पचा पाती। नाभि–चालन क्रिया की यह विशेषता है कि साधक की अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और उसका संयोग प्राण व अपान से भी हो जाता है। यही कारण है कि इस क्रिया को अधिक मात्रा में करने वाले साधक की वैश्वानर अग्नि इतनी तेज हो जाती है कि वह चाहे कच्ची दाल, कच्ची सब्जी आदि जो कुछ खावे सब हजम हो जाता है।

नाभि चालन क्रिया से एक और लाभ अनुभव में आया है जब इस क्रिया को काफी

देर तक किया जाता है तो मूलाधार चक्र पर बार-बार धक्का लगता है। और वहाँ पर सोई कुण्डलिनी जाग जाती है और ऊपर चढ़ने लगती है। कुण्डलिनी के जाग्रत होने से क्या लाभ होता है इसे योगी लोग जानते हैं। इस कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए योगी लोग अनेक प्रकार की हठयोग की क्रियायें करते हैं।

नाभि चालन क्रिया की यह विशेषता है कि कुण्डलिनी जाग्रत होकर Efferent और Afferent Impulse भेजने लगती है किन्तु vagus escape नहीं होता और न पाचन क्रिया में गड़बड़ी होती है क्योंकि इस क्रिया में कुण्डलिनी के जगाने के साथ वैश्वानर अग्नि भी प्रदीप्त हो जाती है। बार-बार पल्टा खाते रहने से तथा मूलाधारपर धक्का लगने से प्राणवायु ईडा व पिंगला नाड़ियों में प्रवाहित न होकर सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है और अभ्यास को बढ़ाने पर ऊपर चढ़ने लगती है। नाभी-चालन एक अद्भुत क्रिया है जिसमें पाचन प्रणाली भी ठीक रहती है। शरीर में कोई रोग भी नहीं होता तथा प्राणायाम बन्ध, मुदायें आदि करके जो कुण्डलिनी जाग्रत करने का कष्टमय साधन है वह सब इस क्रिया से सहज रूप में प्राप्त हो जाता है।

११.१७ जीवन तत्व साधन की पाँचवीं क्रिया-जानु प्रसार: (४ मिनट)

जीवन तत्व साधन की पाँचवीं क्रिया का नाम जानु प्रसार है। इस क्रिया को नाभि-चालन क्रिया करने के बाद अवश्य करना चाहिए। इस क्रिया को करने के लिए पूर्ववत् चित लेटे रहें। बायें पैर को तनाव दिए रहे और दायें पैर को मोड़कर बायें जानू पर रखें। पैर को इस तरह रखना चाहिए के दायें पैर के तलवे बायीं जानु पर सट जायें और मुड़ा हुआ घुटना ऊपर की ओर रहे। अब धीरे-धीरे दाहिने पैर को अपने दायें तरफ जमीन पर लाना चाहिए ताकि दाहिने पैर के घुटने व जानु जमीन से लग जावें कुछ देर रूक कर दायें पैर को धीरे-धीरे उठाना चाहिए, ताकि घुटने ऊपर उठ जावें, और तलवे जानु पर सटे रहें। इस क्रिया को तीन बार करना चाहिए।

इसके बाद दाहिने पैर को सीधा तान देना चाहिए और बायें पैर को मोड़कर उसके तलवे को दायें जानु पर सटाना चाहिए और पूर्ववत् धीरे-धीरे अपने बायें घुटने को बायीं तरफ जमीन पर लाना चाहिए और घुटने व जानू को जमीन पर लगाना चाहिए। कुछ देर रुक कर बायें पैर को ऊपर उठा लेना चाहिए। इस क्रिया को भी तीन बार करना चाहिए।

इस क्रिया में दाहिने पैर को मोड़कर तीन बार जमीन से लगाया जाता है। और बायें पैर को मोड़कर तीन बार जमीन पर लगाया जाता है। जमीन पर लगाने उठाने का काम धीरे-धीरे करना चाहिए। कुल क्रिया 4 मिनट में हो जाती है समय का विभाजन इस तरह कर लेना चाहिए कि एक पैर को जमीन में लगाने में पन्द्रह सेकेण्ड लगें, फिर दस सैकेन्ड वहाँ रूका रहे और फिर पाँव को उठाने में पन्द्रह सेकेन्ड लगें। इस प्रकार एक बार करने में चालीस सेकेन्ड लगेगें और एक पाँव से तीन बार करने में दो मिनट लगेंगे। इसी तरह दूसरे पाँव से तीन बार करने में दो मिनट लगेंगे।

इस क्रिया को करने से जंघाओं व पेट के पूरे स्नायु मन्डल यथार्थ स्थिति में आ जाते हैं और स्नायुओं में कोई विकृति नहीं रह जाती। नाभि चालन क्रिया करने में जो तनाव व श्रम हो जाता है। वह जानु प्रसार करने से ठीक हो जाता है और सभी स्नायुओं को विश्रान्ति मिल जाती है। यह पहले बताया जा चुका हैं कि शरीर के नस व नाड़ियों के अन्दर से मल को निकालने के लिए उन्हें तनाव व ढीलापन देना चाहिऐ। इस क्रिया से

उस उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है और शरीर को बड़ा सुख एवं आनन्द मिलता है। इस क्रिया को जल्दी-जल्दी नहीं करना चाहिये। इसको धीरे-धीरे ही करने से लाभ होता है। जानु-प्रसार की क्रिया करने में अंत्रपुट पर विशेष दबाव पड़ता है और उस थैली में पड़े हुये अन्न व गन्दे पदार्थ निकल कर बड़ी आँतों के रास्ते बाहर निकल जाते हैं। इस तरह यह क्रिया अंत्रपुट कोष्ठबद्धता को दूर करने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

११.१८ वैज्ञानिक आधार

स्वाभाविक नियम यह है कि जो कुछ खाया जावे वह पच कर रक्त आदि बन जावे, और निस्सार पदार्थ आँतों से होता हुआ मल द्वार से बाहर निकल जावे। अनेक कारणों से आँते अपना काम ठीक प्रकार नहीं करती हैं और अनपचा पदार्थ नलियों में अनेकों स्थानों पर चिपक जाता है। इसी को कब्ज कहते हैं। कब्ज और अपच में भेद है। अपच तब होता है जब छोटी आँतो में पाचन रस ठीक तरह से नहीं बनता है और भोजन से सार तत्व शरीर को नहीं प्राप्त होता और इस तरह अनपचा भोजन बाहर निकलने को मजबूर हो जाता है। इस स्थिति को अपच या बदहजमी कहते हैं। कब्ज बड़ी आँतो की गड़बड़ी से होता है। कभी-कभी छोटी बड़ी दोनों आँत अपना काम ठीक प्रकार नहीं करती तब कब्ज व अपच साथ-साथ रहता है। बड़ी आँतों की दीवारों में यत्र तत्र मल के चिपक जाने से कोष्ठबद्धता हो जाती है किन्तु भयानक प्रकार की कोष्बद्धता या कब्ज तब होती है जब अंत्रपुट (सीकम) की थैली में सड़े-गले पदार्थ जमा हो जाते हैं। निकल नहीं पाते। वे वहीं सड़ने लगते हैं और अनेक रोगों को उत्पन करते हैं। हमने अपने पिछले लेखों में पाचन प्रणाली के सम्बन्ध में बहुत कुछ बताया है किन्तु आँतों में होने वाली कब्ज को समझने के लिए पोषण-संस्थान के कार्य को विस्तार से जानना आवश्यक है।

भोजन के ठीक तरह परिपाक होकर नियमित रूप से रस तथा मल बनने का कार्य आमाशय या पाकस्थली से आरम्भ होता है। हम जो कुछ भोजन ग्रहण करते हैं वह अन्न नली द्वारा इस पाकस्थली में पहुँचता है। अन्न नली के भीतरी भाग में भी बहुत सी छोटी छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं। जो भोजन करते समय एक लेसदार पदार्थ निकालने लगती हैं। यदि भोजन कुछ कम चबाया भी होता है तो वह इस लेसदार पदार्थ के सहारे आसानी से आमाशय मे उतर जाता है।

आमाशय में कई पर्त होती हैं। ऊपर रस का हिस्सा रहता है, नीचे श्लेष्मा वाली पर्त है और बीच मैं स्नायु-पर्त होती है। इसी ऊपर की पर्त की असंख्यों ग्रन्थियों से पाचक रस निकलता है जिससे भोजन पचकर रस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह पाचक रस अथवा पित्त कुछ खारा और खट्टे स्वाद का होता है तथा सामान्य स्वास्थ्य वाले मनुष्य के शरीर में प्रति दिन चार पौंड से आठ पौंड तक की मात्रा में उत्पन्न हुआ करता है। यह पाचक रस भोजन में मिलकर उसमें रासायनिक परिवर्तन कर देता है, जिसमें उसका सार शरीर में सम्मिलित हो सकने योग्य बन जाता है। आमाशय से आगे चलकर भोजन छोटी आँतों में प्रविष्ट होता है। जहाँ यह आँत आमाशय से मिली हैं वहाँ एक पर्दा लगा हुआ है जो भोजन को आँत में जाने तो देता है पर उसमें से किसी पदार्थ को वापस लौटने नहीं देता। आँतो के प्रथम भाग को डियोडिनम कहते हैं, दूसरे भाग को जेज्युनम और तीसरे भाग को इल्यम कहते हैं इस इल्यम के अन्त में श्लेष्मा के पर्दे होते हैं। जिनमें छोटी आँत द्वारा रस चूस लिए जाने के बाद बचा हुआ निस्सार अंश बड़ी आंत में ढकेल दिया जाता है। इस बड़ी आंत के भी तीन भाग होते हैं। सीकम कोलन व रेक्टम। इसी को मलाशय के नाम से पुकारा जाता है।

जहाँ छोटी आँत बड़ी आँत से मिलती है वहीं एक थैली है जिसे अंत्रपुट या सीकम कहते हैं। सीकम से निकली एक पूंछ होती है। जिसे अपेन्डिक्स कहते हैं। कभी–कभी पित्त का कुछ अंश तथा अनपचे अन्न का भाग तथा अन्य विषैले पदार्थ सीकम में जमा हो जाते हैं और आँतों की कमजोरी के कारण वहाँ से बाहर नहीं निकल पाते और वहीं सड़ने लगते हैं। वे अनेक प्रकार के विषैले कीटाणुओं को उत्पन्न करते हैं। और शरीर के अन्य भागों को भेजकर उन्हें रोगी बनाते हैं। कभी–कभी सीकम से कुछ पदार्थ अपेन्डिक्स में पहुँच जाते हैं और भयानक दर्द पैदा कर देते हैं। उस अवस्था में डाक्टर लोग अपेन्डिक्स को काटकर निकाल देते हैं और रोगी के प्राण बचाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि भोजन को बिना ठीक प्रकार से चबाए हुए आमाशय में पहुँचा दिया जायेगा, अथवा स्वाद के कारण भूख की अपेक्षा अधिक भोजन करके आमाशय के कार्य को बढ़ा दिया जायेगा अथवा जब तक आमाशय में पहले भोजन की पाचन क्रिया चल रही हो तब तक और कोई भोजन, चाट या मिठाई आदि खाकर, कच्चे रस में सड़ांद उत्पन्न करने का कारण उपस्थित कर दिया जावेगा तो उसका परिणाम समस्त शरीर के लिए हानिकारक ही सिद्ध होगा। ऐसा कच्चा रसयुक्त जब छोटी आँत से गुजरेगा तो उसमें से वे जो रस चूसेंगी वह दूषित हों जायेगा और उससे बने हुए रक्त में भी उस सड़ांद का विष मौजूद रहेगा जो हमारे दिल, फेफड़ों, गुर्दे तथा त्वाचा आदि के लिए एक भार रूप होगा और सबमें कुछ न कुछ खराबी उत्पन्न करके सिर दर्द, चक्कर आना, चेहरे पर उदासी, दिल की घड़कन, खाँसी, जुकाम आदि रोग पैदा करेगा। रक्त के दूषित होने से बड़ी आँत की शक्ति भी क्षीण हो जाती है और उसके अन्दर पहुँचे हुए भोजन के शेष पदार्थ को मल में परिवर्तित नहीं कर पाती और धीरे–धीरे मलाशय की दीवारों से मल चिपक जाता है और यहीं से कब्ज शुरू हो जाता है।

आहार का जो निस्सार अंश छोटी आँत से बड़ी आँत में मल बनाकर बाहर निकालने के लिए पहुँचाया जाता है वह वहीं पर कई धण्टे तक बना रहता है और धीरे–धीरे गुदा मार्ग तक पहुँच पाता है। इसी बीच में बड़ी आँत की माँस पेशियाँ उसमें से थोड़ा बचा हुआ रस चूसकर एक भिन्न मार्ग से रक्त में मिलने के लिए भेजती रहती हैं। यह निस्सार अंश दूषित होने के कारण सड़ने लगता है और उससे चूसा हुआ रस भी दूषित होकर रक्त में मिल जाता है और शरीर के लिए हानिकारक बन जाता है। मल का अंश पित्त की उत्पत्ति में खराबी पैदा करता है जिससे कलेजे का दर्द, उदर रोग और पीलिया आदि रोगों की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार जब मलयुक्त रस हृदय में पहुँचता है तो उसे भी हानि पहुँचती है। मलांश को दूर करने के लिए उसे अधिक वेग से काम करना पड़ता है जिससे उसका धड़कना बढ़ जाता है। इससे थोड़ा सा मेहनत का कार्य करने से ही थकावट और हंफाई आ जाती है। तबियत सुस्त व उदास बनी रहती है।

जब मल बड़ी आँत में देर तक भरा रहता है और चिपका रहता है तो उसमें बिषैले तत्व पैदा हो जाते हैं और उसमें क्षय के कीटाणु पैदा हो जाते हैं। ये कीटाणु रक्त के साथ फेफड़ों में पहुँच जाते हैं और किसी कोने में अड्डा बना लेते हैं। इस तरह तपेदिक का भयं कर रोग कब्ज से ही उत्पन्न होता है।

बवासीर की बीमारी का कारण तो प्रायः कब्ज ही होती है। अधिक समय तक बैठे रहने की आदत से और व्यायाम न करने से तथा शराब व गरम भोजन करने से और आँतों में मल का भार इक्ट्ठा हो जाने से गुदा के भीतर की मांस पेशियां बढ़ जाती हैं। और

उनमें रक्त बढ़ जाता है। इससे वहाँ का मांस फूलकर सख्त पड़ जाता है। उसी को बवासीर का मस्सा कहते हैं। जब ये मस्से मल निकलने का दबाव पड़ने से फट जाते हैं और उससे खून निकलने लगता है, तो उसे खूनी बवासीर कहते हैं।

एक बार अमेरिका में कई डाक्टरों ने मिलकर लोगों के मलाशय की वास्तविक अवस्था का पता लगाने का विचार किया और बीमार होकर मरने वाले व्यक्तियों की लाशों को चीर कर उनकी परीक्षा करने लगे। उन्होंने एक-एक करके 284 लाशों को चीर कर देखा। इन में 256 व्यक्तियों के मलाशय सड़े हुए मल से भरे थे। किसी-किसी का मलाशय तो मल की अधिकता से फूलकर दुगना हो गया था। कितने ही व्यक्तियों का वर्षों पुराना मल सूखकर पत्थर की तरह कड़ा हो गया था और बड़ी आँत की अगल-बगल में चिपककर जम गया था। जब डाक्टरों ने उस सूखे मल को छूरियों से काटकर निकाला तो दिखाई पड़ा कि उसके भीतर तरह-तरह के कीड़ों ने अपना घर बना रक्खा है और उन कीड़ो ने कितने ही लोगों की आँतों को काटकर घायल कर दिया है। उन्हीं घरों में कीड़ों ने अण्डे भी दे रक्खें थे। यद्यपि यह मल वर्षों में सूखकर इतना कड़ा हुआ था और उनका मलाशय बीसों वर्षों से ऐसी ही कड़ी हुई हालत में था, पर मरने के कुछ समय पहले तक वे खाते थे और अपने को स्वस्थ भी समझते थे।

डा0 टर्नर ने लिखा है कि आठ आदमियों में से केवल एक की ही बड़ी आँत साफ रहती होगी। शेष लोगों को साधारण रीति से नित्य शौच हो जाता है और इससे वे यह समझ लेते हैं कि हमारा पेट साफ है। पर वास्तविक बात यह होती है कि मलाशय के पूरा भर जाने से उसके नीचे के भाग का मल नीचे खिसक आता है और मलाशय सदा भरा ही रहता है। इस प्रकार का मनुष्य वर्षों तक पाँच फीट लम्बे मल से भरे थैले को पेट के भीतर रखकर चलता फिरता और सोता है। लोगों से मिलता-जुलता है, खाता-पीता है और अन्त में दुनियाँ से कूच कर जाता है। जब मनुष्य को कब्ज अधिक सताता है और उसे साफ शौच न होने की तकलीफ होती है तब वह पाचक चूर्णो, रेचक ओषधियों, जुलाब आदि का लेना उचित समझता है और इनका प्रयोग भी करता है। थोड़े समय तक जब तक शरीर नवीन रहता है और काफी शक्ति रहती है, वे ऐसा अनुभव भी करते हैं कि हमको दवाओं से लाभ हो रहा है पर वह शक्ति वस्तुतः उनके शरीर की ही होती है जो दवाओं से क्षणिक रूप से उत्तेजित होकर अपना प्रभाव दिखाती है। सच पूछा जाय तो ये ओषधियाँ शरीर के लिए विष तुल्य हैं। जब यह विष पाकस्थली में पहुँचता है तो शरीर के लिए प्रकृति-विरूद्ध पदार्थ होने से शरीर के अंग उसे शीघ्र बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप उन अंगों से पाचक रस बड़ी मात्रा में बाहर निकलने लगता है और उसी के साथ औषधि बड़ी आँत में एकत्रित मल का कुछ अंश की बाहर निकाल देती है किन्तु बार-बार ऐसी दवाओं के सेवन करने से पाकस्थली की शक्ति कमजोर हो जाती है फिर आँत अपना काम सुचारू रूप से नहीं करती और तब औषधियों का भी असर नहीं होता। फिर कहना पड़ता है कि मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की।

कब्ज को दूर करने के लिए एनिमा का प्रयोग एक प्रभावशाली उपाय है। इससे मलाशय की अच्छी सफाई हो जाती है। किन्तु थोड़े पानी का एनिमा लेने से पूरे आँत की सफाई नही होती क्योंकि वह जल सीकम की थैली तक तो पहुँचता ही नहीं। यदि एक दो सेर पानी का एनिमा लिया जावे तो सचमुच पूरी आँतों में पानी पहुँच जाता है। और सीकम में पड़े हुए कूड़ा करकट को भी बहा ले जाता है। किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि सीकम में जल पहुँच तो जाता है मगर आँतो की कमजोरी से शौच के समय वह बाहर नहीं निकल पाता और वहीं सड़ने लगता है। यदि एनिमा या बस्ति क्रिया के बाद

उड्डियान बन्ध या नौली क्रिया कर ली जावे तो अवश्य पूरे आँतों की सफाई हो जाती है और सीकम में भी दबाव पड़ने से उसके अन्दर पड़े हुए पदार्थजल के साथ बाहर निकल जाते हैं। अतः जो बस्ति और नौली क्रिया करते रहते है उनके मलाशय सदैव साफ रहते हैं।

जीवन तत्व साधन की तीन क्रियायें पग–चालन, नाभि–चालन और जानु प्रसार ऐसी विचित्र हैं कि इनसे बिना किसी वाह्य उपचार के पेट व आँतों की सफाई हो जाती है। पग–चालन तथा नाभि–चालन से आमाशय व आँतों पर बराबर तनाव पड़ता है जिससे उनकी क्रियाशीलता बढ़ जाती है। बार–बार हिलने–डुलने से चिपके हुए मल छूट जाते हैं और वे स्वाभाविक रूप से बाहर निकल जाते हैं। जानु–प्रसार करने से बड़ी आँतों पर तथा सीकम की थैली पर विशेष दबाव पड़ता है और उनमें फँसे हुए मल निकल जाते हैं।

जीवन तत्त्व साधन की इन क्रियाओं का अविष्कार करके योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने कितना जन कल्याण किया इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जो लोग इन क्रियाओं को नित्य नियम से विधिपूर्वक करते रहेंगें वे कभी पेट के रोगों से पीड़ित नहीं होगें और पेट के ठीक रहने से शरीर के अन्य रोग भी दूर हो जाते हैं।

११.१९ जीवनतत्त्व साधन की छठी क्रिया-बाल मचलन: (एक मिनट)

जीवन तत्त्व साधन की छठी क्रिया का नाम बाल मचलन है। जब छोटे बच्चे अपनी माता से रूठ जाते हैं तब वे चारपाई पर पड़े–पड़े हाथ पैर चलाया करते हैं। इस क्रिया को करने के लिए सीधे चित लेट जाइये, दोनों हाथों की मुट्ठियों को बाँध लीजिए और हाथों को कड़ा करके दोंनों पैरों तथा हाथों को उसी प्रकार और जल्दी चलाना चाहिए जैसे बच्चे मचलने के समय करते हैं। दोनों हाथ छाती के पास आगे पीछे होते रहेंगे। पाँव भी आगे–पीछे होते रहेंगे। इस क्रिया में जब दायें पैर को ऊपर करेंगे तो दायाँ हाथ ऊपर चला जायेगा और जब बायें पैर को ऊपर करेंगे तो बायाँ हाथ ऊपर की ओर चला जायेगा। इस प्रकार से दोंनों हाथों व पैरों को क्रमशः जल्दी–जल्दी चलाना चाहिए किन्तु सिर यथार्थ रूप में जमा रहना चाहिए। इस क्रिया को एक मिनट तक करना चाहिए।

इस क्रिया को करते समय साधक की मनोभावना एक बच्चे की तरह हो जाती है और शरीर में एक स्वाभाविक आल्हाद पैदा हो जाता है। हाथ पैरों को वेगपूर्वक चलाने से जो शरीर के नस नाड़ियों का व्यायाम हो जाता है उसका लाभ तो अलग है ही। पर सबसे बड़ा लाभ मन की प्रसन्नता से सम्बन्ध रखता है आज वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि खूब जोर से हँसने से स्वास्थ में बड़ा सुधार हो जाता है। मन में विकार आने पर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ईर्ष्या–द्वेष से तिल्ली व जिगर के रोग हो जाते है। निराशा और डर से हृदय रोग हो जाता है। क्रोध और घृणा से गुर्दो में विकार हो जाता है। चिन्ता से छाती और सिर में फोड़े व पीलिया रोग हो जाते हैं।

क्रोधी माँ का दूध पीने से बच्चों को प्रायः दस्त आने लगते हैं। चित्त की प्रसन्नता से कोई बीमारी नहीं होती और मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है। प्रसन्न चित्त होकर भोजन करने से भोजन खूब पच जाता है। प्राचीनकाल में जब राजा लोग भोजन करते थे, उस समय विदूषक और हँसमुख व्यक्ति वहाँ हँसी का वातावरण उत्पन्न करते थे।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि दिन में कम से कम एक बार खूब जोर से ठहाका मार कर हँसना आवश्यक है। यदि किसी अन्य से न हँस सको तो अपना ही चेहरा शीशे

में देखो और हँसो। बाल मचलन करने वाले को तो एक बार हँसने और प्रसन्न होने का अच्छा मौका लग जाता है। यदि आपको हँसने का अवसर नहीं मिलता तो बाल मचलन क्रिया कीजिए। इसके पश्चात् आप देखेंगे कि आपमें प्रसन्नता की लहर दौड़ने लगेगी और आपको दिन भर तरोताजा बनाये रखेंगी। इस क्रिया में यही गुण नहीं है कि करने वाला ही प्रसन्न होता है वरन् जो कोई दूसरा देखता है वह भी बिना हँसे नहीं रहता। प्रसन्न चित्त रहने का यह एक क्रियात्मक साधन है।

अंग्रेजी में एक कहावत है कि Laugh three times a day and keep the doctor away. अर्थात् दिन में तीन बार हँसो और डाक्टर को दूर रखो। यदि आप दिन में तीन बार बाल-मचलन क्रिया करने लगें तो अनायास हँसने का मौका मिल जायेगा और आपको डाक्टर या वैद्य का द्वार नहीं खटखटाना पड़ेगा। आज तक जितने व्यायाम मानव समाज में प्रचलित हैं उनमें खिलखिला कर हँसना सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि हँसने से हमारे समस्त स्नायुओं पर समान तनाव पड़ता है। ईश्वरीय सृष्टि में हँसी का आनन्द लेने का अवसर केवल मनुष्य को ही प्राप्त है, क्योंकि पशु-पक्षी आदि रो तो सकते हैं पर हँस नहीं सकते। चिन्ताओं से मुक्त होने के लिए और प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए मनुष्य अनेक प्रकार का उपाय करता है। कोई नशा पीता है, कोई जुआ, ताश, शतरंज खेलता है। कोई सिनेमा देखता है तो कोई दोस्तों में बैठकर गप्पबाजी करता है। किन्तु ये सब उपाय अनैतिक तथा पैसा व समय नष्ट करने वाले हैं। यदि थोड़ी सी प्रसन्नता मिलती भी है तो उसके बदले भारी कीमत चुकानी पड़ती है। बाल-मचलन की क्रिया कितनी आसान, बिना खर्च वाली, कम समय वाली तथा अधिकतम लाभ देने वाली है। अन्य उपायों से प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए वाह्य उपकरण की आवश्यकता पड़ती है किन्तु बाल-मचलन बिना किसी अन्य उपकरण के कहीं भी की जा सकती है और प्रसन्नता का लाभ उठाया जा सकता है। श्री प्रभुजी का यह एक अनोखा आविष्कार है जो युवकों एवं वृद्धों को भी बालक बना देता है।

११.२० वैज्ञानिक आधार

हमारा शरीर असंख्य जीवित सेलों का एक समूह है। हमारे मन व मस्तिष्क के प्रत्येक भले-बुरे अनुभव का प्रभाव उस पर पड़ता है। क्रोध के कारण मनुष्य का सम्पूर्ण शरीर गरम हो जाता है, काँपने लगता है। भय के समाचार से रोंगटे खड़े हो जाते हैं, दिल धड़कने लगता है। चित्त जब प्रसन्न होता है तो सारा चेहरा फूल के समान खिला हुआ दिखाई देता है। आँखें हँस रही सी जान पड़ती हैं जो बालक परीक्षा में उत्तीर्ण होने का शुभ समाचार देने के लिए घर दौड़ता है। उसका शरीर आनन्द के मारे उससे भी आगे निकल जाने को करता है। यह बात गलत नहीं है कि जब कोई कष्ट आ पड़ता है। तो चिन्ता व शोक घेर लेते हैं और मनुष्य का वश नहीं चलता। जिनको अपने स्वास्थ्य-सुधार का ध्यान है वे सदैव हर हालत में प्रसन्न रहने का अभ्यास करते हैं। एक व्यक्ति दो रूपये कमाता है, वह रोता है और एक फकीर खाली जेब है मगर वह हँसता है और मस्ती से गाता है। यह सब मन का खेल है। यदि आपका मन बहुत समझाने पर भी हँसता नहीं है और हर समय चिन्तित व खेदयुक्त रहता है तो आप बाल-मचलन क्रिया का अभ्यास कीजिए। ऐसा करने पर आप देखेंगें कि प्रसन्नता आपके पास दौड़ी आ रही है।

रोगी की चिकित्सा में प्रसन्नता का बड़ा हाथ है। एक बार पाँच व्यक्ति नाव पर कहीं जा रहे थे। निश्चित स्थान दूर था तभी एक व्यक्ति के पेट में तीव्र पीड़ा उत्पन्न हो गई। जो

मचलने लगा। उसी पार्टी का एक व्यक्ति बड़ा हँसोडा था। उसको एक सुन्दर कहानी याद आ गई और वह सुनाने लगा, जिसको सुनकर सभी के पेट में बल पड़ गये। सभी लोग हँसत–हँसते लोट पोट हो गये। वह पेट का रोगी व्यक्ति भी हँसा और खूब हंसा, जिससे उसके पेट का दर्द दूर हो गया।

ब्रह्मा आनन्दमय है। आनन्दरूप ब्रह्म को जान लेने वाला कभी किसी प्रकार के दुःखों से भयभीत नहीं होता। सदा प्रसन्न रहना मानसिक तप है। प्रसन्नता के आभाव में व्याकुलता, अशान्ति एवं घबड़ाहट रहती है प्रसन्नता से शान्ति और स्थिरता आती है। प्रसन्नता में बुद्धि को कोई क्लेश, अभाव, राग–द्वेष अथवा विकार अशान्त नहीं कर पाते। प्रसन्न चित्त वाला सदा आनन्द के समुद्र में हिलोरें लेता है। कठिन से कठिन संकट में भी उसके मुख पर मुस्कुराहट खेलती है। वह अपनी प्रसन्नता से दूसरों के हृदयों के जमें हुए मैल को धो देता है।

प्रसन्नता का मूल्यांकन नहीं हो सकता। यह बाजार में भी नहीं मिलता है। यह अपने अन्दर से उठने वाली वस्तु है। यदि आप प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हैं तो बाल–मचलन क्रिया कीजिए और आपका हृदय आल्हाद से भर जायेगा।

११.२१ जीवन तत्व साधन की सातवीं क्रिया-बाल ध्यानः (५ मिनट)

बाल मचलन करने के बाद इस क्रिया को अवश्य करना चाहिए। इस क्रिया में अपने शरीर को बिल्कुल स्थिर भाव से ढीला छोड़ दीजिए और शांत भाव से लेटे रहिए। शरीर में कहीं तनाव न रहे। आँखें मूंदकर आप कल्पना कीजिए कि आप किसी उद्यान, पार्क या पहाड़ी रमणीक स्थान पर पहुँच गये हैं। ऐसे सुन्दर स्थान को आपने कभी देखा होगा। यदि नहीं देखा है तो, कल्पना में ऐसे रमणीक स्थान की रचना कीजिए और ध्यान कीजिए कि उस उद्यान में एक दो या तीन वर्ष का छोटा बालक खेल रहा है आप भी कल्पना में उस बच्चे के साथ खेलने लगे। पाँच मिनट तक इस प्रकार बच्चे का ध्यान कीजिए। इस ध्यान से कुछ दिन में वह बच्चा स्पष्ट दीखने लगेगा और ध्यानकर्ता अपने को भी एक बच्चा महसूस करने लगेगा। यह क्रिया जीवन तत्व साधन की प्राणभूत है। इस क्रिया से स्वाभाविक आल्हाद प्राप्त होता है। और उसी के फलस्वरूप सभी रोगों की निवृत्ति स्वतः हो जाती है। बाल मचलन व बच्चे का ध्यान दोनों क्रियाये एक दूसरे से सम्बन्धित है और दोंनों को यर्थाथ रूप में करने से प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

इस क्रिया को करने के लिए आप अपने ही लड़के या पोते का ध्यान कर सकते हैं या किसी दूसरे के स्वस्थ हँसते खेलते हुए बच्चे का ध्यान कर सकते हैं। आपने इस प्रकार बच्चे को बहुधा देखा होगा और उसी को स्मृति पटल पर लाने का अभ्यास कीजिए।

११.२२ वैज्ञानिक आधार

आपने अपने भ्रमण काल में किसी रमणीक उद्यान या पार्क का दर्शन किया होगा। मुम्बई में कमला नेहरू पार्क, मैसूर के उद्यान, खजुराहो के मैदान अथवा हिमालय के नन्दन बन का आपने दर्शन किया होगा अथवा किसी चित्र या सिनेमा में ऐसा स्थान देखा होगा। आप उसी रमणीय स्थान में अपने मन को ले जाइये और कल्पना से खेलते हुए बच्चे का ध्यान कीजिए और उसी के साथ स्वयं खेलने लगिये और खेलते खेलते इतने मग्न हो जाइये कि आपको अपना स्वरूप भी बालक का ही स्वरूप दिखलाई देने लगे।

उस समय आपके शरीर में बालक सुलभ चंचलता हर्षोन्वेग एवं आल्हाद भरा हुआ हो। यही बच्चे के ध्यान की सफलता है। बच्चे के इस ध्यान में जिन बच्चों को देखकर आपके मन में वात्सल्यता के भाव जगे, बुद्धि आशीर्वादात्मिका बने, इस प्रकार के बच्चों के ध्यान की आवश्यकता नहीं प्रत्युत जिन बच्चों से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है केवल मात्र बाल–सुलभ क्रीडा एवं उनकी आल्हाद भरी चंचलता को देखना ही आपका परम लक्ष्य है। उनके आल्हाद में अपने आपको आल्हादित किजिए और अपने आपको बच्चा समझिए। यही बच्चे के ध्यान की उत्कृष्टता है। इस प्रकार का अभ्यास करते–करते आपको अपना रूप भी बच्चे का ही रूप दिखाई देने लगेगा। ऐसी स्थिति आ जाने पर समझ लेना चाहिए कि यह बाल मचलन क्रिया की सफलता एवं बाल्यावस्था के ध्यान की पूर्ण सफलता है। बाल मचलन और बच्चे का ध्यान जीवन तत्व साधन में सारभूत क्रिया है। इसकी सफलता में ही जीवन तत्व साधन की सफलता है।

११.२३ जीवन तत्व की आठवीं क्रिया-नाड़ी संचालन (१५ मिनट)

जीवन तत्व साधन की आठवीं क्रिया का नाम नाड़ी संचालन है। इसको करने के लिए सीधे बैठ जाइये और अपने पैरों को जितना अधिक से अधिक फैलाया जा सके खोलकर फैलाइये। इस तरह फैलाने पर घुटने के नीचे का भाग और पैर की पिण्डली बिल्कुल जमीन से सटी रहनी चाहिए। दोनों पैरों के बीच का व्यवधान कम से कम सात बालिश्त का होना चाहिए। इस तरह पैर फैलाने के बाद थोड़ा शरीर को आगे की ओर झुका कर दाहिने हाथ की अंगुलियों से बायें पैर के अंगुठे को छुओ और बायें हाथ को एकदम पीछे ले जाओ। उसी प्रकार से फिर दायें हाथ को घुमाकर पीछे ले जाओं और बायें हाथ की अंगुलियों से दायें पैर के अँगूठे को छुओ। इस तरह बराबर चक्राकार घूमते रहो। कहीं रूकने की आवश्यकता नहीं है।

इस क्रिया को पन्द्रह मिनट तक करना चाहिए। इसके करने से गृहणी नाड़ी अपनी याथार्थ स्थिति में रहती है। मन्दाग्नि की निवृति हो जाती है और शरीर की सम्पूर्ण नस नाड़ियां सशक्त व सचेत होकर काम करने लगती हैं और शरीर में पूर्ण रूपेण रक्त रस का संचार होने लगता है। हमारे शरीर के अन्दर नस व नाड़ियों का एक जाल बिछा है और उन्हीं के द्वारा शरीर के सभी अण्गों का संचालन होता है। नाड़ियों के कमजोर होने से अनेक रोग हो जाया करते हैं। इस बात को समझने के लिए शरीर रचना पर विचार करना आवश्यक है।

११.२४ वैज्ञानिक आधार

किसी कार्य का लाभ पूरा पूरा तब तक दिखाई नहीं दे सकता जब तक उसको करने वाला उसका कारण और हेतु अच्छी तरह नहीं जाना जाता। किसी भी यन्त्र को–एक घड़ी को ही लिजिए। उस पर अच्छी तरह ध्यान दीजिए तो आपको मालुम हो जायेगा कि इसके सभी कल पुर्जे या चक्के अपनी गति के लिए भी एक दूसरे पर निर्भर हैं। यदि एक स्थान का तांता टूट जाता है या उसका चक्का ढीला पड़ जाता है अथवा यदि वे चक्के जिस धुरी पर घूमते हैं वही खिसक जाती है, तो सारे कल पुर्जो के कार्य में गड़बड़ी पैदा हो जाती है। यदि उसका उपचार नहीं किया गया तो अन्त में घड़ी बन्द ही हो जाती है। यदि मनुष्य के बनाये यन्त्र की यह अवस्था है तो ईश्वर निर्मित इस सर्वश्रेष्ठ कारीगरी वाले यन्त्र में भी यही बात लागू होती है।

हमने इस मानव शरीर की उपमा एक यन्त्र से दी है। निःसन्देह यह एक यन्त्र ही है और तब तक तो यह यन्त्र अवश्य है जब तक इसका नित्य का कार्यकलाप चल रहा है। परन्तु यह भी समझ रखनी चाहिए कि यह केवल यन्त्र ही नहीं है बल्कि यह एक चैतन्य पदार्थ, एक जीवित शक्ति तथा एक कार्यक्षेम, बुद्धि सम्पन्न जीव है जो मनुष्य अपनी शरीर रचना को जानकर कोई साधन करता है वह अधिक सफलता प्राप्त करता है। जीवन तत्व साधन करने वालों को भी इसकी क्रियाओं को करते समय यह भावना करनी चाहिए कि अमुक क्रिया से अमुक अंग सुदृढ़ व सचेतन हो रहे हैं और उनके रोग दूर होकर अंग–प्रत्यंग स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो रहे हैं। जीवन तत्व साधन की आठवीं क्रिया नाडी संस्थान से सम्बन्ध रखती है। अतः उनके बारे में हम विशेष जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

११.२५ नाड़ी संस्थान

मानव शरीर में यन्त्रों या तन्तुओं के ऐसे समूह हैं जो साधारणतः कार्य क्रिया करते हैं, इन्हें संस्थान (System) कहते हैं। इस तरह जो यन्त्र पाचन क्रिया का कार्य करते हैं उन्हें पोषण संस्थान (Digestive System) कहते हैं और इनके अन्तर्गत ही उदर गह्वर, यकृत ग्रन्थियाँ, प्लीहा आदि हैं। अब वह यन्त्र जिन से गति, भाव या चेतना प्रभृति प्राप्त होती हैं उन्हें नाड़ी या स्नायु संस्थान (Nervous System) कहते हैं। नाड़ी संस्थान के दो भाग हैं।

(1) सौषुम्न यामा मस्तिष्क मरूदण्ड सम्बन्धी नाड़ियाँ।

(2) सांवेदनिक नाड़ियाँ (Sympathetic nervous system)।

सांवेदनिक नाड़ियों से पोषण यन्त्र, गन्थियां तथा रक्तवाहनियों को स्नायु प्राप्त होते हैं। ये सौषुम्न नाड़ियों से मिली हुई हैं तथा इनके दो धड़ होते हैं जो कशेरूकाओं के दोनों ओर लगे रहते हैं। प्रत्येक धड़ में लम्बे–लम्बे नाड़ी के गुच्छे हैं जिन्हें नाड़ी के गंड (Ganglia) कहते हैं। नाड़ी सूत्र के सिरे जो नाड़ी गंड से मिल गये हैं वहीं नाड़ी जाल (Plexuses) है। इन्हीं को चक्र भी कहते है। इनका वर्णन हम अगले लेख में करेंगें।

सौषुम्न नाड़ी संस्थान ये हैं :

(i) मस्तिष्क बृहत मस्तिष्क (Cerebrum) (ii) लघु मस्तिष्क (Cerebellum) |

(2) मस्तिष्क सेतु (Poro Verstic) |

(3) सुषुम्ना

(4) नाड़ीधड़, नाड़ी सूत्र, नाड़ी पुच्छ।

(i) वृहत मस्तिष्क (Cerelerum) दो भागों में बॅटा है। इन दोंनों भागों के मध्य में एक दरार (Sagital Fissures) रहती है। इसके द्वारा मस्तिष्क दो भागों में बँटता है। उन भागों को मस्तिष्क गोलार्ध (Cerebral hemisphere) कहते हैं। ये दोनों दाहिने और बायें दोनों ओर रहते हैं। दाहिने गोलार्ध को (Right hemisphere) और बायें गोलार्ध को (Left

hemisphere) कहते है। परन्तु ये दोनों भाग भी नीचे से जुड़े हैं। जिस अंश से जुड़े हैं उसे महा संयोजक (Corpus callosum) कहते हैं। वृहत मस्तिक का भीतरी पटल घुमैला या मटमैले रंग के पदार्थ या सेलों से बना है। इसमें कहीं उभार और कहीं गहराई रहती है। उभरे हुए स्थान को क्रांक (Convolution) और गहरे स्थान को सीता (Sulens) कहते हैं। इसका भीतरी भाग सफेद पदार्थ अर्थात नाड़ी तन्तुओं से बना है। दूसरे अंश को बल्क (Cortex) कहते है। मस्तिष्क का बाह्य भाग सेलों से और भीतरी नाड़ी तन्तुओं से बना है। प्रत्येक गोलार्ध का नीचे वाला भाग खोखला रहता हैं और दोनों गोलार्धों के मध्य में एक पतला पदार्थ सा रहता है।

(ii) लघु मस्तिष्क (Cerebellum) इसमें भी दो गोलार्ध होते हैं और यह वृहत् मस्तिष्क के नीचे रहता है। इसमें अनेक सीतायें होती हैं जो ज्यादा गहरी होती हैं। इसके तीन भाग हैं। दो गोलार्ध और नीचे का मध्यांश। इन दोनों के बीच में एक डंठल की तरह (Corpus dentatum) रहता है। इसमें तींन स्तम्भ होते हैं।

(2) मस्तिष्क सेतु : (Poro Verstic) यह लघु मस्तिष्क के सामने का एक गोल घुमा हुआ भाग है। यह सफेद है। यहीं से सुषुम्ना, लघु मस्तिष्क और वृहत् मस्तिष्क में जाने वाली नाड़ियाँ सब निकली हैं। सेतु के नीचे छोटे–छोटे दो गोल दाने होते हैं। ये वृन्त पिण्ड (Corpus mammillare) कहलाते हैं उसके सामने एक बृहत् पिण्ड (Hiphosis) फिर दृष्टि योजिका (Optichiasm) और उसके बाद घ्राण पथ (Medula oblongata) है।

(3) सुषुम्ना :– यह सुई की शक्ल की एक नाड़ी है। इसका लगभग एक इंच लम्बा सिरा ऊपर की ओर है। इसकी मोटाई सर्वत्र एक समान नहीं है। ऊपरी भाग सफेद और भीतरी धुमैला है। इसके मध्य में एक छिद्र है उसमें एक नाली रहती है जो मस्तिष्क के चतुर्थ कोष्ठक से जा मिली है तथा इसका दूसरा सिरा मेरूदण्ड की मध्य प्राणाली में है। मेरूदण्ड एक डेढ़ फुट लम्बी हड्डी है और इस समूचे मेरूदण्ड में छिद्र है। इससे नाड़ियों के जोड़े निकले हैं। इसका बाह्य भाग धूसर रंग के पदार्थ से और भीतरी भाग सफेद रंग के पदार्थ से भरा रहता है और मध्य में सौषुम्न पथ है।

(4) नाड़ी या स्नायु– मस्तिष्क शरीर के विभन्न भागों में संवाद पहुँचाने का काम ये नाड़ियाँ करती हैं। नाड़ियाँ निम्नलिखित भागों में बाँटी गई हैं। :–

1. मस्तिष्क नाड़ियाँ (Cranial nerve) वे हैं जो लघु मस्तिष्क के भीतर पटल से निकली हैं। इनके दो जोड़े हैं। एक–एक प्रत्येक पार्श्व में रहती हैं।

2. सौषुम्न नाड़ियाँ (Spinal nerve) मेरूदण्ड या सुषुम्ना के दोनों पार्श्वो से नाड़ियों के 31 जोड़े निकले हैं। इन्हें सुषुम्न नाड़ियाँ कहते हैं।

1. मस्तिष्क नाड़ियाँ नीचे लिखी है :–

(क) घ्राण नाड़ियाँ (Oflatory nerves) -इनसे घ्राण शक्ति प्राप्त होती है।

(ख) दृष्टि नाड़ियाँ (Optical nerve) ये चक्षु गोलक के पीछे से घुसती हैं और चक्षु चित्र पत्र के भीतरी स्तर में फैल जाती हैं। इससे देखने की शक्ति प्राप्त होती है।

(ग) नेत्र चालिनी नाड़ियाँ (Oculomotor nerves) -इससे आँख के कोये में गति प्राप्त होती है।

(घ) नेत्र चालिनी द्वितीया (Trachlear nerves) - इससे आँख की पलकें ऊपर की ओर उठती हैं।

(ङ) त्रिशाखा नाड़ी (Trigeminal nerves) - इससे चेहरा, निचला जबड़ा, नाक, मुंह, जीभ का दो तिहाई भाग और दाँत, में गति पैदा होती है। इनसे चबाने और कुचलने की शक्ति आती है।

(च) छठा जोड़ा (Abducens) - इनसे आँख ऊपर की ओर उठती है।

(छ) मौखिक की नाड़ियाँ (Facial nerves) - इनसे खोपड़ी और चेहरे की पेशियों में गति–शक्ति प्राप्त होती है और ये जीभ के लिये स्वाद प्रदान करती है।

(ज) श्रावणी नाड़ी (Auditory nerves) - इनसे सुनने में सहायता मिलती है तथा स्थिति और शरीर की समता रक्षा में सहायता प्राप्त होती है।

(झ) जिह्व कण्ठ नाड़ियाँ (Glosso pharyngeal) - इनसे कण्ठ की पेशियों में तथा जीभ में रस का स्वाद लेने की शक्ति प्राप्त होती है।

(ञ) दशमी नाड़ियाँ (Vagus nerve) - ये दोंनों ही बड़ी नाड़ियाँ हैं। इनसे स्वर यन्त्र, टेंटुआ, फेंफड़ा, आमाशय, पाकाशय, यकृत आदि में गति प्राप्त होती है।

(ट) एकादशी नाड़ियाँ (Spinal accessory) - यह पीठ और गर्दन की पेशियों को गति देती है तथा कितनी ही मांस पेशियों में गति शक्ति प्रदान करती हैं।

(ठ) द्वादशी नाड़ी (Hypoglossal) - इससे जीभ की पेशियों में गति मिलती हैं।

2. सौषुम्न नाड़ियाँ–

सुषुम्ना से नाड़ियाँ के 31 जोड़े निकले हैं। ये सुषुम्ना से दोनो ओर से जुड़ी हैं और दोनों ओर के छिद्रों से निकलकर समस्त शरीर में फैल गई हैं। जिन दो भागों में जुड़ी रहती हैं उन्हें पूर्व मूल (Anterior) और पिछले को पश्चिम मूल (Posterior) कहते हैं।

सौषुम्न नाडियाँ नीचे लिखी है :–

8 कंठ देशीय, 12 वक्ष देशीय, 5 कटि स्थानीय, 5 त्रिकास्थि स्थानीय, । गुदास्थ। नाड़ि संस्थान का पूरा हाल चीर–फाड़ के बिना पूरा नहीं मालूम हो सकता, तथापि इनके कार्यो को नाड़ि संक्षेप में बताया जाता है। बृहत मस्तिष्क में तीन प्रधान कार्य होते हैं :–

ज्ञान, भाव और इच्छा।

मतलब यह है कि लोगों में तब तक ही ज्ञान रहता है जब तक मस्तिष्क जीवित है और यह चेतना मस्तिष्क में रक्त की उपस्थिति पर निर्भर करती है। स्मरण के सभी कार्य मस्तिष्क की क्रिया के ही परिणाम हैं। भाव केवल ग्रहण किया हुआ पदार्थ है। उदाहरण के लिए यदि हम चूना खा जायें तो दर्द होता है परन्तु मस्तिष्क में भी वेचैनी होती है। सभी

पेशियों की गतियों पर मस्तिष्क का शासन रहता है। हम अपने हाथ को हिलाने या रूक जाने की आज्ञा दे सकते हैं। ग्रन्थियों की क्रिया भी इसी तरह मस्तिष्क की ही क्रिया है। यहाँ तक कि बढ़िया भोजन देखने पर हमारे मुँह में पानी भर आता है। इस तरह की गति को पारावर्तिक क्रिया कहते है। इसका अर्थ यह है कि एक ऐसा भी भाव प्रवण पटल है जो मस्तिष्क से अलग है जिसमें जब उत्तेजना होती है तो वह भाव मस्तिष्क में भेज देता है और उसके बाद मस्तिष्क पेशियों व ग्रन्थियों को जैसा आदेश देता है वैसा ही वे कार्य करती हैं । लघु मस्तिष्क रक्त में पेशियों की गति का सहयोग देकर समता की रक्षा करता है।

सुषम्ना से निम्नलिखत् क्रियायें होती हैं :–

1. हृदय की धड़कन। 2. रक्त वाहिनियों में खिचाव बनाये रखना। 3. श्वास प्रश्वास की क्रिया। 4. निगलना, बोलना, लाल स्त्राव, प्रसब।

मेरूदण्ड से दो क्रियाये होती है।

(क) शरीर सम्बन्धी कार्य :

1. पेशियों की शक्ति में बल भरने का कार्य । 2. मल द्वार की पेशी की क्रिया को ठीक रखना। 3. मूत्राशय ग्रीवा व मल द्वार ग्रीवा की क्रिया की रक्षा। 4. जरायु में संकोचन पैदा करना। 5. लिंग में उत्तेजना पैदा करना।

(ख) शरीर के किसी स्थान अथवा यन्त्र से जो भाव या अवस्था मालुम हो उसकी सूचना मस्तिष्क को देना।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे शरीर में जितने क्रिया–कलाप होते हैं उनका शासनकर्ता नाड़ी संस्थान है। यदि नाड़ियाँ शक्तिहीन हो जावें या अपना कार्य सुचारू रूप से न करें तो शरीर के अंग प्रत्यंग रोगी हो जाते हैं। गठिया वात, वायु पक्षाघात आदि भयंकर रोग हो जाते हैं। नाड़ी संचलन की क्रिया ऐसी प्रभावशालिनी है कि इसको करने से समूचे नाड़ी संस्थान में बिजली की लहर दौड़ जाती है। वे सचेत होकर अपना काम यथार्थ रूप से करने लगती है। यदि नाड़ी संस्थान का कोई भाग अकर्मण हो गया है तो इस क्रिया से वहाँ पर बाराबर झटके लगते हैं। और थोड़े दिनों मे वे ठीक होकर काम करने लगते हैं।

हमारे मेरूदण्ड में हडियों की लड़ी जुड़ी हुई हैं जिन्हें केशरूका (Vertebral) कहते हैं। ये संख्या में 32 हैं अर्थात् 7 गर्दन में, 12 पृष्ठ भाग में, 5 कटि प्रदेश में, 5 त्रिकास्थि में, 3 गुदास्थि में ।

वैज्ञानिकों का कहना है कि जब शरीर में कोई रोग होता है तो कोई न कोई केशरूकाएँ विकृत या टेढ़ी हो जाती हैं। योगसाधन में बताया जाता है कि आसन लगाते समय मेरूदण्ड को सीधा रखना चाहिए। जो लोग मेरूदण्ड को झुकाकर बैठते हैं उनकी केशरूकायें विकृत हो जाती हैं। मेरूदण्ड जब तक सीधा व लचीला रहता है तब तक बृद्धावस्था नहीं आती है। अधिक आयु होने पर ये हडियाँ कड़ी पड़ जाती हैं और उनमें टेढ़ापन आ जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत एक आस्टोपैथिक चिकित्सा प्रणाली है। इस चिकित्सा पद्धति को जानने वाले भारत में कुछ ही डाक्टर हैं विदेशों में इसके अच्छे अच्छे डाक्टर हैं और इस प्रणाली के द्वारा बड़े भयंकर रोग भी दूरकिये जाते हैं। आस्टोपैथी वालों का कहना है किशरीर के किसी भाग में भी किसी प्रकार का रोग होने पर मेरूदण्ड की एक या अधिक केशरूकायें विकृत व टेढ़ी हो जाती है और जब तक उन्हें ठीक नहीं किया

जायेगा जब तक रोग जा नहीं सकता है। आस्टोपैथी में चिकित्सक रोगी को लिटाकर उसकी मेरूदण्ड की हडियों पर हाथ की अंगुलियों से मालिश करता है। रोग के लक्षणों को देखकर चिकित्सक जान लेता है कि कौन सी केशरूका टेढ़ी हो गई है चिकित्सक अपनी कुशल अंगुलियों से उन हडियों को यथार्थ स्थिति में ले आता है और धीरे–धीरे रोग दूर हो जाता है। मालिश के अनुसार उसकी आस्टोपैथिक चिकित्सा की जाती है। आस्टोपैथी की चिकित्सा सीखने के लिए डाक्टरों को विदेश जाना पड़ता है तथा चार–पाँच साल का कोर्स पास करके वे इस योग्य बनते है कि रोगी का इलाज कर सकें। इसके बाद उनकी अंगुलियाँ इतनी सक्षम् हो जाती हैं कि रोग की जड़ का पता लगा लेवें और उनकी विधिपूर्वक मालिश करके ठीककर देवे।

हमारे प्रभुजी नेजीवन तत्व साधन की आठवीं क्रिया नाड़ी संचालन का आविष्कार करके यह महान् उपकार किया है कि मनुष्य वगैर किसी आस्टोपैथ की शरण में गये स्वतः अपना इलाज करके स्वस्थ बन जावे। नियमित रूप से पूर्ण समय तक नाड़ि संचालन की क्रिया करते रहने से विकृत केशरूकायें सीधी व यथार्थ स्थिति में आ जाती हैं और रोग अपने आप दूर हो जाता है। इस क्रिया को बराबर करने वाले साधक के मेरूदण्ड सीधी बनी रहती है और उनमें कोई टेढ़ापन नहीं आता। अतः किसी रोग के हाने की सम्भावना नहीं रहती है। यह क्रिया बड़ी विचित्र लाभकारी व प्राणदायिनी है क्योंकि नाड़ी संस्थान के ठीक रहने परजीवनी शक्ति पर्याप्त रूप में प्राप्त होती है।

११.२६ जीवन-तत्व साधन की नवीं क्रिया उत्क्षेपण : (एक मिनट)

जीवन तत्व साधन की नवीं व अन्तिम क्रिया का नाम उत्क्षेपण है। इसको करने के लिए सीधे खड़े हो जाइये और अपने हाथों व पैरों को क्रमशः झटके दीजिए। पहले दाहिने हाथ व दाहिने पैर को एक साथ झटक दीजिए। फिर बायें हाथ और बायें पैर को एक साथ झटक दीजिए। इसी तरह बारी–बारी से दोनों हाथों व पैरों को झटक देना चाहिए। इस क्रिया को केवल एक या दो मिनट तक करना चाहिए। इससे शरीर में एक प्रकार की नई चेतना सी आ जाती है। साधक सचेत होकर यथार्थ स्थिति में आकर अन्य कार्यों के लिए तैयार हो जाता है।

११.२७ वैज्ञानिक आधार

हमारा जो शरीर दिखाई पड़ रहा है वहतो केवल स्थूल शरीर है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर भी हैं। तीनों शरीरों में पाँच कोष है। स्थूल में अन्नमय कोष है तथा सूक्ष्म शरीर में प्राणमय, मनोमय व विज्ञानमय कोष हैं और कारण शरीर में आनन्दमय कोष रहता है। स्थूल शरीर के अंगों के सम्बन्ध में हम पिछले लेखों में बता आये हैं। उत्क्षेपण की क्रिया से तीनों शरीरों में सामंज्जस्य उत्पन्न हो जाता है। हाथ पैरों को झटकने से सूक्ष्म शरीर के तीनों कोषों में चेतना उत्पन्न हो जाती है और वे सक्रिय होकर काम करने लगते हैं। आधार चक्र सें लेकर आज्ञा चक्र तक में नवीन–स्फूर्ति भर जाती है।

जीवन तत्व साधन की यह क्रिया देखने व करने में बहुत साधारण मालुम होती है किन्तु इसका प्रभाव आश्चर्यजनक है। यथाविधि इस क्रिया को करने वाले साधक कुछ दिनों में यह अनुभव करेंगे कि हाथ पैरों के मामूली झटके कितना प्रभाव दिखाते हैं और सारे शरीर में विद्युत प्रवाह चलने लगता है।

कुण्डलिनी जागरण

ब्रह्माण्ड में जितनी शक्तियाँ वर्तमान हैं, उन सबको ईश्वर ने शरीर रूपी पिण्ड के

इस भाग में (सुषुम्ना) एकत्रित कर दी हैं किन्तु इस सुषुम्ना नाड़ी का मुख त्रिकोण योनि मण्डल के मध्य स्थान पर जहाँ से यह मेरूदण्ड के भीतर होती हुई ऊपर की ओर चलती है, साधारण अवस्था में बन्द है। इसी कारण इसकी शक्ति अविकसित रहती है और प्राण शक्ति, केवल इडा और पिंगला द्वारा जो इस त्रिकोण मण्डल के बायें व दायें भाग से ऊपर की ओर चक्रों को छूती हुई चलती है, सारे शरीर में निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। इसी त्रिकोण योनि मण्डल में एक अति सूक्ष्म अद्भुत दिव्य शक्ति नाड़ी लिपटी हुई पड़ी है। इसका दृष्टांत एक ऐसी सर्पिणी से दे सकते हैं जो साढ़े तीन लपेटे खाये हुए अपनी पूंछ को मुख में दबाये शंखाकर होकर सो रही हो। इसी को 'कुण्डलिनी शक्ति' कहते हैं। यह भी सूक्ष्म शरीर का अंग है। यह नाड़ी यदि किसी प्रकार से अपने लपेटों को खोलकर सीधी हो जाय और इसका मुख सुषुम्ना नाड़ी के भीतर चला जाय तो इसको कुण्डलिनी का जागरण कहते हैं। जिस प्रकार सुसज्जित कमरे में बिजली के तार, नाना वर्ण के ग्लोब तथा बिजली के यन्त्र–पंखे आदि लगे हों, तो बिजली के बटन को दबाने से यह सब क्रमशः प्रकाश देने तथा कार्य करने लगते हैं। इसी प्रकार कुंडलिनी रूपी बटन को दबाने से विद्युत का प्रवाह सुषुम्ना रूपी तार में प्रकाशित कर देते हैं। जिस–जिस चक्र पर यह कुंडलिनी शक्ति पहुँच जाती है वह अधो मुख से ऊर्ध्व मुख होकर विकसित होता जाता है जब यह आज्ञा चक्र पर पहुँच जाता है तब सम्प्रज्ञात् और जब सहस्त्रार तक पहुँच जाती है तब असम्प्रज्ञात् समाधि की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

कुण्डलिनी शक्ति शरीर के शुद्ध और सूक्ष्म होने पर सात्विक विचार, अन्तःकरण शुद्धि, ईश्वर की सच्ची भक्ति और परिपक्व वैराग्य की अवस्था से, निश्चल ध्यान से जागृत होती है। जहाँ कहीं अकस्मात् किसी मनुष्य में अलौकिक शक्ति, अद्भुत चमत्कार तथा असाधारण ज्ञान का विकास देखने में आवे तो समझना चाहिए कि पूर्व जन्म के किन्हीं संस्कारों के उदय होने अथवा हृदय पर सात्विक प्रभाव डालने वाली अन्य किसी घटना से कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर सुषुम्ना के मुख में चली गई है।

जीवन तत्व साधन की उत्क्षेपण क्रिया से सूक्ष्म शरीर के सभी कोषों, नाड़ियों, ज्ञान तन्तुओं तथा चक्रों में उत्तेजना उत्पन्न होती है तथा तीनों शरीरों में सामंजस्य उत्पन्न होकर नव चेतना का संचार होता है।

श्री प्रभुजी द्वारा आविष्कृत इन क्रियाओं की व्याख्या करते समय शरीर रचना के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता इस कारण पड़ी कि साधक अपने स्थूल व सूक्ष्म शरीर के विविध क्रिया कलापों को समझ सकें और जीवन तत्व साधन की क्रियाओं का अभ्यास करते समय सम्बन्धित अंगों पर ध्यान केन्द्रित करते रहें और भावना करते रहें कि हमारे उक्त अंग निरोग व शक्तिशाली हो रहे हैं और उनमें नव चेतना का संचार हो रहा है।

हर क्रिया के साथ दो वृत्तियाँ बनती हैं। एक क्रियात्मक व दूसरी भावनात्मिक 'जीवन तत्व साधन' की क्रियाओं के साथ भी दोंनों वृत्तियों को बनाने की आवश्यकता पड़ती है और तभी पूर्ण लाभ होता है।

अंगों के संचालन द्वारा क्रियात्मक वृत्ति बनती है। तथा सम्बन्धित अंगों के सशक्त व निरोग होने की विचारधारा से भावात्मक वृत्ति बनती है। जैसे बिजली के Positive और Negative तारों द्वारा विद्युत धारा प्रवाहित होती है, उसी तरह साधक को अभ्यास के समय दोंनों प्रकार की वृत्तियाँ पैदा करनी चाहिए और तभी विद्युत संचार होकर पूर्ण लाभ होता है।

१२ दिव्य विभूति योग

आनन्दकन्द सद्गुरु देव पं० श्री रामलाल जी महाराज के प्रिय कृपा पात्र योगी श्री नृसिंह-मूर्ति जी का जीवनदर्शन व दिव्यानुभव

१२.१ बाल्यकाल तथा दीक्षा

श्री नृसिंह मूर्ति जी का जन्म एक छोटे से गाँव मुनगंडा गोदावरी जिले (ई० सं०1914) में हुआ था इनके पिता का नाम श्री लक्ष्मी नारायण जी तथा माता का नाम सीताम्बा था। सम्पन्न परिवार में पैदा होने के कारण घर में ही इनका अध्ययन कार्य हुआ। आप हिन्दी व संस्कृत दोंनों ही विषय के विद्वान् थे। अलूरी, सीताराम, राजू एवं भगत सिंह की भांति वे अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ना चाहते थे। उनके साथ लड़ने के लिए किसी सिद्धि को प्राप्त करना चाहते थे। इसी विचार से वे इधर उधर घूमने लगे। अन्त में 12 वर्ष की अवस्था में बद्रीनाथ पहुँच गये और वहाँ भगवान् बद्रीनाथ जी से सच्चे गुरू से भेंट कराने की प्रार्थना की। अलकनन्दा के किनारे-किनारे उन्होंने अपनी यात्रा प्रारम्भ की। तीन दिन तक चलते-चलते वे वसुधारा पहुँच गये इस स्थान पर पूर्व जन्म के सुसंस्कार से ही लोगों को स्नान करने का सौभग्य प्राप्त होता है। किसी सिद्ध प्ररूष के दर्शन की लालसा से वे आठ दिन की यात्रा पूरी करने के बाद 'शतोपथ' पहुंचे। बर्फ से ढका हुआ यह वही स्थान है जहाँ से पाण्डवों ने स्वर्गरोहण प्रारम्भ किया था। इनके सामान का थैला भी कहीं छूट गया। रात्रि में वृक्ष पर चढ़कर अपने शरीर को बाँध लेते थे ताकि जानवरों से खतरा न रहे। नवें दिन प्रातः उन्हें एक जगह धुआँ उठता दिखाई दिया। वे वहाँ पहुँच गये और एक महात्मा को ध्यान में बैठे देखा। उन्होंने सोच लिया अब वे अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच गये हैं। महात्मा जी की सांस भी नहीं चल रही थी। केवल संकल्प व आत्मतेज से ही जीवित थे। ये उनके उठने की प्रतीक्षा करने लगे। तीसरे दिन वे ''ओम्'' कहते हुए उठ गये। वे महात्मा सर्वानन्द के नाम से प्रसिद्ध थे। उनकी 350 वर्ष की आयु थी और वे वीर शिवाजी के मंत्री रह चुके थे। मुसलमानों के विरूद्ध लड़े थे। भीषण रक्तपात को देखकर उन्हें ग्लानी हो गई थी। सब कुछ त्याग कर हिमालय की ओर चल पड़े। वहाँ उन्हें एक योगी गुरू मिल गये और वे साधना में लग गये। उन महात्मा जी ने नृसिहं मूर्ति जी से पूछा-यहाँ तुम क्यों आये हो ? श्री नृसिंह मूर्ति जी ने कहा-मैं योगी गुरू की प्राप्ति की इच्छा से आया हूँ किन्तु घर से बिना बताये चले आने की बात उन्होंने नहीं बताई। महात्मा जी अन्तर्दृष्टि से सब जान चुके थे। महात्मा जी ने उन्हें घर जाने की आज्ञा दी। लेकिन वे योग के जिज्ञासु बनकर उनकी शरणागत् हो गये। अन्त में महात्मा जी ने कहा-मैं भी किसी अदृश्य शक्ति से प्रेरित होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। अन्यथा तुम मुझे पा नहीं सकते थे।

महात्मा जी ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया और वहाँ रहने की आज्ञा दी। महात्मा जी ने उन्हें भक्ष्य-अभक्ष्य जड़ी-बूटियों का ज्ञान करा दिया। उसके बाद महात्मा जी ने उन्हें नेति क्रिया भी सिखा दी और भगवद्गीता का पाठ करने की आज्ञा दी। उसके बाद महात्मा जी समाधिस्थ हो गये। नृसिंह मूर्ति जी सोचने लगे कि कोई परोक्ष शक्ति की कृपा से ही इतनी भीषण सर्दी में रह पा रहे हैं। तीन दिन के बाद महात्मा जी उठ गये और इन्हें धौति क्रिया तथा षट्कर्म सिखा दिये। वे नियमित ध्यानाभ्यास करने लगे। पूर्व

जन्म के संस्कारों के कारण वे बहुत जल्दी ही सारी क्रियाएँ सीख गये। छः माह इसी तरह व्यतीत हो गये। इसके बाद सर्दियों का मौसम शुरू होने लगा। महात्मा जी ने कहा-''यहाँ पूर्ण सिद्ध पुरुष ही भयंकर ठंड में रह सकते हैं। इसलिये तुम हरिद्वार चले जाओ। वे हरिद्वार लौट आये। वहाँ एक मारवाड़ी ढाबे में ठहर गये। वहाँ संस्कृत का अध्ययन करने लगे इसी तरह से छः माह व्यतीत हो गये। पुनः ग्रीष्म ऋतु का आगमन हो गया। वे फिर उसी महात्मा के पास जाने के लिए लालायित हो उठे। वहाँ पहुँचने पर महात्मा जी ने पूर्व की भांति इनको प्यार से रहने की आज्ञा दे दी। उन्होंनें साधना की कई रहस्यमय बातें बताईं। एक दिन इन्हें अचानक अतिसार हो गया। इस कारण से दिन भर में 25-30 बार शौच जाना पड़ा। इनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। ये मरणासन्न होकर बेहोश हो गये। इन्हें लगा कि यमदूत इनके सूक्ष्म शरीर को खींच रहे हैं। महात्मा जी ने यमदूतों को इन्हें छोड़ देने को कहा। उनको लगा कि इनके गुरूजी पूर्ण सिद्ध पुरुष हैं जिनका जन्म-मृत्यु पर पूर्ण अधिकार है। इनको यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता था कि इनके गुरूजी बिना आहार तथा श्वास के कैसे जीवित रह रहे हैं। योगी गुरू जी ने कहा-''योगी को प्राण शक्ति संचालित रखने के लिये भोजन तथा श्वास लेने की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु जब कोई समाधि में होता है तो ईश्वरीय शक्ति से शरीर का पोषण होता है।'' छः माह के पश्चात् शरद ऋतु प्रारम्भ होने पर महात्मा जी ने इन्हें पुनः हरिद्वार जाने की आज्ञा दी। छः माह हरिद्वार रहकर ग्रीष्म ऋतु के आने पर वापस महात्मा जी के पास पहुँचे और फिर ध्यानाभ्यास प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार तीन-चार बार हरिद्वार से बद्रीनाथ आते-जाते रहे। महात्मा जी ने एक दिन इनसे कहा-पूर्व जन्म के संस्कार के कारण तेरा-मेरा संस्कार पूरा हो गया है। अब तुम किसी और गुरू के पास जाओ।'' यह सुनकर वे अधीर हो गये। योगी गुरू जी ने कहा-''चिन्ता मत करो। तुम्हारे गुरूजी ऋषिकेश में विराजमान हैं और उनका पावन नाम प्रभु श्री रामलाल जी महाराज है।'' श्री नृसिंह मूर्ति जी ने योगी गुरू जी को प्रणाम किया और ऋषिकेश के लिए चल पड़े।

१२.२ 'योग साधन आश्रम' ऋषिकेश में श्री प्रभु दर्शन एवं दीक्षा

ऋषिकेश आकर वे 'योग साधन आश्रम' में श्री प्रभु जी के पास पहुँच गये। श्री प्रभु जी ने स्वयं इनका नाम लेकर कहा-''नृसिंह! जब तुम अलकनन्दा में गिर गये थे तब कोई कष्ट तो नहीं हुआ था?'' यह सब सुनकर नृसिंह मूर्ति जी समझ गये कि ये अन्तर्यामी हैं, घट-घट की जानने वाले हैं। उन्होंने इनके चरण पकड़ लिये। ज्यों ही उन्होंने श्री प्रभु जी के चरण पकड़े तो उन्हें आत्मानूभूति हुई। उस दिन से वे पूर्ण रूप से श्री प्रभु जी के शरणागत हो गये और दीक्षा ले ली। अब वे श्री प्रभु जी के कृपा-भाजन बन गये। श्री प्रभु जी ने इन्हें हठयोग की कठिन क्रिया बज्रौली सिखाई। श्री प्रभु जी इन्हें 'नृसिंह' कहकर पुकारा करते थे। गुरू भाई बहिनों में ये सबसे छोटे थे इसलिए श्री प्रभु जी इन्हें ज्यादा लाड़-प्यार करते थे।

१२.३ श्री नृसिंह मूर्ति जी की अटूट श्रद्धा एवं प्रभु भक्ति की घटना

श्री प्रभु जी दूसरों को नृसिंह मूर्ति जी की अटूट आस्था को प्रदर्शित करवाना चाहते थे। एक दिन सभी लोग नदी के ऊपर पुल से गुजर रहे थे। श्री प्रभु जी ने स्वयं अपनी छड़ी नदी में फैंक दी और ऐसा अभिनय करने लगे जैसे उनकी छड़ी छूट गई है। नृसिंह जी बिना कुछ सोचें, तुरन्त नदी में छड़ी लेने के लिये कूद पड़े। लगभग एक मील तक छड़ी के लिये तैरते रहे। अन्ततः उन्हें वह मिल गई। वे प्रभु जी की छड़ी लेकर ही लौटे वो अत्यधिक थक चुके थे, अतः मूर्छित हो गये। श्री प्रभुजी के करारविन्द का स्पर्श पाकर वे

सचेत हो गये। अन्य गुरुभाई कहने लगे–''तुमने जान की बाजी लगाकर अपने को खतरे में क्यों डाल दिया था।'' इस पर नृसिंह जी कहने लगे–''यह छड़ी भगवान् कृष्ण की बासुंरी की तरह है अतः हर स्थिति में इसकी प्राप्ति होनी ही चाहिये थी।'' यह नृसिंह मूर्ति जी की अटूट श्रद्धा एवं भक्ति का परिचय था।

१२.४ भगवान श्री कृष्ण की भक्ति का वरदान

नृसिंह मूर्ति जी कभी–कभी शरारतें भी कर लिया करते थे। कुछ गुरुभाई भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र का स्वरूप सामने रखकर पूजा अर्चना किया करते थे। ये चुपके से जाकर स्वरूप को अल्टा कर दिया करते थे। उन लोगों ने श्री प्रभुजी से इस बात की शिकायत की। श्री प्रभु जी ने इन्हें डाँटते हुये कहा–''आज से ही तुम्हारे अन्दर भगवान् श्री कृष्णकी दृढ़ भक्ति हो जायेगी।'' इसी का परिणाम था कि नृसिंह मूर्ति जी मथुरा, वृन्दावन चले गये और वहाँ भगवान् के साक्षात् दर्शन प्राप्त किये।

१२.५ एक विलक्षण घटना

एक दिन श्री प्रभु जी ने नृसिंह मूर्ति जी को 12 फोटो फ्रेम करवाने के लिये दिये। फ्रेम बनवाकर जब पैकेट खोला तो उसमें एक फोटो कम निकला। श्री प्रभु जी ने नृसिंह मूर्ति जी को डाँटा। वस्तुतः वह चित्र श्री प्रभुजी ने स्वयं सूक्ष्म रूप में (जम्मू काश्मीर के) एक महात्मा को दे दिया था। जिन्होंने फोटो की प्रार्थना की थी। बाद में जब अपने एक गुरुभाई से ज्ञान हुआ कि श्री प्रभीजी का वह चित्त चराया नही गया प्रत्युत उन्होंने ही अपने लम्बे हाथों से सिद्ध महात्मा को दिया तो श्री प्रभुजी की इस लीला को समझ गये।

१२.६ विद्या प्रकाश खोसला पर अद्भुत प्रभु कृपा

मुरार (म0प्र0) के एक व्यक्ति विद्या प्रकाश खोसला बचपन से ही अपंग थे और उन्होंने बचपन में बहुत कठिनाइयाँ झेली थी। वे आत्महत्या करने के इरादे से पुल के ऊपर से नदी में कूदने ही वाले थे कि श्री प्रभुजी वहाँ प्रकट हो गये और उन्हें कूदने से रोक दिया। उनके अंग सब सीधे करके अदृश्य हो गये। खोसला जी के लिये यह बहुत बड़ी रहस्यमय बात थी कि ये महापुरूष कौन थे ? जिन्होंने उन पर इस प्रकार की कृपा की है। बाद में उन्होनें ऋषिकेश में श्री प्रभु जी के दर्शन किये तो स्तब्ध रह गये। उन्होंने अपनी सारी घटना श्री प्रभु जी को बताई। इस पर श्री प्रभुजी मुस्कुराये किन्तु कहा कुछ नहीं। खोसला जी की हठयोग में रूचि हो गई। उन्होंने ऋषिकेश आश्रम में श्री चन्द्रमोहन जी तथा श्री नृसिंह मूर्ति जी महाराज से हठयोग की क्रियाएँ सीख ली। उन्होंने मुरार में एक योग की संस्था खोली। इनके कई प्रशिक्षित साधक हठयोग क्रिया से बाण शैया के अभ्यास में निपुण हो गये और वहां हठयोग का प्रचार हुआ।

१२.७ योगी श्री नृसिंह मूर्ति जी की गृह वापसी

एक बार श्री नरसिंह मूर्ति जी के पिता श्री लक्ष्मीनारायण जी को किसी ने बताया कि तुम्हारे पुत्र नृसिंह मूर्ति जी ऋषिकेश में रह रहे हैं। श्री लक्ष्मीनारायण जी ऋषिकेश 'योग साधन आश्रम' में पहुँचे गये। उस समय वहाँ पर आरती हो रही थी। आरती के पश्चात् नृसिंह मूर्ति जी ने पूछा–''आप यहाँ किसलिये आये हैं।'' उन्होंने कहा–''मैं अपने लड़के नृसिंह की तलाश में आया हूँ।'' इन्होंने कहा–''यहाँ इस नाम का कोई लड़का नहीं है। तत्पश्चात् श्री लक्ष्मीनारायण जी ने श्री प्रभुजी से नरसिंह के विषय में पूछा। श्री प्रभु जी ने नृसिंह को बुला लिया। इनके पिता इन्हें घर ले जाने के लिये श्री प्रभुजी से आग्रह करने लगे किन्तु इन्होंने मना कर दिया। श्री प्रभु जी ने इनके पूर्व जन्म के संस्कार को

देखकर घर जाकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा दी अन्यथा इनके मुक्ति के मार्ग में कई बाधाएँ आयेंगी। अन्ततः इन्हें घर जाना पड़ा एवं गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना पड़ा। सन् 1941में इनका विवाह लक्ष्मी कमलाम्मा से हो गया तत्पश्चात् इन्होंने पूरे आन्ध्रप्रदेश में योग का प्रचार किया और एक योगी के रूप में प्रसिद्ध हो गये।

१२.८ श्री नृसिंह मूर्ति जी की धर्मपत्नी लक्ष्मी जी को श्री प्रभुजी के दिव्य दर्शन

लक्ष्मी अम्माजी भी श्री प्रभु जी की अनन्या भक्ता थी। एक बार सीढ़ियों के ऊपर स्टोर रूम में गई। वहाँ श्री प्रभुजी ने दिव्य तेजोमय शरीर में दर्शन दिया। श्री प्रभु जी ने चरण छूने से मना कर दिया था लेकिन यह चरण छूने को झुकी तो इनका हाथ जल गया क्योंकि श्री प्रभु जी का यह अग्निमय शरीर था। श्री प्रभुजी ने एक दिव्य द्रव्य दिया जिससे दिव्य गन्ध आ रही थी। इस द्रव्य की दिव्य सुगन्ध कई दिन तक घर में फैली रही। इसको लगाने से घाव जल्दी ही ठीक हो गया।

१२.९ श्री प्रभुजी के शरीर छोड़ने पर श्री नृरसिंह मूर्ति जी के साथ हुई घटना

एक बार श्री नृसिंह मूर्ति जी शिमला गये हुये थे। वहाँ पर उन्होंने श्री प्रभुजी के शरीर छोड़ने का समाचार ई0सन्-1.8.1938 को सुना। ये जहर खाकर मर जाना चाहते थे। श्री प्रभु जी इनके सन्मुख प्रकट हो गये और कहा-''हमें जन्म-मृत्यु का कोई बंधन नही है। अगली बार पुनः तुम्हें मिलेंगे।'' इससे इनके मन में कुछ सान्त्वना मिली। आन्ध्रप्रदेश में इनके 6-7 हजार दीक्षित शिष्य हैं। कई शिष्यों की बहुत अच्छी ध्नायनस्थिति है श्री नृसिंह मूर्ति जी ने ई01978 में अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया और गोलोक चले गये

१२.१० 'काम कोटी' शक्तिपीठ के शंकराचार्य श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वति जी द्वारा श्री प्रभु जी के स्वरुप की महिमा

मद्रास की रानी पदपावनी योगी नृसिंह मूर्ति जी की शिष्या थी। वह कामकोटी के शंकराचार्य के पास श्री प्रभु जी के स्वरूप को लेकर गई। उनसे पूछा यह मेरे दादा गुरूदेव का चित्र है। इस के अन्दर क्या शक्ति है? वह कहने लगें-''नारायण स्वयं! नारायण स्वयम्! ये स्वयं नारायण हैं।'' रानी ने फिर पूछा-''इस चित्र में क्या ताकत है?'' शंकराचार्य जी अर्न्तद्रष्टा थे। उन्होंने कहा-''हजारों को एक साथ मुक्ति देने की ताकत इस चित्र में है।'' भगवान् शंकर की सहधर्मिणी सती ने यक्ष के यज्ञ में जिस समय अपना शरीर छोड़ दिया था। उस मृत शरीर को लेकर भगवान् स्थान-स्थान पर घूमते रहे। सती के शरीर के अंग का जो टुकड़ा जहाँ गिर गया उन सारे स्थानों का नाम शक्तिपीठ है। भगवान शंकर का वरदान है कि शक्तिपीठ में बैठकर जो अनुष्ठान करते हैं वे सफल होते हैं। रानी पदपावनी ने शंकराचार्य जी से पूछा-''मेरे गुरूदेव एक शक्तिपीठ में अनुष्ठान कर रहे हैं। क्या वह सफल होगा?'' कामकोटी शंकराचार्य जी ने कहा-''अनुष्ठान तो सफल होगा किन्तु तुम्हारे दादा गुरूदेव श्री प्रभु जी उसे योग में बदल देंगे।'' वही हुआ। नृसिंह मूर्ति जी अनुष्ठान के बाद संवाई आश्रम गए और अपने बड़े गुरु भाई श्री चन्द्रमोहन जी से कहने लगे-भाई जी! ''मैंने शक्तिपीठ में अनुष्ठान किया वह श्री प्रभु जी ने बदल दिया। कैसी लीला है श्री प्रभु जी की।

१२.११ श्री प्रभु जी के चरणों में रहने से दुःख दूर

लोग आनन्दकन्द श्री प्रभु जी से प्रश्न पूछा करते थे–''प्रभु जी! अमुक व्यक्ति आप के चरण शरण में है क्या उसका यह दुःख दूर हो जायेगा।'' श्री प्रभु जी इसका एक ही उत्तर दिया करते थे–''हाँ! उसके यहाँ रहने से कोई न कोई हरकत ऐसी बन जायेगी जिससे उनका (प्रभुजी का) हृदय प्रसन्न हो जायेगा। इस प्रसन्नता से ही उनके दुःख द्वन्द्व दूर हो जायेंगे।'' पता नहीं कितनों के ही दुःख ताप इसी प्रकार से दूर हो गये। भजन गाने वाले गाया करते हैं–''न जाने कौन से गुण पर दयालु रीझ जाते हैं।'' ईश्वर का जहाँ संकल्प बन गया वहाँ समाधि हो गई।

१२.१२ चरित्रहीन सांई दास पर प्रभु कृपा व आज्ञा अवहेलना पर पतन

अमृतसर के रहने वाले ला. ताराचन्द और लालचन्द 'गुरू बाजार' के श्री प्रभुजी के चरणाविन्द में 'जीवन तत्व साधन' किया करते थे। वे लोग स्वस्थ होकर के अपने घर लौट गये। वहाँ जाकर के उन्होंने श्री प्रभु जी की चरण महिमा का गुण–विस्तार लोगों के सामने किया। जिसके परिणामस्वरूप 'दूल्हे के कटड़े' (अमृतसर) की ही एक बुढ़िया अपने बच्चे सांईदास को लेकर के ऋषिकेश आश्रम में आई। सांई दास बहुत ही शराबी–कबाबी एवं चरित्रहीन लड़का था। जब उसकी माता उसको लेकर ऋषिकेश आश्रम में आई तो वहाँ आने पर जो अन्य गृहस्थी–बहिने वहाँ ठहरी हुई थी उनमें भी वह कुदृष्टि डालने लगा। उसकी इस हालत को देखकर उसको आश्रम में रखने से श्री प्रभुजी ने इंकार कर दिया। किन्तु उसकी माता ने बहुत ही विनय की। उसकी बार–बार प्रार्थना करने पर श्री प्रभु जी ने उसको रख लिया और दूसरे रोज विधि–विधान् पूर्वक उसको दीक्षा दे दी। इसके फलस्वरूप सांईदास हर समय ध्यान मग्न रहने लगा। श्री प्रभुजी ने उसको कड़े नियम के बन्धन में बांध दिया और अपने संरक्षण में दृढ़ता के साथ अभ्यास कराने लगे। सांईदास की ध्यानुभूति थोड़े ही दिनों में बहुत ऊँची बढ़ गई। सांई दास ध्यान में बैठे रहते थे और श्री चन्द्रमोहन जी महाराज तथा नृसिंह मूर्ति जी महाराज खेलते रहते थे। एक रोज सांईदास ने उन दोंनों को खेलते कूदते देखा और उन पर बिगड़ कर कहने लगा''तुम लोग हर समय खेलते रहते हो। अपना जीवन बनाने का कोई प्रयत्न नहीं करते।'' सांईदास के इस प्रकार कहने पर वे दोनों चुप हो गए और विचार करने लगे कि श्री सांईदास बिल्कुल ठीक ही कह रहे हैं। किन्तु श्री प्रभु जी को यह सहन नहीं हुआ और सांई दास की बात का उत्तर देते हुए श्री प्रभुजी ने कहा ''कि अरे सांई दास तू क्या कह रहा है? ये दोंनों तो खेलते कूदते भी तेरे से लाखों दर्जे ऊंचे हैं! तेरे जैसे कितनों को ही ये बनाने वाले होंगे। तू इनकी चिन्ता छोड़कर अपनी चिन्ता कर। हमें तेरा भय है कि कहीं बना–बनाया खेल फिर न जाता रहे।''

सांईदास बराबर उसी प्रकार ध्यानाभ्यास करते रहे। उनकी माता साथ में थी। अकस्मात् होनहार की प्रबलता सामने आई। अमृतसर में सांईदास के कुटुम्ब में किसी की शादी थी। उस शादी की सूचना सांईदास को बुलाने के लिये आई। सांईदास की माँ ने शादी में जाने के लिये आज्ञा मांगी। किन्तु श्री प्रभुजी ने बिल्कुल इन्कार कर दिया और कहा–''देवी! यदि तू इस समय इसे हमारे पास से ले जाएगी तो इसका घोर पतन हो जाएगा और यह सम्हालने से भी नहीं संभलेगा। केवल मात्र तीन रोज तू इसको मत ले जा। उसके बाद कहीं भी ले जाना इसको कोई भी गिरा नहीं सकेगा और अब ले गई तो इसको कोई भी बचा नहीं सकेगा।'' यह बात सुनकर के सांई दास ने श्री प्रभुजी के सामने अपनी छाती पीटकर कहा, प्रभुजी गिरा तो अब कोई मुझे सकता ही नहीं। आप इस बात की बिल्कुल चिन्ता न करें। इस प्रकार कहकर के सांईदास श्री प्रभुजी की आज्ञा

के बिना ही अमृतसर शादी में जाने को तैयार हो गए। श्री प्रभुजी ने सांई दास को एक बार फिर समझाया और कहा ''अरे सांईदास तुम्हें इस बात का पता नहीं है। कि तुम्हें इतनी ऊंची स्थिति कैसे मिल गई है। मत जा। चला गया तो तेरा पतन अवश्य होगा। तू संभल नहीं सकेगा।'' किन्तु सांई दास ने उनकी आज्ञा को नहीं माना। उसकी माता और वह दोनों जिस समय अमृतसर जाने लगे तो श्री प्रभुजी ने अपने मुखारविन्द से एक दोहा कहा–

लाख चौरासी जीव को बहुत कह्यो समझाय,
हम खेंचे सतलोक को, पोंड्यो यमपुर जाय।

और इसके बाद कहने लगे–

दैवी ह्येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया,
मामेव ये प्रपद्यन्ते, मायामेतां तरन्तिते।

यह श्लोक कहकर के श्री प्रभु जी हंस पड़े और कहने लगे कि बस सांई दास अब गया।

सांईदास अमृतसर पहुँच गया और वहाँ पहुँचते ही पूर्ववत् अपना खनापीना शुरू कर दिया। लगभग बीस पच्चीस रोज के बाद श्री चन्द्रमोहन जी और श्री नृसिंह जी की इच्छा हुई कि चलो एक बार सांईदास को देख आएँ। श्री प्रभुजी ने कहा–अरे बेटा। 'उसको देखकर के तुम क्या करोगे। उसका जो होना था हो गया। अब सांईदास किसी भी काम का नहीं है। उसका घोर पतन हो गया है।'' किन्तु फिर भी श्री प्रभु जी से आज्ञा लेकर वे दोनो भाई अमृसर गए और सांईदास को मिले। सांईदास अपने मकान की ऊपर की छात पर शराब पीकर बेहोश पड़ा था। उसे इस हालत में देख कर वह दोनों लौट आए और श्री प्रभु जी के चरण कमलों में आकर निवेदन किया। श्री प्रभु जी हँस कर बोले–बस जो होना था हो गया। इसी का नाम कर्म गति है।''

१२.१३ दुश्चरित्रा महिला पर श्री प्रभु कृपा द्वारा जीवन परिवर्तन

उन्हीं दिनों सांईदास के समय में ही एक और महिला अमृतसर की श्री प्रभुजी के चरणों में आई। जिसके कुटुम्बी उसको हठात् ऋषिकेष ले आए थे। वह औरत भी बिल्कुल सांईदास की तरह की चरित्रहीन थी और अपने पति के अतिरिक्त किसी और भी युवक पर परम आसक्त थी। वह सभी के सामने बिल्कुल स्पष्ट कहती थी कि मुझे न राम की जरूरत है न कृष्ण की जरूरत है, मुझे चाहिए तो यही चाहिए। इसी के लिए जियूँगी व मरूंगी, इसके अतिरिक्त किसी और परमात्मा का भी ध्यान नहीं करूँगी। श्री प्रभुजी उसकी बात को सुनकर हँस पड़े और कहने लगे–''कि अच्छा और किसी का ध्यान तो नहीं करेगी, उसका तो कर लेगी।'' श्री प्रभुजी ने उसको उसी का ध्यान करने की आज्ञा दी। पहले रोज ध्यान में बैठी। उसका मन पहले रोज ही काफी एकाग्र हो गया। वह ध्यान अपने उसी प्रियतम का करती थी, जिसमें वह परम-आसक्त थी। ध्यान से उठकर उसने श्री प्रभुजी को बतलाया कि, प्रभुजी आज तो वह मुझे बहुत ही सुन्दर दिखाई देने लगे और मुझसे बहुत ही प्यार किया। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया–''हां, हां। यह बहुत अच्छा हुआ। तेरे को यह ध्यान अच्छा लगा न।'' वह कहने लगी ''हां! प्रभुजी यह ध्यान तो मैं हर वक्त करूँगी। यह तो आपने उनसे मिलने का बहुत अच्छा तरीका बतलाया।'' इसी प्रकार अभ्यास करते-करते दो-तीन दिन के अभ्यास में ही वही व्यक्ति श्री कृष्ण के रूप में दिखाई देने लगा। उस औरत ने उठकर अपनी ध्यान स्थिति श्री प्रभुजी को बताई। कहा प्रभुजी अब तो वह मुझे साक्षात् कृष्ण जी ही दिखाई देते हैं। कहीं इनके रूप में बदलकर कृष्ण जी तो नहीं आ गए। प्रभुजी ने हँसकर उत्तर देते हुए कहा, ''अरे तूने यह क्या किया ? हमने तो तुम्हें तुम्हारे उसी प्रियतम का ध्यान बतलाया था तू अब कृष्ण जी का

ध्यान करने लग गई, यह ठीक नहीं है। नहीं तो वह छूट जाएगा और कृष्ण जी से प्यार हो जाएगा।'' किन्तु वह नहीं मानी। इसी प्रकार अपना ध्यानाभ्यास करती रही एवं धीरे–धीरे भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र के दिव्य चरित्र उसको दीखने लगे। उस व्यक्ति के मोहपाश से वह बिल्कुल छूट गई और अपने ही मुख से सभी लोगों के सामने उसने कहा कि श्री प्रभुजी ने मुझ पर बड़ी कृपा की कि दुनियां की गन्दगी से मुझे निकालकर स्वर्ग में बिठा दिया। अब मैं इस कीच में बिल्कुल नहीं पड़ूँगी। वैसा ही हुआ भी। थोड़े दिन के अन्दर उस स्त्री के मन में अपने आप ही सेवा भाव की जागृति हुई । खूब मन लगाकर आश्रम की सेवा करने लगी एवं बराबर ध्यान में बैठने लगी। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की परम कृपा से उसका कल्याण पूरी तरह से हो गया।

१२.१४ यमुना की भीषण बाढ़ से भक्त और गाँव की रक्षा

एक रोज दोपहर के समय लगभग ग्यारह बजे श्री प्रभुजी अपने आसन पर लारेन्स रोड़–अमृतसर में विराजमान थे। आसपास और बहुत से सत्संगी बैठे हुए थे। सबके देखते–देखते श्री प्रभुजी ने अपने दाहिने पैर को गद्दी पर जोर से पटक कर सीधा कर दिया। सभी को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि ऐसा तो श्री प्रभुजी कभी भी नहीं करते थे। यह हुआ तो क्या हुआ। इस बात की जानकारी प्राप्त करने के लिए सभी ने गुरूभाई लक्ष्मण दास जी से प्रार्थना की कि वह ध्यान में पता लगायें कि प्रभुजी ने अपने पैर को इतनी जोर से क्यों पटका है। श्री लक्ष्मण दास जी ध्यान में बैठ गये। ये चतुर्मास के दिन थे। लक्ष्मणदास जी ने ध्यान में देखा कि सोनीपत (हरियाणा) के पास यमुना किनारे कोई गाँव है उस गाँव में कोई भगवान् श्री कृष्ण का परम भक्त रहता है। यमुना जी के जल का प्रवाह बहुत अधिक बढ़ चुका था और उस प्रवाह के कारण निकटवर्ती कई एक गाँव जल में डूब गये व बह गये थे। अब यमुना जी का प्रवाह उस गांव की ओर था जहाँ वह कृष्ण भक्त रहता था। यमुना जी ने अपना प्रवाह उसी भक्त के मकान की ओर जोंरों से बना दिया था और सभी को यह आभासित हो गया था कि दो या तीन घण्टों के अन्दर यमुना प्रवाह उसके मकान को उखेड़ देगा और इस गांव को भी यमुना जी अपने प्रवाह में बहा ले जाएँगी। श्री लक्ष्मणदासजी ने बतलाया कि मैंने यह प्रत्यक्ष में देखा है कि उसी प्रवाह को रोकने के लिए श्री प्रभुजी ने अपने पैर को वहीं जोरों से पटक दिया और पटकते ही वह चरण पहाड़ जैसा बन गया जिसके फलस्वरूप श्री यमुना जी के जल का प्रवाह दूसरी ओर बदल गया और उस भक्त की तथा भक्त के उस गांव की पूर्णरूपेण रक्षा हो गई। घटना की सत्य जानकारी के लिए अमृतसर के गुरू भाई लोगों ने दूसरे रोज सोनीपत के पास वाले उस गांव में किसी व्यक्ति को भेजा। उस भक्त का नाम, गांव का नाम, यह सब पूरा–पूरा बतला कर भेजा गया था। दूसरे रोज वह व्यक्ति जाकर के सोनीपत के पास उस गाँव में पहुंचा और गाँव वालों से मिलकर घटना का पता लगाया। गाँव वालों ने बिल्कुल यथार्थ घटना बतलाई कि दो दिन पहले यमुना जी का प्रवाह हमारे गाँव की ओर काफी जोरों से बढ़ गया था। हम सब डर गये थे और गाँव छोड़ करके इधर–उधर भागने की लग्न में थे। किन्तु पता नहीं भगवान की क्या और कैसे दया हुई कि दो दिन पहले दोपहर बाद यमुना जी का प्रवाह इतना जोरों से बदला कि हमारे गाँव के आसपास तो यमुना के प्रवाह से बहकर आई हुई रेती का एक पहाड़ जैसा बन गया और यमुना जी गाँव से मीलों देर हट गई है। अब हमें कोई खतरा नहीं रहा। पता लगाने वाले व्यक्ति ने जब सब बातें वहां सत्संग में आकर बतलाईं तो सभी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की सर्वशक्तिमता का बोध हुआ।

१२.१५ भक्त शान्ति स्वरूप के बालक की रक्षा

भक्त शांति स्वरूप हर प्रातः और सायंकाल अमृतसर प्रभु दरवार में आता, श्री प्रभुजी के चरणों में प्रणाम कर ध्यान लगाता और सारा दिन अपने आफिस में हाथों से काम और मन में राम को घ्याता।

भक्त शांति स्वरूप का पुत्र हैजे से बहुत बीमार हुआ, उस के दस्त और उल्टी किसी दवाई से जब न रूके तो शांति स्वरूप उस बालक को प्रभु दरवार में ले आया और श्री प्रभु चरणों में सारा हाल कह दिया श्री प्रभुजी ने उस के पुत्र को, अपने परने से पाँवों को बाँध कर, एक घण्टे के लिये खुंटी से उलटा लटका दिया। उस के बाद प्रभु कृपा से योग द्वारा वह बालक रोग मुक्त हो गया।

१२.१६ जसवन्त को श्री प्रभुजी के दिव्य दर्शन

भक्त जसवन्त राय अमृतसर नगर में दुर्ग्याना मन्दिर के समीप घूप की दुकान करते थे। बालक जसवन्त श्री प्रभुजी के दरवार में अमृतसर सुबह और शाम जा कर बड़े प्रेम से सेवा किया करता था और प्रभु चरणों पर सदा न्यौछावर रहता था।

एक दिन जसवन्त को श्री प्रभुजी ने बाज़ार से दही लाने को कहा और दरवार के दरवाजे को बाहर से सांकल लगाने की आज्ञा प्रदान की। जब जसवन्त बाजार में दही वाली दुकान पर पहुँचा तो उसे ख्याल आया कि उस ने श्री प्रभुजी से दही कितना लाना है यह तो पूछा ही नहीं। जब वह दुकान से वापिस लौटा तो उसे श्री प्रभुजी के दर्शन रास्ते में हुए। जसवन्त ने श्री प्रभुजी के चरणों में प्रणाम कर आशीर्वाद ले दही की मात्रा के बारे में पूछ लिया। जब वह दुकान से दही ले कर दरबार में आया तो उस ने देखा कि दरवार के कमरे को बाहर से सांकल लगा हुआ है। वह बड़े आश्चर्य में था कि श्री प्रभुजी सांकल लगे हुए कमरे से बाहर आकर उसे बाजार में कैसे मिले। श्री प्रभुजी के चरणों में प्रणाम कर उसने दही श्री प्रभुजी को दिया।

ऐसे ही एक दिन जसवन्त ने श्री प्रभु चरणों में प्रार्थना की ''हे कृपा नाथ! अपने बालक के घर में भी चरण डाल कर उसे पवित्र करने की कृपा करें।'' श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया-''कि चिरजीव! हम अवसर पा कर तुम्हारे घर अवश्य आयेंगे। तुम अब अपने घर जाओ और हमारे दरवाजे को बन्द कर बाहर की कुण्डी लगा जाना क्योंकि हम ध्यान लगाने लगे है।'' जसवन्त रास्ते में सोचने लगा कि श्री प्रभुजी ने घर आने का समय और तारीख तो बताई ही नहीं। अगर घर में ताला हुआ तो यह स्थान प्रभु चरणों से पवित्र कैसे हो पायेगा। जब उस ने अपने घर का ताला खोला और कमरे के अन्दर गया तो देखा कि श्री प्रभुजी महाराज सामने विराजमान हैं। उन के दिव्य गृहस्थी तेजोमय रूप को देख कर वह निहाल हो गया और उस ने श्री प्रभु चरणों में प्रणाम किया। वह बड़ा हैरान था कि प्रभु उस से पहले घर कैसे आये और ताले लगे घर में विराजमान कैसे हुए।

१२.१७ श्री प्रभु जी का हरिद्वार कुम्भ पर अपने भक्तों को तत्त्व विजयी महासिद्ध हरिहरानन्द जी के दर्शन करवाना

श्री हरिहरानन्द जी महाराज श्री प्रभुजी के प्यारे बच्चे हैं जो आज भी शीशगिरी पहाड़ी पर समाधिस्थ हैं। तीन महीनों में समाधि से उठा करते हैं। हरिद्वार में एक बार कुम्भ के मौके पर सभी गुरू भाई बहिन हठ करने लगे कि प्रभु जी हमें श्री हरिहरानन्द जी महाराज के दर्शन करा दो। श्री प्रभुजी; अपने बच्चों को मान दिया करते हैं। श्री प्रभुजी ने कहा-''तुम ध्यान में बैठकर उनसे कह दो कि श्री प्रभुजी का हुकुम है-चले आओ।''

हरिहरानन्द जी महाराज सामधि से उठकर चले आये। वे थे ध्यान के नशे में–नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन–रात। जब योगी योग आनन्दानुगत समाधि में होता है तो उसमें महाभावों का उदय हो जाया करता है और उसे कुछ भी सुध–बुध नहीं रहती।

श्री हरिहरानन्द जी पहाड़ से उत्तरते हुये गाँव के पास किसी वृक्ष के नीचे बैठ गये। नवयुवक थे ही। जब योगी समाधि लगाता है तो उसके शरीर की वही अवस्था रहती है जो समाधि से पहले होती है। क्यों ? वह खानपान करता नहीं है, मल– मूत्र का त्याग नहीं करता, सोता नहीं है केवल खेचरादि की क्रियाओं से अमृतपान करते रहते हैं। श्री हरिहरानन्द जी महाराज ध्यानावस्था में ही वृक्ष के नीचे लेटे हुये थे। एक ठाकुर साहब आये। वे क्रोधी और अहंकारी स्वभाव के थे वह हरिहरानन्द जी महाराज को कहने लगा–''अरे। नग्न पड़ा है यहाँ पर ? उठ यहाँ से।'' जब उन्होंने बात नहीं सुनी तो उनके शरीर पर तीन–चार बेंत मार दिये । चोट लगते ही वे समाधि से उठे–उसे देखकर कहने लगे–अच्छा! तू यहीं गिर जा, इसी समय।'' वह वहीं गिर गया और उसका शरीरान्त हो गया। श्री प्रभुजी हरिद्वार में भोजन कर रहे थे। वे कहने लगे–''अरे, अरे देखो! हरिहरानन्द ने यह क्या कर दिया। मैंने पहले ही कहा था कि वह यहाँ आने लायक नहीं है। अब उससे कह दो वहीं से वापिस चला जाये।'' कुछ गुरू भाई वहाँ गये और जाकर सारी हकीकत देखी और श्री हरिहरानन्द जी महाराज श्री प्रभु जी की वापिस जाने की आज्ञा सुनाकर उन्हें वापिस भेज दिया। यह क्यों हुआ ? यह यूँ हुआ–सिद्धांत है 'वृतिसारूप्यमितरत्र' योगी जब समाधि से उठ जाता है तब वह अपनी मूल वृति के अनुसार चेष्टा करता है। 'सदृशं चेष्टते स्वस्या प्रकृतेर्ज्ञानवानपि' ज्ञानी लोग भी अपनी प्रकृति के अनुसार वर्तते है। श्री प्रभुजी कहा करते थे ''जो लोग गुरूदेव के थपेड़े खाकर यम–निमयों की साधना नहीं करते वे उल्टे–पल्टे काम किया करते हैं और अपने आप को पतन की ओर ले जाया करते हैं। वे किसी को श्राप देंगे, या मार देंगे। इससे उनका पुण्य क्षीण हो जायेगा।'' जो दण्ड देने लायक नहीं है उनको भी दण्ड देने पर तो पुण्य क्षीण होगा ही होगा। इसलिये योग–दर्शन में भगवान् पतंजलि देव जी ने सर्वप्रथम यम–नियमों की साधना का उपदेश दिया है। उनमें यमों के अन्दर अहिंसा को सर्वप्रथम रखा है। अहिंसा व्रत का पालन करने वाला मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को दुःख नहीं देता। तुमने गौरांग महाप्रभु की एक घटना सुनी होगी। गौरांग महाप्रभु नदी से स्नान करके आ रहे थे। रास्ते में एक मुसलमान ने उन पर थूक दिया। वह दोबारा स्नान करने चले गये। इस प्रकार वह मुसलमान उन पर कई बार थूकता और वे नहाते रहे। सौ बार जब ऐसा हुआ तो उनकी अहिंसक व अक्रोध वृत्ति से प्रभावित होकर वह मुसलमान उनका अनन्य भक्त बन गया।

१२.१८ समाधिस्थ बिहारीलाल के कारज श्री प्रभुजी ने निपटाये

अमृतसर का रहने वाला बिहारीलाल एक फैक्टरी में वहां पर काम करता था और काम पर जाने से पहले हररोज श्री प्रभु चरणों में प्रणाम कर प्रभु दरबार की कुछ सेवा भी करता था। श्री प्रभुजी उसे ध्यान समाधि मे भी बिठा देते थे। उस को श्री चरणों में बड़ा अनुरागा था।

एक दिन फैक्टरी जाने से पहले वह प्रभु चरणों में समाधिस्थ हो गया। वह फैक्टरी जाते अपने घर से लंच बॉक्स हर रोज लेता जाता था, पर जिस दिन वह समाधिस्थ था उस दिन श्री प्रभुजी ने उस को ध्यान में ही रहने दिया। भक्त बिहारी लाल की पत्नी ने उस दिन लंच बॉक्स घर से न लेकर जाने पर अपने लड़के को आश्रम में भेजा। श्री प्रभुजी ने उस के बेटे से कहा कि बिहारीलाल थोड़ी देर पहले फैक्टरी गया है वहां काम कर रहा

होगा। बिहारी लाल का बेटा फिर उस की फैक्टरी गया और अपने पिता जी को काम करते हुए देख कर घर लौट आया और उस ने अपने माताजी को सारी बात बता दी। उसकी सारी चिन्ता दूर हो गई। फिर बिहारी लाल की पत्नी ने लंच बॉक्स अपने लड़के के हाथ फैक्टरी भेज दिया। उधर बिहारी लाल को श्री प्रभुजी ने कई लोक–लोकान्तर ध्यान में दिखाए। श्री कृपालु प्रभु जी ने बिहारीलाल का रूप बना हाजरी रजिस्टर पर बिहारी लाल के दस्तखत किये और उस का सारा फैक्टरी का काम भी किया। जब बिहारी लाल ध्यान से उठे तो जाना कि आज वह फैक्टरी के काम पर बहुत ही देर बाद जा रहे हैं। वह प्रभुजी को प्रणाम करके जब अपने फैक्टरी के आफिसर से मिले और देर से आने के लिये क्षमा मांगी तो उसके ऑफिसर ने कहा बिहारी लाल! तुम तो फैक्टरी पर ठीक समय आये थे आप ने हाजिरी रजिस्टर पर यह अपने दस्तखत भी किये हुए हैं। और मैं ने जब चक्कर लगाया था तो भी तुम अपना काम कर रहे थे। आप का काम सब से अच्छा है फिर भी पता नहीं आप लेट होने की बात कैसे कहते हैं। आप की अवश्य ही कोई परेशानी है जिस के कारण आप ऐसा कह रहे हैं। आप ठंडा पानी पी लें, परेशानी दूर हो जायेगी। अधिकारी की बात सुन कर बिहारी लाल ने प्रभुजी को शतशः प्रणाम किये कि आज आपने अपने भक्त की कैसे लाज बचाई।

१२.१९ सतगुरु महिमा

'क'गुरू चरणों से छूके इन्सान बदले, नाले दीन बदले ते इमान बदले।
अखाँ मीटियाँ ते चरणाँ ते सीस रखया। करां की मैं ब्यान जो स्वाद चखया।।
अखाँ खोलियाँ ते जिमी असमान बदले, नाले दीन बदले.....।
कोई पीपलाँ दे पतयाँ रब मनदा। कोई मन्दिर मसीताँ विचो रब लबदा।।
मिले सत्गरू सारे भगवान बदले, नाले दीन बदले .....।
सारे वेद किताबाँ मैं फोल थकियाँ। तेरे मिलने दा कोई भी न राह लबया।।
मिले सत्गुरू सारे ही पुरान बदले, नाले दीन बदले.....।
कोई पत्थराँ दी मूर्ति नू रब मन् दा। कोई गंगा यमुना सरस्वतती स्नान करदा।।
मिले सत्गुरू सारे ही निशान बदले, नाले दीन बदले.....।

.....

.....

नंगे पैरों धाय के, गिरते को लें थाम। ऐसे सतगुरू राम को, कोटि–काटि प्रणाम।।
दुःख वाको सपने नहिं, जाके सतगुरु राम। सँवारे अपने आप ही, धर्म अर्थ औरकाम।।
सूली को काँटा करें, काँटे को भी फूल। ऐसे सतगुरु राम को, एक घड़ी मत भूल।।
राम भरोसे जो रहे, नाम सदा उद्धार। औरन तारे आप तेरे, भवसागर संसार।।
दुखिअन के दुखड़ें हरे, क्या बैरी क्या मीत। राम बड़ाई पर मिटे, प्रीत करन को रीत।।
अपना तन ढांके नहिं, दुजन नंगा देख। ऐसा प्यारा राम का, रेख लगाए मेख।।
दुखिअन के वो दुःख टरै, जो टर सके न कोय। पीछे–पीछे नाथ फिरें, जो चाहे सो होय।।

.....

१३ प्रभु कृपा द्वारा लोक कल्याण

आनन्दकन्द सद्गुरुदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के कृपापात्र श्री रतनलाल जी (स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज) का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव

हरिद्वार एवं ऋषिकेश जैसे पावन–स्थलों की यात्रा करने वाले प्रायः सभी तीर्थ–यात्री स्वर्गाश्रम, गीता भवन एवं परमार्थ–निकेतन जैसे प्रेरणाप्रद स्थलों से परिचित हैं। ऐसे महानुभावों को कदाचित् ध्यान होगा कि परमार्थ निकेतन एवं गीता–भवन के मध्य परमार्थ योगाश्रम नामक एक छोटा सा आश्रम स्थित है। उस आश्रम के संस्थापक एक सन्यासी महात्मा हैं, वे महात्मा ही योगी कृष्णानन्द जी है। अब तो वे सन्यासी हो गए हैं। इस आश्रम को ग्रहण करने से पूर्व इन्होंने योग–दीक्षा योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज से प्राप्त की थी।

१३.१ श्री सद्गुरुजी की खोज

स्वामी कृष्णानन्दजी का पूर्व नाम श्री रतनलाल था। इनका जन्म पवित्र अग्रवाल घराने में, मुजफ्फरनगर नामक नगर में हुआ था। रतनलाल जी कुछ घरेलू झगड़ों से विरक्त होकर भ्रमणार्थ ऋषिकेश आए थे। इनके घर में कथा–कीर्तन, सत्संग, महात्माओं के सदुपदेश समय समय पर हुआ करते थे। कुछ पूर्व–संस्कार इस प्रकार के थे कि इनके मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया और इन्हें घरेलू झंझटों को सदा के लिए त्याग देना ही उचित लगा। ऐसा निश्चय करके यह उत्तराखण्ड की यात्रा करने के लिए चले गए और जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कराने वाले किसी परिपूर्ण योगिराज जी की आवश्यकता अनुभव करने लगे।

उतराखण्ड की यात्रा से विचरते–विचरते रतनलाल जी फिर ऋषिकेश आ पहुंचे। अब इनके मन में यह तीव्र लगन लग गई थी कि उनको किसी परिपूर्ण सद्गुरुदेव जी के दर्शन प्राप्त हों। इसी प्रकार के योगाचार्यों की खोज में इनका यत्र–तत्र भ्रमण चलता रहा। बड़े–बड़े मण्डलेश्वरों एवं मठाधीशों के दर्शन भी इनके मन को शान्ति–लाभ न करा सके। उपदेष्टा तो सभी थे, किन्तु किसी ऐसे योगैश्वर्य सम्पन्न सद्गुरुदेव के दर्शन नहीं मिले, जो–''दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य में योगैश्वर्यम्''–को प्रतिज्ञापूर्वक कहता हुआ अनुभूति–मार्ग में प्रविष्ट करा सकता। इतना घूमने पर भी जब इन्हें मनोनुकूल योगिराज के दर्शन प्राप्त नहीं हो सके, तो इन्हें सवाभाविक ही निराशा होने लगी। अब उनका यह विचार बनने लगा कि ऋषिकेश में उनको कोई पथप्रदर्शक नहीं मिलेगा। अतः अब घर ही क्यों नहीं लौट चलें ? व्यर्थ भगवा–वस्त्र पहिन साधु बन भिक्षाटन करने से क्या लाभ ? इससे तो घर पर व्यापार आदि साँसारिक कार्य करते हुए ही जीवन व्यतीत कर लेंगे।

१३.२ श्री रतनलाल जी (स्वामी कृष्णानन्द) पर प्रभु कृपा

एक दिन इसी विचार में निमग्न, निराश हुए रतनलाल जी रेलवे स्टेशन की ओर जा रहे थे। अन्ततः घर लौट जाने का ही निश्चय उन्होंने कर लिया था। मार्ग में अचानक उनके नेत्रों ने एक स्थान पर लिखा देखा 'श्री योग साधन आश्रम'। चलते–चलते पैर रुक गये, मानो हठात् किसी ने रोक लिया हो। 'योग साधन आश्रम' शब्द पढ़ते ही इनको लगा, मानो जो खोज रहे थे वह मिल गया है। आश्रम के भीतर प्रवेश करके सब कुछ

ज्ञात करने की तीव्र इच्छा इनके मन में जाग उठी। उन्हें पूर्ण विश्वास सा हो रहा था कि अवश्य ही कोई परिपूर्ण योगिराज जी इस आश्रम में निवास करते हैं। ऐसा विचार करके श्री रतनलाल जी ने आश्रम में धीरे धीरे प्रवेश किया। सामने ही आराम कुर्सी पर विराजमान श्री प्रभुजी के दर्शन कर इनको लगा–जिनकी खोज थी, वह मिल गए हैं। अन्य आश्रमों से भिन्न इस प्रकार के पवित्र वातावरण वाले आश्रम में प्रवेश करने का रतनलाल जी का यह प्रथम अवसर था। सायंकाल लगभग पाँच बजे का समय था, यह आश्रम का सत्संग का समय रहा करता था। इस कारण श्री प्रभुजी के आस पास बैठे सत्संगी भाई–बहिन ध्यानादि की कुछ चर्चाएं कर रहे थे। दूसरी ओर एक भाई श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में बैठकर दूर नगरों में रहने वाले सत्संगियों के आए पत्रों को पढ़ कर सुना रहे थे। उन पत्रों में बड़े बड़े ध्यानानुभव लिखे थे। यह सब देख सुनकर रतनलाल जी का हृदय श्री प्रभुजी के पावन चरण–कमलों की ओर और भी अधिक आकर्षित हुआ। उन्होंने अत्यन्त विनम्र भाव से श्री प्रभुजी से प्रार्थना की–प्रभुजी, ''आप करूणासागर हैं। कृपा करके मुझें भी अपनी शरण में ले लीजिए।''

१३.३ श्री रतनलाल जी (स्वामी कृष्णानन्द जी) को शरण प्रदान

इनकी इस विनम्र प्रार्थना पर श्री प्रभुजी मुस्करा पड़े और मुखारविन्द से स्वीकृत सूचक ''अच्छा'' शब्द निकल गया। दूसरे दिन साधारण पत्र–पुष्प स्वीकार कर अनन्त शक्ति सम्पन्न श्री प्रभुजी ने रतनलाल को शक्तिपात दीक्षा दी। जिसके फलस्वरूप उनमें बड़ी तीव्रगति से शक्ति संचरित हुई। श्री प्रभुजी ने उन्हें कुण्डलिनी योग का उपदेश देकर मूलाधार कमल में श्री गणपति जी का ध्यान करने का आदेश दिया। अब श्री रतनलाल जी श्री प्रभुजी के आदेश के अनुसार अपना ध्यानाभ्यास करने लग गए और उतरोतर प्रगति करने लगे। जैसे–जैसे ध्यानाभ्यास परिपक्व होता गया, वैसे वैसे ही मूलाधार कमल के प्रत्यक्ष दर्शन उनको बने रहने लगे। कुछ ही समय में रतनलाल जी का आश्चर्यजनक रूप से काया–कल्प ही हो गया। वह हर समय ध्यानस्थ रहने लगे। पान खाने और बीड़ी पीने का इनका विशेष व्यसन भी ध्यान की उच्चतम स्थिति में स्वतः ही छूट गया। उन्हें कण कण में मूलाधार कमल के दर्शन निरन्तर बने रहने लगे सारांश यह कि संसार भूल गया, केवल ध्यान में अपने घ्येय गणपति में लीन रहने लगे। श्री रतनलाल जी की ऐसी उच्च–स्थिति इतनी शीघ्र बन गई कि सारे ही आश्रमवासी आश्चर्य करने लगे। उनके मुखमंडल पर हर समय एक विशेष तेज विराजमान रहने लगा। ध्यान की उच्चतम स्थिति में उनको हिमालय के अनेकों सिद्धों के दर्शन एवं कई प्रकार के वरदान प्राप्त हुए। यह बड़े ही आश्चर्य का विषय था कि दो मास पूर्व का एक साधारण गृहस्थ व्यक्ति, इतने अल्प समय में ही अत्यन्त उच्चकोटि का सन्त बन गया था। आश्रमवासी प्रायः देखा करते थे–ध्यानस्थ रतनलाल जी के शरीर पर से निःसंकोच बिच्छू व सर्प गुजर जाते हैं, परन्तु उनको किसी प्रकार की भी चेतना नहीं होती थी।

१३.४ ध्यान में चाकू की तलाश

लीलाप्रिय आनन्दकन्द श्री प्रभुजी यदा कदा अपने बालकों का मान बढ़ाने के लिए खेल किया करते थे। खेल खेल में ही सर्वसाधारण के समक्ष अपने बालकों की अद्भूत शक्तियों का प्रदर्शन कर दिया करते थे। फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति जान लेता था कि इन

बालकों के भीतर किसी महती शक्ति का प्रवेश है। एक बार श्री प्रभुजी ने एक ऐसा ही खिलवाड़ किया।

श्री प्रभुजी मध्यान्ह-काल में भोजन करके उठे थे। श्री रतनलाल जी ध्यान से उठकर दीवार के एक कोने को पकड़े, इस आशा में खड़े थे कि श्री प्रभुजी के आने पर चरणारविन्दों में नमस्कार करूँगा। वह उसी द्वार के मार्ग में खड़े थे, जिससे प्रभुजी अन्दर जाया करते थे। आज श्री प्रभुजी को खिलवाड़ सूझा-अतः नित्य वाले द्वार से न जाकर दूसरे ही द्वार से धीरे से अन्दर जाकर अपने सिंहासन पर बैठ गए। श्री प्रभुजी ने ऐसा इस लिए किया था जिससे रतनलाल उनको देख न पाएँ और यही समझते रहें कि अभी श्री प्रभुजी भोजन ही कर रहे होंगे। किन्तु ऐसा नहीं हो सका, जैसे ही श्री प्रभुजी सिंहासन पर विराजमान हुए त्यों ही अकस्मात् रतनलाल जी दीवार से हटकर श्री प्रभुजी के चरण कमलों में पड़े दिखाई दिए। वहाँ पर बैठे सभी सत्संगी भाईयों ने इस आश्चर्य को देखा कि किसी अव्यक्त शक्ति ने उनके मन को घुमा कर श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों की ओर आकर्षित कर दिया था। सभी आश्चर्य में पड़ गए और अत्यन्त विनयपूर्वक श्री प्रभुजी के चरण कमलों में जिज्ञासा प्रगट करने लगे-''प्रभुजी, रतनलाल जी को यह बोध किस प्रकार हुआ ?''

श्री प्रभुजी ने कहा-''रतनलाल में यह सामर्थ्य है कि वह इस प्रकार की सब बातों को जान सके।'' श्री प्रभुजी के मुखारविन्द से यह वचन निकलने पर उन सभी के मन में यह लालसा उत्पन्न हुई कि वे कोई ऐसी विलक्षण घटना देखें जिससे इस कथन की पुष्टि होती हो।

अन्तर्यामी श्री प्रभुजी उन लोगों के मन के भाव समझ गए और एक ऐसा ही अवसर उपस्थित हो गया। आश्रम का एक चाकू खो गया था। कई घण्टों से उसकी तलाश की जा रही थी, परन्तु मिल ही नहीं रहा था। सहसा उन सभी आश्रमवासियों के मन में अभिलाशा हुई कि रतनलाल जी अपनी ध्यान दृष्टि से उस चाकू के स्थान की तलाश करें। उन सब के मानस अभिप्राय को समझकर श्री प्रभुजी थोड़ा हँसे और रतनलाल जी से कहने लगे-''अरे रतन, जब इन सबकी यही इच्छा है, तो तू उस चाकू की तलाश कर ही दे।'' श्री प्रभुजी की आज्ञा पाते ही रतनलाल जी उठ पड़े। नेत्र बन्द किए हुए ही उस स्थान पर पहुंचे जहाँ पर वह चाकू पड़ा हुआ था। आँखे बन्द ही किए उन्होंने वह चाकू उठा कर सब को दिखा दिया। इस घटना से अचरज में पड़े उन सभी लोगों ने यह जान लिया कि श्री रतन लाल में कितनी बड़ी शक्ति है। अस्तु, इस प्रकार की अन्यान्य घटनाएँ भी घटती रहीं। अपने अन्दर इस प्रकार के दिव्य-विकास को देखकर रतनलाल जी का अभ्यास और वैराग्य उतरोतर बढ़ता ही गया। अपने ध्यानाभ्यास में उन्होंने कई प्रकार के दिव्य मन्त्र, गुप्त क्रियाएँ और दिव्य औषधियों को सिद्धों के द्वारा प्राप्त किया था।

१३.५ सवाँई में श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का चौथा पदार्पण (ई० 1930)

कृपालु श्री प्रभु जी भक्तों की प्रार्थना पर उन्हें संवाई दिखाने के लिए अपने बच्चों श्री मुलखराज जी महाराज तथा ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज आदि को साथ लेकर संवाई ग्राम आये। संवाई ग्राम श्री प्रभुजी की तपोभूमि रही है और यहां पर श्री प्रभु जी ने कई अद्भुत घटनाएँ कीं। 22 अप्रैल 1930 को संवाई बगीचे में श्री प्रभुजी भक्त समाज के मध्य में विराजमान हो, अपने दिव्य दर्शन व उपदेश से सब को आनन्द प्रदान कर रहे थे। तो एक जवाहर नाम का पहलवान बागीचे में प्रविष्ट हो श्री प्रभु चरणों में गिरकर

प्रार्थना करने लगा-''महाराज 17 वर्ष कष्ट में व्यतीत हुए, अब कृपाकर क्षमा कीजिए।'' तब श्री प्रभुजी ने फरमाया-''भैया! तुम ने हमारा क्या बिगाड़ा है जो क्षमा के लिये कह रहे हो?'' इस पर पहलवान ने प्रार्थना की-''महाराज अज्ञान और अभिमान के कारण आप के बाल शिष्य के सन्मुख वार्तालाप में पांव आगे बढ़ाकर मुख से यह शब्द निकल गये थे कि वह इस पांव को हिलाकर दिखलाये। तब आप के शिष्य ने कह दिया था कि इस को ऐसे ही रहने दो। इसे हिलाने की कोई जरूरत नहीं। तब से यह पाँव और घुटना उसी प्रकार टेढ़ा और कष्ट में है। इस के बहुत इलाज किये, कहीं से किंचित भी लाभ नहीं हुआ। अब कृपा कर इस कष्ट को हर लीजिए।''

पहलवान के इन दुःख भरे शब्दों को सुन कर श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभु चरणों में प्रार्थना की-''हे नाथ, अब इस ने काफी दण्ड भुगत लिया है। कृपा कर इसे क्षमा कर दीजिए।'' तब श्री करूणासागर प्रभुजी ने आज्ञा प्रदान की-''पुत्र! पहलवान के घुटने की चपनी को हरकत दे दो, तो यह ठीक हो जायेगा।''

श्री मुलखराज जी महाराज ने पहलवान से संवाई में हुई दिव्य घटनाएँ सुन कर, श्री प्रभु चरणों का ध्यान कर, पहलवान के घुटने पर हाथ रखकर हरकत दी तो वह 17 वर्ष का कष्ट क्षणभर में शान्त हो गया। सर्व भक्त समाज श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में नतमस्तक हो जय जय कार की ध्वनि करने लगे।

१३.६ श्री प्रभु जी द्वारा शरणागत अन्धी कन्या को ज्योति दान

दूसरे रोज जब भक्तों के मध्य में श्री प्रभुजी विराजमान थे तो एक दम्पति अपनी पन्द्रह वर्ष की अंधी कन्या को लेकर श्री प्रभु चरणों में प्रार्थना करने लगे, महाराज! ''इस कन्या के शरीर पर माता निकलने के कारण अब इस का शरीर अति दुर्बल और आँखें अन्धी हो गई है। इस कारण अब यह विवाह के योग्य नहीं रही। हमनें सुना है कि आप के आशीर्वाद से सभी कष्ट दूर हो जाते है। अतः हम मंदभागी पतित जीवों पर भी कृपा कीजिए, जिस से इस लड़की की आँखों की ज्योति पुनः आ जाये और हम इस के कष्ट से मुक्त हो सकें।'' श्री प्रभुजी ने फरमाया, ''दृष्टि की क्षीणता तो साधनों द्वारा ठीक हो सकती है किन्तु अन्धी आंखों का कोई इलाज नहीं।'' ऐसा सुनकर वह दम्पति निराश होकर जाने लगे। तब श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभुजी के चरणों को पकड़ कर प्रार्थना की ''नाथ! यदि यह आप के दरबार से खाली चले गए तो आप का नाम दुःख भंजन कैसे होगा''? तब श्री प्रभुजी ने फरमाया-''पुत्र! यदि कुछ भी दृष्टि होती तो हम साधनों द्वारा ठीक कर देते।'' तब श्री मुलखराज जी नेएक मुरादाबादी लोटा लेकर, सूर्य के सन्मुख कर उस देवी की आंखों पर प्रतिबिम्ब डाला और पूछा-''बतलाओं, आप को कुछ दृष्टिगोचर होता है?'' तो उत्तर में उस देवी ने कहा, ''नहीं।'' इस पर श्री प्रभुजी ने फरमाया-''राजा जी! अब तो टैस्ट कर लिया।'' तब श्री मुलखराज जी ने प्रार्थना की-''प्रभो आप तो शरणागत पालक हैं। आप की शरण में आकर कोई भी निराश नहीं लौटा। इस देवी पर भी कृपा कीजिए।'' तब श्री करूणासागर जी ने करूणा कर आज्ञा प्रदान की-''पुत्र! इन भक्तों को कह दो कि बागीचे के भीतर हमारे सरोवर में यदि कुछ दिन इस लड़की को नित्य स्नान करायेंगे तो इस लड़की के सर्व दुःख नष्ट हो जायेंगे।'' तब उन भक्तों ने अपनी लड़की को वहाँ नित्य स्नान कराया। इस प्रकार कुछ ही दिनों में उस लड़की को दोनो आँखों व शरीर भी पूर्ण आरोग्यता को प्राप्त हो, ऐसी कान्ति को प्रकटाने लगे कि कोई पहचान भी न पाता था कि इस देवी की आँखो या शरीर को कोई कष्ट आया था।

श्री भवसागर के त्राता श्री प्रभुजी संवाई गांव के भक्तों की शरीरिक व आत्मिक उन्नति के लिये उन्हें अपने ब्रह्मचारी गोपालानन्द तथा श्री मुलखराज जी द्वारा योग साधन करवाते रहे। जब श्री प्रभुजी संवाई गांव से बिदा होने लगे तो गुफा व बागीचा बनाने वाले भक्त प्यारे लाल, लाला अशर्फीलाल आदि भक्तों ने व संवाई के सर्व भक्त समाज ने मिलकर अनन्य भक्ति भाव से श्री प्रभु चरणों का पूजन किया तथा पुष्पों की वर्षा कर जय जयकार की ध्वनि से आकाश गुंजा दिया। श्री प्रभुजी वहाँ के सब भक्तों को आशीर्वाद देकर चल दिये। श्री प्रभुजी ने अमृतसर आकर योग साधनों और योग उपदेशों द्वारा कई लोगों का कल्याण किया।

१३.७ अमृतसर में बैठे प्रभु रामलाल जी महाराज का जम्मू में स्थित अपने एक शिष्य को अपना चित्र पकड़ाना

अमृतसर में एक बार लगभग चार महीने तक श्री प्रभुजी की दाढ़ी और जटायें बढ़ गई। किन्तु चार महीने के बाद श्री प्रभुजी ने अपनी दाढ़ी कटवा ली एवं पूर्ववत गृहस्थ रूप में रहने लगे। वहाँ अमृसर दरबार में श्री प्रभुजी का एक बड़ा ही सुन्दर चित्र रखा हुआ था। वह चित्र कहीं गुम हो गया और सभी को यह आश्चर्य लगा कि चित्र गया तो कहाँ गया। कुछ समय के बाद एक घटना घटित हुई एवं पूरे–पूरे रहस्य का ज्ञान सभी को हो गया।

अमृतसर का कोई व्यक्ति भगवती वैष्णव देवी के दर्शनार्थ गया। वह ब्राह्मण शरीर था। रास्ते में जाते हुए उसने किसी के मुख से सुना कि यहाँ पर बड़े भारी ऊँचे सिद्ध योगीराज महात्मा रहते हैं। वह व्यक्ति जगदम्बा भगवती वैष्णव देवी के दर्शन करके लौट आया। रास्ते में आते–आते उसके मन में यह भावना बनी रही कि जो इस पहाड़ में सिद्ध योगीराज महात्मा रहते हैं उनके भी किसी प्रकार दर्शन हो जाएँ। किन्तु उस के ऐसे सोचने पर भी ऐसा हो नहीं पाया। उसके मन में बड़ा पश्चाताप सा होने लगा कि महात्मा जी के दर्शन नहीं हो पाए। उसके मन में ब्रह्मणत्वेन कुटुम्बी भाई होने के कारण श्री प्रभुजी के चरण कमलों में आस्था कम थी। किन्तु फिर भी उसके मन में यह विचार आया कि हम श्री प्रभुजी को याद करके देख तो लें और उन्हीं से महात्मा जी के दर्शन कराने की प्रार्थना भी करें। वह व्यक्ति मन ही मन श्री प्रभुजी के चरणों में प्रार्थना करने लगा। महाराज! ''हमने सुना है कि आप सर्वशक्तिमान हैं। सो कृपा कर के मुझे इन महात्मा जी के दर्शन करा दीजिये।'' जब उस व्यक्ति ने मन ही मन श्री प्रभुजी के चरण कमलों में प्रार्थना की तो एक तेज पुन्ज आकाश में चक्कराकार बना हुआ सामने आया। उस तेजपुञ्ज से महात्मा निकले तब व्यक्ति के मन में बहुत ही आश्चर्य हुआ और महात्मा जी को दण्डवत प्रणाम किया। महात्मा जी ने कहा–''क्यों ! तू यहाँ कैसे आया है।'' उसने उत्तर दिया–''महाराज मेरे मन में आप के दर्शन करने की अभिलाषा थी इसीलिये मैं यहां काफी देर से खड़ा था।'' महात्मा जी ने उसे डांट कर कहा, ''क्यों ? तू सर्य को छोड़ कर दीया देखने आया हैं।'' उस व्यक्ति ने कहा–''महाराज! मैं आप की बात को समझ नहीं पाया हूं। कौन सूर्य और कौन दीया। कृपा कर समझा दीजिए मैं तो केवल मात्र आप के दर्शन के लिए आया था।'' महात्मा ने उत्तर दिया–''वे सूरज हैं, जिनसे तू प्रार्थना कर रहा था मुझे महात्मा के दर्शन करा दो। वही सूरज हैं और मेरे गुरूदेव भी वही हैं। चल आ, मेरी गुफा देख ले।'' वह महात्मा उस ब्राह्मण को अपनी गुफा में ले गये। उस ब्राह्मण को भीतर जाकर के एवं गुफा देखकर के बहुत ही आश्चर्य हुआ कि बिना किसी गैस बत्ती के व बिना बिजली के ही वह गुफा प्रकाश से भरी हुई थी। अमृतसर में जो बड़ा चित्र गुम

हो गया था वह चित्र यहां पर उस गुफा में विराजमान किया हुआ था। चित्र को देखकर के उस व्यक्ति को बड़ा ही आश्चर्य हुआ क्योंकि वह चित्र उसका देखा हुआ था और उसको इस बात का भी पता था कि वह चित्र किसी ने चुरा लिया है। खूब ढूंढने पर भी वह चित्र मिल नहीं पाया था। ब्रहामण ने महात्मा जी से विनीत भाव से पूछा महाराज! ''यह चित्र आपके पास कैसे आया? इस स्वरूप के दर्शन तो हम अमृतसर में ला. मुन्नीलाल जी की कोठी पर किया करते थे।'' महात्मा ने उत्तर दिया–''हां! तुम ठीक कहते हो। जिस समय प्रभुजी ने छः महीने अपनी जटायें बढ़ा ली थीं, मौन रहकर अकेले कमरे में रहने लगे थे उस समय उनका विचार तत्काल नेपाल धाम को चले जाने का था। उनके इस विचार को देखकर के मैं और मेरे साथ चार या पांच और सिद्ध महात्मा श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ अमृतसर गये थे। हम लोगों ने ही प्रार्थना की थी कि ''प्रभो! कुछ समय और आप भूमण्डल पर बने रहे। जिससे और लोगों का भला हो।'' हमारी प्रार्थना करने पर ही उन्होने दाढ़ी वगैरह कटवा ली थी ओर साधारण वेष में परोपकार के लिए रहने लग गये थे। इतनी ही प्रार्थना करके एवं अपनी प्रार्थना को स्वीकार कराकर हम लोग लौट आये थे। यह चित्र मैंने वहीं देख था और मेरे मन में यह अभिलाषा बनी रही कि किसी प्रकार यह चित्र मुझे मिल जाये। मैं अपने मन में नित्य प्रति यही सोचता रहता था। एक रोज स्वयं श्री प्रभुजी ने ही यह चित्र वहाँ से उठाकर के मुझे यहाँ दे दिया। तब से मैंने इस स्वरूप को यहाँ अपनी गुफा में विराजमान कर लिया है। तब सभी को इस बात का ज्ञान हुआ कि श्री प्रभुजी का वह चित्र चुराया नहीं गया प्रत्युत उन्होंने ही अपने लम्बे हाथों से उस महात्मा को जम्मू में पकड़ा दिया। इस प्रकार वहां निवास काल में अनेकानेक घटनायें घटित होती रहीं।

१३.८ खेचरी के लिए जीभ काटने पर श्री प्रभुजी द्वारा रक्षा *(श्री चन्द्रमोहनजी के शब्दों में)*

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के कनखल चले जाने के बाद मेरा मन दो एक दिन कुछ उपराम जैसा रहा और मैं खेचरी का अभ्यास नहीं कर सका। एक रोज मैं ध्यान में बैठा तो मैंने देखा कि श्री प्रभुजी सामने खड़े हैं और कह रहे है। कि ''अरे अन्यायी, देख खेचरी करता रहता, तो गंगा जी के जल पर इस प्रकार नंगे पैर चलता'' श्री प्रभुजी ने मुझे गंगा जी के जल पर चलते हुए सिद्धों को दिखलाया। यह दृश्य देखकर के मेरे मन में बहुत बड़ी जलन सी हुई और प्रातः काल ध्यानाभ्यास के बाद खेचरी करना आरम्भ कर दिया और ब्लेड उठाकर के जिव्हा के नीचे के तन्तु को मैंने काफी अधिक मात्रा में काट दिया। मेरा मुख खून से भर गया। जब मैंने अपनी जिव्हा को ब्लेड से काटा तो प्रत्यक्ष खुली आंखों से मैंने देखा कि श्री प्रभुजी सामने आए और मेरे हाथ से ब्लेड छीन लिया और कहने लगे, ''खबरदार आज से खेचरी न करना इस तरह क्या तू गूंगा बनेगा।'' उधर मुजफ्फरपुर के मेरे गुरू भाई रत्नलाल ध्यान में बैठे हुए थे। उनको ध्यान में प्रकट होकर श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी, ''अरे रत्नलाल। देख इस लड़के ने जीभ काट ली है अब यह बोल नहीं सकता। यह जड़ी यहां से उखाड़ ले। इसको कूट कर रस निकाल कर इसके मुख में भर दे इसके फलस्वरूप इसकी जिव्हा ठीक हो जाएगी। अन्यथा यह गूंगा हो जाएगा। सभी लोग कया कहेंगे कि क्या योगियों के बच्चे गूंगे होते हैं।'' श्री प्रभुजी ने वह जड़ी पुराने डाकखाने के सामने जीन्दवाड़ा की एक झाड़ में दिखाई। भाई रत्नलाल जी उस जड़ी को उखाड़ लाए और घोट कर रस निकाल कर मेरे मुख में भर दिया। इसके फलस्वरूप मेरी जिव्हा मिल गई और मै धीरे–धीरे बोल उठा। उसके बाद श्री प्रभुजी ने मुझे कनखल बुला लिया और आश्रम में भाई रत्नलाल के साथ किसी और गुरू भाई को

छोड़ दिया। मुझे कनखल पहुंचते ही श्री प्रभुजी ने कहा, ''खबरदार। अब खेचरी नहीं करना। तू तो एक ही दिन में सिद्ध होना चाहता था। प्रभु कृपा से ठीक हो गया अन्यथा जिंदगी भर के लिए अपने आप को खो लेता। अब खेचरी नही करना।'' श्री आनन्दकन्द प्रभुजी की आज्ञा को मानकर के मैंने खेचरी का अभ्यास तो छोड़ दिया किन्तु मैं और मेरे छोटे गुरू भाई नरसिंह मूर्ति जी न्यौली व वस्ति का अभ्यास वहां भी करते रहे।

१३.९ श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की वन यात्रा तैयारी पर श्री प्रभुजी महाराज का आज्ञा पत्र *(श्री चन्द्रमोहनजी महाराज के शब्दों में)*

ऋषिकेश में रहते हुए भी मेरे मन में तीव्रतम विचार धाराएं इस प्रकार की बनी रहती थी कि मैं कहीं एकान्त जंगलों में चलूँ और तीव्रतम अनुष्ठान आदि करूं। इस प्रकार के अनुष्ठान मैंने कोई एक किये भी। दो तीन बार स्वार्गाश्रम में कुटियाएं लेकर के अनुष्ठान किए। एक बार वशिष्ठ गुफा जाकर अनुष्ठान किया। एक बार ब्रह्मपुरी में स्वामी राम की गुफा में किया। किन्तु यह सब करते रहने पर भी मेरे मन की प्यास नहीं बुझी। मन में इसी प्रकार की धारणा व विचार बनते रहे कि मैं कहीं घनघोर जंगलों में चलूं जहां किसी भी प्रकार से साधारण जनसमाज का प्रवेश बिल्कुल न हो। मेरे मन में श्री बद्री नारायण जी के मन्दिर में ऊपर शतपथ में जाने की धारणा बहुत अधिक बनी हुई थी। एक बार आश्रम के मेरे एक बड़े गुरू भाई चिरंजीलाल वहां मौजूद थे। उस समय मैंने शतपथ जाने का दृढ़ विचार बना लिया। बाल स्वभाव से मैंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में इस प्रकार की कोई सूचना नहीं दी एवं चुपचाप आश्रम का सारा कार्यभार भाई चिरंजी लाल को संभलवा कर शतपथ जाने का दृढ़ विचार बना लिया और एक मैंने अपने सारे शरीर पर विभूति रमा ली और दो मृग छालाएं धारण कर ली। एक कटि प्रदेश में और दूसरी स्कन्ध प्रदेश में और एक छोटा सा कम्बल साथ लेकर के 'शतपथ' जाने का दृढ़ विचार बना करके मैं दोपहर को लगभग 11 बजे आश्रम से चल पड़ा। आश्रम के मुख्य द्वार पर पहुंच कर मैंने आगे चलने के लिए अपना दाहिना पैर मुख्य द्वार से आगे बढ़ाया इतनी देर में ऋषिकेश के पोस्टमैन ने मुझे एक पत्र दिया। वह पत्र श्री आनन्दकन्द परम अन्तर्यामी श्री प्रभुजी का था। उस पत्र में लिखा था, ''बेटा! हम वस्तियों में बैठे हैं और तुम वनों को जा रहे हो यह उचित नहीं है। जो कदम तुमने आगे बढ़ा लिया है। उसको पीछे हटा लो। अभी तुमने काफी सेवाएं करनी है। बहुत बड़ा काम प्रभु तुमसे कराएंगे इसलिए वन न जाकर के आश्रम की अन्य सेवाओं में लगे रहो।'' श्री प्रभुजी के इस आज्ञा पत्र को पाकर मुझे बहुत बड़ा आश्चर्य भी हुआ। क्यों कि मैंने तो वन जाने की बाबत श्री प्रभुजी से कुछ कहा ही नहीं था किन्तु उन सर्वशक्तिमान अन्तर्यामी ने मेरे सब मनोभाव जान लिए और ठीक समय पर ही पोस्टमैन ने मुझे वह पत्र दिया और मैं उस पत्र को पढ़कर के आश्रम में ही रूक गया और जैसी–जैसी श्री प्रभुजी की आज्ञा होती रही, वही–वही काम मैं करता रहा।

१३.१० प्रभु कृपा की वर्षा *(श्री चन्द्रमोहनजी महाराज के शब्दों में)*

एक बार ऋषिकेश के निवास काल में मैंने धोखे से श्री प्रभुजी की धोती पहन ली थी। यह देखकर आदरणीय गुरू माता जी ने मुझसे कहा, ''बेटा यह उनकी धोती तुमने क्यों पहन ली ? यह तुम्हारी नहीं है।'' श्री प्रभुजी सामने बैठे हुए थे वे हँस पड़े और अपने शरीर से कमीज उतार करके मुझे पहना दिया और कहने लगे, ''धोती ही नहीं यह कमीज भी पहन ले।'' श्री प्रभुजी की आज्ञा पूर्वक मैंने यह पहन लिया। उस समय श्री प्रभुजी ने

अपने मुखारविन्द से कहा-''कि, जा, अब जो कुछ करना चाहे वह कर। सब कामों में सफलता मिलेगी।'' मैंने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की, ''प्रभुजी मैं क्या करूंगा। मैं तो कुछ जानता ही नहीं।'' इस पर श्री प्रभुजी ने कहा, ''तू क्या करेगा, करने वाले करेंगे किन्तु काम सब होते रहेंगे।'' श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के ये वचन मुझे बराबर याद आते रहते हैं। उनके ऐसे कह देने के बाद असंख्या लोगों के भले हुए। करने वाले करते रहे, बीच में निमत्त मैं बनता रहा।

१३.११ सरदार टहलसिंह जी द्वारा श्री प्रभु जी महाराज की अद्भुत लीला

(श्री चन्द्रमोहनजी महाराज के शब्दों में)

अपने ऋषिकेश आश्रम में पंजाब में जालन्धर के पास गुरू का बटाला के रहने वाले सरदार टहल सिंह रहते थे। जिन्होनें श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के चरणारविंद में योग दीक्षा प्राप्त की थी। उनकी ध्यान स्थिति बहुत ऊँची थी। उन दिनों स्वर्गाश्रम में कोई महामण्डलेश्वर उदराध्मान रोग से भयंकर पीड़ित थे और उन्होंने बड़े-बड़े ऊँचे डाक्टरों का इलाज करवाया। देहरादून, दिल्ली आदि से डाक्टर आए परन्तु रोग की शांति नहीं हुई। उन ही दिनों हमारे एक गुरू भाई ला. चण्डीप्रसाद कलकत्ते वाले वहाँ रहते थे। उनकी स्त्री अर्धांग रोग से पीड़ित थी। उसका इलाज कराने के लिए वे कलकत्ता से ऋषिकेश श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में आए थे। वह रहते स्वर्गाश्रम में थे। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में साधन कराने से उनकी स्त्री बिल्कुल ठीक हो गई। उन्होंने उन महामण्डलेश्वर जी से श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाने की प्रार्थना की। वह खुद तो नहीं आए किन्तु अपने दो नवयुवक शिष्योंको श्री प्रभुजी को बुलाने के लिए ऋषिकेश आश्रम में भेज दिया। उन नौजवान सन्यासियों को श्री प्रभु जी के स्वरूप को देखकर के यह बिल्कुल विश्वास नहीं हुआ कि इनके वहाँ जाने से श्री मण्डलेश्वर जी को कोई लाभ हो पायेगा क्योंकि वहाँ उनके इलाज के लिए बड़े-बड़े सर्जन आ चुके थे पर किसी से कोई लाभ नहीं हुआ। किन्तु फिर भी ला. चण्डीप्रसाद के कथनानुसार वह श्री प्रभुजी से बारं-बार स्वर्गाश्रम चलने का आग्रह करते रहे। उनके बारं-बार आग्रह करने पर भी श्री प्रभुजी तो नहीं गए और यही कहते रहे, ''भाई, इस प्रकार कहीं जाने का हमारा नियम नहीं है। किन्तु तुम नहीं मानते तो इस सरदार टहल सिंह को ले जाओ। यह उनको ठीक करके आ जाएगा।'' यह सुनकर दोनों नौजवान सन्यासी लड़के जोरों से हंस पड़े। श्री प्रभुजी से कहा, ''महाराज हमारे गुरू जी तो रोग से भयंकर पीड़ित हैं आप वहां चल नहीं सकते तो कम से कम आप उपहास तो मत कीजिए।'' श्री प्रभुजी ने उत्तर में कहा, ''हम उपहास नहीं कर रहे हैं। किन्तु ठीक करेगा तो यह सरदार ही करेगा। अन्यथा उनका बचना असम्भव हैं।'' सरदार टहल सिंह की वेशभूषा गांव के गंवार लोगों जैसी थी। कपड़ों से दुर्गन्ध आती थी। बहुत ही मैले कपड़े पहने हुए थे। टहल सिंह ने स्वयं श्री प्रभु जी से कहा प्रभु जी, ''मैं क्या करूंगा। मैं तो कुछ जानता ही नहीं।'' उनके उत्तर में श्री प्रभुजी ने कहा-''तुम क्या करोगे, तुमने क्या करना है। तुम तो जाकर के उस महात्मा के पेट को छू देना बस ठीक हो जाएगा।'' दोनों नवयुवक सन्यासी लड़के यह सुनकर श्री प्रभुजी से कहने लगे कि, महाराज! ''क्या इसके हाथ में जादू है ?'' श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि, ''हाँ इसके हाथ में जादू है। यह छुएगा तो अवश्य ठीक हो जाएंगे।'' यह सब बातें हो जाने के बाद वह दोंनों सन्यासी लड़के कलकत्ते वाले ला. चण्डीप्रसाद व टहल सिंह को वहां महामण्डालेश्वर जी के पास ले गए। सरदार टहल सिंह जी के वहां पहुंचने पर उसकी वेशभूषा को देखकर

के श्री महामण्डलेश्वर जी ने भी मन में घृणा ही मानी और अपने मन ही मन कहने लगे, किस गंवार को ले आये हैं। यह हमारा क्या करेगा। किन्तु फिर भी सभी लोगों ने आग्रह करके श्री महामण्डलेश्वर जी के पेट को दिखलाया। भाई टहल सिंह ने उनके पेट को स्पर्श किया और कहा, ''ओ–हो! स्वामी जी का पेट तो बहुत फूला है।'' किन्तु टहल सिंह के स्पर्श करने के दो या चार मिनट बाद ही बड़े जोर का दस्त हुआ। दस्त की दुर्गन्ध सारे कमरे में फैल गई। उस दस्त के हो जाने के बाद श्री महामण्डलेश्वर जी बिल्कुल ठीक हो गये। उन्होंने स्वयं श्री प्रभ ुजी के चरणारविन्द में पहुंच कर दण्डवत प्रणाम किया और अपने आप को कृतार्थ माना। उस दिन के बाद श्री महामण्डलेश्वर जी पूर्ण स्वस्थ हो गये और उत्साह के साथ अपने सब काम करने लगे। इस प्रकार की अनेकानेक घटनायें श्री प्रभुजी के चरणारविंद में घटित होती रहीं।

१३.१२ ब. गोपालानन्दजी महाराज का ध्यान योग द्वारा अन्य सिद्ध योगियों से शक्ति प्राप्त करना *(श्री चन्द्रमोहनजी महाराज के शब्दों में)*

श्री भाई गोपालानन्द जी मुझ से बहुत काफी प्रेम मानते थे और मेरी भी उनके प्रति श्रद्धा थी। इसलिये उनके अन्तरंग अनुभवों का मुझे ज्ञान होता रहता था। एक बार ऋषिकेश अपने योग साधन आश्रम में श्री गोपालानन्द जी ध्यान में बैठे और ध्यान में गुरू नानक देव जी के दर्शन प्राप्त किये और उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे ऐसी विद्या का उपदेश करें जिससे मेरे शरीर में अतुलित बल बढ़ जाये। श्री गुरू नानक देव जी ने उनको एक बल–आकर्षक प्राणायाम सिखाया और साथ ही यह भी कह दिया कि इस प्राणायाम को तुम अपने गुरूदेव जी को बतला कर करना अन्यथा फल बहुत विपरीत हो सकता है। किन्तु श्री ब्रह्मचारी जी ने श्री गुरूनानक देव जी की इस आज्ञा पर कोई ध्यान नहीं दिया और मेरे सामने ही एक कोठरी में बैठकर प्राणायाम करने लगे। परिणाम बहुत खराब निकला। अन्ततः श्री प्रभुजी के चरण कमल पकड़ कर बहुत ही रोने लगे और बार–बार अपना फूला हुआ शरीर दिखलाने लगे। श्री प्रभुजी ने कहा, ''अरे बेटा, तेरे शरीर में यह तो बहुत ही बल आ गया है, यह बल कैसे आया, तुम्हें कैसे इस विद्या का पता चला। इस विद्या को तो सिखों के गुरूदेव श्री नानक देव जी ही भली प्रकार जानते हैं और वहीं सिखा व समझा सकते हैं।'' श्री प्रभुजी के इतना कहने पर ब्रह्मचारी जी और भी ज्यादा रोने लगे और दीन भाव से कहने लगे, ''प्रभु जी, मुझसे गलती हो गई है।'' श्री प्रभुजी हंस कर कहने लगे कि, ''अच्छा यह बता श्री गुरू नानक देव जी से यह विद्या सीख तो आया किन्तु शरीर में इतना बल बढ़ा कर करेगा क्या ? क्या तूने किसी फौज में दाखिल होकर लड़ाई करनी है या और किसी से युद्ध करना है।'' श्री प्रभुजी इस प्रकार की बातें करते रहे और श्री ब्रह्मचारी जी का शरीर फूलता ही गया। अन्त में श्री ब्रह्मचारी जी की बिगड़ती हालत को देखकर मुरादाबाद के कैलाश व मेरे को आज्ञा दी कि तुम बाज़ार से कपूर व सिरका लाकर गोपालानन्द के शरीर पर मालिश करो। हमने वैसा ही किया। परिणामस्वरूप गोपालानन्द जी की हालत सुधर गई। किन्तु ठीक रूप में आते–आते तीन दिन निकल गए तब वह अपनी ठीक स्थिति में आ पाए।

श्री भाई गोपालानन्द जी का यह स्वभाव था कि ध्यान योग के द्वारा सिद्ध महात्माओं से शक्ति प्राप्त किया करते थे और गुण लिया करते थे। एक दिन और इसी प्रकार की घटना घटित हुई। शाम के समय श्री ब्रह्मचारी जी मुझसे कहने लगे कि चलो भाई! गंगा किनारे घूम आयें। मैंने कहा, अच्छा, भाई जी चलो, श्री आनन्दकन्द प्रभुजी से

आज्ञा प्राप्त करके भ्रमणार्थ हम दोनों गंगा किनारे चले गए। उस समय चन्द्रभागा नदी के अन्दर से रास्ता था। उसी पगडंडी से हम दोनों चन्द्रेश्वर महादेव के मन्दिर से आगे झाड़ियों के निकट जहाँ चन्द्रभागा नदी गंगा जी में मिली है, वहीं पर मैं और श्री भाई गोपालानन्द जी बैठ गए। श्री गोपालानन्द जी ने मुझसे कहा कि, भाई। तुम यहाँ बैठे रहो मैं योग ध्यान से देखता हूँ कि इन झाड़ियों में कोई साधु भी है या केवलमात्र रंगे गीदड़ हैं। यह कह करके श्री ब्रह्मचारी जी ध्यान में बैठ गए। थोड़ी देर बाद ध्यान से उठे और मुझसे कहा, ''भाई। इन झाड़ियों में एक महात्मा हैं जो भगवान कृष्ण के किसी मन्त्र का जाप करते हैं। मैं उनसे वह मंत्र प्राप्त करने का प्रयास करता हूँ।'' यह कहकर श्री ब्रह्चारी जी पुनः ध्यान में बैठ गए और झाड़ियों वाले महात्मा श्री केशवानन्द जी अवधूत के मन बुद्धि चित अहंकार के पुतले सूक्ष्म शरीर को खींच लेने की चेष्टा की ताकि उनके मन और बुद्धि में आने वाले उस मंत्र को उनके सूक्ष्म शरीर के द्वारा ही वह जान जाएं किन्तु गोपालानन्द जी विफल हो गए। वे महात्मा केशवानन्द के सूक्ष्म शरीर को नहीं खींच सके। दूसरी बार श्री केशवानन्द जी के मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार में अपने मन, बुद्धि, चित्ताहंकार को मिलाकर के उस मंत्र को प्राप्त करने का प्रयास किया। इतना प्रयत्न करने के बाद श्री गोपालानन्द जी ध्यान से उठ गए और मुझसे कहने लगे कि भाई। यह साधु तो तगड़ा है काम नहीं बनने दिया चलो अब आश्रम चलते हैं। कल प्रातः फिर आयेंगे यह कहकर हम लोग चल पड़े। शाम का समय था। श्री ब्रह्मचारी जी के मन में दुग्धपान करने की इच्छा थी इसलिए वे ऋषिकेश में बाजार की ओर निकल गए और मैं सीधा आश्रम चला आया।

मुझे आश्रम में आया देख कर श्री प्रभु जी हँस कर कहने लगे, ''कहो बेटा, कहाँ घूम आए, किसी-किस के दर्शन किए और क्या-क्या प्राप्त किया ?'' मैंने श्री ब्रह्मचारी जी की ध्यान में देखी सब बातें ज्यों की त्यों श्री प्रभुजी के चरणों में निवेदन कर दी श्री प्रभुजी ने हंस कर कहा, ''अरे भटकने वाला तो भटकता ही है। चाहे उसको खजाना दे दिया जाये, मांगने वाला मांगता ही है। अच्छा बेटा कोई बात नहीं। कल प्रातःकाल तुम फिर गोपालानन्द के साथ जाना और उस साधु से मिलकर आना।'' इतनी देर में श्री गोपालानन्द जी भी दूध आदि पीकर वहां आ गए। श्री प्रभुजी ने गंभीरता से कहा, ''अच्छा बेटा, घूम आए। बहुत अच्छा किया। दो या चार दिनों में तुमने फिर लाहौर जाना है। यह दो चार दिन का समय ऋषिकेश में घूम लो एवं साधु महात्माओं के दर्शन कर लो।'' मेरी और संकेत करके श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी, ''बेटा। गोपालानन्द तुम्हारे बड़े गुरू भाई हैं, तुम इनके साथ घूमने चले जाया करो।'' मैंने हाथ जोड़कर के श्री प्रभुजी की आज्ञा को शिरोधार्य किया। दूसरे दिन प्रातःकाल शौचादि से निवृत हो जाने के बाद श्री गोपालानन्द जी ने मुझ से कहा - ''भाई, चलो। थोड़ा घूम आवे और गंगा स्नान कर आयें'' गोपालानन्द जी के यह शब्द सुनकर श्री प्रभुजी ने भी तत्काल आज्ञा दी और कहा, ''हाँ, हाँ बेटा! जाओं घूम फिर आओ। साधु महात्माओं के दर्शन कर आओ तथा गंगा स्नान कर आओ।'' श्री प्रभुजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके हम दोनों चल पड़े।

श्री गोपालानन्द जी को गंगा स्नान की कोई भावना नहीं थी किन्तु उनके मन में श्री केशवानन्द अवधूत से मिलने की भावना बहुत ही दृढ़ थी। इसलिए पहले दिन वाले स्थान पर वसुधारा के सामने हम गंगा किनारे पहुचे। श्री गोपालानन्द जी ने मुझसे कहा कि, ''भाई रात जिन महात्मा जी को मैंने ध्यान में देखा था वह सामने खड़े हैं। तुम जल्दी-जल्दी इनके पास चले जाओ।'' मैंने श्री भाई जी से प्रार्थना की कि भाई जी, ''मैंने

तो इनसे कुछ लेना नहीं है। आप ने लेना है, आप जाइए।'' किन्तु श्री गोपालानन्द जी ने मुझे समझाया कि ''भाई, रात को मैं उन्हें खींचने की चेष्टा करता रहा था। उसमें विफल हो गया। अतः तुम जाओ। धीरे–धीरे मैं भी आऊँगा और अपनी गलतियों की क्षमा याचना भी करूँगा।'' मैं श्री केशवानन्द अवधूत जी के पास पहुँचा और उनके चरणों में प्रणाम किया। प्रणाम करने के बाद श्री अवधूत जी ने मुझसे कहा–''बेटा। यह जो पीले कपड़ो वाला तुम्हारा गुरू भाई है यह तो व्यर्थ भटक रहा हैं। श्री प्रभुजी की ओर संकेत करके कहा, इतने बड़े महान योगिराज–यह लोग तो कभी हिमालय को छोड़ते ही नहीं हैं, हमें तो यही बहुत बड़ा आश्चर्य है, कि यह यहां ऋषिकेश में कैसे हैं। इतनी बातें करने के बाद श्री अवधूत जी ने मुझसे कहा, ''तुम श्री प्रभुजी से पूछ कर आना क्या हम उनके दर्शन करने आ जाएं।'' इतनी देर में धीरे–धीरे गोपालानन्द जी भी वहां पहुंच गए। उनको देखकर के श्री अवधूत जी ने कहा, ''तू मुझसे क्या लेने आया है। तू तो योगी है, मुझे वहीं खींच लेता या मेरे में तू घुस जाता।'' किन्तु श्री गोपालानन्द जी बार–बार क्षमा याचना करते रहे। अन्त में केशवानन्द जी ने गोपालानन्द जी से कहा, ''खजाना पाकर भी कंगाल बना फिरता है। मेरे दिए मन्त्र से तेरे को क्या होगा।'' इतना कह कर श्री अवधूत जी ने उनको वह मंत्र तो लिख दिया और साथ ही कह दिया, ''यदि इसको एक बार भी जपेगा तो तेरा आज तक का ध्यान–भजन सब नष्ट हो जाएगा। उन पूर्ण योगिराज को पाकर भी तू भटक रहा है। इन मंत्रों से तेरा क्या होगा। इस प्रकार तू तो खाली हो जाएगा। कल्याण चाहता है तो उनकी शरण पकड़।'' श्री केशवानन्द जी के ऐसा कहने पर हम लौट आए। श्री गोपालानन्द जी फिर बाजार की तरफ चले गए। मैं आश्रम पहुंचा तो श्री प्रभुजी कहने लगे, ''क्यो दे दिया इनाम।'' मैंने कहा, ''हां प्रभुजी दे दिया।'' और सारी बातें मैंने विस्तार से श्री प्रभुजी को बता दी। सब हकीकत कहने के बाद मैंने श्री प्रभुजी से कहा, केशवानन्द जी आपके दर्शन करना चाहते है क्या आज्ञा है ? श्री प्रभुजी ने इन्कार.कर दिया। मैं श्री प्रभुजी की आज्ञा को बतलाने के लिए श्री किशवानन्द जी के पास गया। श्री अवधूत जी ने दूर से देखते ही मुझसे कहा, श्री प्रभुजी ने इन्कार कर दिया न। मैने कहा, हां महाराज, इंकार कर दिया। श्री अवधूत जी कहने लगे, ''अच्छा भाई जैसी उनकी आज्ञा। जिन पर कृपा होगी उन्हीं को बुलायेंगे।''

घटनाएं जो श्री गोपालानन्द जी महाराज से सम्बन्धित मेरे सामने घटी थी, उनको वर्णन मैंने अपने ऊपर के इस लेख में कर दिया। हाँ एक खास बात और है जो मेरी आंखों के सामने हुई थी। संकेत मात्र से मैं उसको भी बतला देना चाहता हूँ श्री भाई गोपालानन्द जी के अनुभव बहुत दिव्य होते थे और ध्यानाभ्यास करते–करते वह सम्प्रक्षात समाधि की स्थिति से असम्प्रजात समाधि की स्थिति की ओर निकल जाया करते थे। हर व्यक्ति उनको पहचान भी नहीं सकत था। कि यह समाधिस्थ हैं या इनका शरीर विगत प्राण हो गया है। ऐसी समाधि की स्थिति में देखने वाले सभी का यह अनुमान रहता था कि ब्रह्मचारी जी देवलोक वासी हो गए। किन्तु यथार्थता यह थी कि वह समाधिस्थ रहा करते थे। उनकी ऐसी दिव्य स्थिति को देखकर के श्री प्रभुजी के मन में बार–बार यह धारणा बनती थी यह तत्व विजयी हो जाए और खेचरी सिद्ध हो जाए तो इसको हम नेपाल धाम में सिद्ध श्रेणी में भेज दें। इसी कारण से प्रभुजी ने ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी को तत्व विजय की साधना बताई। साधना का प्रभाव उनके शरीर पर पड़ता था। जब वह अग्नि तत्व का आकर्षण करते थे तो शरीर आग की तरह तपने लगता था। जल तत्व का आकर्षण करते थे तो उनको शरीर बर्फ की मानिन्द ठन्डा हो जाया करता था। वायु का आकर्षण करते थे तो सारे शरीर में बेहद कम्पन आरम्भ हो जाया करती थी। किन्तु यह

सब कुछ होते हुए भी श्री प्रभुजी को उनकी कुछ हरकतें पसन्द नहीं थी।

पहली बात यह थी जिसका मैं ऊपर के लेख में वर्णन कर चुका हूं, कि उन करूणा–निधान श्री प्रभुजी के चरणों को प्राप्त कर लेने के बाद भी वे विभिन्न प्रकार की शक्तियों को अन्यान्य सिद्धों से समाधि के द्वारा ही प्राप्त कर लिया करते थे। श्री प्रभुजी ने तो उनको नहीं रोका किन्तु साधारण व्यवहार में यह कई बार कहा, ''गोपालानन्द, तेरी यह प्रवृति ठीक नहीं है। ऐसा नहीं चाहिए। क्यों भटकता हैं।'' श्री प्रभुजी के इस प्रकार कह देने के बाद भी वह यह हरकतें करते ही रहते थे। दूसरी बात–श्री प्रभुजी जिस उतम साधना की ओर इनको चलाना चाहते थे। उन सब में ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी का आकर्षण नहीं था। श्री प्रभु जी की आज्ञा मानकर के साधना तो कर लेते थे किन्तु मन में उपेक्षा रहती थी और भगवान श्री कृष्ण के भजन, संकीर्तन और उनकी अलौकिक लीलाओं के दर्शन की भावना अधिक बनी रहती थी। अंततः श्री प्रभुजी ने उनको फिर लाहौर भेज दिया। लाहौर में जाकर के उन्होंने भगवान श्री कृष्ण जी के चरणों में लीन होकर के धूमधाम से संकीर्तन करने आरम्भ कर दिए।

१३.१३ भजन

अगर प्रीतम को पाना है, तो मन मन्दिर सजा पहले।
खुदा खुद आएगा चल कर, खुदी को तो मिटा पहले।।
बहुत पूजा हवन कीते, बहुत की बंदगी तूने।
मगर उसके ही बन्दों से, सदा नफरत जो की तूने।
तू अपने आपको बन्दे, जरा बन्दा बना पहले।।
अगर.....

न धन्ने, भीलनी, सदने, की कोई जात ऊँची थी।
प्रभु पाने की मन में तड़प, और वह चाह सच्ची थी।
अगर उसको बुलाना है, लगन सच्ची लगा पहले।।
अगर.....

कसर है तेरी आखों में, न दिखने में उसे कोई।
वो दिखता है अगर ऐसी, निगाह पैदा करे कोई।
तू खूद को योग साधन से, इसे काबिल बना पहले।।
अगर.....

१४ अद्भुत योग भक्ति दर्पण

१४.१ सद्गुदेव पं० रामलालजी महाराज के 'प्रिय भक्त' नारायण दास जी महाराज का जीवन परिचय व ध्यानानुभव

पं० नारायण दास श्री नगर (कश्मीर) में पशमीने की दुकान करते थे। उन के दो लड़के और एक पुत्री–शकुन्तला थी। सोलह वर्ष की आयु में शकुन्तला का विवाह लाहौर में हुआ। विवाह के पश्चात् वह रोगग्रस्त हो गई और बुखार दो वर्ष बढ़ता ही गया। श्री नारायण दास जी कश्मीर से लाहौर आये और अच्छे डाक्टरों से इलाज करवाया बुखारके साथ गले में गिल्टियाँ भी निकल आयी, तो उसे तपेदिक की बीमार जान अन्त की धड़ियाँ देखने लगे। शकुन्तला का का जन्म अमृतसर वहन द्रौपदी जी की गली में (अपने ननिहाल में) ही हुआ था। उस की माता जी से बहन द्रौपदी जी से बात की तो बहन जी ने लाहौर परिहमहल का पता दिया। श्री प्रभुजी ऋषिकेश थे और लाहौर में ब्र० गोपालानन्दजी ने शकुन्तला को देख कर कहा–''श्री प्रभुजी की कृपा से ठीक हो जायेगी। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का अमृतसर में आना–जाना रहा ही करता था। उनका योग–प्रचार एवं योगिक शक्ति–पात की महिमा का विस्तार अमृतसर में जोरों पर था। अमृतसर के योग साधन आश्रम में सैकड़ों की तादाद में साध्य एवं असाध्य रोगी–गण योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के नवनिर्मित योग–साधनों से पूर्णतया स्वास्थ्य–लाभ कर चुके थे एवं कर रहे थे। नारायणदास जी की पुत्री शकुन्तलादेवी क्षय–रोग से पिड़ित थी और किसी भी प्रकार की चिकित्सा से उसको लाभ नहीं हो रहा था। श्री प्रभुजी की रोगों को ठीक कर देने की महिमा नारायणदास जी ने भी सुनी। नारायणदास जी चारों ओर से निराश हो चुके थे, डूबते को तारणहार का सहारा मिला। तत्काल श्री प्रभुजी के दरबार में पहुँचे और उन त्रय–तापनाशक के चरणारविन्दों में अपनी पुत्री की चिकित्सा कर देने की विनम्र प्रार्थना की। निरन्तर जीवों का कल्याण करने में तत्पर कृपा नाथ जी अगाध करूणासागर ठहरे, तत्काल ही उनकी पुत्री की यौगिक चिकित्सा अपनी कृपापात्र द्रौपदी के निरीक्षण में करानी प्रारम्भ कर दी। जिस पर उन आनन्द कन्द प्रभुजी की कृपा–दृष्टि हो जाय वह स्वस्थ्य कैसे न होता ? योग–साधन प्रारम्भ करने के बाद से ही शनैः शनै इनकी पुत्री शकुन्तला देवी स्वस्थ होती गई।

१४.२ आनन्दकन्द श्री प्रभु जी द्वारा भक्त नारायण दास जी को शरण प्रदान

इस बात का भक्त नारायणदास जी के मन पर अत्युत्तम प्रभाव पड़ा। क्रमशः इनका हृदय श्री प्रभुजी के चरणविन्दों की ओर तीव्र–गति से आकर्षित होता चला गया। श्री कृपानाथ जी की कृपा से श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में इनकी निष्ठा दृढ़ होती गई और अनुराग भी दिन–दुना रात–चौगुना बढ़ने लगा। परिणामतः इनके आर्य समाजी विचारों में भी पूर्णरूपेण परिवर्तन होता गया समय आने पर इन्होंने श्री प्रभुजी से योग–दीक्षा प्राप्त की। श्री प्रभुजी ने कृपा करके इनको मूला धार–कमल में ध्यान करने का उपदेश दिया। मूलाधार–कमल में ऋद्धि–सिद्धि सहित श्री गणपति जी का ध्यान किया जाता है। श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार ज्यों–ज्यों इन्होंने अपना अभ्यास बढ़ाया त्यों–त्यों इनकी स्थिति बनती गई एवं यह मूलाधार–कमल के साक्षात् दर्शन प्राप्त करने लगे।

१४.३ भक्त नारायण दास जी महाराज के दिव्यानुभव

श्री नारायणदास जी को अपने अभ्यास में कई प्रकार के दिव्यानुभव हुए व कई दिव्य औषधियों का ज्ञान भी इन्होंने अपनी समाधि-स्थिति में ही प्राप्त किया था। अपने ध्यानानुभव के आधार पर यह उन जड़ीं-बूटियों को कहीं जंगल से उखाड़ लाया करते थे एवं सर्वसाधारण के भले के लिए उनका उपयोग करते रहा करते थे। श्री प्रभुजी की कई अद्भुत लीलाओं के दर्शन इन्होंने किए थे। ध्यानाभ्यास से उठकर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में प्रणाम करके जिस समय यह अपने घर के लिए चलते थे; तो मार्ग-भर बराबर श्री प्रभुजी को अपने साथ ही चलते देखा करते थे। जब यह घर में प्रवेश करते तो सामने ही किसी दिव्य-सिंहासन पर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी विराजमान दीखते थे। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के अतिरिक्त और भी कई सिद्ध पुरूषों के दर्शन इनकों ध्यान में हुए, जिनसे कई प्रकार के साधन-लाभ इनको प्राप्त हुए थे। वास्तव में श्री प्रभुजी के परम कृपा-पात्रों में से यह भी एक थे।

एक दिन श्री प्रभु जी तथा अन्य कुछ भाईयों सहित श्री नारायण दास जी भी ब्रह्मपुरी (ऋषिकेश) के जंगल में भ्रमण करने गये। श्री प्रभुजी को जब घूमते घूमते ब्रह्मपुरी में शाम हो गई तो कृपासागर जी ने अपनी माया फैलाई। सभी भाई एक एक करके चले गये केवल श्री नारायण दास जी ही श्री प्रभु जी के साथ रह गये। रात का अंधेरा था इस कारण नारायणदास जी का पैर छिल जाने के कारण किसी किसी जगह खून भी निकलने लगा। श्री प्रभुजी कहने लगे-''बेटा। नारायण दास हमतो रास्ता भूल गये और तुम्हारे पैरों से खून बहने लगा है। तुम्हें कष्ट हो रहा होगा, बताओं सुनसान जंगल है अब कहाँ जायें।'' श्री नारायण दास जी ने कहा महाराज जी! ''मैं क्या बताऊँ आप की माया आप ही जानें।'' श्री प्रभुजी फिर चलने लगे थोड़ी देर पश्चात् फिर रूक गये और फरमाया-''नारायण कोई तो पगडंडी बताओ, और हँसने लगे।'' रात के आठ नौ बजे का समय होगा। अन्त में श्री प्रभुजी ने कहा-''अच्छा तुम जरा आँखें बन्द कर लो'' नारायणदास जी ने आज्ञा अनुसार आँखे बन्द कर ली। पांच मिनट भी नहीं हुए होंगे कि श्री प्रभु जी ने कहा-''अब आँखें खोल लो।'' नारायणदास जी गद्गद् हो गये और क्या देखते हैं कि आश्रम के आगे खड़े हैं।

श्री प्रभुजी भक्तों के साथ भ्रमण करते हुए एक बार घने जंगल में ऐसी जगह पहुंचे जहाँ स्वामी रामतीर्थ जी ने गंगा जी की गोद में छलांग लगाई थी। भक्त नारायण दास जी श्री प्रभुजी से ये शब्द सुन रहे थे। सुनते ही एक दम उन के मुंह से निकला-''प्रभु जी! और गंगा मां का जयकारा बोलकर भक्त जी कुदने लगे।'' श्री प्रभुजी ने तुरन्त ही हाथ पकड़ लिया। सभी इस कौतुक को देखने में मस्त थे, किसी को पता भी न चला कि भक्त जी किस समय एक तरफ निकल गए। वे घूमते घूमते किसी कन्द्रा में जा बैठे। कुछ देर बाद श्री प्रभुजी ने कहा-''अरे! नारायण दास कहाँ है किसी को कुछ पता है।'' सभी हैरान थे क्योंकि किसी को कुछ पता न था। तब श्री प्रभुजी ने फरमाया-''वहाँ एक कंदरा है देखो तो शायद वह वहाँ होगा।'' वहाँ जा कर उन्हेंने देखा कि नारायणदास जी वहाँ समाधि में मग्न हैं और उन के सिर पर एक सर्प छाया करके बैठा है। उन्होंने श्री प्रभुजी को सारा हाल बता दिया। श्री प्रभुजी ने कहा तुम सब क्यों भय से कांप रहे हो क्या उसे डर नहीं लग रहा जिस के सर पर सर्प बैठा है। जाओ उसे बुलाकर लाओ। उन लोगों ने जाकर देखा कि सांप नहीं था फिर श्री प्रभुजी की आज्ञा सुनाई। भक्त जी ने प्रभु चरणों में आ कर प्रणाम किया। श्री प्रभुजी सभी सत्संगियों सहित अश्रम लौट आये।

श्री नारायणदास जी के मन में एक कामना निरन्तर रहती थी–वह थी खेचरी–सिद्धि को प्राप्त करने की। श्री प्रभु कृपा से श्री नारायणदास जी को खेचरत्व प्राप्त होना स्वाभाविक ही था। घट–घट अन्तर्यामी आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने बड़े अद्भुत ढंग से इनकी यह इच्छा पूर्ण की। नित्य अजन्म श्री प्रभुजी जीवों के कल्याण के लिए ही इस पृथ्वी पर मानव–शरीर को धारण किए हुए थे। अब उनके लीलावसान का समय आ पहुँचा था। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के लीलावसान के समय श्री नारायणदास जी उस स्थान पर उपस्थित नहीं थे, बल्कि किसी नदी के किनारे बैठे हुए थे। अकास्मात उन्होंने देखा कि आनन्दकंद श्री प्रभुजी दिव्य जटा–धारी स्वरूप से आकाश मार्ग से उड़ते हुए आ रहे हैं। इनके सामने आकर थोड़ी देर को ठहर गए और नारायणदास जी की जिह्वा को स्पर्शकर कहने लगे कि ''बेटा नारायण दास, हम तुम्हें मन्त्र बताते हैं। उसका निरन्तर जप करने से तुम्हें खेचरी सिद्ध हो जायेगी। अब तुम हमारे निवास स्थान पर चले जाओ। हम वह शरीर छोड़ आए हैं और अब नेपाल हिमालय को जा रहे हैं।'' ऐसा कहकर श्री प्रभुजी ने उन्हें किसी दिव्य–मन्त्र का उपदेश किया, जिससे उनको स्वतः ही खेचरी सिद्ध हो गई। स्वयं श्री प्रभुजी के मुख से उनके लीलावसान का संदेश पाते ही श्री नारायणदास जी व्याकुल होकर भाग पड़े। हम वह शरीर छोड़ आए हैं– श्री प्रभुजी के मुख से निः सृत वह वाक्य उनके कर्ण–कुहरों में निरनतर गूँज रहा था। हृदय में इतनी बेचैनी थी कि इनका मार्ग पूरा करना कठिन हो रहा था। श्री प्रभु जी के निवास–स्थान पर पहुँचकर देखा–वस्तुतः श्री प्रभुजी शरीर त्याग कर चुके थे। श्री प्रभुजी की इस अलौकिक लीला से नारायणदास जी का मन अतिशय चकित था। श्री प्रभुजी से शारीरिक वियोग का दुःख एवं खेचरी–सिद्ध का हर्ष, दोनों भावों से एक साथ ही मन अभिभूत हो गया। गद्गद् कण्ठ होकर एवं नेत्रों में अश्रु भर कर उन सर्वशक्तिमान की सर्व समर्थता का बार–बार स्मरण करने लगे।

श्री प्रभुजी के लीलावसान के पश्चात् तो श्री नारायणदास जी महाराज का वैराग्य दिन–दूना रात–चौगुना बढ़ने लगा और वह मस्त फकीरों की तरह से रहने लगे। यह जीवन उनका ऐसा बन गया था जिसमें वह अपने आपको संसार से बिल्कुल पृथक देखते थे। श्री नारायणदास जी प्रायः कहा करते थे–''यह संसार कोई रहने की जगह थोड़े ही है। दस दिन की मुसाफिरी है। जिससे जो भी बन सके, कर डालो। यह समय फिर हाथ नहीं लगेगा, फिर पछताना पड़ेगा।''

१४.४ श्री मुलखराज जी महाराज व श्री गोपालानन्द जी महाराज द्वारा लाहौर में योग प्रचार

सन् 1931 में श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी को आज्ञा प्रदान की–''बेटा, अब तुम लोकोहित के लिए अपनी आँखें खोलो। तुम और गोपालानन्द दोनों भाई जाकर के लाहौर में योग–प्रचार आरम्भ कर दो।'' श्री प्रभुजी के आदेश को पाकर श्री मुलखराज जी व श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज ने लाहौर जाकर योग–प्रचार शुरू कर दिया। इन दोनों ने पहले–पहले श्री सत्यनारायण जी के मंदिर में जाकर के योग प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया। श्री सत्यनारायण के मन्दिर में इन्होंने तीन प्रकार के कार्यक्रम बनाये। प्रातः काल सात बजे से लेकर ग्यारह बजे तक साध्य–असाध्य सभी प्रकार के रोगों की साधनों द्वारा सरलता से चिकित्सा करना शुरू की। बहुत थोड़े समय में काफी मात्रा में प्रचार बढ़ गया। प्रातःकाल चिकित्सा–कार्य होता था और सायंकाल श्री हरिनाम संकीर्तन और बाद दोपहर के कार्यक्रम में तीन से पाँच बजे तक भाषणों का कार्य आरम्भ हुआ। धीरे–धीरे वह

काफी बढ़ता गया। कुछ समय बाद लाहौर में ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज को छोड़ करके श्री मुलखराज जी महाराज अमृतसर चले गये।

इन्होंने अमृतसर में योग प्रचार आरम्भ किया और श्री गोपालानन्द जी ने लाहौर में। अमृतसर में आकर के इन्होंने लोगों को धड़ाधड़ साधन कराने आरम्भ किए जिसके फलस्वरूप बड़े-बड़े असाध्य और कष्ट साध्य मरीज आश्रम में आने पर ठीक हो गये। चिकित्सा के अतिरिक्त एक बाकायदा आसन क्लास चलाई जिसमें बहुत से युवक लड़कों ने प्रवेश करके लाभ उठाया। आसन क्लास का इंचार्ज श्री विद्याप्रकाश जी को बनाया। श्री विद्याप्रकाश जी ने अमृतसर के युवक-मण्डल में काफी प्रचार किया और हठयोग की कठिन-कठिन साधनायें कीं। यह सब कार्य अमृतसर में श्री मुलखराज जी के द्वारा और लाहौर में ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के द्वारा अनवरत चलता रहा। श्री आनन्दकन्द परम योग योगेश्वर सद्गुरूदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की अध्यक्षता में काफी जगह योग-प्रचार का कार्य होता रहा।

१४.५ ब्र० गोपालानन्द जी का भक्त नन्दलाल को जीवनदान दिलवाना

लाहौर में ब्र० गोपालानन्द जी महाराज का एक सत्संगी शिष्य अत्यधिक बीमार हो गया और उसका शरीर छूट जाने वाली स्थिति बन गई। सभी लोग यह विचार करने लगे कि नन्द लाल के प्राण दो या चार मिनट में अवश्य निकल जायेंगे। नन्दलाल श्री ब्रह्मचारी जी का बहुत ही लाड़ला सत्संगी शिष्य था। उसकी स्थिति को देखकर श्री ब्र. गोपालानन्द जी ने ध्यान में बैठकर श्री प्रभुजी से प्रार्थना कि ''प्रभुजी मैं आपके चरणों में आ रहा हूँ। जब तक मैं दर्शन करके लौट कर ना आजाऊँ तब तक इसके प्राण न निकलें।'' श्री प्रभुजी ने श्री गोपालानन्द जी को यह अधिकार दिया हुआ था कि सहस्त्रदल कमल में जाकर के वह जैसा भी सोचेंगे वैसा ही अवश्य हो जाएगा। अतः श्री गोपालानन्द ऋषिकेश पहुचे। बड़ा ही आश्चर्य था श्री प्रभुजी की अन्तर्यामिता का। श्री प्रभु जी ने श्री गोपालनन्द जी के आते ही कहा ''बेटा! यूं किस-किस को बचायेगा? उसके प्राणों को तू जबरदस्ती रोक आया है किन्तु कब तक रोकेगा। मृत्यु तो उसकी है ही। तुम्हें ऐसा नही करना चाहिए था।'' श्री प्रभुजी के इन वचनों को सुनकर श्री गोपालानन्द जी बुरी तरह से दहाड़ मार कर रोने लगे। जब श्री प्रभुजी ने गोपालानन्द जी की बहुत ही दीनता देखी तो श्री प्रभुजी ने कहा-''जा उधर बैठ रो क्यों रहा है? अब तेरी जब यह हठ है तो यह करना ही पड़ेगा।'' यह कहकर श्री प्रभुजी अपने सामने वाले कमरे में पलंग पर लेट गए और कमरे के किवाड़ बन्द करा दिए। आधे घण्टे के बाद श्री प्रभुजी ने अपने कमरे के किवाड़ खुलवा लिए और श्री गोपालानन्द जी से मुस्कुराते हुए कहा, ''जा, क्यों दुःख मना रहा है। नन्द लाल तुम्हें पूरी तरह से हंसता खेलता मिलेगा और अब लगभग 70 या 80 वर्ष की पूरी आयु भोग कर ही उसका शरीर जाएगा।'' ठीक वैसा ही हुआ। अभी पांच-सात वर्ष पूर्व लगभग 80 वर्ष की आयु में उसका दिल्ली में देहावसान हुआ। श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार गोपालानन्द जी लाहौर आये तो नन्द लाल विल्कुल राजी खुशी था। गोपालानन्द जी लाहौर में आकर के अपना सत्संग पूर्ववत् कराने लगे व ध्यान मग्न रहने लगे।

१४.६ श्री प्रभु जी का लाहौर में जमीन न खरीदने का आदेश

लाहौर (अब पाकिस्तान में स्थित) आश्रम के मंत्री ला. हुक्मचन्द जी की भावना थी कि रावी रोड पर जहां शहर के लड़के आकर कुश्ती लड़ा करते थे, एक व्यायामशाला और

कायम कर ली जाए और वहीं पर कुछ जमीन और खरीद ली जाए। उन्होंने अमृतसर आकर श्री प्रभुजी के चरणों में प्रार्थना की कि लाहौर व अमृतसर के गुरू भाई मिलकर के रावी रोड़ पर कुछ जमीन और खरीद लें और उस जमीन पर एक सुन्दर ढंग की व्यायामशाला और कुछ कमरे और बना लिए जाएं तो हमारा आश्रम बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त कर लेगा। लाहौर में व्यायामशाला व अन्य जमीन खरीदने को श्री प्रभुजी ने इन्कार कर दिया और कहा–''वहाँ बिल्डींग बढ़ाने से कोई लाभ नहीं। तुम यह व्यर्थ के प्रपंच मत फैलाओ।'' मन्त्री हुक्मचन्द क्योंकि आर्य समाजी विचार के व्यक्ति थे, इसलिए बार–बार प्रार्थना करके पंजाब की राजधानी होने के कारण लाहौर में ही प्रमुख आश्रम बनाने व उसके विस्तार के लिए हठ करते रहे। अन्त में यह शब्द भी कह दिए कि, ''महाराज अमृतसर तो आप की जन्म भूमि है आप यहां पैसा लगाना चाहते हैं और लाहौर सारे पंजाब की राजधानी है, उस ओर आप देखना भी नही चाहते।'' मन्त्री के इस प्रकार हठ करने पर श्री प्रभुजी ने सबके सामने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया, ''हुक्मचन्द! तुम इन बातों को नहीं जानते। तुम्हारा ऐसे हठ करना बिल्कुल व्यर्थ है। कुछ ही समय के बाद लाहौर में जो कुछ भी तुम्हारे पास है, वह भी नहीं रहेगा और तुम लोगों को अपने–अपने बने बनाए मकान भी छोड़ देने पड़ेगे।'' हुक्मचन्द को श्री प्रभुजी के कथन पर विश्वास तो नहीं हुआ फिर भी चुप होकर बैठ गये। किन्तु हुआ वही। समय आया, भारतवर्ष को स्वतन्त्रता का अधिकार मिला। हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के रूप में बंटवारे हुए। अन्त में लाहौर के वह मकान, बाग–बगीचे और जमीनें पाकिस्तान के कब्जे में चले गये। अब हम उन आश्रमों को देख भी नहीं पाते। स्थिति इस प्रकार की आ गई। अस्तु। अमृतसर में प्रचार क्षेत्र बढ़ता चला गया। योग का प्रचार व प्रसार होता चला गया।

१४.७ लाहौर के पं. अमर नाथ जी पर प्रभु जी महाराज का अनुग्रह

पं. अमर नाथ जी के पिता जी लाहौर में हलवाई की दुकान करते थे। बचपन से ही अमर नाथ जी को साधु संग बहुत अच्छा लगता था और वह प्रभु को प्राप्त करने की धुन में रहते थे। आठ–दस वर्ष की अल्प आयु में ही वह घर छोड़, साधु बन, प्रभु की तलास करने लगे। वह कई साधु महात्मायों के सर्म्पक में आये पर उन की मनोकामना पूरी नहीं हुई। जब वह अपनी इस प्रभु खोज यात्रा में काविल कंधार पहुंचे तो उन्हें अकाशवाणी सुनाई दी और पेड़ के पत्तों पर प्रभु जी के गृहस्थी रूप में दर्शन भी हुऐ–''बेटे! लाहौर वापिस लौट आओ, हम तुम्हें दुकान पर मिलेंगे।'' इस घटना के वाद वह लाहौर में अपने घर वापिस आकर हलवाई की दुकान पर श्री प्रभुजी का इन्तजार करने लगे। कुछ दिनों के बाद उन को छेहरटा जाना पड़ा। वहाँ रास्ते में उन्होंने 'योग साधन आश्रम' के अन्दर जा कर पानी पी कर अपनी प्यास बुझाई। जब वहाँ लगे पेड़ के पत्तों पर नजर गईतो वह ही कविल कन्धार वाला गृहस्थी रूप हर पत्ते पर दिखाई दिया। वहाँ आश्रम से पुछने पर पता चला कि श्री महाराज जी कहीं बारह गये हुए हैं और पता नहीं कब लौटेंगे। इस के बाद अमर नाथ वहाँ का काम कर लाहौर दुकान पर आ गये।

कुछ दिन बाद श्री प्रभुजी ने आवाज दे कर उन्हें दुकान से बुला कर कहा कि–''बेटे! हम तुम्हें दुकान पर ही मिले हैं जैसा तुम्हें काविल–कन्धार में कहा था।'' श्री प्रभुजी के गृहस्थी रूप में दर्शन कर और उन के अमृतमय वचनो को सुन अमर नाथ जी को अपनी कोई सुध बुध न रही आर वह श्री प्रभु चरणों के साथ 'योग साधन आश्रम' आ गये और श्री प्रभुजी को प्रार्थना कर, योग दीक्षा लेकर, योग साधन करने लगे।

एक दिन सत्संग में श्री प्रभुजी ने लोगों से प्रश्न पूछने को कहा, श्री अमर नाथ जी ने पूछा-''प्रभु जी! क्या हमारा भारत भी कभी आजाद होगा।'' इस प्रश्न के उत्तर में श्री प्रभुजी ने कहा-कि हम केवल आध्यात्मिक प्रश्नों का ही सत्संग में जवाब देते हैं। जब सारे सत्संगी चले गये तो कृपालु प्रभु जी ने अमर नाथ को बड़े प्यार से अपने पास बुला कर कहा कि-''बेटा! कुछ समय बाद भारत आजाद होगा, पर इस के दो टुकड़े हेा जायेंगे। फिर कुछ समय बाद 2-3 लड़ाईयां भी होंगीं। काफी देर बाद एक लड़ाई ऐसी होगी कि कई कई कोस पर ही दीया जले गा। इस पर श्री अमर नाथ जी ने पूछा प्रभु जी क्या कई-कई कोस पर नगर होगा। श्री प्रभुजी ने कहा कि ''बेटा। कई कई कोस पर कोई कोई घर प्रभु कृपा से बच पायेगा।''

1947 में हिन्दुस्तान आजाद हुआ और भारत तथा पाकिस्तान रूपी दो टुकड़ों में बटा। फिर पाकिस्तान के साथ 1965, 1971 में दो बड़ी लड़ाईयां भी हुई। भारत की आजादी के बाद लाहौर पाकिस्तान में आ गया और पं. अमर नाथ जी लाहौर से कुछ समय अन्य शहरों में ठहरने के बाद में सैक्टर-20 चण्डीगढ़ रहने लगे। वहाँ से हर रविवार को वे सैक्टर-14 चण्डीगढ़ में रात के प्रभु सत्संग में आते थे। वह काफी देर सत्संग में नहीं आये। उन को हार्ट अटैक हुआ था। वह हार्ट अटैक के होने के बाद काफी परेशान रहे। उन के पूर्वज ऊना- (हिमाचल प्रदेश) के रहने वाले थे। वह ऊना में जा कर रहने लगे। वहाँ हृदय रोग की समस्या से तगं आकर उन्होंने स्वाँ (पहाड़ी नदी) में आत्म हत्या करने का फैसला किया। स्वाँ में पानी का बहाव बहुत तेज होता है और जो कोई उस के बहाव में आ जाये वह वच नहीं सकता। श्री अमर नाथ ने श्री प्रभु चरणों का ध्यान कर एक, दो, तीन कह कर स्वाँ में छलांग लगाने ही वाले थे कि श्री प्रभुजी स्थूल शरीर से वहाँ प्रकट होकर अमर नाथ से कहने लगे-''बेटा अमरनाथ! हम जानते हैं कि प्रारब्ध के कारण तुम हृदय रोग से बड़े परेशान हो। लोग क्या कहेंगे कि योगियों के बच्चे आत्म हत्या करते हैं। तुम इन पाँच चीजों को मिला कर एक बार सेवन कर लो तुम्हारी हृदय की समस्या बिलकुल ठीक हो जायेगी। यह उपचार करने के बाद श्री अमार नाथ जी पूर्ण स्वस्थ होने के बाद सैक्टर-14, चण्डीगढ़ आश्रम में आने लगे और उन्होंने सारी घटनाओं को बताया।

१४.८ लाहौर के असाध्य रोगी पर प्रभु कृपा

श्री प्रभुजी भक्तों की प्रार्थना पर लाहौर, आते जाते रहते थे। एक बार श्री प्रभुजी 'परिमहल योग साधन आश्रम' में कुछ दिनों के लिए ठहरे हुए थे। आश्रम के पास एक मकान में किसी देवी को असाध्य रोग था और उस रोग के कारण वह सारी रात चीखो-पुकार करती रहती थी। परम कृपालु प्रभु ने साधकों से उस देवी के दुःख के बारे में पूछा। उन्होंने कहा-''महाराज! लाहौर के मशहूर डा0 बेली राम का कई सालों से इस असाध्य रोगी का ईलाज चल रहा है और घर वाले हजारों रूपये खर्च कर चुके हैं पर इस देवी को कोई आराम नही मिला।'' श्री प्रभुजी ने उस देवी के घर वालों को बुला कर पूछा और कहा-''कि डा. बेली राम जब इस रोगी को देखने आयें तो हमें बुला लेना।'' घर वालों ने प्रभु आज्ञानुसार डा0 बेली राम के आने पर श्री चरणों में प्रार्थना कर श्री प्रभुजी को अपने घर ले गये। श्री प्रभुजी ने डा0 बेली राम को कहा-कि आप इस देवी का अच्छी प्रकार से इलाज कीजिए जिस से इस का दुःख दूर हो जाये।'' डा0 बेली राम को अपने पर बहुत अहंकार था उस ने श्री प्रभुजी से कह दिया कि अगर आप इस रोगी को ठीक कर सकते हैं तो आप ही इसे ठीक कर दीजिए। श्री प्रभुजी तो परम दयालु हैं। उन्हों ने डा0 बेली राम से कहा-''कि चले हम इसे योग साधन द्वारा ठीक कर देते हैं। डा0 बेली राम वहाँ से चले गये।

इस देवी को पानी तक हजम नही होता था। श्री प्रभुजी ने उस देवी को रात में एक पुड़िया दवाई की एक कटोरा घी के साथ लेने को कहा और उस के घर वालों को समझा दिया कि दवाई को घी के साथ लेने के बाद इस देवी को नींद आ जाएगी। आप को इस पर निगरानी रखनी होगी। रात को इसे प्यास और गर्मी लगेगी। आप ने इसे न तो पानी पीने देना और न ही इस को अपने ऊपर पानी डालने देना। रात को दवाई के बाद इस के शरीर को रजाई से ढाँप देना। रात को घर वाले बारी–बारी उस की निगरानी करने लगे। आधी रात होने पर निगरानी करने वाले सब सो गये। उस देवी को रात में बड़ी प्यास और गरमी लगी। वह उठी और उसने एक गागर से पानी पिया और दूसरी गागर का पानी अपने ऊपर डाल लिया तो उस के हाथ से गागर नीचे गिर गईं। गिरने की आवाज से निगरानी करने वालों की आंख खुली। तब वे लोग श्री प्रभुजी के चरणों में जाकर सारा हाल बता कर, क्षमा मांगने लगे। तब कृपालु प्रभु ने एक और पुड़िया दी और उस दवाई के देने पर उलटी द्वारा सारा पानी शरीर से बाहर निकल गया और अगले दिन वह असाध्य रोगी पूर्णतया रोग मुक्त हो गई। फिर उस देवी ने 'योग साधन आश्रम' में आकर योग साधन करने आरम्भ कर दिये। अगले दिन उस देवी को रोग मुक्त हुआ देख डा० बेली राम बड़ा हैरान हुआ।

१४.९ श्री प्रभु जी का खूंखार पागल रोगी को ठीक करना

डाक्टर बेली राम ईर्ष्या के कारण बन्दी घर से एक खूंखार पागल को अपनी कार में बाँध कर लाया और श्री प्रभु जी से प्रार्थना करने लगा कि महाराज अगर आप इस पागल को ठीक कर दें तो आप को हम मान जायेंगे। श्री प्रभुजी ने उस पागल को देखा और डाक्टर बेलीराम से कहा कि इस के लिये हमें रावी नदी से एक जड़ी लानी होगी। डाक्टर बेलीराम ने सोचा कि रावी नदी के बहाने अब यह भाग जायेंगे। उस ने श्री प्रभुजी को अपनी गाड़ी में अपने साथ बिठलाया और रावी नदी पर ले चला। रावी नदी पर जाकर गाड़ी रोक दी। श्री प्रभुजी नदी के पास से एक जड़ी लेकर आये और उस पागल को वह जड़ी सुंघाई। इस पर उसे बड़ी जोर से एक छींक आई और उस के नाक से एक कीड़ा गिरा। उस पागल का सारा पागलपन दूर हो गया। डा० बेलीराम ने पूरा पूरा परीक्षण कर उस पागल को बिल्कुल ठीक पाया। तब डा० बेली रामने श्री प्रभु चरणों में प्रणाम कर कहा कि प्रभु आप की इस दिव्य लीला को तो आप ही जानते हैं। हम जैसे संसारी तो आप की लीला को समझने में असमर्थ हैं। इस लिये हमें क्षमा करें।

१४.१० श्री प्रभु रामलाल जी महाराज के परम कृपापात्र श्री श्यामलाल जी खन्ना

श्री श्यामलाल जी खन्ना 'मेसर्स जानकी दास एण्ड सन्स' लाहौर के मैनेजर थे। वह परिमहल योग साधन आश्रम में साधन करते थे और उन्होंने प्रार्थना करके श्री प्रभु जी से योग दीक्षा भी प्राप्त की। एक रोज प्रातः तीन–चार बजे वे श्री प्रभु जी के साथ रावी नदी के किनारे भ्रमण के लिये गये। श्री प्रभु जी ने एक पगड़ंड़ी से होकर एक झोपड़ी में प्रवेश किया और झोपड़ी वाले से कहा कि तुम्हारी कुतिया ने तीन बजे रात को बच्चे दिये हैं। हमें उन में से दो बच्चे चाहिये। उस ने कहा–''महाराज! मैं अभी ला देता हूं।'' इस पर श्री प्रभु जी ने कहा–''कि हम स्वयम् ही अन्दर जा कर ले लेते हैं। उस ने कहा–''जैसी आप की इच्छा''। श्री प्रभु जी ने दो बच्चों को अपनी गोद में उठाया और आश्रम लौट

आये। इन दोनों वच्चों की आँखें श्री प्रभु जी की गोदी में ही खुली। धन्य हैं ऐसे जीव जिन को जन्मते ही लेने के लिये श्री प्रभु जी स्वयम् पधारे। इन दोनों कुत्तों को श्री महाराज जी ने अपने योग साधन आश्रम लाहौर में रखा।

कृष्णा गली नं० २ लाहौर के संकीर्तन की लहर का प्रभाव

हमारा योग प्रचार लाहौर में बहुत बढ़ गया था। कुछ दिन श्री मुलखराज जी महाराज व ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज ने लाहौर में श्री सत्यनारायण जी के मन्दिर में रहकर प्रचार किया। उसके बाद वह परिमहल में आ गये। उन दिनों वहां पर काफी भीड़ रहती थी तथा साधन करने वालों का तांता लगा रहता था। परिमहल के प्रचार काल में एक व्यक्ति ने श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के चरणों में आकर प्रार्थना की कि ''महाराज! आप कृपा करके गवालमण्डी, कृष्णा गली नं. 2, में अपना आश्रम बना लें। गली के एक कोने से दूसरे कोने तक पूरी बिल्डिंग मेरी है। उसमें दो बड़े–बड़े हाल–नीचे ऊपर, आठ बड़े–बड़े कमरे, रसोईघर और ऊपर शौचालय आदि सब बने हुए हैं। मेरा मकान दसों वर्षो से बिल्कुल खाली पड़ा है। किसी भी किरायेदार को हम वह मकान देते हैं; तो कोई भी किरायेदार वहाँ रह नहीं पाता। उसका कारण यह है कि उस मकान में प्रेतात्माओं का निवास रहता है। रात को वहाँ ईट और पत्थर बरसते है। जो भी वहां रहता है, प्रेत लोग उसे खूब मारते पीटते हैं। अब आप देख लीजिये यदि आप इस आपत्ति से बच सकें तो दो साल तक मैं आप को यह मकान बिल्कुल बिना किराया के दे दूँगा। उसके बाद जैसा भी आप उचित समझें थोड़ा किराया हमें दे दिया करना। श्री ब्रह्मचारी जी ने इस बात को स्वीकार कर लिया और परिमहल से आश्रम को गवालमण्डी, की कृष्णा गली नं.2 में ले गये। श्री ब्रह्मचारी जी ने उस मकान में प्रवेश करने के बाद एक बड़े कमरे में बड़ी दिव्य ध्वनियों के साथ अखण्ड संकीर्तन कई महीनों के लिए जारी कर दिया। उसके बाद उसी कमरे में श्री आनन्कन्द प्रभुजी के स्वरूप विराजमान कर दिये और सभी ध्यानी लोग वहाँ ध्यान में बैठने लगे। प्रेतात्माओं का तो उपद्रव श्री ब्रह्मचारी जी महाराज के उस मकान में प्रवेश करने पर ही समाप्त हो गया और कुछ समय के अखण्ड संकीर्तन के बाद वह कमरा सिद्ध कोटि में आ गया। जो भी नया साधक वहाँ ध्यान में बैठता उसके मन में स्वाभाविक ही एकाग्रता हेा जाया करती थी। श्री ब्रह्मचारी जी महाराज ने वहाँ अखण्ड संकीर्तन तो पहले से ही शुरू करा दिया था किन्तु ग्रीष्मकाल में ऊपर की छत पर भी सौ डेढ़ सौ आदमी की नित्य उपस्थिति होती थी और जोरों से संकीर्तन होता रहता था। कीर्तन करते–करते सैकड़ों व्यक्ति बेहोश और ध्यानस्थ हो जाया करते थे। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज के संकीर्तन का बहुत प्रभाव फैला। श्री ब्रह्मचारी जी ने वहाँ इस संकीर्तन ध्वनि का निर्माण भी किया। वह यह थी।

'गोविन्द जय जय कृपाल जय जय।
राधारमण हरि गोविन्द जय जय।।'

किन्तु श्री ब्रह्मचारी जी के सभी सत्संगियों ने कहा कि महाराज – कृपाल जय जय ठीक नहीं लगता। आप यहां पर गोपाल जय जय रखिये। श्री ब्रह्मचारी जी ने उत्तर दिया –अरे भई मुझे संकोच है क्योंकि गोपाल शब्द मेरे नाम में भी आता है। सत्संगियों ने उत्तर दिया –''महाराज, आप केवल गोपाल नहीं है। आप तो गोपालानन्द हैं। इसलिए संकीर्तन में तो गोविन्द जय जय एवं गोपाल जय जय ही ठीक रहेगा। धीरे–धीरे इसी ध्वनि का प्रचार व प्रसार दिन रात बढ़ता चला गया। श्री ब्रह्मचारी जी के लाहौर के निवास

काल में कम से कम बीस संकीर्तन मंडलियां बनी। जिससे आश्रम का प्रसार बहुत ऊंचा बढ़ता चला गया। किन्तु मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्नाः के मतानुसार ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी का और श्री मुलखराज जी का स्वभाव नहीं मिलता था। क्योंकि ब्रह्मचारी जी का जीवन भगवान श्री कृष्ण के प्रेम में भरा रहता था। श्री ब्रह्मचारी जी श्री वृन्दावन धाम आते जाते रहा करते थे।

जिस देश में एक ध्यान योगी वास करता है वह देश का देश पवित्र हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त उसके भाई बन्धु और कुटुम्बी लोगों का तो कहना ही क्या है। इस उक्ति के अनुसार लाहौर में ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी वाले निवास (कृष्णा गली नं. 2) का तो कहना ही क्या। वहाँ आसपास का सभी वातावरण परम शुद्ध बन गया। कितने ही गृहस्थी लोगों ने ब्रह्मचारी जी से आ-आ कर कहा कि, ''महाराज, आपके संकीर्तन ने तो हमारी भी सब बाधाएं हर लीं। हमारे इस बच्चे पर भूत प्रेतों का बहुत बुरा प्रभाव रहता था किन्तु अब वह सब नष्ट हो गया है और यह बच्चा आपके संकीर्तन में आकर के पूर्णरूपेण ध्यानस्थ हो जाता है। श्री ब्रह्मचारी जी के संकीर्तन के प्रभाव से लाहौर में बीसियों जगह बड़ी-बड़ी संकीर्तन मंडलियां बन गई किन्तु सबसे बड़ी आश्चर्य की बात यह थी कि उन कीर्तन मंडलियों में भी कीर्तन करते-करते लोग बेहोश हो जाया करते थे। कृष्णा गली नं. 2 में जिस समय श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी कीर्तन आरम्भ करते थे उस समय उस मकान की छत जन-समुदाय से इतनी अधिक भर जाती थी जिसके फल स्वरूप हर व्यक्ति के मन में यह शंका पैदा होने लग गई कि कहीं इस मकान की छत न टूट जाए किन्तु कोई भी व्यक्ति वहाँ से वापिस जाना नही चाहता था। एक रोज संकीर्तन के बाद कीर्तन करते-करते बेहोश हो जाने वाले व्यक्तियों की संख्या 100 से कहीं अधिक थी। जिनमें आर्य समाज के बड़े भारी प्रचारक स्वामी सत्यानन्द जी और मुनी की रेती ऋषिकेश वाले स्वामी शिवानन्दजी महाराज भी वहाँ समाधिस्थ बैठे हुए थे। उस संकीर्तन के प्रभाव से अनेक अनेक लोग समाधिस्थ हुए बैठे थे। आँखे खुल जाने के बाद जब वह लोग अपने ध्यानानुभव सुनाते थे, वह बहुत ही विलक्षण होते थे। अधिकांश में अपनी ध्यान स्थिति में लोग भगवान श्री कृष्ण के चरित्रों को देखते थे। कितने ही लोग इस प्रकार के थे जिनके प्राण ब्रहमरन्ध्र में पहुंच जाते थे और उनके स्थूल शरीर की नाड़ियां गतिशुन्य हो जाया करती थी। इन्हीं दिनों में एक बार श्री गोपालानन्द जी मुरादाबाद अपने बहनोई डा. चण्डीप्रसाद के यहां गए। डा. चण्डीप्रसाद मुरादाबाद के ख्याति प्राप्त ऊंचे डाक्टर थे। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी से साले-बहनोई का सम्बन्ध तो था ही किन्तु उनकी संकीर्तन शक्ति को देख कर के डा. चण्डीप्रसाद भी बहुत ही आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने एक रोज देखा कि ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी बिल्कुल चेतना शून्य पड़े हैं, उनकी नाड़ी में गति नहीं है। फेफड़ों में हरकत नहीं है। सारे लक्षण देखकर के डाक्टर साहब ने विचार किया कि ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी में अब प्राण-शक्ति नहीं है। इनका शरीर छूट चुका है और यह दिवगंत हो चुके हैं। ऐसी स्थिति को देखकर के डा. चण्डीप्रसाद ने ऋषिकेश श्री प्रभुजी के चरणो में तार दिया कि हमारे विचार में गोपालानन्द दिवंगत हो चुके हैं। क्या हम इनके शरीर का गंगा किनारे ले जाकर के अग्नि संस्कार कर दें। इस तार के उत्तर में श्री प्रभुजी ने तार से ही जवाब दिलाया-तुम इस प्रकार का कोई काम मत करना। गोपालानन्द जिन्दा है और समाधिस्थ है। पांच दिन में उसकी समाधि स्वतः खुल जायेगी और फिर वह अपने सब काम पूर्ववत् करने लगेगा।

१४.११ श्री माधोराम जी महाराज पर प्रभु कृपा

श्री माधोराम जी लाहौर के रहने वाले थे। ये पंजाब गवर्नमेंट प्रेस में काम करते थे। उन के बड़े भाई केशवराम जी दिल्ली रेलवे में काम करते थे। श्री माधोराम जी जब छटी कलास में पढ़ते थे तो उन को श्री कृष्ण लीला का नाटक देख कर प्रभु चरणों में लगन लग गई तो उन्हों ने पढ़ाई छोड़ दी और महात्माओं के सत्संग में जाने लगे। घरवालों ने उन की शादी कर दी।

वह ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के संकीर्तन कृष्णा गली नं.2 में समाधिस्थ हो कर भगवान श्री कृष्ण चन्द्रजी की लीला का दर्शन करते थे। श्री प्रभु जी के चरणों के दर्शन प्राप्त कर श्री माधोराम जी ने दीक्षा के लिए प्रार्थना की। तब श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने ब्र0 गोपालानन्द जी को इन्हें दीक्षा देने का आदेश दिया। श्री माधोराम जी ने इतना अभ्यास किया कि वह 24 घंटे समाधि अवस्था में रहने लगे और उन का जीवन कृतार्थ हो गया ।

१४.१२ योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा लाहौर के भक्तों को उपदेश-

आनन्दकन्द ऋषियोंके मन को मोहने वाले सर्वशक्तिमान् की आत्माओं! क्या तुमने विचारा है हम कौन थे, क्या हो गए, कैसे हमारा उच्च मस्तक नीचा हो गया। क्या तुम जानते हो, तुमने ही सबसे पहले सर्वशक्तिमान की उपासना करनी सीखी थी, तुमने ही समुद्र को बिन्दु में लय करना सीखा था, तुमने ही ईश्वरीय दिव्य शक्तियों को आकर्षण करना सीखा था तथा आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक, सामाजिक उन्नति का उज्जवल जीवन बनाते हुए संसार को अनुभवी उपदेश दिया था कि सारा संसार व्यापक प्रभु स्वरूप है। सारा विश्व हमारा परिवार है। तुम मन्त्रद्रष्टा तत्वज्ञ होकर देवों के देव इन्द्रदेव की समता रखते थे। शांति, क्षमा, दया, उदारता, माधुर्य जीवन, देवों के ऐश्वर्य को मात करते थे।

अष्ट सिद्धि नव निधि जिसके द्वार की सेविका बन गई थी। आज तुम वही हो जो सर्व प्रकार के रोगों से रोगी, दुःखों से दुखी, पददलित, परतन्त्रता की पराकाष्ठा में पहुँच चुके हो। तुम्हारी प्रतिभा क्या थी जिसका तुमने त्याग कर दुर्बलता, कायरता, विषयों के जाल में फंस कर ज्योतिर्मय जीवन को अन्धकार आच्छन्न करके पथभ्रष्ट होते जा रहे हो। क्या तुम ने विचारा है कि जो मन प्रभु के स्वरूप में अभेद हो रहा था, वह क्यों विषयी, हठी, दुराग्रही होकर सर्वशक्तिमान प्रभु से अलग हो रहा है।

अध:पतन का कारण

यह मन जब से अनन्त आनन्दकन्द व्यापक प्रभु से पृथक् हुआ है तब से उस आनन्द की प्राप्ति के लिए यत्नवान् हो रहा है। आनन्दकन्द में स्थिर होने के लिए मनुष्य योनि प्राप्त की है और आँख–कान इसने साधन बनाए। आँख से रूप, कान से नाम की प्राप्ति हुई। प्रत्येक नाम में रूप, रूप में नाम जानने की प्रवृति हुई। जैसे कोई मनुष्य सुन्दर फल को देखता है, फिर उसका नाम और गुण मालूम करता है, उसका नाम और

गुण मालूम करके, उसको प्राप्त करके रस लेता हुआ, उस फल से आनन्द ग्रहण करने का साधन मन में धारण करता है। अथवा किसी मधुर फल का नाम और गुण सुनता है उसको प्राप्त करता हुआ सुख प्राप्ति का साधन समझता है, किन्तु विषयों में यह गुण है कि वह आरम्भ में आनन्द देते हैं। जब कुछ क्षण सेवन करता है तो उसी विषय से उसको विरक्ति अर्थात उसके दोष प्रतीत होने लगते हैं, उसी में उसको कष्ट प्रतीत होने लगते है। पहले आनन्द प्राप्त होने से विषय में प्रेम हुआ, फिर उसी से द्वेष होने लगा। अब वह कर्णेन्द्रिय से स्त्री की प्रशंसा वा गुण सुनता है उसको प्राप्त करने की इच्छा से तन्मय होकर उद्योग से प्राप्त करता है फिर उसको स्त्री का सुख भोग भी अच्छा नहीं लगता। पुत्र होता है, पुत्र के लालन-पालन में, उसके मधुर स्वर में, आनन्दित होता है, परन्तु ज्यों ही वह उसके विरूद्ध चलता है। उसके ध्येय पर बाधा देता है त्यों ही उससे उसको भी दुःख पहुँचता है इस रीति से नाम-रूप के संस्कार लाखों ही प्रतिदिन अन्तः करण के प्लेट पर पड़ रहे हैं, उनमें जिस-जिस को प्राप्त कर आनन्द का अनुभव कर लेता है उन को संस्कार चक्र फिल्म के स्वरूप में बनाता चला जाता है। फिर एक नाम से अनेक नाम, इस प्रकार एक नाम-रूपात्मक सृष्टि बनती हुई संस्कार चक्र को बढ़ाती चली जाती है और विषयानन्द के लाखों नाम-रूपों के केन्द्र मन ने प्रत्येक इन्द्रिय द्वारा प्राप्त करके बना लिए हैं और प्रतिक्षण बना रहा है। मन का स्वभाव नकद धर्मी है, अर्थात प्रत्यक्ष धर्मी है। मन को जिस काम से प्रत्यक्ष में फल प्राप्त होता है उसके लिये वही ध्येय स्वतः ही बन जाता है।

पाठक! अब आप समझ गए होंगे कि मन क्यों चंचल बना, क्यों राग द्वेषी बना; आशा तृष्णा इसमें क्यों पैदा हुई। काम क्रोध लोभ मोह आदिकों का समूह इसने क्योंकर कैसे पैदा किया। जब मन को किसी विषय में प्रवृत होने पर आनन्द और कुछ देर बाद दुःख होता है, तब दुखित होकर और किसी विषय में प्रवृत होता है। वहाँ भी जब सुख पूरा न मिला तब अन्य किसी विषय में प्रवृत होता है, इस तरह रात दिन कृत्रिम आनन्द क्षेत्रों में इधर-उधर बन्दर की नाई भटक रहा है। पूर्ण शान्ति न मिलने से इसकी चात्रचल्यता बढ़ती ही चली जाती है, यही कारण राग द्वेष का है। विषयवासना में आसक्त होकर तीव्र इच्छा करता है, तब ही वह कामी होता है। जब उसमें कोई विध्न करता है, तो क्रोधी होता है। जब विषयों के साधन द्रव्यादिकों के एकत्र करने में तत्पर होता है, तब वह लोभी होता है। जब विषयों को सेवन करते-करते उनमें आसक्त हो जाता है, तब इस अवस्था को मोह कहते है। जब विषयों के साधन, धन, पुत्र, बान्धवादि अथवा इन विषयों के प्राप्त कराने वाली विद्या व शारीरिक बल प्राप्त करता है, तो अभिमानी कहलाता है। जिस प्रकार एक बीज से एक वृक्ष, एक वृक्ष से हजारों बीज उत्पन्न होते हैं। फिर इन बीजों से हजारों वृक्ष उत्पन्न कर, लाखों बीज व वृक्ष उत्पन्न होते रहते हैं। इसी तरह हमारा अन्तःकरण क्षेत्र विषयवासनाओं का झाड़ीदार काँटों वाला बन गया है। इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी डाकू छिपे हुए हैं। जो प्रभु के पास जाने वालें पथिक को सहज ही में लूट लेते हैं। ज्यों-ज्यों नाम-रूप से वासनाओं का घना जंगल बनता जा रहा है, त्यों-त्यों ईर्ष्या, मत्सरता, कपट, क्रूरता, आलस्य, प्रमाद आदि भयंकर डाकू बढ़ते जा रहे हैं। अविद्यादि का अन्धकार इस प्रकार घनघोर रूप में छाया हुआ है, कि ज्ञान रूपी सूर्य के निकलने की आशा ही नहीं रहती है। न मार्ग दीखता है, न झाड़ियाँ बढ़ने देती है। जो बढ़ भी गया तो साधक को डाकुओं ने लूट लिया। आर्थात साधक पग-पग पर इन महा विध्नों से घबरा कर थक जाते हैं। फिर इन दूषित विचारों के आधार पर विषयी बुद्धि से निश्चय करके, प्रभु की आनन्दमयी सृष्टि को दुःखमयी बना लिया करते हैं। जैसे एक व्यक्ति के विचार काम चेष्टा के हैं और उसी समय वह किसी स्त्री को देखकर, उसे विषय भोग का केन्द्र समझ कर, आनन्द प्राप्त करने की कल्पना करता है। उसकी प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न करते हुए अनेक शरीरों को नष्ट करने से नहीं रूकता, अनेक जीवों को दुख देता

है। परन्तु जिन–जिन जीवों को दुःख देता है। अथवा जिन–जिन शरीरों को जब–जब, जैसा–जैस, जहाँ–जहाँ, दुःख देता है। वे ही जीव और शरीर तब–तब, वैसा–वैसा, वहाँ–वहाँ, दुःख देने के लिए नाना रूपों में संस्कार चक्र से प्रेरित होकर बदला लिया करते हैं, यह है प्रारब्ध, तकदीर और भाग्य।''

इसी प्रकार शुभ विचारों की धाराएँ भी काम किया करती हैं, और उनका परिणाम भी सुख मिलता है परन्तु यह सुख भी स्थिर नहीं होता, क्योंकि शुभ कर्म करते समय राजस, तामस और अहंकार छिपा रहता है। इसीलिए सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख मिला करता है। अब यह देखना है कि सुख दुःख का, दुःख सुख का कैसे कारण होता है। विषयों के सुखों को देने वाले नाम–रूप रजोगुणी स्वभाव होने से मनुष्य के संकल्प, शुभ कर्म, तप, यज्ञ, दान आदि भी वही स्वभाव व प्रभाव रखते हैं। वही परिणाम दिखाते हैं अर्थात प्रथम सुख, पीछे दुःख।

जैसे एक व्यक्ति अनाथों की धन से सहायता करता है परन्तु रजोगुणी प्रवृति वश होकर यश इच्छा से वाध्य होकर चाहता है, कि संसार में मेरा नाम सर्वभक्तों से श्रेष्ठ प्रसिद्ध हो। उसकी भावना दान ग्रहण करने वाले के ह्रदय में प्रवृति उत्पन्न करेगी कि दान दाता की प्रशंसा करे। चूंकि दान देने वाला रजोगुणी प्रवृति में स्थित है उस प्रशंसा को सुनकर प्रसन्न होता है। अर्थात अहंकार के खजाने को बढ़ाता हैं। इसी प्रकार तप–यज्ञ आदि कर्मों से अहंकार की वृद्धि होती है। अहंकार का खजाना जब बढ़ जाता है तब वह अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता, कोई सद् विचार प्रगट भी करता है तो उसे तिरस्कृत करने में संकोच नहीं करता। परिणाम यह होता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और शुभाशुभ विचारों की विवेचना करने में असमर्थ होती है। फिर वह मनुष्य तमोगुण में स्थित होकर दुष्ट कर्म करने में नहीं रूकता और दुष्ट कर्म करके राज दण्ड व समाज भ्रष्ट होकर धन ऐश्वर्य से हीन होकर रोता है। इसी प्रकार संस्कारचक्र के कर्म–प्रवाह में जीव बहा जाता है। उसकी बुद्धि तमोगुण आच्छन्न होने से स्मृति नहीं रखती कि यह जो मैंने मकान से गिर कर चोट खाई है तो मैंने भी किसी समय किसी को धोखा देकर गिराया होगा, इसी कारण मैं गिरा हूँ। इस प्रकार से त्रितापों के कारण जीव दुःखी हो रहा है। वह समझता है कि मैं धर्मात्मा हूँ, मै शुभ कर्म कर रहा हूँ, ऐसा मनुष्य दूसरों को कटु वाणी बोलता हुआ भी हितोपदेष्टा बनने का दावा रखता है।

वह अत्याचार करता हआ भी अत्याचारी अपने को नहीं समझता। क्रूरता करता हुआ भी अपने में वीरत्व का गुण अनुभव करता है। अर्थात वह यही कहता है हमें नेकी की जगह बुराई मिलती है। दुनियां पापी है संसार झूठ प्रपञ्च का इच्छुक है। हम सच्चे हैं, हमारी बात कोई नहीं मानता, जिसे पीलिया (पाण्डु) रोग हो वह सब कुछ पीला ही देखता है, इसी तरह बुद्धि जब रजोगुणी तमाच्छन्न होती है तब मनुष्य की भी यही अवस्था होती है। दैवेच्छा है, इस प्रकार रजोगुणी तमोगुणी सुख जो नाम–रूपों से मनुष्य ग्रहण करता हुआ व्यापक प्रभु के आनन्दमय शांति साम्राज्य में दुःख का कारण समझता हुआ भी इसी आशा रूपी जाल में फँसा रहता है। ऐसी अवस्था प्रायः हम सब मानव जगत् में अनुभव कर रहे हैं।

सच्चे अखण्ड आनन्द की प्राप्ति का साधन

यह पहले लिखा जा चुका है कि मन का स्वभाव प्रत्यक्ष धर्मी है। यह वहीं लग सकता है जहाँ प्रत्यक्ष में रस मिले तब ही यह उस पर विश्वास करके दृढ़ होता है। योगियों ने भी ऐसी ही युक्ति निकाली, जिससे यह प्रत्यक्ष में ही परमानन्द प्राप्त कर सके। सर्वशक्तिमान निराकार व्यापक प्रभु के अनन्त आनन्द की प्रतीति हो जाय।

भारतीय उच्च आत्माओं ने इसे अच्छी तरह समझा था क्योंकि वह देव और मुनियों के मन को मोहने वाले प्रभु को देखते-देखते, संसार सागर में कमल के समान रहना अच्छी तरह सीख चुके थे।

''विषस्य विषमौषधम्'' के सिद्धान्त से उन्होनें नाम-रूप के संस्कार चक्र को नाम रूप से ही नष्ट करना निश्चित किया था। जिस नाम-रूप से मन विषयों की ओर प्रवृत हो रहा था और अधोगति को प्राप्त हो शोकसागर में गोते लगाता था, उन्होंने नाम-रूप से ही परमानन्द में मग्न करने की युक्ति निकाली-मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो। अर्थात् मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। मन बन्धन का कारण कैसे हुआ यह तो आप समझ ही गए होंगे किन्तु मोक्ष का कारण कैसे और किस प्रकार होता है यह समझना शेष है।

जिससे सृष्टि का विकास हुआ, जिससे सब नाम उत्पन्न हुए, जिससे सर्व शब्द व नाद ध्वनि उत्पन्न हुई, जिसके आधार पर वेद शास्त्रों का निर्माण हुआ, जिसके प्रकाश से सूर्य चन्द्र आदि नक्षत्रों की उत्पति हुई, जिस अक्षर ब्रह्मओंकार की स्तुति उपनिषत्कार करते हैं।

जिस एक शब्द का कम्पन सारे संसार में कम्पन करता हुआ, रचना, उत्पति, प्रलय कर रहा है। जिसका प्रकाश, सर्व रूपों का कारण हो रहा है। जिस एक बिन्दु में अनन्त आनन्द के समुद्र की लहरे उठ रही हैं। जिस एक बीज में अनन्त आनन्द, अहिंसा, शांति, दया, क्षमा, सत्य, धैर्य के सद्गुणों की वाटिका लग रही है। जिसमें शीतल सुगन्ध, शुद्ध ऋतम्भ्रा बुद्धि रूपी पवन चला करता है। जिसमें प्रवेश करके शुद्ध बुद्ध होता हुआ, शान्त सागर में लय हो जाता है। अमृत का समुद्र भण्डार जिसमें छिपा हुआ है, उस नाम रूप के विषयों का सेवन कराकर, अशांत दुःख सागर में डुबाने वाले; क्षणिक सुखों का लालच देने वाले कान और नेत्रों में प्रवेश कराते हुए आनन्दमय कराना निश्चय किया।

सद्गुरु की शक्ति संचार का रहस्य

जिस समय संसार से दुखित होकर आनन्द का जिज्ञासु किसी सद्गुरु योगी के चरणों में पहुंचता है, तो मन्त्र द्रष्टा दिव्य दृष्टि के द्वारा, गुरु उसके पूर्वजन्मार्जित अन्तःकरण के संस्कार चक्र को देख कर, निश्चित करते हैं, कि यह पिछले जन्मों में किस स्वरूप का ध्यान और मन्त्र का जाप करता रहा है। इसके हृदय-मानस क्षेत्र में किस प्रकार के विचारों का संग्रह है। यदि एक शरीर भगवान राम के स्वरूप में प्रेम रखता है। उनके सद्गुणों को आकषित करके भगवत् प्राप्ति का अधिकारी है, तो उसका ही ध्यान उसी मन्त्र में स्वशक्ति से मन्त्रित करते हैं। यदि कोई भक्त निराकार सर्वव्यापक निर्गुण तत्व का जिज्ञासु है, तो वह ओंकार मन्त्र से विश्व व्यापक प्रभु के प्रकाश स्वरूप में साधक के मन को मन्त्रित कर देते हैं। निश्चय रखिए, गुरु वही है, जो मन को मन्त्रवत् कर दे, ध्यान से ध्याता को ध्येय में लय करा दे।

मनुष्य का मन चंचल इसीलिए हुआ है कि उसे परमानन्द की प्राप्ति नहीं हुई। यदि उसको परमानन्द की झलक दीख पड़े, तो उसकी चंचलता आदि सब दोष स्वयं नष्ट हो जायेंगे। इसी सिद्धान्त के अनुसार गुरुजन साधक के मानस क्षेत्र शुद्ध विचार मण्डल के अनुरूप विषयी मन को आनन्द सागर में ले जाने वाले नाम और रूप को देते है। संसार में विषयात्मक नाम-रूप की वस्तुएं शारीरिक उद्योग से प्राप्त हो जाती हैं। उस को सत्य मान कर संस्कार चक्र में बाँध लेता है किन्तु देखना यह है कि मनइन्द्रिय से परे निराकर

निरंजन प्रभु को प्रत्यक्ष में कैसे मिल सकते है। मनुष्य के अन्दर प्रभु सर्वशक्तियों का भंडार खोले हुए बैठे है जिसने प्रभु के अनन्त भंडार की कुन्जी प्राप्त करली है, वह संसार में सर्वशक्ति सम्पन्न होता हुआ मुक्त जीवन हो जाता है।

भीखा भूखा कोउ नहीं, सबकी गठड़ी लाल।
गांठ खोलना नहीं जानते, इस विधि भय कंगाल ।।

आनन्द भंडार की कुन्जी

मनुष्य में प्रभु ने दो शक्तियाँ दी हैं जो इन दोनों का मिलाना जान लेते हैं; वही सर्वशक्ति स्वरूप होकर सर्वशक्तिमान में मिल जाते हैं। जिस प्रकार बिजली के दो तार मिलकर बिजली की करैंट उत्पन्न कर देते हैं। इसी प्रकार मनुष्य में भी हैं दो शक्तियाँ, इन दोनों को मिलाने से विद्युत और सूर्य को प्रकाश देने वाला, सूर्यो का सूर्य, प्रकट हो जाता है। मनुष्य में मन और प्राण दो शक्तियाँ हैं। मन और प्राण को एकत्र कर देने से, आनन्द सागर की लहरें उत्पन्न होती है। क्योंकि ब्रह्माण्ड और शरीर में एक ही नियम काम कर रहा है।

विषयों में भी आनन्द की उत्पति इसी तरह हआ करती है। मन प्रत्यक्ष में जिन विषयों से आनन्द का अनुभव करता है। उसका भी यही मुख्य कारण है। जब तक मन के साथ प्राण रहते है तब तक ही आनन्द का अनुभव करता है। जब मन के साथ प्राण नहीं रहते तब विषयों से आनन्द न मिलकर दुःख ही मिलता है। जैसे एक आदमी का मन रसगुल्ले के खाने को करता है और खाता भी है उसे आनन्द भी आता है क्योंकि प्राण शक्ति का सहयोग रसना जिह्वा द्वारा मन से हो रहा है। जब पेट भर जाता है अर्थात प्राण शक्ति मन से पृथक होती है तो मन फिर कितना ही चाहे वही रसगुल्ले अच्छे नहीं लगते। इसी प्रकार सारे विषयों में प्राण तत्व अल्प होता है इसलिए प्राण शक्ति तृप्त नहीं होती। किन्तु ईश्वरीय नाम रूप में प्राण शक्ति का अनन्त भण्डार छिपा हुआ है इस लिये मन प्राण शक्ति के आश्रय होकर नाम रूप के प्रपंच को त्याग कर ईश्वरीय दिव्य नाम रूप में अभेद होकर मुक्त हो जाता है। व्यापक प्रकाशी प्रभु नाम रूप में प्राण मन को, एक कर देने से मंथन होकर साक्षात् होते हैं। इस आनन्द को जिसने भी प्राप्त किया, वह चक्रवर्ती राज्य को त्याग कर, नाम–रूप के विषयों को तुच्छ मानकर, परमानन्द प्रभु के ऐश्वर्य में मग्न होकर विषयों को काक विष्ठावत् त्याग देता है। जिसके कारण सब कुकर्म नष्ट हो जाते हैं और साधक परमानन्द सागर में लय होने लगता है।

मनुष्य के मन में वह अद्भुत शक्तियों का भण्डार है जिसकी कल्पना वह स्वयं भी नही कर सकता। परन्तु प्राण शक्ति से पृथक् होकर प्रभु के दरबार में यह पहुँचने में असमर्थ है। मन पिंगला सवार है, प्राण सवारी है, प्राण शक्ति है, मन शिव है। मन जब प्राणों में स्थित हो जाता है, तब आनन्द केन्द्र सर्व शक्ति भण्डार को खोलने में समर्थ होता है। मन विचारों का स्वरूप है, प्राण इसका तेज है। स्वरूप में तेज नहीं तो रूप जड़ के समान है। इसी लिए आपके अधिकांश विचार प्राण शक्ति के बिना केवल कल्पना क्षेत्र में ही गूँजते रहते हैं, उनमें सफलता नही होती।

शक्ति प्राणों के आश्रय है अर्थात प्राण ही शक्ति को आकर्षित करने में समर्थ है। जिस प्रकार मनुष्य की इच्छित प्राण शक्ति श्वासों से प्राणों को ग्रहण करती है उसी प्रकार

प्राणों के प्राण को भी आकर्षित कर सकती है। जैसे विचारों का मनन होगा वैसी ही इच्छित प्राण शक्ति उत्पन्न होगी। यदि आपके विचार विषय वासनाओं के हैं तो शक्ति भी वैसी ही होगी। जिनके विचार दूर्बल संशय युक्त होते है वहां इच्छित प्राण शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती। जिन के विचार प्रबल संशय रहित होते हैं वहां इच्छित प्राण शक्ति प्रबल तीव्र होती है। विचारों की प्रबलता विश्वास से होती है। विश्वास प्रत्यक्ष अनुभव से दृढ़ होता है। याद रखो, मनुष्य के दृढ़ विचार और तीव्र इच्छाओं में इतना बल है कि आकाश में इच्छित वस्तु को शीघ्र ही आकर्षित कर लेती हैं। यह आकाश (ईथर) ही सारे विचारों की लहरों को इच्छित प्राण शक्ति द्वारा इच्छित केन्द्र पर ले जाता है। इस विश्व ब्रह्माण्ड में प्रभु सर्व शक्तियों के केन्द्र हैं। जिस समय जैसी बलवती विचार शक्ति जिस प्रकार के केन्द्र की ओर इच्छित प्राण शक्ति से प्रवाहित होती है ठीक उसी समय वैसी बलवती विचार शक्ति के केन्द्र पर पहुँच कर सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। सम्बन्ध की स्थापना ही 'उपासना' है अर्थात् उस शक्ति केन्द्र से शक्ति आकर्षण कर मन को शक्तिवान बना कर फिर उससे अधिक शक्तिशाली बनता हुआ तीव्र शक्ति आकर्षण करने में समर्थ होता है। जिस प्रकार एक दरिद्र एक रूपए से व्यापार करता है तो दो रूपए प्राप्त होते हैं। दो से चार इस प्रकार वणिक् किसी समय राजा हो जाता है। ठीक इसी तरह साधक ज्यों–ज्यों विचारों को इच्छित प्राण शक्ति से शक्ति केन्द्र में आकर्षण करने लगता है त्यों–त्यों मन दिव्य बलवान् होता हुआ देवत्व को प्राप्त होता है। देवत्व आते ही आसुरी भाव नष्ट होते हैं, ज्यों–ज्यों आसुरी भाव नष्ट होते हैं, त्यों–त्यों मन को देवत्व प्राप्ति में सफलता होती है। इसका परिणाम यह होता है कि यह मन एक दिन देवों के देव महादेव की शक्तियों को प्राप्त हो सकता है। जैसे कोई धातु अग्नि में पड़ कर अग्नि स्वरूप हो जाती है।

गुरु की शक्ति संचार का स्वरूप

जिस समय गुरु साधक को ईश्वरीय शक्तियों के किसी स्वरूप में और उसी नाम में लगाता है तो कर्णेन्द्रिय नाम में, दृष्टि उसके स्वरूप में लगकर वृत्ति अन्तर्मुखी होती है, परन्तु नाम का उच्चारण जिह्वा से नहीं, किन्तु शब्द के रूप में अर्थात ध्वन्यात्मक नाम को श्वासों में गुरुजन प्रत्यक्ष कराते हैं साथ ही स्वशक्ति देते हैं जिसके प्रभाव से नाम में रूप की प्रतीती होती हैं और स्वरूप में देवत्व गुरु की संकल्प शक्ति से प्रगट होता है। देवत्व के प्रगट होने से यह दिव्य स्वरूप ईश्वरीय शक्तियों का सागर है। नाम में रूप से ईश्वरीय विचारों का आकर्षण होता है। प्राण शक्ति श्वासों से ईश्वरीय नाम रूप के विचारों को ब्रह्माण्ड के ईश्वरीय केन्द्रों पर पहुँच कर सम्बन्ध की स्थापना करती हैं। ईश्वरीय विचारों का मण्डल ध्येय स्वरूप से अन्दर स्थित होता है, अर्थात बारम्बार मन एक से विचारों को श्वासों में पिरो कर आकर्षण करना प्रारम्भ करता है तो ईश्वरीय शक्ति की झलक अनुभव में आने लगती है। प्रत्यक्ष में आनन्द की प्राप्ति से दृढ़ विश्वास होता है, दृढ़ विश्वास से विचार शक्ति अद्भुत बलशाली होकर इच्छित प्राण शक्ति को बलवती बनाती है। उस इच्छित प्राण शक्तिमान श्वासों में होने वाले नाम रूप से देवत्य ग्रहण करने में साधक शीघ्र ही सफल होता है। तथा मन की एकाग्रता, आनन्दकन्द प्रभु की शान्त आभा से मन शान्त होने लगता है। यहाँ नाम की ध्वनि जो श्वासों में स्वतः हो रही है और जब ध्वनियुक्त श्वासों में ईश्वरीय विचारों की तीव्र आकांक्षा होती है तो श्वासों के आकर्षण के साथ दिव्य नाम रूप में छिपे हुए विचार भी आने लगते हैं। वह विचार

जैसे-जैसे आते हैं, त्यो-त्यों अपना स्थान बनाते हुए विरूद्ध विचारों को निकालते चले जाते है। अतः शुद्ध विचारों का आकर्षण श्वासों के आवागमन के साथ-साथ होता है और दूषित विचारों का नाश होना आरम्भ हो जाता है-''इसी को देवासुर संग्राम कहते हैं''। अब विषयों में प्रवृत करने वाला नाम रूप का दरवाजा बन्द हो जाता है बल्कि अन्दर के चोर डाकू भी निकलने लगते हैं।

सतोगुणी विचारों की प्रबलता होने से रजोगुणी तमोनुणी विचार नाश होकर साधक सतोगुणी होना आरम्भ होता है। सत्व स्वभाव से मन बुद्धि अहंकार भी सतोगुणी होने लगते हैं। फिर साधक के मन वचन कर्म सब ही शुद्ध पवित्र होने लगते हैं। अब साधक तप दान आदि जो भी कर्म करता है वह निष्काम होता है, क्योंकि साधक सत्व स्थित बुद्धि के आश्रय कर्म करता हुआ निष्काम-अकर्ता होता है। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को, भय-अभय को, बन्धन और मोक्ष को जो बुद्धि तत्व से जानती है वह बुद्धि सात्विकी है, अर्थात सात्विकी बुद्धि सात्विकी स्वभाव बनाने में समर्थ होती है। सात्विकी स्वभाव निष्काम कर्म से बन्धन काटने में समर्थ होते हैं। अब यह देखना है कि निष्काम कर्म कैसे होते है और क्योंकर बन्धनों को मुक्त करने में कारण होते हैं ? जिस समय साधक श्वासों में प्राणों कें प्राण का आवागमन होता देखता है तो इस संसार की उत्पति रचना प्रलय भी श्वासों से होती हुई प्रतीत होने लग जाती है जैसे-जैसे अपने अन्दर के दूषित विचारों का नाश होता हुआ देखता है वैसे-वैसे ब्रह्मण्ड में भी इसी प्रकार की क्रिया होती हुई देखता है। साधक को प्रकाशों के प्रकाशय गुरू की ज्ञान रूपी सूर्य की किरणों देह में स्थित होने पर शारीरिक, मानसिक क्षेत्र की स्वामिनी दीखती है तब वह अकर्ता होता है। अब साधक का मन, मन नहीं रहा। साधक के प्राण, प्राण नहीं रहे किन्तु देह-बिन्दु के मन-प्राण ब्रह्मण्ड के मन-प्राण हो जाते हैं तब ही साधक की स्थिति ऐसी होती है, यथा-

''उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्''

अर्थात सारा ब्रह्माण्ड साधक का परिवार हो जाता है साधक सूर्य में सूर्यवत होकर प्रकाश करता है। उसकी शांत किरणें सारे परिवार को, सारे नगर को, सर्व देशों को आनन्दमय बना देती हैं। ऐसी अवस्था जब प्राप्त होती है तब ही साधक को ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है साथ ही ''परा पश्यन्ति वाणी'' सुनाई देती है। यह अवस्था बुद्धि को आत्मतत्व में स्थित होने से प्राप्त होती है, ऐसी अवस्था में पहुँचा हुआ साधक सर्वशास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है, सर्व संशय नाश हो जाते हैं, सब गुप्त विद्याएँ प्रकट होती हैं, सर्व सिद्धियाँ दासी हो जाती हैं। ज्यों-ज्यों साधक को अधिक आनन्द होता है त्यों-त्यों प्यारे प्रभु से मिलने की आकांक्षा अधिक होती जाती है। प्यास के बढ़ने से साधक का मन देवत्व अवस्था में आ जाता है तब ही सिद्ध पुरूष मुक्तात्माओं के अर्थात भगवत् शक्ति स्वरूप भगवान के ही दर्शन होते हैं। साधक कृतकृत्य होता है, मुक्तात्मा देव गण प्रसन्न होकर (वरं ब्रुहि) साधक को बर देने के लिए कहते हैं और स्वशक्ति देते हैं जिससे साधक निर्विध्न होकर हर समय आनन्द मग्न रहता है। सब देवता उसकी स्तुति करते हैं, सर्व शक्तियाँ उसे प्राप्त होती है। परन्तु वह सर्वशक्तियों का कर्ता, जो प्रकाशों का प्रकाश है नाम-रूप का कर्ता है उसमें लीन रहता है साधक की ऐसी उच्च अवस्था का वर्णन भगवान श्री कृष्ण से गीता अध्याय 6 श्लोक 30 में करते हैं कि

जो देखता मुझ में सभी को और मुझ को सब मर्हीं।
मैं दूर उस नर से नही वह दूर मुझ से है नहीं।।"

जो पुरूष सब भूतों में सब के आत्म स्वरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है उसके लिए मैं अदृश्य नहीं हूँ क्योंकि वह मुझ में एकीभाव से स्थित है।

स्वतः प्राण निरोध अवस्था

साधक जिस समय प्रकाशस्वरूप सूर्यो के सूर्य को अपने अन्दर प्राणों में स्थित करके अन्दर लाता है तो उस समय अपने स्वरूप को लय करके ध्येय रूप में होता है और उस ध्येय रूप प्रभु में सर्वभूतों को, सर्व देवताओं को और सारी सृष्टि को अपने अन्दर देखता है। जब श्वास बाहर जाते है तो ब्रह्माण्ड में उसके प्रकाशमयी श्वास लय होते दीखते हैं। श्वासों के साथ, प्रकाशमय व्यापक प्रभु भी संसार में ब्रह्माण्ड की रचना, उत्पति, प्रलय में, प्रकृति के परमाणुओं में दीखते है ऐसी अवस्था में श्वासों की गति बढ़ जाया करती है, श्वास लम्बे और तीव्र व एक से होते हैं, क्योंकि जो विचार मण्डल श्वासों में प्रकाशों के प्रकाशक का स्थित है। वह ऐसी धारण के स्वरूप में स्थित होता है जिससे साधक को प्रत्येक श्वास के साथ आनन्द–स्वरूप श्वास की स्थिति होती है। जब आनन्दमय श्वास अन्दर आते हैं तब पूरक होता है। जब साधक प्राणों के प्राण–रूप प्रभु को हृदय–क्षेत्र में बैठाता है तब कुम्भक होता है। जब प्राणमय श्वास ब्रह्माण्ड में लय होते हैं, तब रेचक होता है। इस प्रकार प्रणव मन्त्र द्वारा स्वतः ही प्राणायाम होता है। इस प्राणायाम के विषय में उपनिषदों में कहा है –

मनो यत्र लीयते प्राणस्तत्र लीयते। यत्र प्राणः लीयते तत्र मनो लीयते।।

अर्थात् जहाँ मन लीन हो जाता है वहाँ प्राण लीन हो जाते हैं। जहाँ प्राण लीन हो जाते हैं वहाँ मन लीन हो जाता है। मन, प्राण और नाम–रूप की एकता का सिद्धान्त ही निश्चय बोध कराता है कि यह तीनों लक्ष्य इस साधन से सहज ही स्वतः प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्राणों का निरोध स्वतः ही हो जाता है।

अमृत कैसे प्राप्त होता है

अमृत क्या वस्तु है? जिससे मृत्यु न हो, वह अमृत है। पाँच तत्व का भौतिक शरीर बाल, युवा, वृद्ध होकर नाश होना यह मृत्यु हैं, पाँच तत्वों का आगमन जब जीवनी तत्वों की विचारधारा से जीवन रूप होकर आता है तो शरीर में अद्भुत परिवर्तन होना आरम्भ हो जाता है जो शारीरिक परमाणु बढ़ने घटने वाले होते हैं वही जन्म मृत्यु का कारण उपस्थित कराते हैं, जब अस्थिर परमाणु नित्य स्थिर रूप से आत्मस्वरूप में लय होना सीख जाते हैं तब वह भी नित्य स्थिर अचल रूप में धारण करके अमृत होते है। शरीर के अमृत परमाणु अमृत शरीर की स्थापना कर देते हैं। अब यह जानना है कि अमृत कैसे प्राप्त होता है। जब साधक श्वासों में अजन्मा, नित्य स्थिर परमानन्द के स्वरूप को आकर्षण करता है तो मानसिक दोषों के साथ ही साथ शारीरिक दूषित दुर्बल परमाणु नाश होते हैं। और चैतन्य अमृत दिव्य परमाणु शरीर में वास करने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि योगी का शरीर अमृतमय हो जाता है। ऐसी अवस्था में साधक के मल–विक्षेप–आवरण दूर होकर साधक को शुद्धोऽस्मि'' का बोध होता है,

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

अग्नि का मंथन

जिस समय साधक प्राणों का आकर्षण एक सी स्थिति से पूर्वोक्त धारण–ध्यान ध्येय में करता है तब स्वतः ही प्राण वायु नाभि तक संचार करती है तब समान वायु का सम्बन्ध हो जाता है, फिर प्राण और समान वायु का सम्बन्ध हो जाता है। प्राण और समान वायु के मिलते ही नाभि चक्र में प्राणों का धक्का लगने से अग्नि का मंथन होना प्रारम्भ होता है। अग्नि का मंथन होने से प्रकाशों का प्रकाश प्रकाशित होकर मन की एकाग्रता का हेतु होता है। जिस प्रकार बाह्य संसार सूर्य से स्थित है इसी प्रकार मनुष्य शरीर भी नाभि चक्र में स्थित है इसलिए ये नाभि चक्र ही शरीर रूप हो रहा है। उपनिषद्कार कहते हैं कि स्वदेह को लकड़ी बना कर प्रणव मन्त्र को भी देहवत् दूसरी लकड़ी बनावें। ऊपर नीचे लकड़ी मथने से जैसे अग्नि प्रकट होती है ऐसे ही जब नाभि देह में प्रणव मन्त्र का श्वासों द्वारा घर्षण होता है तब ब्रह्म का साक्षात् होता है। तब ही मन की एकाग्रता होती है। इस प्रकार से निश्चित होता है कि इस सहजयोग में सर्व प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान स्वतः ही स्थित होते है। इसमें साधक हर समय साध्य–साधन रूप होकर असार संसार को सार रूप में ग्रहण करता हुआ जीवन्मुक्त हो जाता है।

मुक्त जीवन की प्राप्ति

अब नाम रूप के विषयों का वन भस्म हो गया है। साधक के विरोधी, हिंसक डाकू, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, सच्चे मित्र, व सहायक बन गए हैं। मन जिन काम्य पदार्थो की लालसा में रत रह कर चंचल दुखी होता हुआ भटकता फिरता था अब वह अनन्त आनन्द भण्डार के भण्डारी परमानन्द स्वरूप में निमग्न है। जिन काम्य पदार्थो के मिलने से संसारी जीवों पर क्रोध, करता था। अब वह अपने मन इन्द्रियों पर क्रोध करके इन्द्रिय दमन का पाठ सीख गया है। जिससे सब इन्द्रियाँ शान्त हो चुकी हैं। जिन सांसारिक विषयों के फँसने वाले लोभ में क्षणिक आनन्द को लेता हुआ अज्ञान अन्धकार में जी रहा था वह संसार के प्रत्येक परमाणु से अनन्त आनन्द का ग्रहण करता हुआ प्रभु के ऐश्वर्य में ऐश्वर्य रूप होकर सच्चा लोभ करना सीख चुका है, जो संसार के विषयों में मोह से मोहित होकर बुद्धि को नष्ट कर अकर्मण्य बन चुका था, वह प्रभु के अनन्त आनन्द स्वरूप में अपने को लय करके देह दुनियाँ की भास मिटा रहा है। जो सांसारिक विषयी ऐश्वर्य विद्या, धन, मान–मद को प्राप्त होता हुआ आप जीव होकर शरीर को आत्मा मान करके देह अभिमानी बन प्रभु से दूर हो रहा था, अब वह सर्व शक्तिमान के स्वरूप में शक्ति रूप होकर अगम्य आनन्द सागर में लय हो रहा है। सारे देवता उसकी स्तुति करते हैं। ऐसी स्थिति को भगवान गीता अ0 15, श्लोक 6 में कहते हैं

"जिसमें न सूर्य प्रकाश न आग ही का काम हैं।
लौट न जन जिसमें पहुँच मेरा वहीं पर धाम हैं।।"

जिस प्रकाशमय प्रभु को न सूर्य, न चन्द्रमा न अग्नि प्रकाशित कर सकता है उस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य फिर संसार में नहीं आते फिर ऐसे परम पद का अधिकारी कौन हो सकता है भगवान् गीता (अ0 15, श्लोक 5) में बताते हैं :–

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

''जीता जिन्होंने संग–दोष न मोह जिनमें मान है।

मन में सदा जिन के जगा अध्यात्म–ज्ञान प्रधान है।।

जिन में न कोई कामना सुख दुःख और न द्वंद ही।

अव्यय परम पद को सदा ज्ञानी पुरूष पाते वही।।''

जिन्होंने मान मोह और आसक्ति रूप संग दोषों को जीत लिया है। जिनकी परमात्मस्वरूप में ही निरन्तर स्थिति है, और जिनकी कामनाएँ भली प्रकार नष्ट हो गई हैं। ऐसे मनुष्य सुख दुःख आदि द्वन्द्वों से विमुक्त हुए ज्ञानी जन अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं। जो हृदय अशान्त क्षेत्र बना हुआ था वह अब निकुंज बन गया है, प्रणव मन्त्र की ध्वनि प्रभु की वंशी के स्वरों से निकल रही है, मन राधा होकर श्याम की श्यामा बन गया है, कमला विमला होकर चपला की चपलता को शांत कर चुकी है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, क्षमा, धैर्य दया के सुन्दर वृक्ष लगे हुए हैं सब विद्याओं के प्रकाश करने वाली प्रतिभा प्रभु के स्वरूप से विकसित हो रही है। अगम अलख निरंजन प्रभु के स्वरूप में तद्रूप होकर साधक साधन में साध्य रूप हो रहा हैं। ऐसी उच्च अस्वथा को भगवान् गीता अ06, श्लोक22 मे कहते हैं :–

''पाकर जिसे जग में न उत्तम लाभ दिखता है कहीं।

जिस में जमे जन को कठिन दुःख भी डिगा पाता नहीं ।।''

जिसकी प्राप्ति पर अन्य कोई लाभ समता नहीं रखता, जिसमें स्थित हुआ योगी कठिन दुःख में भी विचलित नहीं होता। धन्य हैं ऐसे उच्च आत्मा जिन्होंने सद्गुरू प्राप्त करके विश्व व्यापक प्रभु को माता–पिता बन्धु बनाया हैं। वह प्रभु धन्य हैं, वह माता–पिता धन्य हैं जिस ने जन्म देकर आनन्द शान्ति के स्वरूप को पैदा किया है। धन्य हैं वह गुरू जिन्होंने पारस रूप होकर शिष्य–लोहे को स्वर्ण बनाया है। ऐसे शिष्य और सद्गुरू देव को कोटि–कोटि बारम्बार प्रणाम है।

१४.१३ ब्र० गोपालानन्द जी महाराज द्वारा समाधि में प्राप्त श्री गोलोक धाम की दिव्य आरती पूजन

ब्र० गोपालानन्द जी ने अपनी समप्रज्ञात समाधि में एक दिन देवताओं द्वारा की जाने वाली प्रभुजी की दिव्य आरती की कुछ पंगतियों को सुना और ध्यान से उठने के बाद उसे कागज पर लिख कर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज के चरणों में प्रार्थना की कि हे प्रभु! श्री नित्य निकेतन गोलोक धाम में आप यह आरती सुनी है। श्री प्रभु जी ने उस आरती को देखा तो वह हँस पड़े और बोले बेटा तुम पूरी आरती नही सुन सके। इस का आधा भाग जो शेष रह गया है उस को भी सुनो और फिर इस को लिख लेना। वाद में यही आरती सर्व साधारण में प्रचारित हो जायेगी। ब्र० गोपालानन्द जी ने निवेदन किया कि प्रभो। अब शेष कैसे मिल पायेगा? श्री प्रभु जी ने कहा कि बेट! शब्द आकाश का धर्म है अर्थात एक वार मुख से निकला हुआ शब्द सदैव आकाश में विद्यमान रहता है। अतः तुम उसे ध्यान प्राप्त करने का प्रयत्न करो। श्री प्रभु जी की आज्ञा शिरोर्धाय कर ब्रह्मचारी जी तत्काल ध्यान में बैठ गये तो उन्हें फिर आरती सुनायी देने लगी।

उन्हों ने ध्यान से उठकर उसे कागज पर लिखा और श्री प्रभु हाथों में अर्पित कर दिया। श्री प्रभु जी ने उसे पढ़ कर कहा कि हाँ! अब हुई न पूरी आरती। यह वह दिव्य आरती है भावर्स्थ सहित जिस के द्वारा गोलोक वासी तथा सब देवतागण श्री प्रभु रामलाल जी महाराज की आरती पूजन नित्य किया करते हैं।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु साक्षात् महेश्वरः। गुरुरेकं परब्रह्मः तस्मै श्री गुरुवे नमः।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

जो ईश तत्व अखण्ड मण्डलाकार रूप के समस्त चराचर जगत में व्याप्त हैं जिन्होंने उस परम पद के दर्शन कराये हैं उन सर्वशक्तिमान श्री गुरुदेव को नमस्कार है। गुरु ही सृष्टिकर्त्ता ब्रहमा है, गुरु ही विष्णु है और गुरु ही देवाधिदेव महेश्वर है, गुरु ही परब्रहम परमेश्वर है उन सर्वेश्वर श्री गुरुदेव को मेरा प्रणाम है। अज्ञानरूपी अन्धकार से अंधी हो रही आँखों को जिन्होंने ज्ञानरूपी सुरमे की शलाका से खोल दिया है उन परम दयालु श्री गुरुदेव को मेरा प्रणाम है।

चरणारबिन्दं गुरुदेव नमामि। गुरुदेव शरणं गुरुदेव नमामि।।
भवोभव्यभावं त्रयतापहारं। भवभय विनाशं गुरुदेव नमामि।।
कल्याणरूपं आनन्द कन्दं। धारामृतं शिव गुरुदेध नमामि।।
अरेण्यं वरेण्यं सुरेशं रमेशं। त्रयदेवरूपं गुरुदेव नमामि।।

मैं श्री गुरुदेव के चरण कमलों में प्रणाम करता हूँ। मैं गुरुदेव की अभयप्रद शरण ग्रहण करता हूँ और उन्हें बार–बार प्रणाम करता हूँ। भूत भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालों में अपने सच्चिदानन्दमय स्वरूप में नित्य विद्यमान रहने वाले, भक्तजनों के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीन प्रकार के सन्तापों को हरने वाले तथा जन्म मरण के भय को मिटाने वाले श्री गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ।

जो गुरुदेव कल्याण स्वरूप हैं और आनन्द की खान हैं तथा जो अनादि प्रवाह से स्वयं ही अमृत स्वरूप भगवान सदाशिव हैं उन श्री गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ। जो सब प्रकार से पूजा के योग्य हैं, जो वरण करने योग्य है, तथा जो सभी देवों के ईश्वर भगवान शिव और रमापतिविष्णु हैं उन श्री गुरुदेव को मैं नमन करता हूँ।

न जानामि जापं, न जानामि ध्यानां। पशुपतिरूपं गुरुदेव नमामि।
भूतेश प्रणम्यं अनन्तस्वरूपं। भक्तस्यत्राणं गुरुदेव नमामि।।
घटाकाशगुप्तं महाकाशरूपम् चिदाकाशव्यकतं गुरुदेव नमामि।
अकल्पं अनूपं तपन्तं दिगन्तं। आगोगौचराणां गुरुदेव नमामि।।
सिद्धि अगम्यं तव पादपद्म। प्रबुद्ध शुभेशं गुरुदेव नमामि।।

मैं जप और ध्यान कुछ भी नही जानता। सदाशिव स्वरूप हे गुरुदेव! मैं आपको बार–बार प्रणाम करता हूँ। हे अनन्तस्वरूप गुरुदेव! जिनको स्वयं भूतनाथ भगवान सदाशिव नमन करते है भक्तों की सब प्रकार से रक्षा करने वाले आपको मेरा बार–बार नमन है। घड़े के अन्दर छिपे, आकाश के समान, प्राणियों के अन्दर अन्तर्यामी रूप से रहने वाले, हे गुरुदेव मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

आपके पवित्र चरणकमलों में दुर्लभ सिद्धियों का वास है। हे ज्ञान स्वरूप तथा कल्याणों के स्वामी गुरुदेव आपको मेरा बार–बार प्रणाम है।

१५ सिद्धयोग का साक्षात्कार

आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव रामलाल जी महाराज के कृपा पात्र भक्त श्री अमर नाथ जी का जीवन दर्शन व ध्यानानुभव

१५.१ बाल्यकाल

श्री अमरनाथजी आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के शरणागत होने वाले आदर्श जिज्ञासुओं में से एक थे। इनका जन्म पवित्र ब्रह्मण कुल में पंजाब प्रान्तार्न्गत गांव दुभेट (जिला होशियारपुर) में हुआ था। यह जन्म से ही बहुत पवित्र एवं आदर्शशील स्वभाव के थे। मन में भगवदर्शन की पवित्र अभिलाषा बाल्यकाल से ही बनी रहती थी। परन्तु उस मार्ग के प्रदर्शक किसी परिपूर्ण गुरुदेव के दर्शन न पाने के कारण मन में बराबर अशान्ति रहती थी। प्रतिक्षण उनके मन में यह अभिलाषा तीव्रतर होती जाती थी कि पूर्ण साक्षात्कार कराने वाले कोई गुरुदेव मिल जाँय, तो उनके चरण कमलों पर अपने को न्यौछावर करके धन्य कर लूँ।

श्री अमरनाथ जी का विद्याध्यन बहुत साधारण था। इनके भाई अमृतसर में लक्ष्मण्सर पर होटल की दुकन करते थे। श्री अमरनाथ जी किसी साधारण व्यवसाय के लिए अमृतसर में ही निवास किया करते थे। सत्संग की प्रवृति तो बराबर ही रहती थी। इसी बीच में इन्होंने आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की महिमा किसी व्यक्ति के मुख से सुनी और इन्होंने नित्य सत्संग में आना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप शनैः शनैः श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में इनकी निष्ठा परिपक होने लगी। समय आने पर इन्होंने श्री प्रभु जी से योग दीक्षा प्राप्त की। दीक्षित होने पर इनकी ध्यान–स्थिति अनवरत बढ़ने लगी और इनका अभ्यास क्रमानुसार बढ़ता गया। ध्यान–स्थिति के परिपक्व होने पर इन्होंने ध्यान–योग से ईश्वर के ऐश्वर्य का बहुत अबलोकन किया।

१५.२ श्री अमरनाथ जी महाराज का ध्यानानुभव

उनका भस्त्रिका प्राणायाम तिव्रता से चला करता था। शनैः शनैः उनका यह प्रणायाम कुम्भक के रूप में बढ़ता चला गया और उनका आसन भूमि से ऊपर उठना प्रारम्भ हो गया। योग–साधन आश्रम ऋषिकेश में श्री अमरनाथ जी का आसन भूमि से ऊपर उठा और उनके उत्थित आसन के नीचे से श्री प्रभुजी ने अपना हाथ घुमाकर दिखलाया था। इस दृश्य को देखने वाले बीसियों व्यक्ति उस समय आश्रम में उपस्थित थे। इस प्रकार पृथ्वी से ऊपर अधर से स्थित उनका आसन देखकर सबको ही बड़ा भारी आश्चर्य होता था।

श्री अमरनाथ जी का निवास प्रायः अमृतसर में ही रहता था। अपने मन से ही उन्होंने इस अभ्यास को उत्तरोत्तर बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। उनकी तीव्र अभिलाषा होने लगी कि कुछ समय बाद वे जंगलों में निकल जायेंगे और तीव्रतम वैराग्य धारण करके योगाभ्यास किया करेंगे। किन्तु होनाहार कुछ और ही थी। कदाचित् श्री प्रभुजी को ऐसा होना स्वीकार नहीं था, क्योंकि श्री अमरनाथ जी का कुछ प्रारब्ध–भोग शेष था। उनके तीव्र

वैराग्य-मय भावों को देखकर उनके कुटुम्बी-जनों ने उन्हें गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने को बाध्यकर दिया, तीव्र अनिच्छा होने पर भी अमरनाथ जी को अपने परिवार वालों का अग्रह मानकर इस आश्रम में प्रवेश करना पड़ा। लाहौर में जिस समय अमरनाथ जी ने पत्नी का पाणिग्रहरण किया, उसी समय बड़े सरल एवं स्पष्ट शब्दों में अपने श्वसुर से कहा-''अच्छा, यदि होनहार ऐसी ही थी, वह तो हो ही गई। अब हम केवल एक साल के मेहमान हैं! एक साल के बाद आप अपनी इस लड़की को श्री प्रभुजी के चरण कमलों में दीक्षित करा दीजियेगा और योगाभ्यास कराया कीजिएगा।''

अमरनाथ जी के श्वसुर उनसे या श्री प्रभुजी से पूर्व परिचित तो थे नहीं। अतः उनके मुख से निकली बात का मर्म न समझ सके। वास्तविकता न समझ कर अनभिज्ञ से प्रेमपूर्वक पूछने लगे-''बेटा, तुम क्या कह रहे हो?'' बीच में ही उनके भाई लक्ष्मण दास जी बोल उठे-कुछ नहीं पण्डित जी, यह केवल यही कह रहे हैं कि जैसे हम योगाभ्यास करते हैं; उसी प्रकार इसको भी कराया करेंगे। यह सुन-कर उनके श्वसुर हँस पड़े और कहने लगे-हाँ, हाँ बेटा, क्यों नहीं? अब तो यह तुम्हारी हो गई-चाहे कुछ भी कराना। पाणिग्रहण संस्कार का कार्य समाप्त हुआ, परन्तु अमरनाथ जी के जीवन में परिवर्त्तन का प्रारम्भ न हुआ। अब वह हर समय काफी विचार-मग्न से रहने लगे। स्वयं अकेले बैठे-बैठे कभी हँस पड़ते थे और उनके मुख से यह बचन निकलते थे-क्या था और क्या हो गया? हम तो साधु थे परन्तु वैकुण्ठवासी बना दिए गए। क्या सोचते थे और क्या हो गया? अमरनाथ जी अपने भाई लक्ष्मणदासजी से भी बार-बार यही कहा करते-भाई, ''तुमने यह अच्छा नहीं किया। एक साधु को तुमने वैकुण्ठवासी बना दिया है।'' लक्ष्मणदास जी बार-बार आग्रह पूर्वक पूछते-''भाई, मैंने तुम्हें कैसे बैकुण्ठवासी बना दिया? यह तुम क्या कहा करते हो?'' इस पर अमरनाथजी हँस पड़ते और कहते-''अभी क्या बता दें। एक वर्ष का समय है, इसको निकाल लें। तब इकट्ठा ही बता देंगे।''

शनैः शनैः वर्षाविधि भी समाप्त होने को आ गई। श्री अमरनाथ जी के ध्यानाभ्यास में गृहस्थ हो जाने पर भी किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आने पाई थी। पूर्ववत् उनकी साधना का क्रम चल रहा था। उनका मुख-मण्डल पूर्णरूपेण देदीप्यमान रहा करता था। बीच-बीच में बारम्बार अपने मुख से उन्हीं शब्दों का उच्चारण करते रहते थे-''क्या था, क्या हो गया?'' अन्त में पूरा वर्ष समाप्त होकर वह दिन भी आ गया, जिसकी उन्हें प्रतीक्षा थी। उस दिन श्री अमरनाथ जी ने प्रातःकाल ही स्नान किया। अन्य दिनों की अपेक्षा, आज वह विशेष उल्लासित दीखते थे। किसी प्रकार के रोग, शोक या चिन्ता का चिन्ह उनके शरीर पर नहीं था। उस दिन प्रातः काल से ही उन्होंने कहना प्रारम्भ किया-''अच्छा, आज यात्रा का दिन आ ही गया। आज मुसाफिर चला जाएगा।'' उनके मित्र, भाई आदि बड़े आश्चर्य से पूछने लगे-''कौन मुसाफिर है? वह आज कहाँ जा रहा है? तब उन्होंने स्पष्ट कह दिया-''भाई दूसरा कौन, हम ही तो वह मुसाफिर हैं। दो-चार घण्टे और प्रतिक्षा करो। स्वयं पता चल जायगा कि कहाँ जा रहे हैं?'' उस दिन अमरनाथ जी को भस्त्रिका प्राणायाम बार-बार जारी होता था। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से अपने बड़े भाई लक्ष्मण दास जी को बुलवाकर कहा- ''भाई, आज एक वर्ष की अवधि पूरी हो गई। मेरी यात्रा का दिन आज आ गया है। श्री अमरनाथ जी ने उनको लौकिक व्यवहार शुद्ध रखने की काफी शिक्षा दी और बारम्बार उनको समझाया-इस कालिकाल के घोर-अन्धकार पूर्ण समय में पूर्ण सद्गुरू का प्राप्त होना बहुत कठिन है। बड़े सौभाग्य की बात है कि आजकल आनन्दकन्द योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज जो परिपूर्ण

सद्गुरूतत्व के अवतार हैं, इस पृथ्वी पर विरजमान हैं। उन्हीं करूणार्णव सर्वसमर्थ श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में तुम सब लोगों को अपना–अपना मन लगाकर इस जीवन को कृतकृत्य कर लेना चाहिए। मनुष्य–योनी और परिपूर्ण सिद्धों के महासिद्ध योगयोगेश्वर श्री रामलाल जी के चरण कमलों की प्राप्ति; ऐसा मणि–काँचन संयोग फिर हाथ आए या न आए। ऐसा स्वर्ण–अवसर बार–बार नहीं मिला करता। यह उपदेश करने के पश्चात् अमरनाथ जी सब लोगों से कहने लगे– अच्छा, अब समय बिल्कुल निकट आ गया है। दो घंटे का मेरा एक संस्कार है उसका भी भुगतान कर लूँ।

उनके भाई लक्ष्मणदास जी उनकी बातें सुनते थे, पर अर्थ नहीं समझ पाते थे। जो थोड़ा अर्थ समझे भी थे, उस पर सहासा विश्वास न कर सके। वह नहीं समझ सके कि अमरनाथ जी दो घंटे बाद ही महायात्रा करने वाले हैं। देखते–देखते अमरनाथ जी को तीव्र ज्वर हो गया। आश्चर्य की बात यह थी कि इस तीव्र–ज्वर की वेदना में भी उनका भस्त्रिका प्राणायाम पूर्ववत् निरन्तर चलता रहा और ध्यान–मग्न ही रहे। दो घण्टे की तीव्र–ज्वर वेदना के बाद वह सिद्धासन लगाकर ध्यान में लीन हो गये। ध्यान में बठने से पूर्व उनके मुख से निकला–''अच्छा भाई, मुसाफिर जा रहा है।'' तत्पश्चात् वह पूर्णरूपेण तद्गत हो गए और भस्त्राक प्राणायाम निरन्तर चलता रहा। लोगों के देखते–देखते उनकी दृष्टि भ्रू मध्य हो गई और वह एक शान्त योगी की तरह निश्चल हो गए। यह उनकी वह समाधि थी, जिसकी प्रतिक्षा वह बड़ी ही व्यग्रता से प्रिय अतिथि के समान कर रहे थे। अन्ततः श्री अमरनाथ जी इस पार्थिव शरीर को त्याग कर अपनी उस अनन्तः यात्रा पर चल दिए जिसकी चर्चा वह प्रातः काल से कर रहे थे। पास बैठा कोई भी व्यक्ति यह न समझ सका कि परमार्थ–मार्ग के सच्चे पथिक ने आज अपनी यात्रा को पूर्ण कर अपने लक्ष्य को पा लिया है। उनका शरीर गिर जाने पर भी उनके भाई लक्ष्मणदास जी ने यह समझा–यह भी कदाचित् प्राणायाम की ही कोई गति है। जिससे बैठे–बैठे अकस्मात् इनका शरीर गिर गया है। परन्तु कुछ समय बाद सभी लोगों को उनके देहावसान की घटना पर विश्वास करना ही पड़ा।

श्री अमरनाथ जी ने देह–त्याग अपने ग्राम में ही किया था। फलस्वरूप विद्युत की भाँति इस समाचार ने सारे गाँव में फैलकर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया। सहसा सुनकर किसी को विश्वास नहीं होता था कि सचमुच ऐसा हो गया। झुण्ड के झुण्ड घटना की सत्यता जानने, उस स्थान पर पहुँचने लगे। श्री अमरनाथ जी स्वभाव से ही सबको प्रिय थे। मृदुभाषी थे। इसके अतिरिक्त स्वयं कष्ट उठाकर भी सदैव परोपकार के लिए तत्पर रहते थे। उनके हृदय में लोक–हित की बड़ी भावनाएँ रहा करती थीं। अतः स्वाभाविक ही सभी को उनकी इस आकस्मिक मृत्यु का बहुत दुःख था। उस दिवंगत महान् आत्मा के लिए सभी का हृदय शोकाकुल था एवं उसके महान् गुणों का स्मरण सबको हो रहा था। इसके साथ ही साथ एक और विचार–धारा भी लोगों के मन में उठ रही थी। वे लोग मन में सोचते थे– यह इतने बड़े योगिराज के शिष्य थे। इन्होंने देह–त्याग तो अपने संकल्प से किया है, किन्तु कोई विशेष चमत्कार दिखाई नहीं दिया, और न ही इनका कपाल–भेदन हुआ है।

क्रमशः अन्तिम संस्कार के लिए उनकी शव–यात्रा की तैयारी की गई और उनके मृत शरीर को दाह–संस्कार के हेतु स्मशान–भूमि में ले जाया गया। चिता–निर्माण हो जाने पर उनका शव चिता में रख दिया गया। ज्यों ही अग्नि–संस्कार प्रारम्भ हुआ, सभी एकत्रित ग्रामवासियों ने बड़ा भारी आश्चर्य देखा। उनकी चिता पर सहासा अनेकों प्रकार

के वाद्य-यन्त्र बजने लगे। घण्टे घड़ियाल, शंख, मृदंग आदि सभी बाजों की ध्वनियाँ चिता पर गूँज उठीं। परन्तु बजाने वाले कौन हैं ? इसकी चेष्टा करने पर भी ज्ञान नहीं होता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई वैदिक-मन्त्रों का गायन कर रहा हो। दिव्य आरती उतारी जा रही हो। चिता पर बजने वाले वाद्ययन्त्रों की ध्वनि धीरे-धीरे ऊपर उठती गई और शनैः शनैः अन्तरिक्ष में विलीन हो गई।

जो योगाभ्यासी वहाँ उपस्थित थे, जिनको अन्तदृष्टि प्राप्त थी; उन सभी ने खुली आँखों देखा कि श्री अमरनाथ जी एक देदीप्य-मान श्वेत वर्ण के दिव्य विमान में विराजमान हैं एवं उनका स्वरूप चतुर्भुज विष्णु भगवान जैसा है। उनके विमान के आस-पास बहुत से दिव्य वाद्य-यन्त्र बज रहे हैं। विमान पर दिव्य-पुष्पों की वृष्टि हो रही है। श्री अमरनाथ जी ने चिताभूमि पर उपस्थित समुदाय को एक बार देखा और कहा-''मैं अपने परम कृपानिधि सद्गुरुदेव श्री रामलाल जी की परम कृपा से वैकुण्ठवासी हो रहा हूँ।'' केवल-मात्र ध्यानाभ्यासी ही इस अलौकिक दृश्य को देख सके एवं अमरनाथ जी के उपुर्यक्त शब्द सुन सके। देखते-देखते अमरनाथ जी का विमान ऊपर उठते-उठते अन्तरिक्ष में विलीन हो गया। यह सब दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हुए ग्रामवासी अपने-अपने घरों को लौटने लगे एवं गद्गदकण्ठ होकर ''योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी की जय'' इस प्रकार की जय-जयकार की ध्वनि बारम्बार मुख से उच्चारण करने लगे।

१५.३ श्री प्रभु जी महाराज का श्री मुलखराज जी को वरदान

ई0 सन् 1936 में श्री प्रभुजी ऋषिकेश आश्रम में विराजमान थे। उन्होंने श्री मुलखराज जी को अमृतसर से बुलाकर आशीर्वाद देते हुए श्री मुख से फरमाया, ''राजा जी! अब तक हमने आपको वर्षो से समाधि में रखा हुआ था। अब आप संस्कारी वर्ग में ध्यान-समाधि का दान देते चलें। हम जिन आत्माओं के निमित्त मनुष्य तन में आये हैं, अब आपके घट में प्रकट हो उनको ध्यान-समाधि का दान प्रदान करते रहेंगे और रोगियों को आरोग्यता प्रदान करते रहेंगें।''

१५.४ बाघमती का अमृतमय जल

एक दिन अमृतसर सुन्यारा वाले कुएँ के पास भक्त समाज के मध्य आनन्दकन्द श्री प्रभु जी विराजमान हो भक्तों द्वारा प्रार्थना करने पर निज जीवन की कुछ घटनाएं बता रहे थे। तब श्री मुलखराज जी को जल लाने की आज्ञ दी। कुए से जल लेने जाते हुए उनके मन में संकल्प हुआ कि आनन्दकन्द श्री प्रभुजी कभी कभी प्रसंगवश श्री बाघमती जी के जल की प्रशंसा किया करते हैं। तब कुएँ में बर्तन को लटकाने पर श्री मुलखराज जी को ऐसा प्रतीत हुआ कि बाघमती के सदृश्य कुएँ में से दिव्य धारा प्रगट हो रही है। इन्होंने जब वह जल लाकर श्री प्रभुजी को पिलाया और भक्तों ने भी पान किया तो सब भक्त प्रभु जी से पूछने लगे-''प्रभो। इस जल में शीतलता, मिठास, सुगन्धि आदि साधारण जल से विलक्षण मालूम होती हैं। आपने भ्राता मुलखराज जी द्वारा यह जल कहां से मंगवाया है ?'' तब श्री प्रभुजी ने फरमाया-''24 घण्टे दिव्य रूप में व्यापक अभेद रहने वाले इस बालक ने जल निकालने से पूर्व बाघमती जी के जल की धारणा की थी तो उसकी वृत्तियाँ दिव्य रूप होने के कारण इस जल में भी गुण युक्त रस का सम्मिश्रण अनुभव हो रहा है।'' इसी प्रकार जितने दिन वह सत्संग रहा तब तक श्री प्रभु जी उन से जल मंगवाकर स्वयं और भक्त जनों को पान कराते रहे।

१५.५ श्री राधाकृष्ण मूर्ति अनादर के परिणाम स्वरूप श्री नृसिंह मूर्ति जी का भटकना

(श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के अपने शब्दों में)

अमृतसर के हमारे एक गुरू भाई नारायण दास थे। उनका भगवान श्री कृष्ण के चरण कमलों में बहुत ही ज्यादा अनुराग था। वह ऋषिकेश आश्रम में श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में अपने ध्यानानुभव सुना रहे थे। उन्होंने ध्यान में देखी हुई भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं को सुनाया जिनको सुनकर मेरे मन में भी बहुत आल्हाद पैदा हुआ किन्तु मेरे छोटे भाई श्री नृसिंह मूर्ति जी इन बातों में प्रसन्न नहीं होते थे। प्रत्युत स्त्री जाति के प्रति विरोधी भावना बनी रहती थी। भाई नारायण दास जी के ध्यानुभवों को श्री प्रभु जी बड़े गौर के साथ सुन रहे थे। उसी अवसर पर नृसिंह मूर्ति जी ने श्री राधाकृष्ण का एक चित्र नारायणदास जी के सामने उल्टा करके रख दिया। श्री नारायणदास जी प्रभु के चरण कमलों की ओर देखते रहे। श्री प्रभु जी ने नृसिंह जी को बहुत ताड़ना दी किन्तु नृसिंह मूर्ति लापरवाही करते रहे व श्री प्रभु जी के चरणों में प्रार्थना की,–''प्रभु जी, श्री राधाकृष्ण जी भाई नारायणदास जी के व चन्द्र मोहन जी के इष्ट हैं। इनके पेट में दर्द हो रहा था। यह मैंने शीर्षासन कराया है जिससे राधा कृष्ण के पेट का दर्द हट जाए।'' नृसिंह जी के मुख से निकले इन शब्दों को सुनकर के श्री प्रभु जी ने हम लोगों के सामने ही कहा, ''कि अच्छा, नरसिंह तू सीमान्त दुस्साहस कर रहा है। जिस राधा का तू इतना अपमान करता है अब उसी के लिए तू रोता फिरेगा।'' श्री नृसिंह मूर्ति जी ने श्री प्रभु जी के इन वचनों को भी उपेक्षित सा कर दिया किन्तु कुछ ही दिनों के बाद में श्री नृसिंह जी वृन्दावन गए और वहां जाकर के निम्बार्क सम्प्रदाय के एक महात्मा बरसाने में निवास करने वाले किशोरीदास भण्डारी से वैष्णव दीक्षा ले ली। जिस समय नरसिंह मूर्ति जी अपने आप को इस प्रकार परिवर्तित कर रहे थे, उसका अनुभव मुझे ऋषिकेश में ही हो गया था। श्री प्रभु जी उन दिनों अल्मोड़ा गए हुए थे। मैंने अल्मोड़ा में श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में पत्र लिखा कि प्रभु जी, मेरा भाई नृसिंह मूर्ति इस प्रकार भटक गया मालूम पड़ता है। श्री प्रभु जी का उत्तर मुझे मिला कि ''चिरंजीव तुम कोई चिन्ता मत करो। नृसिंह ने कुछ ठोकरें खानी आरम्भ कर दी हैं। वह भटक कर फिर यहीं आ जाएगा। इसके अतिरिक्त तुम वृन्दावन जाकर के नृसिंह के लिए और उसको दीक्षा देने वाले गुरू के लिए जैसा सोचोगे, वह सब वैसा ही हो जाएगा।''

श्री प्रभु जी का इस प्रकार का कृपा पत्र मिल जाने के बाद मैं श्री वृन्दावन गया। उस समय नृसिंह मूर्ति जी वहाँ नहीं थे। मैंने अपने मन में विचार किया नृसिंह मूर्ति जहां भी हों वह यहाँ आ जाए। श्री प्रभु जी के कथनानुसार वही हुआ। नृसिंह मूर्ति जी मेरे पास आए। श्री वृन्दावन में पुराने गोविन्द जी के मन्दिर के सामने वह मुझे मिले किन्तु उनके रूप को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। वह सखी भाव में थे। मुझसे कहने लगे, ''आप क्या सोच रहे हैं। यहाँ तो बड़े–बड़े ऋषि मुनि सिद्ध सभी को सखी बनना पड़ता है। भाई आप में ताकत है तो मेरे गुरू जिन्होंने मुझे वैष्णव दीक्षा दी हैं, उनको यहाँ बुलाकर दिखाओं।'' मैने नृसिंह जी से कहा, ''बोलो। कहाँ बुलाऊँ'' ? तो उन्होंने अपने डण्डे से एक गोल चक्र सा बना दिया और मुझसे कहा, ''यहाँ बुलाओ, वह शाम के चार बजे तक यहाँ खड़े हो जाएं।'' श्री प्रभु जी का आज्ञा पत्र मुझे मिल ही चुका था। मैंने नृसिंह जी से कह दिया, ''अच्छा, श्री प्रभु जी की कृपा से ऐसा ही होगा।'' सो उन दीन बन्धु जी की कृपानुसार

शाम को चार बजे से पहले ही वह उस गोल चक्र में आकर खड़े हो गए और अपने मुख से कहा, –''अरे भाई। श्री प्रभु जी तो सर्वशक्तिमान परब्रह्म हैं। उनकी आज्ञा का पालन तो हम लोगों को करना ही होगा।'' नृसिंह जी को बहुत ही आश्चर्य हुआ। एक बार अमृतसर में भाई नृसिंह मूर्ति जी को हमारे एक गुरू भाई ला परमेश्वरी दास ने नृसिंह दास कहकर के बुला लिया था। उस पर श्री प्रभु जी नाराज हो गए थे। और उनसे कहा, परमश्वरी दास! तुम हमारे बच्चें को नरसिंह दास मत कहो। इसको नृसिंह देव कहो। यहाँ श्री वृन्दावन में आकर के उन निम्बार्की महात्मा ने उनका नाम नारायण दास रख दिया था। मैने नृसिंह जी से कहा, क्या तुम्हें संकोच नहीं लगा। यहाँ आकर नारायण दास नाम रखाया है। अस्तु। एक दिन के अन्दर ही नृसिंह मूर्ति जी के सारे विचार बदल गए। यद्यपि उनके वैष्णव गुरू ने यह कहा था, ''चन्द्रमोहन तुम्हें यहां से ले जाना चाहते हैं। श्यामसुन्दर तुम्हें यहाँ से जाने नहीं देंगे।'' मैंने यह शब्द अपने कानों से सुने थे और उनको तत्काल उत्तर दिया, तुम भगवान श्याम सुन्दर का नाम क्यों लेते हो। अपना नाम लो। भगवान श्याम सुन्दर इसको यहाँ नहीं रोकेंगे। यह आज ही शाम तक अपनी पूरी वेशभूषा बदल करके पूर्ववत ब्रह्मचारी बनकर के श्री प्रभु जी के चरणों में अमृतसर पहुँच जाएगा। आनन्दकन्द प्रभु जी की कृपा से वैसा ही हुआ। उसी दिन दोपहर को अपनी कण्ठी, माला तथा सखी वेष को हटा कर के पूर्ववत् ब्रह्मचारी हो, धोती कुर्ता पहन कर श्री भाई नृसिंह जी अमृतसर श्री प्रभु जी के चरणों में पहुंच गए और पूर्ववत् पूरी-पूरी निष्ठा के साथ श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में सेवा करने लगे। उनके विचार पहले से कहीं अधिक योगनिष्ठ हो गए। उसके बाद भी प्रभु जी की उपस्थिति काल में ही उन्होंनें अपने आन्ध्र प्रदेश में जाकर के अपना योग प्रचार करना आरम्भ कर दिया। अपने सत्संगी लोगों में पूरी-पूरी योग निष्ठाएं बनाई एवं श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में उन्हें भेजा और उन्होंने योग दीक्षाएँ प्राप्त की।

१५.६ ब्रह्मपुरी में ब्रह्मधारा के निकट सुन्दर प्रभु गुफा के दर्शन

एक बार श्री आनन्दकन्द प्रभु जी श्री मुलखराज जी को साथ लेकर ऋषिकेश काली कमली वाले के क्षेत्र स्थान में पधारे। तब श्री मुलखराज जी ने प्रार्थना की–''महाराज! आप सवाँई से आकाश मार्ग द्वारा लौट कर ऋषिकेश आने से पूर्व, ब्रह्मपुरी में पधारे थे। कृपा करके वह ब्रह्मपुरी स्थान बालक को भी दर्शा दीजिए। तब श्री भक्त वत्सल प्रभु इनके भक्ति प्रेम वश अपने साथ लेकर ब्रह्मपुरी पहुंचे। वहां श्री गंगा जी से कुछ ऊपर पर्वत में ब्रह्मधारा के निकटवह गुफा थी, जिसमें प्रभु जी ने हरिद्वार कुम्भ पर पधारने से पूर्व कुछ समय वास किया था। ब्रह्मधारा के इस ओर कुछ केले आदि के पौधों और वन के पेड़ों में एक सुन्दर वाटिका शोभायमान थी। इसमें आनन्दकन्द श्री प्रभु जी विराजमान होते थे। पूर्व से पश्चिम की ओर श्री गंगा जी की निर्मल धारा अपनी मनोहर तरंगो से पर्वत के साथ टकराती हुई, भक्त वत्सल श्री प्रभु जी के गुणानुवाद गायन करती हुई, प्रभु जी की गुफा के समीप होकर गुजर रही थी और उसके दक्षिण की ओर निर्मल जल को बहाती हुई ब्रह्मधारा श्री प्रभु जी की गुफा के साथ स्पर्श करती हुई, मुक्त पुरूषों की भांति, श्री गंगा जी में पड़ कर अभेद हो रही थी। इस स्थान का प्राकृतिक दृश्य इतना मनोहर था कि वर्णन नहीं किया जा सकता।

१५.७ प्राकृतिक शर्बत

श्री मुलखराज जी महाराज ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की ''महाराज! इस निर्मल जल को पान करने की इच्छा हो रही है। तब श्री आनन्दकन्द प्रभु जी ने एक जड़ी के दो पत्ते इनको देकर फरमाया-''पुत्र! इनको जिह्वा पर रख कर ब्रह्मधारा से जल पान करो।'' तब इन्होंने वैसा ही किया। किन्तु जब पीने वाले जल का स्पर्श मुख में उन पत्तों से हुआ तो वह जल इतना मधुर शीतल और सुगन्धित प्रतीत हुआ कि चित की प्रसन्नता से वह जल मुख में ही रूका रहा। इस पर श्री प्रभु जी ने फरमाया-''पुत्र जल पान क्यों नहीं करते ? क्या इसका स्वाद अच्छा नहीं'' ? तब इन्होंने मुख के भीतर रोके हुए जल का पान करके प्रार्थना की-''महाराज! मुख में जल का जड़ी से स्पर्श होते ही ऐसा अद्वितीय स्वाद प्राप्त हुआ कि जल को मुख में इसी प्रकार ही रोके रहा। तब श्री प्रभु जी ने फरमाया-''तुम अपने बस्तियों में आने वाले प्रियवरों को केवड़ा आदि डाल कर शर्बत पिलाते हो और कोई यदि वन में हमारे पास बच्चा आ जावे तो उसको शर्बत पान करवाने के लिये प्रकृति ने इस प्रकार की जड़ी-बूटियाँ दी हैं।''

१५.८ कंदमूल प्रसाद

श्री मुलखराज जी महाराज ने श्री प्रभु जी के चरणों में प्रार्थना की ''महाराज! आप इस स्थान पर जो कंदमूल आदि सेवन करते थे, कृपा करके उसका भी कुछ प्रसाद प्रदान कीजिए।'' तब भक्त वत्सल श्री प्रभु जी इनको अपने साथ ले पर्वत के ऊपर ब्रह्मधारा के किनारे-किनारे कुछ दूर आगे जंगल की ओर बढ़े। एक पेड़ के ऊपर एक लता फैली हुई देख कर श्री प्रभु जी ने फरमाया-''पुत्र इस लता की जड़ में कन्द हैं, पत्थर हटाने से मिल जाएगा। तब श्री प्रभु जी की आज्ञा पा इन्होंने कंद निकाल लिया किन्तु पत्थरों की खटखटाहट से 20-25 कदम के फासले पर एक बड़े पेड़ की आड़ से निकल कर एक चीता इनकी ओर टक-टकी बांध कर देखने लगा। तब श्री प्रभु जी ने फरमाया-''देखो पुत्र! यह कौन है ?'' श्री मुलखराज जी को वह चीता एक नन्हें सुकुमार बालक की भांति इतना प्यारा लगा, कि मन में तरंग उठी कि आगे जाकर इसे गोदी में ले लें। ऐसा विचारते हुए इन्होंने आगे बढ़कर श्री प्रभु जी के चरण कमलों में प्रार्थना की-''प्रभुजी! यह सब आप ही की लीला माया है, आप ही इन सब में रम रहे हैं।''

जब श्री प्रभु जी भी चीते की ओर बढ़े तब वह सिर को झुकाकर पीठ फेर कर भाग गया। श्री मुलखराज जी इसे प्रभु जी की लीला समझकर, कंद लेकर, वापिस आ गये। कंद में दो तीन पत्ते उस जड़ी बूटी के डाल कर आनन्दकन्द प्रभु जी ने उसे अग्नि से निकाल कर ऊपर से छिलका उतार दिया और चाकू से उस की छोटी फाके बनाकर स्वयं भोग लगाया और इनको भी भर मेट प्रसाद भोग लगाने की आज्ञा दी। तब इन्होंने प्रसाद को मुंह में डाला। उसकी मधुरता आदि इतनी स्वादिष्ट प्रतीत हुई कि बस्तियों में जितने प्रकार की मिठाइयों का आज तक भोग लगाया था, वह सब इसके सामने तुच्छ और फीकी भासने लगी। तब श्रीमुलखराज जी ने प्रार्थना की-''प्रभो। वन में रहने वाले भक्त बालकों के लिए जो जड़ी बूटी कन्द मूल आदि वन में उत्पन्न किये हैं यह मधुर रसयुक्त हैं। बस्तियों में निवास करने वाले गृहस्थियों को इन पदार्थों का मिलना कठिन है। उत्तर में श्री प्रभु जी ने फरमाया-''भैया, यहाँ भगवान में अभेद रहने वाले भक्त ऋषि, मुनियों

का निवास होता हैं और बस्तियों में सब रचना माया से प्यार करने वाले प्राणियों की होती हैं, अतः यह अन्तर स्वाभाविक है।''

१५.९ प्रभु कृपा से मुलखराज जी महाराज को सिद्ध-लोक का दर्शन

एक रोज श्री प्रभु जी ने आल्हादित मन से कहा–''ऊपर आकाश की ओर देखो–'' ज्यों ही श्री मुलखराज जी ने अपनी दृष्टि को ऊपर उठाया, थोड़ ही देर में इस तृतीय नेत्र के प्रकाश में अनन्त लोक दिखाई दिए। उसके बाद थोड़ी ही देर में दृष्टि सिद्धलोक को चली गई तो श्री मुलखराज जी ने अनन्त प्रकाशमय श्री सिद्ध–लोक को देखा। उसमें कपिलादिक महासिद्ध दिव्य तेजोमय रूप में विराजमान थे। वहाँ पर तम का लवलेश भी नहीं था। इस अद्भुत दृश्य को देख करके श्री मुलखराज जी कृतार्थ हो गये।

१५.१० जीवन साधन द्वारा वृकाग्नि का पैदा होना (*श्री चन्द्रमोहन जी के शब्दों में*)

श्री प्रभुजी ने अपने मन से जीवन तत्व साधन को प्रकट किया। ये क्रियायें देखने में साधारण लगती हैं किन्तु ये अमरता की प्रदाता हैं। श्री प्रभु जी जिन्हें विशेष अभ्यास कराते थे, वे दो घण्टे प्रातः, दो घण्टे दोपहर और दो घण्टे शाम को किया करते थे। एक माह ऐसा करने के बाद वृकाग्नि पैदा हो जाती थी। वृक् मायने भेड़िया। भेड़िया जैसी भूख। इसके पैदा होने के बाद भूख लगी रहती है। हमने देखा है–दस सेर कच्ची सब्जी, कच्ची चने की दाल, मूँग की कच्ची दाल साधक खाया करते थे। किन्तु उन्हें भूख लगी ही रहती थी। उन्हें रोटी खाने को नहीं दी जाती थी। कच्चा अन्न, फल–फूल ही खाया करते थे। इस प्रकार कच्चा अन्न खाते हुये छः माह जीवन तत्व साधन करने के बाद कायाकल्प हो जाता है।

मैं तुम्हें आप बीती सुनाता हूं। श्री आनन्दकन्द प्रभुजी ऋषिकेश में विराजमान थे। अमृतसर के दूल्हे के कटरे के कुछ लोग पशुओं की तरह कच्ची सब्जी व कच्ची दालें खा रहे थे। मैं मन में सोच रहा था, ये कैसे पशुओं की तरह इस प्रकार से खा रहे हैं। मेरे मनोभाव को जानकर श्री प्रभुजी ने मुझसे पूछा–''क्या सोच रहे हो ?'' मैंने कहा–प्रभुजी! ''मैं कुछ नहीं सोच रहा हूँ।'' थोड़ी देर में ही मेरे पेट के अन्दर जलती हुई आग के गोले की तरह अग्नि प्रज्वलित हो गई! मैं परेशान होने लगा। श्री प्रभुजी के पूछने पर मैंने अपनी परेशानी बताई। श्री प्रभुजी कहने लगे–''अच्छा! अब तू यह बता कि इन लोगों की तरह कच्ची सब्जियाँ खायेगा या कुछ और साधन करेगा।'' मैंने कच्ची सब्जियाँ खाने की इच्छा प्रकट की। काफी सब्जियाँ खाने के बाद भी मेरे पेट की अग्नि शान्त नहीं हुई। मैनें प्रभुजी से कहा–प्रभुजी! ''मेरी अग्नि शान्त नहीं हो रही है।'' श्री प्रभुजी ने मुझे गंगा में बैठकर शीतली प्राणायाम के साथ–साथ चन्द्रबिम्ब का ध्यान करने की आज्ञा दी। होलियों के दिन थे। दो–तीन दिन तक इस प्रकार प्राणायाम व ध्यान के पश्चात ही मेरी जठराग्नि शान्त हुई। उनके संकल्प से ही अग्नि पैदा हुई और फिर उनकी कृपा से ही शान्त हुई। जीवन तत्व साधन करने का अन्तिम परिणाम वृकाग्नि उत्पन्न होना है। फिर साधक को भूख लगी ही रहती है। अमरता का दाता है। मानिक चन्द दलाल जैसे अनेक रोगी इस साधन को करके असाध्य रोगों से मुक्त हुये।

१५.११ नेति-क्रिया: (ब्र० गोपालानन्द जी महाराज के शब्दों में)

कपाल (दिमाग) से लेकर कण्ठ–पर्यन्त जितनी नाड़ियाँ हैं, उन सब की शुद्धि के लिए सूत्र नेति नाक में डालकर मुख से निकाली जाती है। नीचे से जो गर्मी के परमाणु दिमाग की ओर ऊपर उठकर जाते है वह काग को नीचे लटका देते हैं। नेति–क्रिया को नित्य करने से कण्ठ, नासिका, कर्ण, नेत्र, दन्त और मस्तक में कोई भी रोग, जब तक यह शरीर है, कदापि नहीं आ सकता। नजले से उत्पन हुई कण्ठमाला (हंजीरें) और जितने भी रोग हेा सकते हैं, उन सब की निवृति इस नेति के अभ्यास से हो जाती है। इस 'नेति' के अतिरिक्त योग के 'जीवन तत्व साधन' आदि द्वारा भी अनेक प्रकार के लाभ 'योग–साधन आश्रमों' में आकर निशुल्क जन साधारण ले सकते है; काग का मल निकालने के लिए व गले की ग्रन्थियों को ठीक और साफ रखने के लिए जल नेति कराई जाती है। इसी प्रकार जिह्वा के ऊपर से लांघ कर कण्ठ से लेकर मस्तिक तक की सम्पूर्ण निर्बलता को दूर करने में नेति सफल हुई है। हम जब नाक से श्वास लेते हैं, तो इसमें वायु से अमृत–रस (जो कि चन्द्रमा के कारण सर्वदा इस आकाश–मण्डल में हर समय उपस्थित रहता है) श्वास से अन्दर जाकर सब नाड़ियों को बलिष्ठ बनाता है इस रस को जो कि ठण्डा और मीठा है, हर एक मनुष्य जीभ को तालु की ओर लगाकर (उल्टा कर) एक ही क्षण में परख सकता है। जब तक यह रस अपनी ठीक अवस्था में रहता है तब तक कण्ठ से लेकर मस्तिष्क तक कोई रोग पास तक नहीं आने पाता, किन्तु जब आमाशय या हृदय से गर्मी खुश्की के परमाणु उठकर दिमाग में जाते हैं तो यही रस नजला के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यदि यही रेशा दिमाग की नाड़ियों में रूक जाए, तो स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है और सिर के बाल सफेद हो जाते हैं। नींद कम आती है और अन्त में मनुष्य पागल हो जाता है। इसी प्रकार कानों की ओर जाने से बहरापन होता है और दांतों की ओर जाने से दांत गिर जाते हैं। इसी प्रकार नजला हलक से होकर आमाशय में गिरने से नाना प्रकार के रोग तथा गले में हंजीरों भी हो जाती हैं अर्थात् कपाल (दिमाग) के मल के दूषित होने से नजला बिगड़ जाता है। यही नजला यदि विष वाला होकर गले में रूक जाय तो कंठमाला हो जाती है और इसी से क्षय रोग हो जाता है, क्योंकि हंजीरें के साथ ही ज्वर हो जाता है। अन्त में बढ़ते–बढ़ते पेट में हंजीरे हो जाती हैं। इन सब नाड़ियों में एक गुण यह भी है कि नेति जब इन पर अपना दबाव डालती है तो यह अपना सम्पूर्ण मल इस प्रकार छोड़ देती हैं जिस प्रकार दबाव से स्पंज जल को छोड़ देता है। नेति को नाक में डाला जाता है तो सबसे पहले यह नासा नाड़ी से जाकर टकराती हैं, जिससे छींके आनी प्रारम्भ हो जाती हैं और इसके साथ ही मल शीघ्र ही बाहर निकल भागता है। इससे भली प्रकार ज्ञात हुआ कि नेति बलगमी मल (कफ) इत्यादि को शांत कर देती है। यदि यह अशुद्ध रस शुद्ध न किया जाय तो यही बढ़कर नाना प्रकार के रोगों का कारण बन जाता है। जुकाम, खांसी, दमा, गलों का पड़ना, हंजीरें, नेत्ररोग, कर्ण

रोग, दांतो के रोग, सिर के रोग, यक्ष्मा इत्यादि रोगों के दूर करने के लिए नेति जादू सा प्रभाव रखती है। नेति नासा-नाड़ी को शुद्ध करके मस्तिष्क की समस्त नाड़ियों को शुद्ध करने का एक उच्च साधन है।

१५.१२ श्री गोपालानन्द जी का गोलोक गमन

श्री ब्रह्मचारी जी के जीवन काल में लाहौर शहर में छोटी-छोटी सैंकड़ों कीर्तन मंडलियाँ बन गई। एक प्रकार से लाहौर कीर्तनमय बन गया था। ऐसी अवस्था में श्री गोपालानन्द जी ने श्री प्रभु जी को प्रार्थना कर उन्हें लाहौर बुलाया। लाहौर में भगवान श्री कृष्ण के प्रति-इतना उच्च आत्म समर्पण देखकर के प्रसन्नता तो बहुत थी किन्तु कुछ उदासीनता भी थी क्योंकि यदि ब्रह्मचारी जी थोडी़ सी भी आज्ञा पालन कर लेते, तो आज कहीं हिमालय के जंगलों में सिद्ध बनकर बैठे होते। समय आया। श्री प्रभु जी ने जान लिया कि अब इसका शरीर अधिक नहीं रह पायेगा। इस हालत में श्री प्रभु जी ने आज्ञा दी-''बेटा! अब तुम श्रीकृष्ण प्रेम में मग्न होकर के और धूमधाम से संकीर्तन को बढ़ाओ। किन्तु लिफाफे में बन्द जब हमारी ओर से भेजा हुआ सफेद कागज मिल जाए, उसी समय लाहौर छोड़ करके तुम ऋषिकेश चले आना। उसके बाद जो होगा वह ठीक ही होगा।'' यह कहकर श्री प्रभु जी ऋषिकेश चले आए और ऋषिकेश में पहुंचते ही एक लिफाफे में बिना लिखा सफेद कागज रखकर श्री गोपालानन्द जी को लाहौर भिजवा दिया और श्री गोपालानन्द जी उस पत्र को पाते ही देहरादून एक्सप्रेस गाड़ी से हरिद्वार के लिए चल पड़े। जिस गाड़ी से वह हरिद्वार आ रहे थे और हरिद्वार उत्तर करके ऋषिकेश भी प्रभु जी के चरणों में आने का विचार कर रहे थे, उस गाड़ी के हरिद्वार पहुँचने के ठीक समय पर श्री प्रभु जी ने नरसिंह मूर्ति जी को हरिद्वार भेज दिया और कह दिया कि गोपालानन्द इस गाड़ी से उतरेगा उसको उतरते ही कह देना कि वह तत्काल मुरादाबाद चला जाए। श्री नरसिंह मूर्ति जी ने प्रभु जी का यह सन्देश हरिद्वार जा कर गाड़ी से उत्तरते ही गोपालानन्द जी को सुनाया। श्री प्रभु जी की आज्ञा को सुनकर के 'गुर्रोआज्ञानुलंघनीया' के सिद्धान्तानुसार गोपालानन्द जी तत्काल मुरादाबाद चले गए और वहाँ पहुँच कर के अपनी बहिन रूक्मिणी देवी के घर ठहर करके तीव्र संवेग के साथ भगवन्नाम संकीर्तन कराना आरम्भ कर दिया। प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा उनका प्रेम प्रवाह व संकीर्तन देखकर के मुरादाबाद में भी संकीर्तन का काफी प्रचार बढ़ा क्योंकि पहले भी बीच-बीच में कई बार वहाँ गोपालानन्द जी आ चुके थे। किन्तु अब की बार श्री प्रभु जी की आज्ञानुसार मुरादाबाद पहुँचने पर यह प्रेम प्रवाह बहुत ही ऊँचा बढ़ गया। अन्त में एक रोज राधेश्याम, राधेश्याम, श्याम-श्याम राधे-राधे-इस ध्वनि का उच्चारण करते-करते ही श्री गोपालानन्द जी के शरीर छुट जाने के बाद उनके बहनोई डा. चण्डीप्रसाद ने श्री प्रभु जी को तार दिया कि हमारी दृष्टि में गोपालानन्द जी ने शरीर छोड़ दिया है। हम क्या इनका क्रिया-कर्म करें या पहले की तरह यह कोई समाधि की स्थिति तो नहीं ? श्री प्रभु जी ने तत्काल तार का उतर तार से दिया -''नहीं, अब समाधि नहीं है। गोपालानन्द ने अपना शरीर त्याग दिया है। अब इसके शरीर को वहीं गंगा किनारे ले जा करके तुम लोग उनका संस्कार कर दो।'' श्री प्रभु जी की इस आज्ञा को पाकर के डा. चण्डीप्रसाद आदि ने गढ़मुक्तेश्वर ले जा कर के ब्रह्मचारी जी के शरीर का अग्नि संस्कार कर दिया।

'अद्भुत दिव्य-जीवन गाथा'

ब्रह्मचारी जी के देहावसान के बाद लाहौर में संकीर्तन प्रवाह तो उसी धूम-धाम से चलता रहा किन्तु बीस-तीस मंडलियाँ जो श्री प्रभु के चित्रों को भगवत चित्रों के साथ विराजमान करके धूम-धाम से संकीर्तन करती थीं, अब उन लोगों ने भगवान श्री कृष्ण, भगवान सदाशिव, भगवती दुर्गा आदि-आदि के चित्रों को ही प्रधानता देकर के कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। कुछ समय के बाद श्री प्रभु जी ऋषिकेश से अमृतसर आए और अमृतसर में श्री माधोराम खन्ना जी ने प्रभु जी के चरणों में आकर निवेदन किया कि प्रभु जी श्री गोपालानन्द जी के समय में संकीर्तनों में लोग आपके चित्र रखते थे। किन्तु अब नहीं रखते। श्री प्रभु जी ने पूछा,-''अब वह लोग किसके चित्र रखते हैं ?''श्री माधोराम जी खन्ना ने उत्तर दिया कि, ''भगवान राम, भगवान कृष्ण, जगदम्बा भगवती दुर्गा एवं भगवान सदाशिव आदि के चित्र रखते हैं।'' श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया,-''ठीक है। कीर्तनों में यही चित्र चाहिए, हमारे चित्र नहीं रखने चाहिए।'' प्रभु जी के इस उत्तर को सुनकर के माधोराम जी ने फिर कहा कि, ''प्रभु जी प्रचार तो सब आपका ही है, आपके चित्र क्यों नहीं रखने चाहिए।'' इसके उत्तर में श्री प्रभु जी ने कहा, ''हम बताएं कि योगी क्या करते हैं ?'' माधोराम जी ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि, ''बताईये।'' श्री प्रभु जी ने कहा,-''योगी यही करते हैं, लाइट दिखाई और पीठ फेर ली। अब जो करना था वह कर दिया गया। गोपालानन्द से प्रचारित यह संकीर्तन सारे देश में और विदेशों में फैलेगा किन्तु न कोई हमें जानेगा न कोई गोपालानन्द को। करने वाला काम कर दिया गया है। यह प्रचार व प्रसार अब बढ़ता ही रहेगा।'' श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के देहावसान के बाद लाहौर में जितनी संकीर्तन मंडलियाँ कीर्तन करती थी वहाँ सब कीर्तन करते-करते बेहोश हो जाया करते थे। उसके बाद कीर्तन प्रवाह तो फैलता गया किन्तु कीर्तन का रूपक बदल गया। उसमें भाव और अभिनय और ही और प्रकार के होने लगे। आज भी गोविन्द जय जय, गोपाल जय जय, राधा रमण हरि गोविन्द जय जय यह ध्वनि - जिसका निर्माण ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी द्वारा हुआ था, देश विदेश में सब जगह व्यापक है किन्तु कीर्तन कहाँ से आया, किसने कराना आरम्भ किया, श्री गोपालानन्द जी को श्री प्रभु जी ने क्या-क्या वरदान दिए, इन बातों को कोई भी नहीं जानता।

१५.१३ श्री प्रभु चरणों में विनय

जितना प्यार दिया मुझको प्रभु जी ने, उतना प्यार कहीं भी मैं पा न सका।
दाता या न सका, सत्गुरू पा न सका।।
तेरे प्यार में सब कुछ भूल गया, दुनियाँ वाले मुझे दिवाना कहें।
इस दिवानगी का मेरे प्रभु, हरदम जाम मुझे तू पिलाता रहे।। जितना प्यार दिया.....
तेरे प्यार से बढ़ कर कुछ भी नहीं, दुनियाँ वालों से मुझको वास्ता क्या।
इस दुनियाँदारी से मुझ को प्रभु, हरदम दूर मुझे तू हटाता रहे।। जितना प्यार दिया.....
दुनियाँ मारे मुझे ताने देती रहे, नशा प्यार का दूर करना चाहे अगर।
ऐसी मस्ती में मुझको रखना प्रभु, नशा प्यार का और भी चढ़ता रहे।। जितना प्यार दिया
इतना पागल बँनू सब की नजरों में, आखिर मुझको मुझपर छोड़ ही दें।
इतनी आरजू है मेरी मेरे प्रभु, हरदम चरणों में अपने रखना मुझे।। जितना प्यार दिया
मेरी दीवानगी देख मेरे प्रभु, कहीं तुम भी मुझ को छोड़ना ना।
मुझको आसरा है केवल तेरा प्रभु, हरदम आसरा मुझ को देते रहो। जितना प्यार दिया

१६ अद्भुत शंका समाधान

आनन्दकन्द योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा लोक कल्याणार्थ अद्भुत ढंग से शंकाओं का समाधान

१६.१ प्रश्न- देश में आपत्ति आ रही है लोग भूखे हैं। ऐसे समय में योग की आवश्यकता क्यों है और आजकल योग कैसे हो सकता है?

उत्तर– ये एक विचारणीय विषय है कि देश में आपत्ति क्यों आया करती है ? अकाल क्यों पड़ा करते हैं ? यदि हम एकाग्र होकर इस विषय पर गहरी दृष्टि डालें तो स्पष्ट दिखता है कि जिस देश के अन्दर असन्तोष और भेदभाव के कारण लोग आत्मिक उन्नति के मार्ग पर चलना भूल जाया करते हैं वह देश, वह परिवार आपत्तियों का केन्द्र बन जाया करता है। ईथर (आकाश के इस हिस्से का नाम है जिसमें विचारों की शक्ति दूर तक जाती हैं) के अन्दर ऐसे विचारों से जिनमें अत्याचार से दुःखी आत्माएं अपनी आहों के शब्द ईथर में दिया करती हैं, उस समय अत्याचारी तमागुणी वायुमण्डल में यह असर होता है कि आम लोगों के ख्यालात तमोगुणी बन जाया करते हैं तमोगुणी विचारों का मतलब स्वार्थी विचारों से है। सतोगुणी विचारों का मतलब परमार्थी विचारों से है, परमार्थी यानि दूसरों के सुख में सुखी और दुःख मे दुखी होना। स्वार्थी यानि दूसरों के दुःख को देख कर खुश होना और दूसरों को दुःख देने में सुख मानना। ऐसे दुष्ट विचार जिस देश के अन्दर ईथर से आया करते हैं उस देश में नाश होने के लक्षण प्रकट करते हैं। इसी को गोसाइँ तुलसीदास जी ने कहा हैः–

यहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना।

जहाँ कुमति तहाँ विपत्ति निधाना।।

जो व्यक्ति दूसरों को दुःख देना चाहता है और इनको दुःखी देख कर सुख मानता है, वह कहता है कि तुम भी हमारे साथ ऐसा ही करो। जब देश में सुख व शान्ति रहा करती है उस समय के देश के बच्चों के विचार दूसरों के दुःखों को दूर करने में तत्पर रहा करते हैं और ईथर में ऐसा आकर्षण इन विचारों का होता है कि जिससे वायुमण्डल सतोगुणी बन जाया करता है। जो कि सत् में स्थिर रहने के लिये कुदरत (nature) को मजबूर करता है और इसकी आकर्षण शक्ति से, समय के ऊपर ही नियम से वर्षा हुआ करती है, ऋतुएँ अपने समय-समय पर नियम से चला करती हैं, न ही वहाँ अकाल पड़ सकता है। इनके नियम से चलने पर अनुकूल वायु के कारण माता (चेचक), हैजा, प्लेग आदि बीमारियाँ नहीं होती है क्योंकि सत के आधार पर सृष्टि के अन्दर सतोगुणी वायुमण्डल मजबूर करता है कि अकाल कभी भी न हो। हमारे देश में जब कभी अकाल पड़ता था तो उस समय की घटनाएँ हमें याद दिलाती हैं कि उस समय मुहल्ले-मुहले नगर-नगर में यज्ञ हुआ करते थे, लोग दान दिया करते थे और पतितपावनी आदि शक्ति दुर्गा का जाप हुआ करता था और सैकड़ों ब्रह्मणों का भोजन हुआ करता था। सब मिल कर दुखी दरिद्रों को स्वादिष्ट भोजन कराया करते थे और चारों वर्ण इक्ट्ठे होकर एक साथ ध्यानस्थ होकर भगवान से प्रार्थना किया करते थे कि प्रभु हम पतित, पापी हैं और आप

से जुदा होकर हम संसार में फैल रहे रागद्वेष का कारण बन गये हैं-नाथ! हमारे अपराधों को क्षमा करके दया का हाथ बढ़ाओ।

एक से भावों में, और एक से शब्दों के ताल से, जब विचार प्रकट हुआ करते हैं तब वह शब्द ईथर में ऐसी लहरें पैदा किया करते हैं कि जिससे सतोगुणी वायुमण्डल बन जाए। इसका नाम ही यज्ञ है। जमात (इकट्ठा) में करामात होती है। जिस मनुष्य की एकाग्रता न भी हुई हो वह भी सत्संग की एकाग्रधारा से एकाग्रचित हो जाता है। अगर देश के आदमी मिल कर इस कार्य को करना शुरू कर दें तो इन सबकी एकाग्रता बड़ी ही आसानी से हो जाएगी। मन्त्र का अर्थ यही है कि मन एकाग्र होकर जिस विषय को रटता है वह मन को मन्त्र स्वरूप बना दिया करता है। इसलिए देश में जब तक परमार्थी विचारों का इतना जबरदस्त वायुमण्डल स्थापित न हो तब तक देश में सुख व शान्ति कोसों दूर है। जब तक परमार्थी विचार भारतवर्ष के अन्दर कायम रहे तब तक भारतवर्ष के अन्दर ऐसी गिरावट की सूरत कभी न हुई। आज भी देश में इतना अनाज पैदा होता है कि एक वर्ष का अन्न दो वर्षों के लिए काफी होता है। आज भी यदि देश के बच्चे परस्पर एक दूसरे के दुःख में दुखी होना सीखें तो सहज में संगठन हो जायेगा और ऐसा संगठन होगा कि जिससे सहज ही में ऐसा शान्तमय परिवर्तन हो जाए कि विरोधी समुदाय भी इस प्रेम में सम्मिलित होकर माता के समान लालन पालन करने लग पड़ेंगे और वह अपना कर्तव्य ही समझेंगे कि हम अपने देश को सबसे अच्छा बना दें। अभिप्राय यह है कि भारत में शुद्ध विचारों का आकर्षण प्रेम के तत्व से प्राप्त हो सकता है। प्रेम-शुद्ध प्रेम-विश्वप्रेम और ईश्वरीय प्रेम जिसमें स्वार्थ की गन्ध भी नहीं। ऐसे शुद्ध प्रेम की अवस्था हम को योग के अलावा और किसी से नहीं आ सकती क्योंकि विश्वप्रेम तो विश्वनाथ को हृदय में रख कर ही प्राप्त हो सकता है। विश्वनाथ को हृदय में रखने की युक्ति का नाम योग है। ये बात निश्चित और सत्य है। इसको संसार में कोई भी मिथ्या (गल्त) कहने के लिए साहस नही कर सकता कि योग के बगैर शान्ति नहीं हो सकती। प्रश्न यह होता है कि क्या सारे योगी हो जायेंगे ? इसका उत्तर यह है कि अगर सारे योगी नहीं हुए हैं तो अब भी सारे पापी नहीं हैं लेकिन थोड़े पापियों ने देश का शुद्ध विचार मण्डल दूषित बना दिया। जिससे कि शुद्ध विचार मण्डल ऐशो-आराम से नष्ट हो गया है। क्योंकि इसका मुकाबला करने वाला आम शुद्ध वायुमण्डल न रहा। शुद्ध विचारमण्डल संयमी तपस्वी योगियों द्वारा बना करता है जो कि इतना प्रभावशाली हुआ करता है कि यदि कुछ पापी विचारों की लहरें विरोध भी करें तो भी उनको वह नष्ट कर दिया करता है। कोई समय ऐसा नहीं हुआ जबकि पापी और पुण्य आत्मा दोनों एक साथ न हुए हों किन्तु जब पापी अधिक होते रहें तब पुण्य आत्माओं की ताकत कमजोर हो जाती रही। जब पुण्य-आत्मा अधिक होते रहें तब देश में पापी विचारों का नाश हो जाया करता था और देश शान्ति से पूर्ण हो जाया करता था। उच्च आत्माओं को ईथर से आकषर्ण करने के लिए हमारे यहाँ गर्भाधान संस्कार रक्खा गया था। स्त्री व पुरूष दोनों ध्यानास्थित होकर ईश्वरीय शक्ति का चिन्तन करके राजा जनक और गुरू वशिष्ठ जैसे महान आत्माओं को गर्भ में लाकर संसार को आत्मिक विद्या से प्रकाशित किया करते थे।

शान्तमय विचारों के प्रभाव से मनुष्यों की बुद्धि स्थिर हुआ करती थी। यही कारण है कि हमारे यहाँ संध्या में जो गायत्री मन्त्र जपा जाता है इसका भाव यही है कि ईश्वर हमारी बुद्धि को शुद्ध करें। जिस देश के बच्चे नित्यप्रति तीनों समय अपने विचारों को शुद्ध करने के लिए प्रभु से प्रार्थना करें तो उस देश में क्यों न सुख और शान्ति का राज्य हो।

वह दिन बड़े ही सौभाग्य का होगा जबकि भारत के बच्चे मिल कर एक से शुद्ध भावों से प्रार्थना करने के योग्य बनेंगे और संसार को अपने व्यवहारिक जीवन से महात्मा बुद्ध व बालक भरत की तरह शेरों से प्यार करते हुए सच्चा उपदेश देंगे। जिससे देश के पशु–पक्षी भी दूसरों को दुःख देने का भाव यानि हिंसा–भाव त्याग करके प्रेम में मग्न होकर अहिंसा का उपदेश देंगे। सच्ची शान्ति व सुख का राज स्वार्थ के त्याग और विश्वप्रेम में है। तभी हमारा मस्तक ऊँचा होगा और हम को अब आशा हो चली है कि हमारे देश के अन्दर उन महात्माओं ने जन्म लिया है जिनका व्यवहारिक जीवन त्याग और विश्वप्रेम सीखाने के लिए प्रेरणा दे रहा है कि हम भी एक स्वर से मन व प्राण को एक करके सच्ची प्रार्थना करना सीखें। लोग कहते हैं हम तो संगठन करना चाहते हैं लेकिन पश्चिमी सभ्यता के लोग हम को अत्याचार करने के लिए मजबूर कर रहे हैं। अगर मान लिया जाये कि पचास रूपये मासिक वेतन पाने वाले आदमी का खर्च साठ रूपये है तो वह ज्यादा खर्च हमें मजबूर करता है कि हम अपने दूसरे भाइयों पर अत्याचार करें। लेकिन अत्याचार करने का हौंसला इसके मन में तब ही आ सकता है जबकि अपने छोटे भाईयों के दुःख का अनुभव इसको नहीं है और अपने खर्चों के बढ़ाने का साहस भी तब ही हो सकता है जबकि खर्च करने से इसको आराम मिलता है। यदि इसे अपने भाईयों की सेवा में ज्यादा आनन्द मिले तो वह कभी भी अपने फिजूल खर्च को न बढ़ाये और न ही अत्याचार करे बल्कि वह खर्च अपने भाइयों की सेवा में करे। संगठन दों शब्दों से बना है–एक सम और दूसरा गठन (इकट्ठा होना) जब विचारों यानि एक से विचारों के व्यक्ति इकट्ठे होते है तब इन सबके विचारों में एक ऐसा बल आ जाता है जिससे हर एक व्यक्ति की मन की एकाग्रता सहज ही में हो जाती है और इसकानाम संगठन है। इन विचारों की एकता योग द्वारा ही हो सकती है। एक व्यक्ति के मन की एकाग्रता का प्रभाव इसके परिवार पर अवश्य पड़ सकता है और परिवार का प्रभाव नगर पर पड़ सकता है। इसलिए एक व्यक्ति का सत जीवन एक नगर में यदि हो जाए तो कुछ दिनों के बाद ऐसा प्रभाव होगा कि सारे नगर निवासी यदि भक्त नहीं होंगे तो उनमें भक्तों के से विचार तो अवश्य ही हो जायेंगे। विचारों की एकता इनको जरूर ही संगठन मार्ग पर ले आएगी।

यदि आज भारत के बच्चे ये समझने लग जायें, कि निष्काम सेवा करना ही सच्ची सेवा है–वासुदेव भगवान दरिद्र दुखियों में ही वास करते हैं अथवा भक्तों के हृदय में रहते हैं तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का भेद भाव जिस रूप में आज देखा जा रहा है वह सहज ही में नष्ट हो जाए। आज जो कुछ भी हम आपस में द्वेष देख रहे हैं और विजातीय मनुष्य जो कुछ भी हम पर अत्याचार कर रहे हैं। इनका मुख्य कारण यह है कि हम अपने भाईयों के साथ अत्याचार कर रहे हैं।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

जो व्यक्ति या समाज जिस कर्म को करता है इसके फल को वह व्यक्ति अथवा समाज अवश्य भोगता है। आज हम अंग्रेज़ों को दोष देते हैं कि वह हममें काले और गोरों का फर्क डाल रहे हैं लेकिन मद्रास में जिस स्थान पर ब्राह्मण जा सकते हैं वहां शूद्र नहीं जा सकता। यदि हमारे साथ भी ऐसा ही व्यवहार विजातीय मनुष्य करते रहे हैं तो क्या आश्चर्य है। ये उन का दोष नहीं, ये अत्याचार हमारे कर्मों का फल उनके अन्दर प्रेरणा करवाता रहा है–अगर आज हम इन शूद्रों को कम से कम अपना अंग बना लें तो इनको धोने साफ शुद्ध करने की चेष्टा हममें अपने आप हो जायेगी और इनको अपने संग रखने

की इच्छा स्थिर हो जायेगी। लेकिन इसका ये भी मतलब नहीं कि पाँव को सर पर रख लें। समाज के सब अंग एक जैसे होने चाहियें और इनका सम्बन्ध आपस में एक-सा होना चाहिए न ही पांव को सिर से अलग समझना चाहिए और न ही सिर को इसकी तकलीफ का अन्दाजा न करके इसकी तकलीफ को दूर करने की चिन्ता छोड़नी चाहिए। चारों वर्ण चार अंग है-वह अपने-अपने स्थान पर शोभा पाते हैं। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह जिस योग्य हो वह सेवा ले लेवे और समाज का यह कर्तव्य है कि अपने हर एक छोटे से छोटे अंग का बाकायदा सिर की तरह ध्यान रखे जैसे मनुष्य के पाँव में तकलीफ है तो सिर इसकी तकलीफ को दूर करने की चेष्टा करता है। ऐसे ही समाज का कर्तव्य है कि अपने से छोटे अंगों के साथ प्रेम करे और इसे शक्ति दे सिर्फ बातूनी नहीं बल्कि दिली प्रेम होना चाहिए।

दूसरों में दोष देखना, दूसरों को भला बुरा बता कर इन पर क्रोध करना, हमारी बुरी वासनाएँ सिखाती हैं। यह हमारे अपने दोषों को देखने का मौका नहीं देती। अपने आप पर क्रोध करना और अपने दोषों को आप देखना योग सिखलाता है। एक व्यक्ति यदि दूसरे को अपना दोषी बनाता है और इस पर क्रोध करता है तो इस व्यक्ति को वह उकसाता है कि वह भी इसके ऊपर क्रोध करे और आपस में ईर्ष्या-भाव और द्वेष की तरंगे पैदा करे। इस तरह से वासनाओं में प्रवृत्ति होने से मनुष्य जाति और समाज में राग-द्वेष और ईर्ष्या फैलाया करता है।

जिसकी वासनाएँ कमज़ोर हो चुकी हैं और जिसने अपने आपको दोषी ठहराना व अपने मन पर क्रोध करना सीखा है वह ही अत्यन्त नम्र होकर समाज में नम्रता व स्वाधीनता व प्रेम का सबक अपने व्यवहारिक जीवन से दिया करता है, साथ ही वह दूसरों में ये भाव पैदा करता है कि दूसरे व्यक्ति भी अपने दोषों को देखें। जो खुद दोष को स्वीकार कर क्षमा की याचना नम्र होकर करते हैं-वह दूसरों को नम्र बनाकर दोष स्वीकार करने का सबक जरूर ही देते हें अर्थात वह संगठन के मूल मन्त्र को आप सिद्ध कर देंगे और दूसरों को भी सिद्ध करवा देंगे। ऐसे आदमी का जीवन समाज में एक उदाहरण हो जायेगा और समाज को शुद्ध, बुद्ध, शीतलता और शान्ति सागर की ओर ले जायेगा। फिर बताओं जिस जाति के अन्दर ऐसा संगठन और प्रेम हो जाए तो किसकी हिम्मत है कि उस जाति के किसी आदमी को भी कोई टेढ़ी आँख से देखे। वास्तव में सच्चा पुरूष वही हो सकता है जो अपने दोषों को स्वीकार करने में हर समय तैयार रहता है। यदि भारत के बच्चे इस सबक (पाठ) को आज सीख जायें तो कौन-सा सुधार और कौन-सी स्कीम है जो अपने आप लोगों के दिलों के अन्दर पास न हो जाए और बहुत जल्द दुनिया को असली जीवन का सबक सिखा दे। सच्ची स्वाधीनता का मूल मन्त्र योग ही है।

कहते उसे ही योग, जिसमें सर्व दुःख वियोग है।

दृढ़ चित होकर साधने के योग्य ही यह योग है।।

१६.२ प्रश्न :- योगी नगरों में क्यों आते हैं?

उत्तर :- यह प्रश्न ज्यादातर लोगों में उठ रहा है कि जो योगी होते हैं उनको नगरों में आने की क्या जरूरत है। हम संसारी जीव पापी आत्मा हैं, नगर का वायुमण्डल दूषित होता है- क्या एक राजा इन गन्दे मकानों में जिनकी वायु दूषित हो-आता है ? नहीं। जहाँ यह प्रश्न भक्तों के सामने है वहाँ अगर यह प्रश्न भी साथ रख लिय जाय तो इन सबका जबाब आगे दिये हुए प्रश्नों से मिल जाता है। रात्रि के बाद सूर्य क्यों निकलता है ? भोजन

के बाद प्यास क्यों लगती है ?

जहाँ हवा बन्द होती है वहाँ गर्मी अधिक होती है, तो स्वाभाविक ही वहाँ पर आंधी और वर्षा हुआ करती है। ठीक इसी प्रकार जिस देश के अन्दर अत्याचार, ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि से मनुष्य समाज का हृदय तप्त होकर तड़पता है तो यह तड़प ही योगियों को खींच लाती है। जिस तरह गर्मी के कारण आकाश में बुखारत (वाष्प) ऊँचे उठते हैं और स्थान के खाली हो जाने के कारण से ठण्डी हवा बादलों को लाकर आँधी और बारिश की स्थिति पैदा कर देती है। इसी तरह जहाँ–जहाँ, जैसे–जैसे अत्याचार बढ़ते जाते हैं वहाँ वैसे–वैसे अत्याचारों के प्रभाव से दुर्बल दुःखी आत्माएँ अपने श्वासों में आह की लहरें पैदा करती हैं और आहों की लहरें ईथर (आकाश) में इक्ट्ठी होकर इस स्थान में जाती हैं जहां कि रूहानी ताकत (ईश्वरीय शक्ति) रहती है यानि आत्माओं के रहने का स्थान ही रूहानी ताकत का पावरहाऊस कहलाता है। पवित्र भूमि का आत्मिक भण्डार भी ऐसे ही स्थान होते हैं। दुःखी आत्माओं की आह–जैसी ताकत से ईथर में जाया करती है तो वैसी ताकत की उच्च आत्माओं के मानस–श्रेय में आकर्षण हुआ करता है तब ऐसे महात्माओं को देश का सुधार करने के लिए मजबूर होकर आना पड़ता है और ऐसी महान आत्माएँ ही ईश्वर रूप होती हैं और ईश्वर अवतार कहलाती है। इसी सिद्धान्त को स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी ने गीता में कहा है :–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदातमानं सृजाम्यहं।।

परित्राणाय साधूनां विनाशय च दुष्कृतां।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

संसार में मनुष्यों के दुःखों को दूर करने के लिए जितने भी अवसर सामने आते हैं इन सबका आदि स्त्रोत ईश्वरीय शक्तियाँ ही हैं। जब–जब और जहाँ–जहाँ मनुष्य समाज कर्त्तव्यमार्ग (इन्सानी फर्ज) से अलग होकर दुःख के प्रवाह में बहता है तब–तब वहाँ देश को आवश्यकता हुआ करती है ऐसी महान आत्माओं की जिनकी ज्योतिर्मय दिव्य आध्यात्मिक शक्ति देश भर के दूषित मानवी जीवन के भाग्य चक्र की फिल्म तोड़कर दैविक जीवन बना दिया करती है। दिव्य जीवन दैविक सम्पत्ति का केन्द्र है। स्वार्थी जीवन पैशाचिक अथवा राक्षसी सम्पत्ति का केन्द्र है।

दिव्य जीवन का प्रकाश ऐसे महापुरूषों के द्वारा ही फैला करता है। ऐसे महापुरूषों में तीन शक्तियाँ विशेषकर हुआ करती है–ये शक्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्तियाँ हैं जो कि इन महात्माओं में ईश्वरत्व का बोध कराया करती हैं। ब्रह्मा शक्ति से प्रेम शक्ति का विकास होता है इसको विश्व प्रेम भी कहें तो कोई गलत नहीं होगा। दूसरी शक्ति विष्णु की होती है–इस वैष्णवी शक्ति में विश्व प्रेम को समा लेने की ताकत हुआ करती है अर्थात् यह शक्ति पालन किया करती है। विश्व–प्रेम जब समा जाया करता है तो इसके प्रभाव से विश्व प्रेम के पैदा करने वाले परमाणु मण्डल(Cell System) हर हृदय में स्थित हो जाते हैं। हृदय में मन का स्थान है। मानसिक धारा जब प्रेममय हुआ करती है तब संसार को ब्रह्म का स्वरूप समझ कर विश्वप्रेम ब्रह्मरूप हो जाया करता है और ऐसी ताकत का स्त्रोत भी ऐसी ही महान आत्माओं में रहा करता है। तीसरी ताकत शिवा है जिसका काम दूषित विचारों को नाश करना है। इस ताकत के द्वारा वैराग्य के लक्षण दुनिया में फैलते हैं और विषयों में वैराग्य होने से स्वार्थ भावों का त्याग हो जाया करता

है और ऐसे त्याग की अवस्था में ही मनुष्य के चित्त में विश्व प्रेम से विश्वनाथ का आह्वान हो जाता है। विश्वनाथ का आह्वान क्या है ? रोम-रोम से विश्वनाथ का प्रकट होना है। विश्व प्रेम की प्राप्ति का साधन जब ऐसे उच्च महात्माओं के द्वारा प्रकट होता है तब देश में त्याग व वैराग्य की लहरें उठा करती हैं यही कारण है कि जब भारत का सूर्य जगमगा रहा था और भारत ने भगवान राम को अपनी गोद में खिलाकर राम को अपना हृदय बनाया था। भगवान राम चक्रवर्ती राज्य के ऐश्वर्य को त्याग करके तपस्वी भक्तों की रक्षा के लिए माता की आज्ञा से जाते हैं। भरत जी नगर से बाहर भूमि में गढ़ा खोद कर राम-राम का चिन्तन करते हुए अपने आपको राम ही बना लेते हैं। राम भरत के गुणों का कीर्तन करते-करते नहीं थकते। ऐसी अवस्था में मन्थरा व कैकयी के द्वेष फैलाने वाली अग्नि ठण्डी हो जाती है और ऐसी ठण्डी होती है कि सदा के लिए इसका नाश हो जाता है।

शान्त शुद्ध आत्माओं-यदि तुम राम को हृदय में धारण करके बुलाना सीख लो तो निश्चित है कि विजातीय मनुष्य भी शान्त हो जायेंगे। जिस प्रकार कैकयी और मन्थरा के हृदय में राम की वही मोहब्बत पैदा हो गई थी जैसी कि माँ और पुत्र में होनी चाहिए। तब देश जैसे शान्ति का सागर बना हुआ था और जिसकी शान्त लहरों ने सारे भूमण्डल में शान्ति की वायु चलाई थी। अतएव सुख शान्ति का सच्चा राज्य स्थापन किया था। वैसे ही यदि हम किसी उच्च आत्मा के अनुचर होकर त्याग और विश्व प्रेम को सीखना चाहें तो अवश्य प्रभु हमारी पुकार सुनेंगे और आकर हमारा उद्धार करेंगे।

१६.३ प्रश्न- जब दिन रात मेहनत करने के बाद भरपेट रोटी नहीं मिलती तो ऐसे समय में योग कैसे हो सकता है ?

उत्तर- एक मजदूर यदि दिन भर बोझ ढोता है तो इसकी कीमत मान लो 10 रूपये होती है। लेकिन एक आदमी यदि ऐसी मशीन का आविष्कार करे जो सैकड़ों मन बोझ कुछ घण्टों में ही ले जाए तो इस आदमी के दिमाग व समय की कीमत मजदूर के मुकाबले में कितनी हो सकती है ? एक आदमी एक सवाल का जवाब निकालने में 4 घण्टे लगाता है और दूसरा 10 मिन्ट-सोचो-इसने चार घण्टे का काम 10 मिन्ट में किया या नही। जिसको अपनी मेहनत पर विश्वास नही और न इसको अपने आत्मिक बल पर भरोसा हैं तो ऐसा इन्सान अगर महीनों भी मेहनत करता चला जाये तो उसे सफलता प्राप्त नही हो सकती। अगर नौकर दिन रात मेहनत करने के बाद मालिक से रोटी के पैसे हासिल करता है तो असल में इस मेहनती के दुर्बल विचार ही इसे दिन रात मेहनत कराते हैं। अगर यह मेहनती अपने विचारों को दृढ़ विश्वास के आधार पर कायम करता हुआ निश्चय करे कि मैंने एक ही दिन में एक महीने की रोटियों के पैसे ले लेने हैं तो इसकी सारी मानसिक शक्ति इसके हसब मन्शा वक्त के माफिक (समय एवं आवश्यकता अनुसार) जरूरत पूरी कर देने वाले आदमी पर असर करने वाली हो जायेगी। विचारों की लहर भी एक दूसरे के दिलों में असर करके आदमी के भाग्य का फैसला किया करती है। विचारों की लहर को बलवान बनाना मानों ईश्वरी खजाने को पा लेना है। तब ऐसी हालत में हमारी अकल हमें मजबूर करती है कि हम इन विचारों की लहरों को एकाग्र करना सीखें। जिनसे हम थोड़े वक्त में ही अपनी रोजी का समान जुटा सकें और शेष समय हम कौन हैं ? कहां से आये हैं ? कहां जायेंगे ? आदि के बारे में यानि भगवान की प्राप्ति में लगा दें। इससे निश्चित होता है कि योग द्वारा ही मन की एकाग्रता हो सकती है, इस एकाग्रता से हम संसार के सब सुखों को प्राप्त करके अपनी मनोकामना को पूरा कर सकते हैं।

अगर कोई यह कहे कि मेहनत इन्सान को रोटी दिलाती है तो इस मेहनत का जिसके साथ मनुष्य के मन की एकाग्रता काम नही करती इसका परिणाम यह देखा जाता हैं कि मनुष्य ज्यादा मेहनत करता हुआ भी मालिक का नुकसान करके दण्ड की सजा भुगतता है। न इसको नौकरी मिलती है और न इसे रोटी के लिए कोई पूछता है। वह तब ही मनुष्य कहलाने का अधिकारी होता है जबकि उसके अन्दर मनन शक्ति या एकाग्रता होती है जिसके प्राप्त करने का उपाय पूर्णतया योग ही है। लेकिन जिसको समय ही नहीं मिलता ऐसी हालत में वह योग कैसे कर सकता है ?

योग का सम्बन्ध मन व प्राण से हुआ करता है–शरीर, मन व प्राणों के रहने का स्थान है न कि शरीर मन व प्राण है। जबकि शरीर कार्यो में लगा होता है तब शरीर ही नहीं लगा रहता बल्कि मन व प्राण की सता से शरीररूपी नौकर काम किया करता है। एक समय में शरीर के हर एक हिस्से को अलग–अलग काम करने के लिए दिमाग से हुक्म हुआ करते हैं और शरीर की चेतन शक्ति को पहचानने वाला नाड़ी मण्डल हुक्म पहुंचाने में तारवर्की (वायरलैस) का काम किया करता है और शरीर के हर एक हिस्से के अलग–अलग काम एक साथ ही हुआ करते हैं।

फिर भी दिमाग की कोठरी में बैठा हुआ मन भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार सुझाता रहता है। जिन लोगों का यह ख्याल है कि शरीर एक समय में एक कार्य ही कर सकता है दूसरा नहीं वे गल्ती पर हैं। देखा जाता है कि अन्धे बहुत अच्छा बाजा बजाना जानते हैं। और जान कर हरेक सुर पर ठीक–ठीक हाथ रखते हैं। मनुष्य बातें करता चलता फिरता हुआ भी, अपने मन में किसी प्यारे की सूरत को हर समय अपने अन्दर देखा करता है। यह बात हर एक मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में हर समय आ रही है। जब मनुष्य सतगुरू से उपदेश लेकर श्वासों में भगवान को आता जाता देखता है और जिसने उसके स्वरूप को हृदय में बिठा लिया है तो उनका ध्यान खाते–पीते, उठते–बैठते, चलते–फिरते होता रहना चाहिए और होता रहेगा। भगवान के स्वरूप से भगवान के नाम द्वारा भगवान के गुणों में प्रेम, जिसने गुरू की भक्ति से सीख लिया है उसका तो ध्यान हर क्षण होता रहेगा और उसका प्राणायाम स्वाभाविक रूप से हर समय होना शुरू हो जाएगा, उसकी धारणा जो कि भगवान का स्वरूप हो चुकी है स्वयं ध्यान की मंजिल पर पहुंचा देगी या एक इन्सान जो कि भगवान कृष्ण का ध्यान हर समय अपने दिल में रखता है तो इसे मालूम है और इसे विश्वास भी है कि भगवान माता के समान लालन–पालन करते हैं और पिता के समान रक्षा करते हैं और उनकी शक्ति हर कण में काम करने वाली है और मनुष्य के मन और हार्दिक इच्छा के बदलने में सबसे अधिक श्रेष्ठ है। अब अगर दुनिया की विपदाएँ उस पर आती है तो ऐसा आदमी ऐसे समय में भगवान से ही प्रार्थना व भगवान का ही ध्यान करता है। ये विपदाएं ही उसे भगवान के दर्शन ध्यान व समाधि में ले जाने के लिए विवश करती हैं। अगर उसे अब सुख मिलता है तो वह भगवान का धन्यवाद करता है अगर दुःख मिलता तो उसका मन प्रार्थना, ध्यान, उपासना करने में स्वयं ही लग जाता है जो कि योग करने में सहायक होते हैं।

मान लो एक मनुष्य समझता है कि जज साहिब के पास मेरा मुकदमा है और वह मुझे फांसी की सजा देंगे और उनके पास मेरे मित्र की सिफारिश पहुँच सकती है। तो मित्र की सूरत व शक्ल उसी समय उसके सामने आ जाती है। योग की विद्या न जानने और न समझने के कारण से, यानि भगवान की सर्वव्यापक शक्ति को न समझने की वजह से दुनियावी इन्सान अपने मित्र की सिफारिश कराना चाहता है लेकिन जो योगी और भक्त है वह परमात्मा को सबके दिलों पर शासन करने वाला और सबसे बड़ा समझता हुआ

अपने मन में ही अपने प्यारे प्रभु से सिफारिश कराता है जिसका परिणाम ये होता है कि उसकी मानसिक शक्ति (Will Power) ईथर के जरिये इतनी तेज रफ्तार से जज के मन पर काम करती है कि इस जज का मन व बुद्धि उस अपराधी को नेक निगाह से देखने लगती है और उसका निर्णय इस कारण से उस अपराधी के पक्ष में हो जाता है। इससे जज के जमीर (Conscience) में कोई कमी नहीं आती और न उसे महसूस हो सकता है कि मैं किसी के दबाव से यह निर्णय दे रहा हूँ जो कि झूठा है। लेकिन अगर जज पर कोई मनुष्य बहुत से अहसानों से दबाव डाल कर उसको विवश करता है कि वह अपराधी को छोड़ दे तो जज की जमीर अगर प्रबल है तो वह ख्याल न रख कर कभी अपराधी के पक्ष में फैसला न देगा। अब आप यह सोचें कि दोनों में से कौन सा उपाय अच्छा है–जिसने दिल के अन्दर किसी भी ईश्वरीय शक्ति के स्वरूप को बसाया है या कि वह जिसने सांसारिक शक्तियों को अपना समझा है।

योग केवल बैठ कर ही नहीं किया जाता ध्यान में लगा हुआ साधक अपने मन को हर समय ध्यान में लगाकर योग के व्यावहारिक उद्देश्य को पूरा कर सकता है। जैसे प्रह्लाद ने कोई समाधि नहीं लगाई थी परन्तु ईश्वर पर अटूट विश्वास हो गया था कि मेरे भगवान सब में हैं और वे हर समय मेरी रक्षा करते हैं। योग की सफलता किसी विशेष आसन पर निर्भर नहीं है। बल्कि इसकी कामयाबी भगवान पर विश्वास रखने और उसको ही सबके दिलों का मालिक समझने से हो सकती है। एक बच्चा अपनी माँ का नाम नहीं जपता, कोई आसन नहीं लगाता, कोई ध्यान या प्राणायाम नहीं करता लेकिन इसके दिल में विश्वास है कि माँ ही मेरे सुखों की खान है और वे ही मेरे दुःखों को दूर करने वाली है इसी कारण से हर समय माँ का ध्यान बच्चे के मन में रहता है। ठीक ऐसे ही साधक भक्ति योग यानि सहज–योग हर हालत में हर समय कर सकता है। इसको दफ्तर में भी ईश्वर के चिन्तन के लिए समय श्वासों में मिल जाता है इस तरीके की प्राप्ति सतगुरू की शरण में जाने से ही हो सकती है और इसके लिए घूमने के समय भी तीन–तीन घण्टे बैठ कर पूजा करने वालों के मुकाबले में ज्यादा सफलता मिल जाती है।

बहुत से लोगों का विचार है कि जो आदमी शारीरिक परिश्रम करने के बाद थक गया वह क्या योग करेगा ? शरीर उस समय थका करता है जबकि उसका मन पहले थक जाता है जिस विषय में रूचि नहीं होती और जो उसे विवश होकर करना पड़ता है उसका मन वहाँ की थका करता है। जो सांसारिक कार्य मनुष्य को हर समय आशा और निराशा के परिणाम दिखलाया करते हैं, वहाँ मन इन कामों से तंग आकर थक जाया करता है या जब जितना परिश्रम किया जाये उसका उतना फल उसको न मिलने पर उसका मन थक जाया करता है। थक जाने का मतलब मन के लिए आराम लेना है। आज का मनुष्य–समाज थकी हुई दशा में लेट कर सो जाना ही आराम समझता है। अब सोचना है कि जो शारीरिक परिश्रम करता है और शरीर को नींद के द्वारा आराम देकर फिर से ताजा बनाता है उसे अगर नींद न आये तो इसकी हालत कितनी खराब हो सकती है। नींद में मन को पूरा आराम नहीं मिलता है और वह भी उस समय मिलता है जबकि शरीर पर शासन करने वाली मन की शक्ति शरीर (कारण शरीर) में छुप जाती है और इस कारण से शरीर नींद की अवस्था में संसार से बेखबर हो जाता है। संक्षेप में, नींद में मन की शक्ति कारण शरीर में छिप जाने से मन को विश्राम नहीं मिलता बल्कि केवल शरीर को ही आराम मिलता है। शरीर को जब आराम मिल जाता है तो इसकी थकावट दूर हो जाती है। और इसमें ताजगी आ जाती है। इन्द्रियां व शरीर के सब अंग शक्तिशाली होकर परिश्रम के लिए तैयार हो जाते हैं लेकिन मन की चंचलता दूर नहीं होती और मन की

निराशा बनी रहती है। इन बातों से सिद्ध होता है कि नींद में मन को आराम नहीं मिलता, इसलिए मनुष्य का शरीर थकने वाला, कमजोर हो जाने वाला और रोगी हो जाने वाला बना रहता है क्योंकि शरीर का आधार तो मन ही है। अब मन को पूरा आराम व अनन्त सुख जब मिलने लग जाता है तो उसको किसी काम में भी थकावट और न इसको नींद लेने की आवश्यकता रहती है। बल्कि देखा गया है कि जिन्होंने अपने मन को एकाग्र करना सीख लिया है उन्होंने 6 घण्टे आराम लेने की आवश्यकता को, केवल दो घण्टों में शरीर को ढीला छोड़ कर ध्यान में लय होकर, पूरा किया है और अपने आपको तरोताजा बनाना सीख लिया है। और इनकी ये दो घण्टे की नींद शरीर व इन्द्रियाँ व मन को भी तरोताजा बनाने वाली होती है।

१६.४ प्रश्न- यम नियम सिद्ध किये बिना योग कैसे किया जा सकता है?

उत्तर- बहुत से विद्वानों को यह शंका है कि योग यम नियम की साधना बिना नहीं हो सकता और यम नियमों की साधना इस कलियुग में हो नहीं सकती। लेकिन जिस शास्त्र का प्रमाण देकर यम नियमों को योग प्राप्ति का साधन समझते हैं योग दर्शन में पतञ्जलि ने ही स्पष्ट कर दिया है यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान, समाधि ये योग के आठ अंग हैं, लेकिन वास्तविक अनुभव न होने से कुछ विद्वानों ने यम नियम को ही प्रथम मान कर योग की प्राप्ति का साधन बना दिया है। इसलिए इस विचार को स्पष्ट करने के लिए योग के इन आठ अंगों का संक्षिप्त में वर्णन किया जाता है।

यम में ये पाँच बड़े गुण शामिल है :-

(1) **अहिंसा**-मन, वाणी व शरीर के द्वारा किसी भी जीव को कष्ट न दिया जाये।

(2) **सत्य**-जैसा देखा सुना हो और बुद्धि ने जैसा समझा हो वैसा ही बोलना व ख्याल करना और इसी पर ही अमल करना।

(3) **अस्तेय**-दूसरों के माल को मन, वचन और कर्म से बिना आज्ञा न लेना।

(4) **ब्रह्मचर्य**-वीर्य की रक्षा करना। मन, शरीर व इन्द्रियों के संकल्प से विषयों की ओर न जाने देना।

(5) **अपरिग्रह**-जरूरत से ज्यादा धन या किसी और प्रयोग में आने वाली वस्तु को अपने पास न रखना।

इन पाँचों को प्राप्त करना यम की प्राप्ति करना है। यम का दूसरा नाम धर्म है। जो आत्मा का धर्म है, इसमें जो लय करा दे, यानि जिससे मन आत्मा में मिल जाये। जिसके प्राप्त कर लेने से मनुष्य समाधि को प्राप्त कर ले उसे यम कहते हैं।

नियम के यह पाँच गुण हैं :-

(1) **शौच**-मन से कपट रहित होकर शुद्ध रहना, वाणी से किसी की निन्दा न करके शुद्ध रहना, स्नान आदि से शरीर को मल से साफ रखना। नेति, धोति, नौली, वस्ती,

ब्रह्मदांतन आदि साधनों से आन्तरिक व बाहरी शुद्धि रखना।

(2) **सन्तोष**–हर दशा में हमेशा तृप्त रहना। जैसी भी हालत (Circumstances) हों उसमें खुश रहना।

(3) **तपः**–आत्मिक तेज के द्वारा इन्द्रियों को विषयों में जाने से रोकना प्राणों में अपान को मिलाकर आत्मिक तेज का दर्शन करना। शीत–उष्ण,सुख–दुःख, मान–अपमान को सहन करना। जिह्व के रस को छोड़ कर नमक मिर्च मसाले आदि सबका त्याग करके सादा भोजन करना। ये मानसिक व शारीरिक तप है।

(4) **स्वध्याय** (स्व+अध्याय)–भावार्थ यह है कि शिक्षा प्राप्त करके उसे व्यवहारिक जीवन में लाना–स्व का अर्थ है आत्मा और अध्याय का अभिप्रायः है ग्रहण करना, यानि इस संसार को आत्मरूप ही देखना। आज के युग में इसका अर्थ है कि जिन महापुरूषों ने आत्मज्ञान पा लिया है ऐसे महापुरूषों के जीवन को व उनके लिखे हुए ग्रन्थों को मनन करके उस पर अमल करना स्वाध्याय है।

(5) ईश्वर प्रणिधान–सब कर्मों के फल को भगवान् के या भगवान स्वरूप गुरूदेव जी को अर्पण करना। अपने कर्तव्य कर्म को करना और इसके लाभ या हानि को एक जैसा जान कर सब कुछ भगवान् के या भगवान् स्वरूप गुरूदेव जी को अर्पण करना।

केवल ईश्वरप्रणिधान की सिद्धि से मोक्ष मिल सकता है। इसको भगवान ने गीता 18 वें अध्याय में कहा है :–

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

''सब कर्मों के फल के लाभ व हानि को मुझ में अर्पण करके मेरी शरण हो।'' अर्थात् सारी इच्छाएं, कर्त्तव्यकर्म अभिमान को मेरे अर्पण कर दे तो मैं तेरे सारे पापों का नाश करके तुझे मोक्ष दूँगा। इसी भाव को पतंजलि जी इस प्रकार कहते हैं कि ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है। इसलिए पतंजलि जी ने समाधि–प्राप्ति के लिए क्रिया योग का वर्णन किया है। इस आज्ञा में तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान इन तीनों को प्राप्त करने से समाधि की प्राप्ति होती है जो तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणीधान व्यावहारिक जीवन में आ जाये–इसका नाम पतंजलि जी क्रिया योग कहते हैं। जिसको गीता में कर्मयोग से जाना जाता है। यानि जिसको मन मनन करके ध्यान द्वारा व्यावहारिक जीवन में प्राप्त करता है इसका नाम है कर्मयोग या क्रिया–योग। यम नियमों की प्राप्ति में पतंजलि जी ''साधनपाद'' के क्रिया–योग को सिद्ध करने के लिए ये पाँच विध्न बतलाते हैं :–

(1) **अविद्या**–अज्ञान अर्थात् उल्टा ज्ञान।

(2) **अस्मिता**–शारीर को ही आत्मा मान लेना। शरीर को धर्ता मान लेना। देखने वाला तो आत्मा है लेकिन देखने का साधन बुद्धि और इन्द्रियाँ आदि हैं लेकिन इन सबको एक ही जैसा मान लेना अस्मिता है।

(3) **राग**–विषयों में प्रेम रखना।

(4) **द्वेष**–विषय की प्राप्ति में विरोधी पदार्थ से क्रोध करना।

(5) **अभिनिवेश**–मृत्यु का जो भय है इसका नाम अभिनिवेश है।

इन पाँचों को दूर करने के लिए पतंजलि जी कहते हैं कि इन क्लेशों को मनुष्य ध्यान करके दूर करे।

धारणा ध्यान किसे कहते है?

चित् को किसी आत्मीय–केन्द्र यानि नाभि–चक्र–हृदय कमल में मन को पूरी तरह एकाग्र करना ही ध्यान है और एकाग्रता के लिए मन को लगाना धारणा है। पतंजलि जी धारणा ध्यान के ये लक्षण बताते हैं–धारणा से जब मन एकाग्र होता है तब साधक में शुद्ध संकल्प शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिससे पांचों क्लेश (जो पहले कहे हैं) दूर हो जाते हैं और तब साधक को क्रिया–योग या कर्म–योग और यम–नियमों की साधना व्यावहारिक जीवन में आई हुई प्रतीत होती है। जब तक राग द्वेष आदि हैं तब तक यम नियम सिद्ध नहीं हो सकते। राग द्वेष को दूर करने के लिए पतंजलि जी ध्यान का वर्णन करते हैं। अगर गम्भीरता से योग–दर्शन का अध्ययन किया जाए तो आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान ही यम, नियमों को हासिल कराते हैं और तीन ताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) और पांच क्लेशों को दूर करने का साधन धारणा, ध्यान आदि ही सिद्ध होते हैं। इन क्लेशों और तीन ताप का दूर होना ही मोक्ष है। इसी विषय के सम्बन्ध में महाराज मनु जी ने कहा है :–

'प्राणायाम से शरीर के दोष नष्ट हो जाते हैं, धारणा से पूर्व जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं, प्रत्याहार से कुसंग के दोष नष्ट हो जाते हैं और ध्यान से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार (अनीश्वर गुण) दूर हो जाते हैं। इससे निश्चित होता है कि यम नियमों की सिद्धि प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान से होती है और ध्यान की परिपक्व अवस्था में यम नियमों की सिद्धि होती है और जैसे–जैसे ध्यान परिपक्व हो जाता है वैसे–वैसे यम नियम की साधना होती जाती है। जैसे–जेसै यम नियमों की साधना होती जाती है तैसे–तैसे समाधि पूर्ण होती जाती है। इससे सिद्ध हुआ कि यम नियम उद्देश्य रूप से योग के अंग हैं, साधन रूप से नहीं। यम नियम की प्राप्ति का संकल्प रख कर साधक निर्विकल्प समाधि में प्राप्त होता है और यम नियमों का कर्ताभाव ईश्वर प्रणीधान से जब ध्यान समाधि द्वारा परमात्मा में लय करता है तब निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है।

जो मनुष्य सोचते हैं कि यह विधान तो किसी शास्त्र में नहीं मिलता कि यम नियम के सिद्ध किए बिना योग हो सकता है तो इनको अपने आप विचार करना चाहिए

कि यदि ऐसा होता शास्त्रकार कभी भी 6 वर्ष के बालक को प्राणायाम, धारणा, ध्यान की दीक्षा यज्ञोपवीत के समय कभी न देते।

१६.५ प्रश्न- विषयी, पापी, गृहस्थी, दुर्बल, रोगी, वृद्ध, स्त्री आदि सब योग कैसे कर सकते हैं ?

उत्तर– विश्व का समस्त जीव समुदाय हर समय अपने से शक्तिशाली के साथ मिल कर शक्ति को ग्रहण करता है। कमल सूर्य से शक्ति लेकर जल से अलग रहने की शक्ति सीखता है, पपीहा अपनी धारणा से आकाश का जल पीया करता है इसी तरह से विषयी जन तपस्वी महात्माओं के संग से तपस्वी होते देखे गए हैं। पापी जन पुण्य आत्मा के सत्संग व इनके चिन्तन, इनके ध्यान करने से पुण्य आत्मा बनते देखे गए हैं। गृहस्थी सन्यासियों के त्याग के भाव को देख कर बड़े परिश्रम से संचित की हुई अपनी सारी सम्पति दान करके त्याग व वैराग्य के जीवन में आकर मुक्त होते देखे गए हैं। जैसे महात्मा बुद्ध अपने राज्य को लात मार कर जंगलों में गये थे और पूर्ण त्याग व वैराग्य का जीवन धारण कर लिया था। दुर्बल व्यक्ति बलवान मनुष्य की संगति से बलवान हो जाते हैं । रोगी मनुष्य आहार-विहार (जलवायु) और सत् विचारों को इक्ट्ठा करके निरोगी हो सकता है। वृद्ध और स्त्री भी अपने विचारों को मन्त्र द्वारा या ध्यान द्वारा ठीक करके अपनी वासनाओं को समाप्त करके शान्त व सुखी हो सकते हैं।

योग जिससे सभी लाभ उठा सकते हैं–वास्तव में क्या है ? योग नाम है जुड़ने का या लय होने का। जुड़ना किससे होता है–ईश्वर से। क्या ईश्वर से जुड़ने व लय होने का नाम योग है और विषयों में जब लय होता है वह योग नहीं ? देखा जाता है कि मनुष्य को कोई भी सांसारिक वस्तु सुख व शांति नहीं दे सकती। जीव ने जब से शरीर धारण किया तब से इसके मन में यही इच्छा बनी रहती है कि मैं महान सुख भोगूँ जिससे फिर दुःख का मुँह न देखना पड़े, मैं ऐसी जगह पर पहुँच जाऊँ जहाँ मुझे सच्ची शांति मिले। नशा पीने वाला अगर नशा पीता है तो इसलिए कि पीने के बाद अपने आपकी होश न रहे और आनन्द मिले। जहाँ पर मनुष्य अपने आपको भूल जाता है वहाँ ही उसे आनन्द मिलता है। व्याभिचारी अगर व्यभिचार करता है तो इस लिए कि व्यभिचार के आनन्द में उसे अपने आपकी होश न रहे और वह उस समय आनन्द ही लेता रहे। मगर विषयी को विषयों में पूर्ण आनन्द नहीं मिलता है बल्कि भोग के बाद इसे दुःख मिलता है। इससे वह और भी चंचल बन जाता है। इस चंचलता को दूर करने के लिए श्री पातञ्जलि जी कहते हैं कि चितवृति का निरोध योग से होता है। चित् की वृतियाँ क्या हैं ? यह आनन्द की इच्छाएं हैं। पूर्ण आनन्द का मिल जाना और समस्त इच्छायों का मिट जाना ही योग से होता है। दुःखों का नाश भी इच्छाओं के समाप्त होने पर होता है–इच्छाएं योग द्वारा ही नष्ट होती है। इसलिए सिद्ध होता है कि दुखी व पापी लोगों के लिये ही योग है। योग से बढ़ कर दुःखों को दूर करने वाला कोई और साधन आज तक किसी ने भी नहीं बताया। योग के साधन दुखियों व पापियों के लिए दवाई का काम करते हैं और यम नियम दवाई के साथ परहेज का काम करते हैं। इस लिए भगवान ने गीता में चार प्रकार के भक्त कहे हैं :–

(1) आर्तभक्त–जो संसार के पापों या दुःखों से दुःखी है।

(2) **जिज्ञासु**–जो सत्पदार्थ को ग्रहण करने के लिए भगवान का चिन्तन करते हैं और जिनके मन में पूर्ण आनन्द प्राप्त करने की इच्छा है।

(3) **अर्थार्थी**–जो यज्ञ, धन या रिद्धि सिद्धि के लिए भगवान को भजते हैं।

(4) **ज्ञानी**–जो भगवान को अपने प्राण समझ कर सब में देखते हैं यानि सारी सृष्टि में भगवान को प्राण रूप से स्थित समझते हैं।

नवें अध्याय के 32 वें श्लोक में भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज कहते हैं कि यदि सबसे नीची जात का दुराचारी, पापी भी अगर मुझे जपता है तो साधु है और भक्तों में सरताज (पूजने योग्य) है। क्योंकि जो केवल मेरे ही आश्रित हो चुका है उसके सारे पाप मेरी शक्ति से नाश हो जाते हैं। भगवान यह भी कहते हैं कि हे अर्जुन मेरी शरण होकर मेरी उपसना करने वाले पाप योनि के मनुष्य, स्त्री, वैश्य तथा शूद्र भी क्यों न हों लेकिन फिर भी वह सबसे उच्च गति को प्राप्त कर सकते हैं।

आत्मिक शक्ति

मनुष्य में एक आत्मिक शक्ति है जो अनन्त है लेकिन इस दृष्टि से नहीं देखी जाती। फिर इस शक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव कभी न कभी किसी उच्च आत्मा के जीवन से मिल ही जाता है। यह उच्च आत्मिक शक्ति न रोगी हो सकती है, न दुर्बल और न इस शक्ति को धारण करने वाला गृहस्थी होने पर भी सांसारिक इच्छाओं में फँसा रह सकता है। स्त्री हो या वृद्ध वह भी इस शक्ति को पाकर अपने सब मनोरथों को पूरा कर सकता हैं। भगवान शांत सागर हैं इनके पास जाने वालों को कभी भी दुःख नहीं आ सकता। मनुष्य इनको स्थूल शरीर द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता बल्कि जिससे यह शरीर बना है (जो कि सूक्ष्म के बहुत समीप हैं) जिससे मनन शक्ति मन को प्राप्त होती है इसके द्वारा ही प्राप्त करता है लेकिन विषय वासनाओं की धारा में जाने के कारण से इसको अन्तर–आत्मिक ज्ञान नहीं होता। इसका कुछ भी ज्ञान होने से रोग व शोक सभी शीघ्र ही नष्ट हो जाते है। सारे योग के साधन मनुष्य के शरीर व मन पर ऐसा ही प्रभाव रखने वाले हैं जैसे कि सूखे वृक्ष को हरा भरा करने में जल असर करता है। प्रयोग के साधनों का महत्व भारतवर्ष में आजकल की नई सभ्यता के छात्र भले ही न समझे लेकिन यह बात सत्य है कि योग की विचारधारा सारे ज्ञान का स्त्रोत है। जब माली बीज बोता है और समय–समय पर पौधे को जल देता है, खाद डालता है और भूमि को नर्म करता हे तब पौधा फल फूल कर संसार को वृक्ष रूप में मिलता है। जिससे संसार इसको अपने सुख का कारण समझता है। इसी तरह योग के साधन तब तक निर्जीव यानि शक्तिहीन हैं और लाभदायक नहीं हैं जब तक मन्त्र व दृष्टा दिव्य दृष्टि के स्वामी सतगुरु के द्वारा प्राप्त नहीं किये जाते। रोगी को दवा देने से पहले वैद्य जी यह निश्चित करते हैं कि बीमार के शरीर के दिल और दिमाग मे कहाँ तक कमजोरी आई है। फिर वह उतनी ही शक्ति की दवाई देकर शरीर को स्वस्थ करते हैं और बिना वैद्य जी के दवा कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती बल्कि वही दूध जो कि अमृत के समान होता है उसके अनुचित प्रयोग से लोग मरते देखे गए हैं। यह बिना तरीकों का नियम केवल योग के बारे में ही नहीं बल्कि प्रत्येक विषय में एक–सा काम करता है।

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

योग के दाता सर्वसमर्थ सद्गुरुदेव जी की कृपा

योग सर्वशक्तियों, सर्वविद्याओ के प्राप्त करने की कुंजी है और यह सर्वशक्तिमान अभेद ज्ञान के भण्डार श्री सत्गुरुदेव जी से ही मिला करती हैं। श्री सत्गुरुदेव ही साधनों के द्वारा साधक को इसके शरीर, दिल व दिमाग के हिस्सों की कमजोरी के अनुसार योग के साधन कराया करते हैं और साधक को निरोगी बना कर इसके मन की एकाग्रता कराया करते हैं। जो सत्गुरु को तलाश नहीं करते बल्कि पुस्तकों में ही पढ़ कर, देखा–देखी या सुन कर साधन करने लग जाते हैं वह लाभ बिल्कुल नहीं उठा सकते और रोगी हो जाते हैं और जिनको ऐसी उच्च विद्या प्राप्त करने के लिए सत्गुरु की खोज व उनको प्रसन्न करने का पुरुषार्थ नहीं है वह लोग योग के अधिकारी भी नहीं। अधिकारी मनुष्य उसे नहीं समझना चाहिए जो सत्गुरु को केवल पैसे से या शारीरिक सेवा से खुश कर सकता है बल्कि जिस मनुष्य के अन्दर भगवान की प्राप्ति के लिए तड़फ है, प्यास है, जो एक–एक घड़ी प्रभु के बिना कठिनता से व्यतीत करता है तो ऐसी सच्ची लग्न ही ईश्वर रूप सतगुरु को प्रसन्न कर सकती है। ऐसे दीन पर दयालु हो कर सत्गुरु साधन द्वारा इसे शुद्ध व मुक्त कर दिया करते हैं। लेकिन जो केवल शरीर से अथवा धन से सेवा करते हैं मगर जिनके मन में प्रेम भाव नहीं है और न जिनमें सत्गुरु के लिए ईश्वर के समान आदर है तो वह कितनी भी सेवा करें, कितना भी रुपया खर्च करें फिर भी उनकी सेवा के फूल ही हैं जैसे कागज के बनावटी फूल होते हैं और ऐसे बनावटी फूलोंपर भंवरा कभी भी नहीं आया करता। ऐसे व्यक्ति स्वस्थ क्यों न हों, ब्रह्मचारी व सन्यासी क्यों न हों, योग के अधिकारी नहीं हैं। उपनिषद् के अनुसार जिसकी जैसी ऊँची भक्ति ईश्वर में है अगर वैसी ही उसकी भक्ति गुरुदेव के चरणों में है तो ऐसे मनुष्य के हृदय में ही ईश्वर का प्रकाश है।

मनुष्य के अन्दर एक जीवनी शक्ति जो कि हर समय रोग के परमाणुओं का मुकाबला करती रहती है। यह शक्ति जिस पुरुष की कमजोर हो जाती है उस पर रोग व शोक आया करते हैं। जो न तो योग साधन करते हैं न ही शरीर से कुछ काम लेते हैं इनमें जीवनी शक्ति न पहुंचने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं और रोग के परमाणु उस पर असर करने लग जाते हैं। जीवनी शक्ति चेतन शक्ति है। इससे सारी क्रियाएँ शरीर में होती हैं। जीवनी शक्ति शुद्ध विचारों से बढ़ा करती है और शुद्ध विचारों को इक्ट्ठा करने व दूषित विचारों को नष्ट करने की विधि का नाम ही योग साधन है। जिस प्रकार दीये से दिया जलता है उसी प्रकार से विचार शक्ति का विकास शक्तिमान आत्मा से ही हुआ करता है। इस संसार में कोई भी विद्या नहीं सीख पाया है जब तक वह किसी पूर्ण सत्गुरु के आगे अपने आपको अर्पण नहीं करता। जिन्होंने केवल समझ ही रखा है और अपने व्यावहारिक जीवन में करके नहीं दिखाया कि संसार सर्वब्रह्मरूपी है और दुःख सुख मनुष्य ने मान रखें हैं और यह दुःखसुख विचारों के द्वारा हुए हैं और यह सुख दुःख शुद्ध विचारों द्वारा ठीक हो सकते हैं। ऐसे मनुष्यों की ऐसी बातें दैनिक व्यवहार में तोलने पर बहुत ही हल्की सिद्ध होती हैं। चाहे देखने में ठीक ही क्यों न मालूम हो। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति नदी में बहा जा रहा है और नदी में तूफान आ रहा है। बहने वाला हिम्मत हार गया है और बार–बार डुबकियाँ ले रहा है। ऐसी मुसीबत में पड़े मनुष्य को कोई यह न समझे कि वह योग का अधिकारी नहीं क्योकि वह दुर्बल है, वृद्ध है, शक्तिहीन हैं, आदि, बल्कि ऐसे जिज्ञासु को भगवान् ने गीता में आर्त भक्त कहा है। इस समय इससे अगर कोई कहे कि तू शुद्ध निर्लेप है, तेरे में अनन्त शक्ति है, तू अपने विचारों से ही कमजोर

बना है। तू क्यों नहीं हाथ मार कर बाहर निकल आता तो उस समय नदी में डूबने वाले को भी उपदेश देने वाले पर हँसी आती है कि मैं मर रहा हूँ, शक्तिहीन हो रहा हूँ, और यह मुझे ब्रह्मशक्तिमान बनने का उपदेश दे रहा है। इसमें सोचना चाहिए कि इन दोनों में से कौन झूठा है। अगर एक बुद्धिमान व्यक्ति आता है और एक रस्सा फेंकता है और कहता है कि तू इसे पकड़ ले और मैं तुझे खींच लेता हूं और डूबने वाला रस्से को पकड़ लेता है और दूसरा आदमी डूबने वाले को खींच कर बाहर खड़ा कर देता है तब वह नदी में बहने वाला पुरूष अपने आप बलवान, शान्त, शुद्ध होकर आत्म शक्ति का अनुभव करता है। ठीक इसी तरह से उपदेश तो देते हैं कि तुम शान्त व शुद्ध हो लेकिन वासनाओं से छुटकारा पाने के लिए वह साधन नहीं बताते और न ही वह शक्ति देते हैं और न स्वयं शक्ति का संचय करना जानते हैं तो साधनहीन होने पर ऐसे मनुष्यों के जबानी उपदेश दुनिया में उपदेशकों की बदनामी कराने वाले होते हैं और वह स्वयं भी बदनाम होते हैं। जो सत्गुरू वासनाओं की नदी में बहते हुए मनुष्य को निकालना चाहते हैं वह बातें ही नहीं सुनाया करते बल्कि वह साधनरूपी रस्सा डालते है और इस साधनरूपी रस्से को जो श्रद्धा विश्वास के हाथों से अच्छी तरह पकड़ लेता है वह बहने वाला फिर बाहर भी आ जाता है और शुद्ध व मुक्त बनने का दावा कर सकता है और ब्रह्म में लय होने के योग्य हो सकता है।

योग में यह विशेषता है कि रोग के दूर करने के अतिरिक्त यह मन की एकाग्रता भी कराता है और पूरा योग करने वाले पर रोग या बुढ़ापा फिर कभी नहीं आ सकता। ऐसी विशेषता योग के अतिरिक्त किसी अन्य साधन में नहीं पाई जाती। इस विषय में स्वेता स्तोत्र में लिखा है कि 'साधक जब साधनों में प्रवेश करता है तो उसमें यह लक्षण आते हैं, शरीर हल्का हो जाता है और पूर्ण आरोग्यता प्राप्त करता है यानि आलस आदि दोष भी दूर हो जाते हैं और उसके मन से शरीर व इन्द्रियों का मोह दूर हो जाता है–उसके चेहरे पर नूर आ जाता है उसकी आवाज बहुत मीठी हो जाती है। उसके शरीर से दुर्गन्ध का नाश हो जाता है और सुगन्ध आने लगती है। पखाना, पेशाब जैसे मल कम हो जाते हैं यानि इसके मेदे में यह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह थोड़े अनाज से शरीर के पोषण के लिए बहुत शक्ति ग्रहण कर लेता है और मेदे में ऐसे परिवर्तन होते हैं कि इनका बहुत–सा हिस्सा शरीर के अंगो को बनाने वाला हो जाता है और बेकार बहुत ही कम रह जाता है। कोई रोग व दुःख उत्पन्न नहीं होता अगर होता है तो उसी समय नष्ट हो जाता है। ऐसी अवस्था में साधक सच्चा अधिकारी बन कर किसी पूर्ण योगी सत्गुरू के चरणों में समर्पण होकर जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त करता है और फिर अपने व्यवहारिक जीवन से संसार को चेतन शुद्ध परब्रह्म अद्वितीय शक्तियों का उपदेश करने का अधिकारी बनता है।

१६.६ आनन्दकंद प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का श्री चन्द्रमोहन जी को अन्तिम पत्र :

श्री चन्द्रमोहन जी महाराज प्रभु आज्ञा अनुसार योग प्रचार के लिए कई स्थानों पर जाते रहते थे और उनको श्री प्रभु जी के कृपा पत्र हर स्थान पर मिलते रहते थे। ई० सन्

1938 गुरु पूर्णिमा से 15–16 दिन पहले उन को श्री प्रभु जी एक कृपा पत्र मिला जिस में लिखा था कि–चिरंजीव! हमारे इस पत्र के मिलते ही फौरन अमृतसर चले आओ। इस समय आना बहुत ही आवश्यक है।'' इस पत्र को पाते ही वह फौरन अमृतसर लौट आये। उस समय श्री प्रभुजी रेलवे पुल के पार श्री लाला दुलीचंद नागपाल की कोठी में ठहरे हुए थे। उस कोठी का नम्बर संभवतः सात था। उन्होंने वहाँ जाकर श्री प्रभु जी के चरणों में प्रणाम कर उन कृपामय के दर्शन किये। श्री प्रभु जी ने प्रसन्नता और प्यार से उन को आशीर्वाद दिया।

१६.७ आनन्दकन्द योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का श्री मुलखराज जी महाराज को अन्तिम दिव्य संदेश

श्री गुरुपूर्णिमा का पूजन उत्सव सभी गुरु भाई बहिनों ने अमृतसर के अन्दर श्री दुलीचंद नागपाल की कोठी में, मंगलवार 12 जुलाई सन् 1938 वाले दिन श्री प्रभु चरणों में मनाया। वहाँ हररोज कोठी के बाहर बगीचे में अच्छे–अच्छे ध्यानाभ्यासी आ कर ध्यान में बैठते थे और वहां पर योग प्रचार कार्यक्रम भी बहुत अच्छी प्रकार से चलता था। व्यास पूजा के अवसर पर वहाँ भक्तें ने प्रभु आज्ञा से प्रेरित उनके आसन के पीछे वाली दिवार को काली चादर पर सफेद मोतियों के फुलों द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से सजा रखा था। गुरु पूजन से पहले श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने श्री मुलखराज जी को अपने पास बुलाकर बड़े प्यार से फरमाया–**''राजा जी! मैं दिव्य शरीर से अब हिमालय आदि पर्वतीय स्थानों पर सिद्धों में विचरण करूँगा। आने वाले बड़े विकराल समय में घोर अत्याचार होंगे। कोई रक्षक सहायक न रहेंगे। तब दुखी प्राणियों की हाहाकार सुन मैं फिर से प्रकट हो संसार भर में सुख शान्ति का संचार करूँगा। उस समय का बनाया मेरा विधान कल्पान्त तक लागू रहेगा।''**

१६.८ आनन्दकन्द योग योगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज द्वारा दिव्य निर्माणकाय का संवरण

गुरुपूर्णिमा पूजन उत्सव के वाद एक आश्चर्यजनक घटना घटी। वह यह थी कि श्री प्रभु जी कोठी के बाहर बगीचे में बैठे हुए थे और थोड़ी देर के लिए उनके शरीर में कुछ कम्पन सा दिखाई दिया। उसके बाद श्री प्रभु जी प्रसन्न मन से लेट गये और आने जाने वाले सत्संगियों से प्रसन्नता पूर्वक विभिन्न प्रकार की बातें करते रहे। यह घटना श्री नन्दलाल जी ने नहीं देखी कयोंकि वह ध्यान में बैठा हुआ था। उन्होंने ध्यानाभ्यास से उठने के बाद सभी लोगों के सामने श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में अपना ध्यानानुभव सुनाया। उसने श्री प्रभु जी के चरणो में निवेदन किया कि, प्रभु जी आज मुझे ध्यान में नारद मुनि के दर्शन हुए और उन्होंने मुझसे यह कहा कि, श्री प्रभु जी आज नेपाल हिमालय को चले गये। मैनें नारद जी से प्रार्थना की कि नारद जी मैं इस बात को सत्य कैसे मानू। प्रभु जी तो बगीचे में बैठे हुए हैं। मैं उनके दर्शन करके ही ध्यान में बैठा हूँ। नारद जी ने उत्तर दिया, नहीं। उनकी लीला को तुम नहीं जान सकते। वह तो हिमालय से निर्माण काय से ही आये थे और निर्माण काय से ही वस्तुतः आज चले गये हैं। अपने इस शरीर में प्राणकोश छोड़ दिये हैं। वह प्राणकोश इस शरीर में 20 रोज और रखेंगे। इसके बाद इस शरीर को बिल्कुल छोड़ देंगे। श्री नन्दलाल जी ने अपने ध्यान का यह अनुभव श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में सुनाया। यह सब बातें सुनकर के श्री प्रभु जी हँस पड़े और

हँसकर कहा, ''नन्दलाल तू हमें यह बता आज तक नारद की बात को सत्य मान करके क्या किसी ने कभी सुख पाया ?'' श्री नन्दलाल जी ने उत्तर दिया, 'प्रभु जी, यह तो आप ही जानें किन्तु नारद जी ने मुझसे ऐसा कहा है।' नन्दलाल की इस प्रकार की बातें सुनकर प्रभु जी पुनः हँस पड़े और कहा, ''अरे भाई, हम तेरे सामने बैठे हैं, बातें कर रहे है, खा रहे हैं, पी रहे हैं, फिर तू यह बता कि हम नेपाल को कहाँ चले गए ? यदि नारद की बात सत्य होती तो हम तुम्हें यहाँ कैसे मिलते ? नारद का तो यही काम है- कभी किसी से कुछ कहेगा और कभी किसी से कुछ। तुम सब स्वयं देख लो। जब हम यहाँ तुम सबके सामने बैठे हुए हैं तो नेपाल कहाँ चले गए ? यह सब बातें हो जाने के बाद और कई प्रकार की बातें चलती रहीं और श्री प्रभु जी आनन्दपूर्वक सभी को साधन और ध्यानाभ्यास आदि कराते रहे। किन्तु होनहार की प्रबलता सामने आई। गुरू पूर्णिमा के ठीक 20 दिन बाद श्री प्रभु जी ने अपनी नश्वर देह को छोड़ दिया।

१६.९ अद्भुत दिव्य घटनायें *(श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के शब्दों में)*

पहली अद्भुत घटना- श्री प्रभु रामलाल जी महाज के भौतिक शरीर के संस्कार करने से पहले कई एक अद्भुत घटनाएँ घटित हुई जिनका सभी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। हमारे एक गुरू भाई नारायण दास जी थे जो चाटीपिंड दरवाजे के बाहर नहर के एक किनारे पर जंगल में कुटिया बनाकर के प्राणायाम व योगध्यान का अभ्यास कर रहे थे। नारायण दास ने देखा कि उनकी कुटिया पर श्री प्रभु जी अकेले आए व कहने लगे, ''अरे बेटा नारायण दास! तुम्हारी खेचरी अधूरी है। हम तुम्हारी खेचरी को पूर्ण कराने आए हैं।'' नारायण दास ने जल्दी में जीभ बाहर निकाल दी। श्री नारायण दास की जिव्हा श्री प्रभु जी के स्पर्श मात्र से एक दम लम्बी बढ़ गई एवं श्री प्रभु जी ने उसको कण्ठ कुहर में प्रवेश करा दिया और नारायण दास को दिव्य मंत्र द्वारा यकायक समाधि की स्थिति प्राप्त हो गई । किन्तु नारायण दास के मन में बड़ा भारी आश्चर्य था कि इतनी तेज धूप में आप अकेले कैसे आए हैं ? श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया,-''नहीं-नहीं, कोई ऐसी बात नहीं। तुम्हारा यह खेंचरी का काम अधूरा था इसलिए हम आ गए थे। अब हम वह शरीर छोड़ कर नेपाल हिमालय को जा रहे हैं।'' यह कहते ही नारायण दास के सामने ही वे अन्तर्धान हो गए। नारायण दास को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। समाधि तो उसकी लग ही गई थी किन्तु श्री प्रभु जी की इस अद्भुत लीला को देख करके और इस प्रकार से अन्तर्धान होने को देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। इसी आश्चर्य से विवश हो करके नारायण दास दुलीचन्द नागपाल की कोठी पर पहुँचे। वहाँ पर जाकर देखा कि हम सभी लोग श्री प्रभु जी के शरीर को संभाले बैठे थे और कीर्तन धूमधाम से चल रहा था। नारायण दास ने अपने साथ बीती हुई इस घटना को सभी एकत्रित गुरू भाई व बहिनों के सामने सुनाया और सभी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ।

दूसरी अद्भुत घटना - एक नौजवान वैष्णव महात्मा श्री प्रभु रामलाल महाराज के चरणारविंद में आते रहते थे और उनके मन में बार-बार यह भावना जागृत होती थी कि वह श्री प्रभु जी से योग दीक्षा प्राप्त कर लें किन्तु वह ऐसा नहीं कर पाए। वह वैरागी भी उसी नहर पर (चाटीपिंड दरवाजे के आगे) पुल के परली पार एक बगीचे में रहते थे। उसने खुली आँखों से देखा कि श्री प्रभु जी आकाश में उसके सामने खड़े हैं। विभिन्न प्रकार से देवी-देवता उन पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। यह दृश्य उस वैरागी महात्मा ने

अपनी खुली आंखों से देखा। इतने में श्री प्रभु जी ने स्वयं बोलकर आकाश में खड़े रहकर ही उस वैरागी से कहा, ''वैरागी! तुम हमारे पास बराबर आते रहे और योग दीक्षा प्राप्त करने की इच्छा करते रहे किन्तु दुविधा में पड़े रहे और तुम दीक्षा प्राप्त नहीं कर सके। अब हम नेपाल को जा रहे हैं, जो तुम प्राप्त करना चाहते थे वह ले लो?'' यह कहकर श्री प्रभु जी ने अपना हाथ उस वैरागी के सिर की ओर बढ़ाया और श्री प्रभु जी के हाथ से तेज की धारा निकल कर उस वैरागी के सिर में प्रवेश कर गई और उसी समय से उसको बड़े–बड़े दिव्य अनुभव होने आरम्भ हो गए। श्री प्रभु जी उस वैरागी पर शक्तिपात करके वहीं अन्तर्धान हो गए। वैरागी के मन में बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और वह यह कि नेपाल को जा रहे हैं इन शब्दों को सुनकर के वह बड़ा ही आश्चर्यचकित हो गया और श्री प्रभु जी के दर्शनार्थ जल्दी–जल्दी दुलीचन्द नागपाल की कोठी पर पहुंचा। वहां पहुंच कर वही दृश्य उसने भी देखा – कि हम लोग श्री प्रभु जी के शरीर को सम्हाले बैठे थे और सभी संकीर्तन कर रहे थे। यह घटना उसने भी सभी के सामने आकर बतलाई और सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ।

तीसरी अद्भुत घटना - अमृतसर से लगभग आठ मील की दूरी पर एक गुरू का बटाला नाम का स्थान है। उस गुरू के बटाले नाम के गांव के बाहर एक बगीचा था। उस बगीचे में पंडित जगन्नाथ बैठे थे जो कौटुम्बिक सम्पर्क से श्री प्रभु जी के भाई लगते थे और बहुत बड़े विद्वान भी थे। उस बगीचे में वह पंडित जी अपने भोजनादि की तैयारी कर रहे थे। इतनी देर में श्री प्रभु जी वहाँ पहुँच गए और दोनों भाईयों ने मिलकर भोजनादि बनाया और खाया। उसके बाद श्री प्रभु जी के उस कौटुम्बिक भाई ने कहा कि, ''भाई, यहाँ तुम कैसे आए हो? तुम्हारे साथ तो हर समय भारी भीड़ बनी रहती है आज तुम अकेले कैसे आ गए हो?'' श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि, ''भाई, हम सब जंजाल को छोड़ आए और नेपाल–धाम को जा रहे हैं।'' उस पंडित ने उत्तर दिया, ''बड़ा अच्छा किया। सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो भी बड़ी ही बात समझो। देखो, तुम इतना विचार करो कि हम तो तुमसे बहुत ऊँचे विद्वान हैं। हम यदि चाहते तो तुमसे लाखों गुणा अधिक चेला–चेली बना डालते किन्तु हमने तो इस कीच में पड़ना ही नहीं चाहा। अब तुम भी छोड़ आए यह अच्छा ही किया। कीच में पैर धंसा के फिर बाद में धोते फिरो, इससे अच्छा यही है कि अपने आप को इस में फँसाओ ही नही।'' ऐसी बातचीत होती रही। यह सब बातचीत हो जाने के बाद श्री प्रभु जी ने अपने कौटुम्बिक भाई से कहा कि, ''भाई! अच्छा– हम तो नेपाल को जा रहे हैं। किन्तु हमारे सत्संगी बच्चे बहुत ही दुःखी होंगे अतः तुम थोड़ी देर के लिए दुलीचन्द नागपाल की कोठी से होकर निकल जाना और हमारे सभी बच्चों से कह देना कि वे सभी लोग धबराएं नही। उनको हम फिर मिलेंगे।'' श्री प्रभु जी के मुखारविंद से फिर मिलने के शब्द निकलने के बाद उस ब्राह्मण के मन में फिर चिड़चिड़ाहट पैदा हो गई और उसने कहा– ''फिर क्या मिलेगा– अभी मिल ले चल मेरे साथ– आठ आने पैसे किराए के लगते हैं वह मैं दे दूँगा। नेपाल–नूपाल जाकर क्या करेगा। इन्हीं से मिल ले या इन सबको साथ लेकर जा। इन के बिना तेरे को चैन कैसे पड़ेगी।'' उसकी बातों को सुनकर के सरल भाव से श्री प्रभु जी हँसते रहे और बोले कि, ''अरे भाई, आना–जाना और मिलना–जुलना किसने है यह तो लोक व्यवहार की बातें हैं तुम उन लोगों को इतनी बात कहते चले जाना। थोड़ा इधर से न निकल कर उधर से निकल जाना – दस बीस पचास कदम का ही तो अन्तर पड़ेगा।'' इतनी बातें कहने के

बाद उस ब्रह्मण ने कहा,– ''अच्छा भाई– हमारी तो कोई हानि नहीं। उधर से निकल जाएंगे और तुम्हारा संदेश उनको सुना देंगे और यह भी कह देंगे कि तुम्हारे गुरूदेव नेपाल को गए हैं।''

यह कहकर वह ब्राह्मण अमृतसर आया और दोपहर को लगभग एक बजे दुलीचन्द नागपाल की कोठी पर पहुँचा। वहाँ आकर उसने भी वही दृश्य देखा कि श्री प्रभु जी के इस प्राण शरीर को हम लोग सम्हाले बैठे हैं और कीर्तन धूमधाम से हो रहा है। उसने श्री प्रभु जी का यह सन्देश हमारे बड़े गुरू भाई श्री मुलखराज जी महाराज को बाहर सड़क पर ही सुना दिया था किन्तु श्री मुलखराज जी महाराज उन्हें जब अन्दर लाये पहले तो उनको आश्चर्य हुआ कि पता नहीं यह कौन है ? इस कोठी में किस की मृत्यु हो गई है। किन्तु श्री मुलखराज जी के बार–बार कहने पर श्री प्रभु जी के मुख के ऊपर से कपड़ा हटाकर जब उनकी आकृति को पहचान लिया तो ब्राह्मण बहुत ही आश्चर्य में पड़ गया और बार–बार कहने लगा कि, ''भाई, मैं तो अब तक इनको अपना कुटुम्बी भाई ही समझता था किन्तु आज मैंने यहां आकर के पूरी तरह पहचान लिया कि यह सचमुच पूर्ण योगीराज हैं। अभी दो घण्टे पहले गुरू के बटाले के बाग में हम दोनों ने रोटी बनाकर खाई और यहां पर यह दृश्य हो रहा है। वस्तुतः यह अलौकिक कार्य है। वह तो नेपाल को चले ही गए। अभी दो घण्टे पहले मुझे गुरू के बटाले में मिले थे और वहाँ हम दोनों ने परस्पर खूब बातचीत की और बैठे रहे। वस्तुतः यह योगिराज हैं। यह उनकी लोक लीला हैं। कितने ही शरीर छोड़ दें और कितने ही नए तत्काल बना लें यह मैंने अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देख लिया।''

१६.१० श्री प्रभु जी के प्राण शरीर की शव यात्रा

श्री मुलखराज जी महाराज ने चारों ओर अपने गुरु भाई बहिनों को तार दिए, टेलीफोन किए। श्री प्रभु जी के इस शरीर को एक दिन एक रात्रि, और दूसरे दिन दोपहर तक वहाँ सम्भाले बैठे रहे। कीर्तन की ध्वनियाँ जारों से चलती रहीं और दूसरे रोज चारों ओर के प्रतिष्ठित गुरु भाई बहिनों के पहुंच जाने के बाद दिव्य विमान बनाकर के श्री प्रभु जी के इस दिव्य प्राण शरीर का संस्कार किया गया।

१६.११ श्री प्रभु जी के आदेश अनुसार प्रधान आचार्य स्वामी श्री मुलखराज जी महाराज द्वारा योग प्रचार

श्री प्रभु जी के लीला अवसान के बाद योग प्रचार की सारी जिम्मेदारी श्री मुलखराज जी महाराज के कंधों पर आ पड़ी और उन्होंने बड़े उत्साह के साथ श्री प्रभु आज्ञा अनुसार इस कार्यभार को संभाला। ई सन् 1941 में स्वामी श्री मुलखराज जी चाँदपुर (यू. पी.) में गये कितनों की असाध्य बीमारियाँ दूर हो गई और उनके शक्ति पात द्वारा कइयों की भावावेश समाधियाँ महीनों तक पहुँची।

आंध्र प्रदेश में श्री नृसिंह मूर्ति जी महाराज ने श्री प्रभु आज्ञा से योग प्रचार किया। वह स्वामी श्री मुलखराज जी महाराज को दक्षिण भारत में ले गये। मद्रास प्रांत के प्रमुख

शहरों में स्वामी जी के योग पर भाषण हुये। लोगों ने स्वामी जी के बहुत बड़े अनुग्रह को प्राप्त किया और कई कई सौ व्यक्तियों की एक साथ शक्तिपात योग दीक्षाएं हुई। कितने ही निराश रोगी उन का कृपा प्रसाद पा कर ठीक हो गये। श्री स्वामी जी का मन हर समय श्री प्रभु जी के दिव्य चरणों में समर्पित रहता था और वह उसी धून में योग प्रचार का कार्य करते रहे।

श्री स्वामी मुलखराज जी महाराज 5 नवम्बर 1960 ई. में योगाभ्यास आश्रम कनखल में शरीर त्याग प्रभु चरणों में समा गये। श्री स्वामी मुलखराज जी महाराज द्वारा गठित ''योगभ्यास आश्रम ट्रस्ट'' ने स्वामी श्री दवीदयाल जी महाराज को योगाभ्यास आश्रमों का प्रधान योगाचार्य बना कर योग–प्रचार की जिम्मेदारी उन को दे दी। उन्हों ने बड़ी लगन के साथ योग प्रचार के कार्य को सम्पन्न किया और हरियाणा, पंजाब, चण्डीगढ़, दिल्ली, गुजरात, राजस्थन, आंध्रप्रदेश आदि में कई स्थानों पर योग प्रचार कार्य के लिए दिव्य योग मन्दिरों को स्थापित किया।

श्री स्वामी देवीदयाल जी महाराज अगस्त 1998 में स्वर्गलोक पधार गये और उन के बाद श्री मुलखराज जी से 1951 में दीक्षत श्री श्यामलाल जी महाराज को प्रधान योगाचार्य नियुक्त किया गया। वह बड़ी लगन और उत्साह के साथ इस जिम्मेदारि को निभा रहे हैं और हजारों दुखीयों की निःशुल्क सेवा कर रहे हैं।

१६.१२ प्रभु रामलाल जी महाराज द्वारा स्थापित 'योग साधन आश्रम ट्रस्ट' ने योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को प्रधान योगाचार्य के पद पर सुशोभित किया।

श्री स्वामी मुलखराज जी महाराज के ई0 सन् 1960 में जोति–जोत समाने के बाद श्री प्रभुजी द्वारा बनाए गए 'योग साधन आश्रम' ट्रस्ट ने योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को 'योग साधन आश्रमों' के प्रधान आचार्य बनाकर योग प्रचार तथा प्रसार की सारी जिम्मेदारियाँ उन को सौंप दी। श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने करण कारण सर्वशक्तिमान श्री प्रभु जी का निमित मात्र बन कर उन कृपामय नाथ की आज्ञानुसार योग का प्रचार तथा प्रसार सारे भारत में बड़े उत्साह और लगन के साथ किया। इन्होंने उत्तर देश, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, चण्डीगढ़, आंध्रप्रदेश, बंगाल, बिहार, जम्मू कश्मीर, मध्यप्रदेश, नेपाल आदि के कई स्थानों पर योग प्रचार के लिए योग सधन आश्रमों तथा श्री सिद्ध गुफा योग प्रचार मंडलों का निर्माण किया और 1960, 1986, 1990 के विश्वयोग सम्मेलन और अखिल भारतीय योग सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में सारे संसार में योग का प्रचार कार्य किया।

प्रधान योगाचार्य योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से लाखों भक्तों को शक्तिपात ध्यान–समाधि का दिव्य दान मिला और उनके तन मन के रोगों का नाश हुआ। 25 जून 1990 ई0 को वे गोलोक पधार गए। उनके ज्योति ज्योत समाजाने के बाद योग साधन आश्रमों तथा श्री सिद्ध गुफा प्रचार मंडलों का निःस्वार्थ सेवा कार्य उनके शिष्यों द्वारा बड़ी लगन से चल रहा है

१६.१३ श्री प्रभु रामलाल जी महाराज के सिद्ध योग परम्परा में गद्दी का विधान वर्जित

श्री प्रभु रामलाल जी महाराज आज भी हिमालय पर विराजमान हैं और सब संस्कारी जीवों को शरण प्रदान कर उन का योग क्षेम वाहन कर रहे हैं इसलिये 'श्री सिद्ध योग परम्परा' में किसी भी प्रकार की गद्दी का विधान नहीं है।

१६.१४ निःस्वार्थ सेवा का स्वरूप

परोपकार के लिए किया गया कोई भी कार्य सेवा है। कोई भी ऐसा कार्य जिस में आप की स्वार्थ वृत्ति नहीं, दूसरों के कल्याण की कामना अधिक है वह सेवा है। ऐसी सेवा के द्वारा सदैव शान्ति मिलेगी, अगर केवल स्वार्थ की ही कामना है तो कुछ दिनों के बाद लड़ाई–झगड़ा आरम्भ हो जायेगा।

इस कारण जब जब कार्य करो उत्साह से करो, यज्ञार्थ करो। उन कार्यों से ''बहुजन हिताय..... बहुजन सुखाय'' भावना की सुगन्ध आये। बहुजन में बैठा हुआ वह एक–बहुरूपों में बैठा हुआ वह अरूपी परमात्मा संतुष्ठ हो और तुम्हारे हृदय में पूर्ण रूप से प्रकट हो जाय, बस इसीलिए कर्म करो।

१६.१५ यज्ञार्थ भावना

क्रिया में बन्धन नहीं होता, क्रिया के भाव में बन्धन और मुक्ति निर्भर है। कर्म में बन्धन और मुक्ति नही, कर्त्ता के भाव में बन्धन और मुक्ति है। कर्त्ता किस भाव से कर्म कर रहा है–राग से कर रहा है ? वासना से प्रेरित हो कर कर्म कर रहा है ? ..... कि परमात्म–स्नेह से कर रहा है ? वासना–तृप्ति के लिए जो कर्म किया जाता है वह कर्त्ता को बाँधता है। वासना–निवृत्ति के लिए जो यज्ञार्थ ''बहुजन हिताय–बहुजन सुखय'' कर्म किये जाते हैं वे कर्त्ता को मुक्त स्वभाव में जगा देते हैं। कर्म में अगर यज्ञबुद्धि आजाए–उदारता आ जाय–स्नेह आ जाए तो वह कर्म कर्त्ता को अपने स्वरूप का भान करा देता है। संकीर्णता छोड़ते हुए, व्यक्तिगत विषय–वासना का लालच छोड़ते हुए जो कर्त्तव्य कर्म किये जाते हैं वे सब यज्ञ हैं।

आप जो भी कार्य करो यज्ञार्थ भवना से करो, ईश्वर से नाता जोड़ने के लिए करो, दूसरो का कल्याण करने की भावना से करो, अपनी वासनाए निवृत करके जीवन को निर्मल बनाने के हेतु से करो। निःस्वार्थ कर्म करने से स्वार्थ विलीन हो जाता है, अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और परमात्मा उस योगी के द्वारा काम करने लग जाता है।

१६.१६ भगत की भावना

शाम आये भी आकर चले भी गये, मन के मंदिर में उन को बिठा न सकीं।
ठिक टिकी बांध कर देखती ही रही, दिल के दुखड़े मैं उन को सुना न सकी।।
मेरी आहों ने तो असर दिखला ही दिया, खींच कर मेरे नटवर को घर ला दिया।
मेरी तकदीर ने साथ पर न दिया, जो मैं नजरों में उन के समा न सकी।। शाम आये....
आये घनश्याम बंसी बजाते हुये, तीर नैनों के तीखे चलाते हुये।
चल दिये मेरे चित्त को चुराते हुये, जाते नटवर को मैं भुला न सकी।। शाम आये.....
मुझ आभागन ने सतकार भी न किया, लाज के मारे प्यार दिखा ना सकी।
कदम आगे बढ़ाती हुई रूक गयी, हाथ चरणों पे उन के लगा न सकी।। शाम आये.....
दिल तड़फता रहा याद आती रही, आहें भरती मैं आंसू वहाती रही।
जो मैं नैनों से नैना मिला न सकी, क्या कँहू मैं किस लिये शरमाती रही।।
मेरे दिल की सखी मेरे दिल में रही, वात इक भी तो मैं खोल कर न कही।
हाय मैं तो कहीं की भी अब न रही, जो मैं नटवर को अपना बना न सकी।।

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

१७ योग योगेश्वर प्रभु राम की स्वहस्तलिखित कथायें

यह कथायें करूणासिन्धु श्री प्रभु जी की निजी कथायें हैं या उन्होंने अन्य महात्माओं के चरित्र लिखे हैं। यह तो वह कृपालु प्रभु ही जाने। कुछ भी हो यह कथायें पूर्ण शिक्षाप्रद व योग सिद्धांतों को प्रकट करने वाली हैं और हम सभी भक्तों के लिये परम आदरणीय कल्याणकारी हैं।

१७.१ एकाग्र सुफला

महाराष्ट्र देश का राजा नरेन्द्र था। एक उसका लड़का केशव नाम का सैर करने को एक शहर में गया। उस शहर में एक क्षत्री रहता था। उसके एक लड़की थी जिसका नाम सुफला था। वह एक महात्मा के पास जाया करती थी। वहाँ केशवराव राजा का कुवँर चला गया तब उसने उस लड़की को अपने ध्यान में लगी हुई देखकर उपहास किया। उस लड़की ने अपने ध्यान से उठ कर कहा कि राजा के कुँवरों को कुछ अक्ल नहीं होती। वजीरों से ये राज्य का काम कराते हैं, नहीं तो इनका राज्य भी न रहे। तब महात्मा ने उस लड़की को बन्द कर दिया और वह लड़की अपने घर चली गई। उस केशवराव ने महात्मा से उस लड़की का पूरा पता ले लिया और अपने पिता से जाकर कहा कि उस लड़की से हमारा ब्याह कर दो। राजा ने वजीर को भेज वहाँ का पूरा पता लगा कर सुफला के पिता को जाकर कहा कि तुम अपनी लड़की की शादी कुँवर केशवराव से कर दो। उसने राजा के भय से शादी कर दी। सुफला को जब पहले खबर लगी तब उसने उस महात्मा से जाकर कहा कि हमसे वह राजा का लड़का विवाह करना चाहता है। तब महात्मा ने कहा अभी सिर्फ तुम्हारे मन की एकाग्रता ही हुई है। तुम्हारे एक दो साधन और हो जाते तो अच्छा था। केशवराव को तुम्हें अपने घर में विवाह करके रखना नहीं है। अच्छा जब तुम्हें कोई कष्ट आ पड़े तो तुम अपना आसन बिछा कर अपने ध्यान में लग जाया करना हम उसी वक्त तुम्हारे पास आ जाया करेंगे और तुमको सब बात समझा दिया करेंगे फिर तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा। तब उसी दिन बारात आ गई और शादी हो गई। तब केशवराव ने मन में सोचा आज उस दिन का बदला लूँ। फिर केशवराव ने उसे डोली में से निकाल अपनी घोड़ी पर चढ़ा कर सुफला को ले गया। सैकड़ो कोसों के ऊपर जाकर एक शहर में एक सराय थी उसमें एक कोठरी लेकर वहाँ उसे छोड़ कर अपने राज्य को चला आया। तब सुफला इधर–उधर अपने पति की राह देखती रही। जब वह न आया तो उसने सोचा अब हमें क्या करना चाहिये। वह कभी बाहर भी न निकली थी। वह अकेली घबराने लगी तभी उसे उस महात्मा की याद आई। वह ध्यान लगा कर बैठ गई। उसी समय उसके गुरु वहाँ आ पहुँचे। गुरु ने कहा–''हे पुत्री! तुम क्यों घबराती हो हम तो तुम्हारे पास हैं। तुम यहाँ का राजा बन कर राज्य भोगोगी। तुम अपना भेष पुरूष का बनालो और रात्रि को दक्षिण दिशा की ओर चली जाना। एक राजा की सेना इस राजा पर चढ़ आवेगी। उस सेना का सेना–पति तुम्हें अलग मिलेगा, उसी वक्त तुम्हें देखते ही वह मर जायेगा। तुम जल्दी से उसकी वरदी उतार अपने शरीर में पहन लेना तब उस सेना को जाकर सँभालना।'' तब सुफला ने कहा कि मैं कैसे सँभाल सकती हूँ मैं तो कुछ नहीं जानती। तब महात्मा ने कहा हम सब कुछ समझा देंगे। इतना कह कर वह तो चल दिये तब वह भी उठ खड़ी हुई। तब उसने देखा तो सराय में एक बूढ़ी स्त्री बैठी हुई थी।

सुफला ने उस बूढ़ी स्त्री से कहा कि हमें कुछ सिले सिलाये कपड़े तुम लादोगी। उसने कहा हाँ लादूँगी। तब सुफला ने एक जेवर उसे उतार कर दे दिया और कहा इसे बेच

कर पुरुषों के पहिनने के कपड़ें हमें लादे। तब वह बुढ़िया वहाँ से चल दी। शहर में जाकर वह सब कपड़े और कुछ खाने को ले आई। तब उसने उस बुढ़िया को पाँच रूपया देकर भेज दिया। जब रात्रि हुई तब सुफला ने कलीरे उत्तार पुरुषों के वस्त्र पहन, दक्षिण दिशा की तरफ चल पड़ी। जब कुछ दूर गई तो क्या देखती है कि वह सेना चली आ रही है तब सेना को देख कर कुछ पिछे हट गई। तब वह सेनापति उसके समीप आकर गिर गया। सुफला ने देखा कि इसकी शक्ल और हमारी शकल एक सी है और उसने देखा यह तो मरा पड़ा हुआ है तब उसकी वरदी उतार सुफला ने आप पहन ली और उस सेना में चली गई। उन लोगों को भ्रम ही न हुआ। तब प्रातःकाल होते ही सेना को हुक्म दे दिया कि चलो। उस शहर के मील भर दूर डेरा लगा दिया। वहाँ सुफला के गुरु ने राजा को जाकर स्वप्न में कहा तुम्हारे ऊपर अमुक राजा की सेना चढ़ कर आई है। तुम उसके सेनापति को बड़ी नम्रता से ले आओ। वह तुम्हारा उस राजा से मान मर्दन नहीं होने देगा बल्कि तुम उस राजा को जीत लोगे और तुम्हारे सब संकट दूर कर देगा। तब महात्मा चल दिये और उधर से उस सेनापति ने अपना पत्र लिख उस को भेज दिया। उस पत्र में लिखा था कि आठ पहर के अन्दर तुम या तो राज्य छोड़ कर चले जाओ नहीं तो हमारे साथ लड़ो, हम तुम्हारे शहर के बाहर खड़े हैं। उसी समय मंत्री ने राजा के पास आकर वह पत्र दिखलाया। राजा ने वह पत्र पढ़कर मंत्री को अपना रात्रि का स्वप्न सुनाया। तब मंत्री से राजा ने पूछा कि अब क्या करना चाहिये। वजीर ने कहा हमारे पास बहुत सी फौजें हैं हम दूसरे से क्यों दब सकते हैं।

तब राजा ने कहा कि इस सेनापति को ले लेना चाहिये नहीं तो यह अकेला हमें जीत लेगा। तब वजीर ने कहा हम ऐसा नहीं कहते। तब राजा ने कहा तुम जाओ साथ हम चलते हैं और उस सेनापति को नम्रता से ले आते हैं तब वह राजा, वजीर और सभासदस्य संग राजा के चले। तब वहाँ से सेनापति के पास चले गये। और आकर कहा कि हम आपसे बराबरी नहीं कर सकते। तुम राज्य में चलो और जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। तब सेनापति का जो वजीर था उसने सेनापति को कहा चलो फिर क्या है। वह राजा उस सेना को लेकर अपने राज्य में चला गया। तब सुफला ने ध्यान लगा कर स्व गुरु को याद किया तब गुरु ने आकर बतलाया कि मैंने राजा को समझा दिया है तुम यहाँ इससे सन्धि कर लो। तब उस सुफला ने कहा अब मुझे और क्या करना है तब गुरु ने कहा तुम्हारा यह वेतन लगा देगा, तो आनन्द से रहना। जब उसकी फिर से सेना आयेगी तो तुम्हें उसके साथ लड़ने को भेजेगा। जब तुम जाओगे तुम्हारी सेना पहले पीछे हट जावेगी फिर तुम आगे बढ़ना। जब वह सेनापति तुम्हें देखेगा तो उसकी मति और शक्ति अमुक मार्ग से खेंच लेना। तब अपनी सेना को आगे बढ़ा कर उस सेनापति को बाँध लेना। फौजें लाकर कारागार में डाल देना। इतना कह गुरु अर्न्तध्यान हो गये। उधर से राजा का मंत्री लेने आ गया। तब वहाँ जाकर वेतन सुफला ने ठहरा लिया और वह उस राज्य में रहने लगी। राजा ने उसे उसी सेना के ऊपर तैनात कर दिया। तब उसको अलग मकान, अश्व, दास आदि दे दिये। सुफला आनन्द से रहने लगी। उधर उस राजा ने सुना कि मेरी सेना उस राजा से मिली है तब उसने और सेना भेज दी लड़ने के वास्ते। यहाँ राजा ने अपना वजीर और अपनी सेना का सेनापति तैयार कर लिया। जब वह सेना आ गई तब राजा ने जो सेना तैयार करके रक्खी थी वह भेज दी। वह सेना तो लड़ने को तैयार हो गई–संग्राम आरम्भ हो गया। यहाँ सुफला ने अपनी सेना सजाकर राजा के पास चली गई राजा के पास जाकर कहा, जो आपने सेना भेजी है वह हार खाने लगी हुई है वह उससे नहीं जीतेगी तब राजा ने कहा हमारे साथ मंत्री है। तब सुफला ने कहा पहले उसे ही बाँध लेंगे फिर तुम्हारे सेनापति को बाँध कर सेना को मारेंगे, सेना पीछे भाग जायेगी। तब राजा ने

कहा वजीर और सेनापति बंध गये हैं यह तुम्हें कैसे पता लगा है। तब सुफला ने कहा कि मैं उस सेनापति को अच्छी तरह से जानता हूँ। वह तंत्र विषय में प्रवीण है। तब उस राजा ने कहा फिर क्या करना चाहिये तब सुफला ने कहा तुम हमारे साथ चलो। तुम दूर से देखते रहना हम उनको परास्त कर अपने मंत्री आदि को साथ लेकर उन्हें पीछे भेज देंगे और हम उस सेनापति को बाँधकर उसकी सेना भी साथ ले आयेंगे। तब राजा उस सेनापति के साथ चल दिया। जब वह शहर के कुछ बाहर निकले तब इस राजा की सेना पीछे को भागती हुई देखी। तब राजा से सुफला ने कहा वह देखो तुम्हारी सेना पीछे को लौटती आती है तब राजा ने कहा शीघ्र चल कर अपनी सेना को रोकें। तब सुफला अपनी सेना ले शीघ्रता से चली। उसकी सेना आगे बढ़ती आती थी उसे देखकर सुफला ने स्व गुरु का बतलाया हुआ कर्म करके उस सेनापति की बल, बुद्धि तेज नष्ट कर दिया तब सुफला की सेना ने उसकी सेना को परास्त कर दिया। सुफला ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि इस सेना को चारो ओर से घेर लो। तब सुफला की सेना ने उसे चारों ओर से घेर लिया। तब कई क्षत्री ढालें उठा वर्दियाँ उतार कर, कहने लगे हमें न मारो। हम तो ढालें बेचने वाले व्यापारी हैं। कई क्षत्री कपड़े जला जला कर विभूत रमा कर कहने लगे हमें न मारो, हम तो साधू हैं। तब सुफला ने उस सेनापति को बाँध लिया और सब सेना के हथियार छीन कर उन्हें बाँधकर सभा में ले आई। तब राजा ने अपना मंत्री और सेनापति छुड़ा लिया। उस राजा का सेनापति व सेना कारागार में भेज दिये। तब राजा ने प्रसन्न होकर सुफला का दो गुना वेतन कर दिया। जब उस राजा को खबर हुई तब उसने कहा कि वह दोनों सेनापति हमारे काम करने वाले थे एक तो उधर चला गया और एक बँध गया। इतना कहकर रोने लगा तब उसने सोचा पीछे हठने का काम नही हैं तब उसने अपनी सेना तैयार कर संग में बंगाल की वरिआ नाम की स्त्री को संग ले लिया जो तंत्र शास्त्र में अत्यंत प्रवीण थी। तब सेना लेकर चला। सुफला ने अपने ध्यान में यह सब बातें देख लीं और राजा को जाकर सब बातें कह दी। राजा ने सब तैयारियँ कर लीं फिर सभा लगा कर पान का बीड़ा धर दिया और कह दिया कि क्या कोई शूर हमारी सेना में है जो उस राजा को जीते ? वह इस बीड़े को उठा ले। तब सुफला बीड़ा उठाने को चली तो राजा ने उसको बन्द कर दिया और सब शूर सिर नीचा करके बैठ रहे। जब राजा ने बहुत कहा तब उसी सेनापति ने बीड़ा उठाकर खा लिया जो पहले बाँधा गया था। तब तक उस राजा का दूत पत्र लेकर आ गया। उस पत्र में लिखा था हमारी सेना व सेनापति और दस लाख रूपया लेकर आजा हमारी शरण में, नहीं आये तो तुम और तुम्हारा राज्य सब मलिया मेट कर दूँगा। वजीर देखकर काँप गया और राजा को सुना दिया। राजा ने देखा कि वजीर काँपता है तब सुफला की तरफ देखा। तब सुफला ने कहा जब तक हमारे हाथ में तलवार है तब तक तुम्हें क्या परवाह है हमें अकेले को आप भेज दीजिये, अभी मैं उस राजा को बाँध कर ले आता हूँ। तब राजा के मन मैं धैर्य आ गया और उस पत्र का जबाब सुफला ने लिखवा दिया कि बीस लक्ष रूपया भेंट लेकर नँगे पाँव, हजार हाथी, दो घन्टे के भीतर दे देवें यहाँ आकर नहीं तो बिन्ध में माँस फेंला दूँगा। एक जीता न जाने दूँगा। यह लिखकर उस दूत को वह पत्र दे दिया। तब दो घन्टे इन्तजार किया उधर से न दूत आया न कोई सेना आई तब राजा ने सेनापति को सेना देकर भेज दिया। तब दोनों और की सेना का संग्राम होने लगा उस राजा की सेनाओं के पाँव निकल गये तब राजा ने बरिआ को इशारा किया। बरिआ ने उस सेना व सेनापति के हाथ मंत्रों से बाँध दिये। तब उस राजा ने सेना को बाँध कारागार में बन्द कर दिया। कुछ बची हुई सेना पीछे लौट आई इतने में रात्रि हो गई। उस सेना ने आकर राजा से कहा कि पहले हमारी सेना के हाथ पाँव बंध

गये। तब उस राजा ने सेना को मार कर सेनापति को बाँध लिया तब राजा सुन कर काँप उठा। इतने में सुफला आ गई उसने सब बातें सुनी और कहा हे राजन् क्यों घबराते हो मैं प्रातःकाल उनका तंत्र और ताकत सब नष्ट करके राजा को बाँधकर हाजिर कर दूँगा। तुम वेरवटके रहो। इतना कहकर राजा को धैर्य देकर सुफला अपने मकानों में आ गई तब आकर खा पीकर निश्चिन्त होकर अर्द्ध रात्रि को ध्यान लगा कर स्वगुरू का स्मरण किया तब गुरु ने उसी क्षण में आकर दर्शन दिया और कहा हे पुत्री कहो क्या बात है तब सुफला बोली हे प्रभो! अब वह राजा स्वयं आया है और उसके संग एक बुढ़िया जो तंत्र शास्त्र में प्रवीण है। राजा भी लड़ता है और बुढ़िया भी अन्धेर मारती है। तब गुरु ने कहा बरिआ तंत्रनी की शक्ति और उस राजा की शक्ति हम स्वयं खेंच लेते हैं। तुम वही कर्म करके जो पहले किया था उस सेना को बाँध लाना तुम्हारी सेना की हानि नही होगी। गुरु तो पधार गये और सुफला सो गई जब प्रातःकाल हुआ तो वह उठी इतने में ही राजा का दूत लेने के वास्ते आ गया। सुफला ने उस दूत से कहा हम अभी निवृत होकर आते हैं। तब सुफला नित्य कर्म करके राजा के पास गई। तब राजा को समझाकर, अपनी सेना को लेकर संग्राम भूमि को गई। उस राजा को खबर हो गई तब वह भी अपनी सेना लेकर चला। सुफला ने जो गुरु ने कर्म कहा था वह करके संग्राम आरम्भ कर दिया। उसकी सेना भाग गई तब बरिआ को राजा ने हुक्म दिया। बरिआ ने भी अनेक मन्त्र चलाये वह निष्फल हो गये। तब सुफला ने राजा व बरिआ को बाँध लिया उसकी सेना भी बाँध ली। सबको बाँध राजा के सामने ले आई। राजा देखकर अति प्रसन्न हुये और उस राजा से कर ठहरा कर उस राजा को छोड़ दिया। तब एक दिन राजा ने सोचा हम अपनी लड़की इस सेनापति को विवाह दें। रानी ने भी यह बात मान ली। अब उस सेनापति से अपनी लड़की का विवाह कर दिया और आधा राज्य उसको दे दिया। देकर अलग कर दिया। तब सुफला ने रास्ते पर किवाड़ लगवा दिये। दो-दो तीन-तीन मील पर तारें लगवा दी ताकि मुसाफिर इन्हीं किवाड़ों के रास्ते जाया करें। दो नौकर उसके ऊपर रख दिये और वहाँ ही अपने रहने के लिये मकान बनवा लिये फिर हुक्म दे दिया कि कोई मुसाफिर हमारे आये बिना नहीं जाने पाये। प्रजा तो उस से इतनी डरती है जितनी राजा से नहीं। तब वहाँ फौज का पहरा लगवा दिया। रात भर के मुसाफिर वहाँ इकट्ठे होते रहा करें। प्रातः काल जब सुफला जाये तो एक एक को छोड़ा करें। तब एक दिन उसका पति आपति मैं आकर सौदा करने के वास्ते वहाँ आ निकला क्योंकि उसका राज्य एक राजा ने छीन लिया था। जब सुफला ने देखा कि यह मेरा पति है तब सुफला ने दो फौजियों के उसे सुर्पुद करके और आदमी निकाल दियें तब सुफला अपने पति को लेकर अपने मकान को आ गई। आकर उसे बहुत भय दिखलाया। तब उसने पूछा हमें किस कुसूर पर पकड़ा जाता है। तब उसने कहा तुम अपनी स्त्री सुफला को किस कुसूर पर यहाँ छोड़ गये थे। तब उस केशवराव ने कहा उसे तो हम कई वर्ष यहाँ आकर अन्वेषण करते रहे उसी दिन से हमारा राज्य भी नष्ट हो गया। इतना कह कर हाय प्राण प्यारी सुफले, हाय प्राण प्यारी सुफले! ऐसा कह कर रोने लगा और कहने लगा इसके ऐवज पर हमें शूली पर भी चढ़ाया जावे तो भी दण्ड थोड़ा है। तब सुफला के मन में दया आ गई और उसे पकड़ गले लगा लिया। तब केशवराव ने उसे पहचान लिया और कहने लगा, हे सुफले तू धन्य है और धन्य तुम्हारे माता पिता। तब सुफला ने पीछे की सब बातें केशवराव को सुना दी और हम और यह तुम्हारी दो स्त्री हैं यह हैं। तब सुफला ने साथ ले जा कर उसे अपनी कुल सेना को और राजा को बुला कर अपने राज्य सिंहासन पर केशवराव को राजतिलक दे दिया और सेना के सामने आप दूसरे देश को चली। जब रात्रि हुई तब चुपके वहाँ ही आ गई और रानी बन कर रहने लगी।

१७.२ तस्कर

एक महात्मा एक तस्कर को कहने लगे कि हमें भूख लगी है कुछ खिला। उस तस्कर ने कुछ लाकर खिला दिया। जब महात्मा भोजन खा चुके तो तस्कर हँसने लगा। महात्मा कहने लगे क्या कारण है ? उसने कहा कि सत्य बोलने की हमें आदत पड़ी हुई है। महात्मा ने कहा कि सत्य सत्य कहो यह भोजन कहाँ से लाकर दिया है उसने कहा मैं तस्कर हूँ यह तस्करी का रूपया है। मैंने आज दो रूपया मद्य पीने के वास्ते रक्खे थे, में अपनी वैश्या से अभी छीन कर लाया था वह मैंने आप को खिलो दिये। मैं इस वास्ते हँसने लगा कि अब तुम भी इस कर्म का फल भोगोगे। महात्मा ने देखा इसका और हमारा कोई संस्कार है इस वास्ते इसको साथ लेलें। दूसरे यह सत्य बोलता है यह इसमें गुण है। महात्मा ने कहा इस वक्त तुम्हारे सुहृदय कौन है उसने कहा एक वेश्या और दूसरा कोई नहीं। महात्मा ने कहा वह वेश्या तो तेरी शत्रू है। तस्कर बोला ऐसा आप फिर कभी न कहें। उसने तो हमारी तस्वीर लिखवाई हुई है। जब तक मैं उसके पास रहता हूँ तब तक वह मुझे ऐसी प्रीत करती है कि वैसी पृथ्वी पर कोई स्त्री नहीं होगी। जब मैं कहीं चला जाता हूँ तो मेरी मूर्ति को गले लगाये रोती रहती है। महात्मा ने कहा तुम आज अपनी वेश्या को कह देना कि हम तस्करी करने को जाते है जो कुछ शस्त्र तुम साथ ले जाते हो वह साथ ले आना फिर हम तुम्हें दिखा देगें कि वह तुम्हारी है या किसी और की है। तस्कर ने वैसा ही किया महात्मा ने उससे कहा कि जाओ आज तुम को कोई नहीं देखेंगे। महात्मा ने कहा तुम किसी से बोलना नहीं और न किसी को कुछ कहना होगा। तुम चुपके उसको देखना और बातें सुनते रहना इतना कह कर महात्मा ने उसे भेज दिया जब वह मकान में गया तो वेश्या एक और आदमी को साथ लेकर आ रही थी। वह तस्कर खड़ा रहा। जब वह मकान खोल कर भीतर गये तो तस्कर भी साथ चला गया। वह दूसरे आदमी को तस्कर से भी ज्यादा प्रेम करने लगी। उस आदमी ने कहा तू हमारी नहीं है तू तस्कर की बनी रहती है। उसने कहा जब वह कहीं जाता है तो फौरन तुम्हारे पास आ जाती हूँ। इतना मुझे आपसे प्रेम है इतना तस्कर से नहीं है। उसने कहा फिर उसे मरवाती क्यों नहीं है, अब के जब वह आवे तो उसे मरवा दो। तुम ऐसे ही कहती रहती हो पर उसे मरवाती क्यों नही हो। वेश्या ने कसम खाली कल रात को जब वह आवेगा तब मैं उसे सुलाकर तुम्हें बुलाऊँगी। हम तुम दोनों उसे मार देंगे। उस आदमी ने देखा तो उस तस्कर की तस्वीर नजर आई। उसने कहा अच्छा यह उठाला। वेश्या तस्वीर उठा लाई। उसने कहा अच्छा इस तस्वीर की नाक काट दो। वेश्या ने कहा नाक काहे काटूँ उसका सिर काटूँगी। उसने तलवार से उसका सिर उतार दिया तब वेश्या उससे प्रीत करने लगी। उस तस्कर ने वेश्या का यह हाल देख कर महात्मा के पास आकर सम्पूर्ण हाल कह दिया। महात्मा ने कहा अब जैसी तुम्हारी इच्छा हो सो करो। उसने कहा कि आज से मैं आपका सेवक हुआ मुझे आप शिष्य बना लीजिये। महाराज ने कहा हम ऐसा काम नही करते तस्कर को शिष्य कौन बनाता है। उस ने कहा मैंने आज से तस्करी करना छोड़ दिया। इतना कहकर चरण पकड़ लिये। महात्मा उसे साथ लेकर अपने स्थान को चले। जबसे वहाँ आ कर रहने लगे तब लोगों ने तस्कर से पूछा तुम कौन हो। तस्कर ने कहा मैं तस्कर था अब इनका शिष्य बन गया हूँ। अब गाँव में यह हल्ला फैल गया कि बाबा ने चोर को चेला बना लिया है न जाने क्या होगा। अब तस्कर ने देखा हमारे गुरु को कुछ आय तो है नहीं अब यहाँ का गुजारा कैसे चलेगा। इनको पीने को दूध भी नहीं मिलता। इतना सोच कर वह बाहर निकला तो पाँच सात भैंसे एक लड़का चराने को लिये जाता था। तस्कर ने उस लड़के को मार पीट कर भगा दिया और भैंसों को अपने कुटिया पर बाँध लिया। उस लड़के ने गाँव

में जाकर पुकारा कि चोर चेला भैंसे छीन ले गया। गाँव में लोग ईकट्ठे होकर महात्मा के पास आये और आकर उन्होंने कहा महाराज आपका चोर चेला हमारी भैंसे छीन कर ले आया है। उन्होंने कहा तुम्हारी भैंसे कैसी हैं। गाँव वालों ने कहा हमारी भैंसे काले रँग की सींगों में कुन्डल पड़े हुये थे। पाँच भैंसे थी। महात्मा ने उनसे विपरीत कर दिया और कहा जाकर अपनी भैंसे पहचान कर ले जाओ उस कोठरी में बँधी हैं। जब लोगों ने कोठरी में जाकर देखा तो वह भैंसे नहीं थी देखकर कहने लगे यह हमारी भैंसे नही है। महात्मा ने कहा यह तो सफेद हैं और सींग इनके गले में पड़े हुये है। उन्होंने महात्मा से अपराध के क्षमा माँगी फिर वे अपने घर को चले गये। एक दिन वह चोर चेला भिक्षा करने को गया उसने देखा एक छोटी लड़की आभूषणों से भरी हुई है, उसे उठा कर झोली में डाल कर ले चला। गाँव के लोग पीछे हो लिये। चोर चेला ने उस लड़की को झोली में से निकाल एक कोठरी में बन्द कर महात्मा के पास आ गया। अब गाँव वाले लागों ने महात्मा के पास आकर कहा कि आपका चोर चेला हमारी लड़की आभूषणों से भरी हुई उठा लाया है। महात्मा ने कहा हमारे स्थान में कोई लड़की नहीं आई। एक छोटा सा सुन्दर अवधूत हमारी उस कोठरी में है देखलो वह शायद आपकी लड़की न हो। उन्होंने उस कोठरी में जाकर देखा तो अति सुन्दर तीन-चार वर्ष की उम्र का लड़का सिर पर सुनहरा बाल व भभूती रमाई हुई पद्मासन लगाये बैठा था। उनको देख सब लोगों ने हाथ जोड़ वन्दना की। तब फिर महात्मा से अपराध क्षमा कराने लगे महात्मा ने जबाव दिया कि तुमने हमारा क्या अपराध किया है जिस पर क्षमा करें। जाओ आनन्द से रहो। एक दिन वह तस्कर चेला गाँव फिर भिक्षा को गया तो जाकर कहने लगा जो एक रोटी दे उसके घर एक लड़का, जो दो रोटी दे, उसके दो लड़का अर्थात् जो जितनी रोटी दे उसके उतने ही लड़के होंगे। एक क्षत्री अति बूढ़ा था उसके घर में सन्तान नहीं थी उसने छः रोटी दे दीं उसकी बूढ़ी स्त्री को गर्भ हो गया छः लड़के इकट्ठे ही नौ माँस के बाद हुये। एक दिन वह चोर चेला भिक्षा को एक गाँव में गया। उस घर वालों ने राख उठाकर दे दी। कि हमारे घर में राख ही है उसने कहा अच्छा राख ही हो जावेगी। जब वह वहाँ से चला उसके घर में राख ही राख भर गई इतनी बढ़ी कि उस घर से निकल निकल कर लोगों को तंग करने लगी। गाँव वाले लोग महात्मा के पास आये और आकर कहने लगे कि महाराज हमारा अपराध क्षमा कीजिये और इस राख को बन्द कर दीजिये। महात्मा ने चोर चेला को कहा जाकर वहाँ से एक मुट्ठी राख लाकर हमारी धूनी में गिरा दे। चेला ने वैसा ही किया। वह राख नष्ट हो गई और आनन्द से रहने लगे।

१७.३ कुबुद्ध

मध्य देश में चन्द्रपुर एक शहर था वहाँ के राजा का नाम महेन्द्र पाल था, दैवयोग से उसका शरीर छूट गया। उसके जो वजीर आदि थे उन्होंने विचार किया कि राजा कोई शूरवीर होना चाहिये और प्रजा को पुत्र की तरह पालने वाला होना चाहिये उनके राज्य में गरीबी थी। वहाँ बड़ा भारी जंगल था उधर उसके रास्ते में बड़ा भारी भयंकर शेर रहता था। उसने गंगा जी का रास्ता बन्द कर दिया था। उनकी यह शर्त थी कि जो इस शेर को मार दे उसको हम राज्य दे देगें। यह उन लोगों ने निश्चय कर लिया था। कुबुद्ध नाम का क्षत्री था। उसके पिता का नाम रामभरोसे था। कुबुद्ध की छोटी सी अवस्था में रामभरोसे का स्वर्गवास हो गया था। स्त्री पहले ही मर चुकी थी। कुबुद्ध दो वर्ष का था कुसंगति के कारण उसके आचार विचार ठीक न रहे।

जब वह बड़ा हो गया तो एक महात्मा अस्तीक ऋषिराज चन्द्रपुर में आगये। इधर

कुबुद्ध ने देखा तो कुबुद्ध के मन में आई कि उसकी छेड़ छाड़ करें। तो महात्मा को उसने गाली दी महात्मा चुपके बैठे रहे फिर कुबुद्ध ने देखा कि ऋषि कुछ बोला नहीं तो कुबुद्ध ने लात मारी ऋषि बोले जा तू राजा होगा। लोग कुबुद्ध को कहने लगे कि तू बड़ा भाग्यशाली है यह बड़े सिद्ध ऋषि हैं इनका कहना व्यर्थ नहीं जाता अब तू राजा हो जायगा। कुबुद्ध ने क्या काम किया, मद्य पी हुई थी शस्त्र ले गंगा किनारे चल पड़ा। महात्मा की कृपा से शेर आगे ही मरा पड़ा था उसका सिर उतार कर राज सभा में ले जाकर रख दिया। मन्त्री आदि सब चकित हुये उन्होंने कहा हमें दिखाना कहाँ है शेर। साथ ले जा के मरा हुआ शेर दिखला दिया। मन्त्री आदि ने आकर राजतिलक कर दिया। अब राजा कुबुद्ध अत्याचार करने लगा। अब उस देश में अकाल पड़ गया प्रजा बड़ी दुःखी हो गयी। प्रजा के लोग अस्तीक ऋषि के पास गये। जाकर बहुत विनती की तो ऋषि जी ने कहा जाओ अब यह बातें नहीं रहेंगी। इतना कहकर लोगों को संतोष देकर भेज दिया। जब रात्रि हुई अस्तीक ऋषि ने सोचा यह राजा समझाये नहीं समझेगा तो ऋषि ने रात्रि को जाकर खाट ऊपर सोये कुबुद्ध को कठिन दंड दिया। कुबुद्ध समझ गया कि वही ऋषि है। जिन्होंने मुझे राज्य दिया था। प्रातः काल उठ कर कुबुद्ध ऋषि के स्थान पर चले गये और जाकर विनय पूर्वक प्रार्थना की कि हे महाराज क्षमा करो। ऋषि बोले जब तक तुम अत्याचार नहीं छोड़ोगे तब तक तुम्हारी यही हालत रहेगी। कुबुद्ध ने ऋषि के आश्रम में क्षेत्र लगवा दिये और कुबुद्ध ने स्थानों पर क्षेत्र, वेद-पाठ और हवन आरम्भ कर दिये। योगिराज अस्तीक की कृपा से वर्षा हो गई, अकाल न रहा। जब योगिराज ने देखा कि कुबुद्ध अब श्रेष्ठ आचारी ठीक हो गया है तो ग्राम के लोगों को बुलाकर पूछा, कहो अब राजा कैसा है ? उन लोगों ने कहा महाराज आगे तो वैश्या और राजा के यहाँ लोग रोते हुए जाते देखते थे अब ब्राह्मण प्रसन्न हुए निकलते हैं। कोई अत्याचार नहीं करता, न अकाल ही रहा और न नौकर ही किसी को तंग करते हैं। अब आपकी कृपा है, हम लोग सुख से सोते हैं। महात्मा सुनकर चुप रहे। अब राजा को देखने लगे। एक दिन आकर राजा से महात्मा ने कहा तुम आँखे बंद करो जब राजा ने आँखें बंद की तो क्या देखा जो पहला राजा मरा हुआ था वह दिखाई पड़ा तो उसे सर्प और गिलिजें खा रहीं थीं, वह हाय हाय कर रहा था, वह आधा खाया हुआ था, आधा अभी बाकी रहा। इसी तरह एक दुसरे राजा को यमदूत तेल के कहाड़ों में डालते थे नीचे आग जल रही थी ऐसा भयंकर दण्ड देख राजा घबड़ा गया। अब आँख खोली तो महात्मा के चरणों में गिर पड़ा। और कहने लगा कि महाराज राजाओं का तो यह हाल होता है मैं इस वास्ते यह राज्य नहीं करता। आप कृपा करके मुझे फकीरी दे दीजिये। महात्मा ने समझा कर कहा तू राज्य कर, तुम्हें राज्य में भी साधन हो सकता है। इतना कह महात्मा ने कहा अब तुम्हारा नाम कुबुद्ध नही रहा। अब तुम्हारा नाम सुबुद्ध हो गया है। राजा नहीं माने। उस दिन से लंगर से तो भोजन खाता रहा और महात्मा के पास ही हर वक्त रहने लगा। तो महात्मा उस को साधन कराने लग गये। राज्य तो वजीर आदि ने सम्भाल ही रक्खा था। राजा नित्य अपने साधन में लगे रहा करें। महात्मा तो कहीं चले गये राजा वैसे ही कई-कई दिन श्वास चढ़ाकर बैठा रहा करे। एक बड़ा धनी वहाँ दूसरे राज्य का रहता था उसने सोचा यह राजा हर वक्त चुपसे भीतर घुसा रहता है इस वास्ते हम अपने राजा को बुला लें। वह यह राज्य लेले तो हमारा कल्याण होगा। इसने एक आदमी को चिट्ठी लिखकर दी और कहा कि तुम वहाँ जाओ। इधर राजा योगबल से सब हाल जान गये। अभी वह नौकर जानें नहीं पाया था इतने में राजा ने उसे बुला लिया। राजा ने कहा तुम यह क्या उपद्रव करने लगे हो। क्या तू यह समझता है कि यह राज्य नहीं सँभालता हर वक्त विषयों में ही लगा रहता है।

अच्छा तुम ऐसा करो जो तुम्हारे राजा का किला है वह तुमने देखा हुआ है उसका नक्शा हमारे सामने लिखो। जब उस ने नक्शा लिख दिया राजा ने नक्शा ले लिया और उसको कह दिया कि आज रात्रि को तुम्हारे राजा के किले की पश्चिम की तरफ की दीवार मिट जायेगी। तब राजा ने रात्रि को योगबल से किले की दीवार गिरा दी। तब उसने कहा कि खबर मँगाओं किसने गिराई, कब गिरी, और कैसे गिरी। उधर तो आदमी गया इधर राजा ने उसको कह दिया कि तुम लिख लो मैंने आज रात्रि को उस किले की दीवार गिरानी है। इतना कह कर उसे भेज दिया। धनी अपने घर चला गया। जब नौकर उधर से चिट्ठी का जबाब लेकर आया तो उस चिट्ठी में वही दिन, वही वक्त पर दीवार अचानक गिर गई। यह चिट्ठी में लिखा हुआ देख धनी राजा के चरणों में गिर पड़ा। राजा ने कहा तुमने तो लाखों आदमी ऐसे ही मरवा दिये थें हमें तो फौजें और धनुष वाण की भी जरूरत नहीं। वह यह हाल देख व बातें सुन हैरान हो गया और कहने लगा महाराज आप कौन हैं यह मनुष्यों का काम नहीं यह तो देवताओं का काम है। राजा बोला मैं देवता नहीं हूँ। जो महात्मा उत्तर की तरफ बगीचे में कुछ दिन रहे थे मैं उनके चरणों का सेवक हूँ। उस धनी ने कहा कि महाराज मुझ पर भी कृपा करोगे। राजा ने कहा कि योग की तो स्त्रियाँ भी अधिकारी हैं तुम तो पुरूष हो। वह धनिक राजा की सेवा करने लगा। राजा ने अधिकारी जान उसे योग साधन कराने लगे। आप भी योग करते रहे और राज्य भी संभालते रहे। एक सेठ के घर में चोरी हो गई, चार वर्ष व्यतीत हो गये। परन्तु पता न लगा। मंत्री आदि ने अत्यन्त प्रयत्न किये तस्करों का पता न लगा। तो राजा के सामने आकर वह सेठ रोने लगा कि हे महाराज आपके राज्य में हम बड़ा सुख पाके रहे परन्तु चार वर्ष व्यतीत हो गये मेरे घर में तस्करों ने चोरी की आज दिन तक कोई पता नहीं लगा। आप जैसे योगी राजा के होते हुये हम आपके राज्य में दुख पाने लगे। आप मुझे दास जान कर कृपा करो। राजा ने कहा मंत्री को बुलाओ जब मंत्री आया तो मंत्री ने प्रणाम करके कहा महाराज क्या आज्ञा है राजा ने कहा पश्चिम में जो देवता का मंदिर है उसके पीछे रात्रि को तस्कर आया करते हैं तुम फौंज साथ लेकर जाओ उन्हें पकड़ लाओ मंत्री जाकर उनको पकड़ लाया। और दंड दिया तब मंत्री ने राजा के सामने पूछा। तब तस्करों ने कहा ये मंत्री हमें पिछले विरोध करके पकड़ लाया है आप निर्दोषों पर दया करें। राजा ने कहा तुमने जिस दिन चोरी की थी तुम तीन आदमी थे पहले तुम दस आदमी थे। सात तो हमारे डर से न आगे बढ़े तुमने आगे बढ़कर कुये में से हथियार निकाल कर चले फिर तुमने चोरी कर मंदिर के पीछे बड़ वृक्ष के नीचे एक सन्दूक में धर कर गाड़ दिया फिर तुम निर्दोष बनते हो।

राजा ने मंत्री को हुक्म दिया इन तीनों के हाथ कटवा दो। मंत्री ने जल्लादों को बुला कर हुक्म दे दिया कि इन तीनों के हाथ काट दो। इन तस्करों को जल्लाद ले गये। मंत्री ने पूछा कि आप तो योगी हो इतना कड़ा दंड क्यों दे दिया। राजा ने कहा पहले जन्म में इन्होंने धेनु का घात किया था उसके बदले में इन तीनों के हाथ कट गये। एक दिन ब्राह्मण की लड़की शूद्रों को दिला दी थी क्योंकि वजीर ने समझ लिया था कि आगे ही यह व्यभिचारणी है। जब वह शूद्र घर में ले जा रहे थे तो वह बहुत विलाप करने लगी। राजा समाधिस्थ देख रहे थे। उन्होंने उसी वक्त नौकरों को भेज रास्ते में से लौटा लिया। जब वह शूद्र और लड़की सामने आये तो राजा ने मंत्री और ब्राह्मणों को बुला लिया। शूद्रों को पूछा तुम इसको क्यों ले जा रहे थे उसने कहा कि यह मेरी स्त्री है क्योंकि एक वर्ष हो गया यह हमारे आया जाया करती थी। अब आपके मंत्री ने मुझे दे दी। लड़की बहुत चिल्लाने लगी। राजा ने लड़की से पूछा क्या बात है लड़की ने कहा यह नित्य ही मुझे छेड़

छाड़ करते हैं। मैंने अपने पिता को कहा। फिर पिता ने मंत्री से जाकर विनती की आपके मंत्री ने बिना सोचे समझे शूद्रों के हवाले कर दी। मैं पराधीन हुई जा रही थी तब आपका दूत जाकर हमें ले आया। राजा ने उन शूद्रों को कहा आज के आठवें दिन तुम चार आदमी थे, मध्याह्न के वक्त तुम लोगों ने जबरन पकड़ने की इच्छा की उस वक्त इस आदमी ने तुमको हमारा भय सुना कर बन्द किया। उस वक्त तुम रूक गये। फिर तुम हमारे सामने मिथ्या बकवास करते हो। राजा ने कहा हे मंत्री इनको दस वर्ष का कारावास में भेज दो। ब्रह्मण को लड़की दे दो। ब्राह्मण लड़की ले राजा को आशीर्वाद देकर चले गये। इसी तरह से सुबुद्ध नाम का राजा अपने राज्य में अन्याय नहीं होने देता था।

१७.४ कुमुद

मालवा देश में हर्मा नामक एक बनिया रहता था। उसके घर कुमुद नामक लड़का था। उसके लड़के का जब विवाह हो गया तब उस के घर एक दिन एक भिखारी आया तो उस लड़के की स्त्री बेला ने भिखारी को खाने के वास्ते अन्न दे दिया। लड़के की माता ने बहुत ही दुःख पाया। जब उसका पति आया तो कहने लगी कि एक भिखारी आया तो उसको बेला ने इतना आटा दे दिया कि उसे खाकर आठ पहर तक भूख न लगे। मैं उसी वक्त गाली देने लगी नहीं तो दाल भी दे देती। बस यह हमारा घर उजाड़ देगी इसे निकला देना सबसे अच्छा है। उन्होंने बेला और कुमद को घर से निकाल दिया और दोनों उस देश में से निकल कहीं दूसरे देश में भूख आदि संकट सहते हुए चले। तब बेला ने कुमद से कहा यह ग्राम दिख रहा है। इस ग्राम में जाकर किसी धनी से रूपया उधार लाओ तो कुछ काम करके खाना अच्छा है। कुमुद ने एक धनी के पास जाकर कहा हमें कुछ ऋण दे दीजिये थोड़े काल बाद मैं आपको दे दूँगा। उस धनाढ्य ने रूपया दे दिया। वह उस रूपये को ले कर दूसरे गाँव में दुकान लेकर रहने लगे। बेला ने जितने रूपये का दुकान में घी आटा आदि रखा उससे दशान्श का आटा लेकर अलग धर दिया और कुमद को कह दिया यह जो दशान्श का आटा है वह भिखारियों को दे देना होगा। अब आमदनी बढ़ने लगी। ज्यों-ज्यों रूपया बढ़ता गया त्यों-त्यों दान भी बढ़ता गया। जब बेला ने देखा कि दशान्श का रूपया बहुत हो गया है तो अब आटा देना अच्छा नहीं। अब सदावर्त लगा देना अच्छा है और काम नौकर करें और वर्ताने के वक्त आप चले जाया करें। कुमद ने उस धनाढ्य का रूपया तो दे दिया था। अब सदावर्त में ही दिन व्यतीत हो जाया करे। नौकर सब काम दुकान आदि का करते थे। घोड़ा, रथ, दुकान, मकान बहुत बन गऐ, कई दिन के बाद उसका पिता हर्मा और उसकी माता ये दोनों भिखारियों में भिखारी बने हुये आ गये। कुमद ने जब देखातो नौकरों से बोला इन दोनों भिखारियों को देना कुछ नहीं और इनको बिठला दो। उन्होंने सुन लिया और सुनकर कहने लगे कि हम तीन दिनके भूखे हैं। कुमद उन्हें बिठला बेला के पास गया जाकर कहने लगा कि मेरे माता पिता इस हालत में आये हैं। बेला ने कहा उनको लाकर अच्छी तरह से सत्कार करो वे हमारे पूज्य हैं। उन को लाकर बड़े सत्कार से रक्खा। पिता को गद्दी पर बिठा दिया। माता जी को योग्य स्थान पर बिठा दिया और दो दासी सेवा करने के वास्ते दे दीं। बेला उनकी चरण वन्दना करके भजन में लग गई। वह कुमद की माता ने दासियों से पूछा कि इस महल का मालिक कौन है और यह किसके भृत्य हैं। दासियों ने कहा इन महल और क्षेत्र के मालिक कुमद है और उनकी स्त्री यह बेला है कुमद की माता ने पूछा क्या कुछ और भी इन्होंने बनाया हुआ है। दासियों ने कहा हाथी घोडे रथ आदि सब राजाओं जैसे बनाये हुये हैं। राजा और इनमें कोई भेद नहीं है। उसने कहा यह क्षेत्र कितने जारी हैं। दासियों ने कहा हमें दो एक

का ही पता है। वह सुनकर चुप हो गई। कुमद का पिता भी हाथी घोड़ा देखकर, दासियों से पूछ कर चकित हो गया। जब वे दोनों रात्रि को इकट्ठे हुये तब कुमद की माता ने अपने पति को समझाया। इतने में बेला ने अपने पति को भेज दिया। अपने माता पिता की बातें सुनो यह क्या कहते हैं। कुमद की माता ने अपने पति को कहा ईश्वर ने कुमद को राज्य तो दिया परन्तु बेला इसका राज्य नष्ट कर देगी क्योंकि इतने क्षेत्र लगा दिये। सैकड़ों नौकर रखे हैं और हाथी, घोड़ा आदि का भी खर्च है फिर भी दान करती है, इस बेला को यहाँ से निकाल दें और कुमद का अन्य विवाह करवा दें अब बातें करते करते प्रातः काल हो गया। तब कुमद ने आकर बेला को सारा हाल कह दिया। तब बेला ने कहा ''हे पति देव! अब यहाँ रहना ठीक नहीं है। यह सब कुछ त्याग कर अन्य देश में जा रहें।'' यह बातें विचार कर बेला और कुमद अपने माता पिता को वह मंदिर क्षेत्र आदि सब कुछ सौंप कर वहाँ से चल दिये। कुमद के माता पिता अत्यन्त प्रसन्न हुये। वे भूख प्यास सहते हुये जंगलों में बड़ें कष्ट पाते रहे। एक दिन एक नदी के किनारे जा पहुँचे, स्नान कर बेला ने खड़े होकर सूर्य की प्रार्थना की ''हे-सूर्य भगवान! यदि पतिव्रता धर्म सत्य है, तो मुझे इस लोक से उठा लो।'' इतना कह कर शरीर छोड़ दिया।

कुमद ने देखा कि इसको खड़े हुये बड़ी देर हो गई क्या बात है इतना सोच कुमद ने जाकर हिलाया तो वह गिर पड़ी, कुमद बहुत विलाप करने लगे और फिर उसको जलाकर उन्मादियों की तरह चल दिया। चलते-चलते एक ग्राम आ गया। वहाँ एक मकान के नीचे जा बैठा। वह एक बड़े धनी का मकान था। उस धनी की स्त्री ने देखा, तो उसे लाकर अपना बेटा बना लिया क्योंकि उसके घर में कोई सन्तान न थी। वह धनी और उसकी स्त्री बड़ी प्रसन्न हुई। एक दिन उस लड़के ने अपने माता पिता को कहा कि तुम क्या काम करते हो, मैं भी करना चाहता हूँ। पिता ने कहा मैं दूसरे देश में जाकर जवाहरात का काम करता हूँ। कुमद ने कहा मैं भी इसी काम को करने जाऊँगा। उन्होंने बहुत समझाया पर कुमद न रूका। उस धनी को जहाँ आप जाना था वहाँ कुमद को भेज दिया। वह रास्ता समुद्र का था। बड़े-बड़े नावों में धन, खर्च, दास आदि बिठा कर चल दिया। अब समुद्र से बाहर निकले तो दास जवाहरात का काम करते रहे। कुमद ने देखा एक स्थान पर हंस नित्य आया करते थे। उसने उस स्थान पर जाकर रेत बिछा दी और दूसरे दिन जाकर उठा लिया करे हँस बड़ी प्रसन्नता से बैठते थे। ऐसे करते-करते कुमद ने बहुत से मोती इकट्ठे कर लिये। जब वह नौकर जवाहरात बेच कर आये तो उन्होनें कहा महाराज चलो। कुमद और नौकर ने देखा इसके पास इतना मोती है, नौकरों का दिल बदल गया। नौकर चल दिये। जब रास्ते में आये तो नौकरों ने कुमद को समुद्र में गिरा दिया और आपस में उन्होंने मोती बाँट लिये। जब कुमद समुद्र में गिरा उसे ग्राह ने निगल लिया। समुद्र के बाहर निकल कर ग्राह लोटने लगा। कुमद ने देखा हमारे पास छुरा है इसका पेटा क्यों न फाड़ दूँ। तब कुमद उसका पेट फाड़ कर आप बाहर निकल आये। निकल कर कुमद जंगल की तरफ चला एक स्थान पर महादेव पार्वती बैठे देखे। जाकर साधु जान चरणों में गिर पड़ा उन्होंने आशीर्वाद दिया और कहा कि पुत्र क्या इच्छा है उसने कहा कि महाराज मुझे उस माता पिता के घर पहुँचा दो। उन्होनें एक फल दिया और उसको कहा तुम आँखे बंद करो। महादेव ने उसको घर पहुँचा दिया। जब उसने आँखे खोली तो क्या देखता है कि यह मेरा घर आ गया तब वहाँ से उठ कर मकान के अन्दर चला गया। माता-पिता देख कर अति प्रसन्न हो गये और पूछने लगे बच्चा बड़ी जल्दी से आ गये। बेड़े कहाँ है ? कुमद ने सब हाल पीछे का सुना दिया माता-पिता ने बहुत सा दुःख माना और कहा अच्छा आने दो उनको। बदला दे देंगे। तब कुमद ने वह फल आगे घर दिया, कुमद की माता ने देख कर कहा हे पुत्र ऐसे तीन फल और ला नहीं तो मैं प्राण

दे दूँगी। कुमद के पिता ने कहा यह तो लाल है इसकी कीमत हमारे पास नहीं है तो यह लड़का तुम्हें कहाँ से लादेगा। जब देखा कि माता हठ नही छोड़ती तो कुमद ने उसके सामने प्रण कर लिया कि हम तुम्हें यह फल अवश्य ला ही देंगे आज से मैं यत्न करने लग जाऊँगा जिससे यह मिल जावे। यह मेरा धर्म हुआ। कुमद ने सोचा यह लाल महात्मा से ही मिलेंगे। तो महात्मा को ढूंढने लगा। ढूंढते–ढूंढते एक योगाभ्यासी महात्मा मिल गये, जाकर उनकी सेवा करने लगा। महात्मा ने पूछा कि पुत्र क्या चाहते हो, उसने सब पिछला वृतांत सुना दिया। महात्मा ने ध्यान लगा कर देखा। तब उन्होंने कहा, हे पुत्र कुमद वह फल तो स्वर्ग का है और तुमको महादेव ने दिया था। वह ऐसे नही मिल सकता जैसे तुम चाहते हो। महादेव के पास भी एक ही फल था अब उसको कौन ला सकता है ? कुमद ने कहा कोई ऐसा यत्न है जिससे वह मिल जाय। महात्मा ने कहा योग से बढ़कर और कोई रास्ता नहीं। कुमद ने कहा महाराज मुझ पर कृपा करो। महात्मा अधिकारी जान योग साधन कराने लग गये। कुमद रात दिन सेवा और साधन करता रहा। तब महात्मा ने देखा कि इसके साधन तो हो गये अब इसे देखना चाहिये। एक दिन महात्मा ने योग बल से कदली बन में एक हाथी के गले में घंटा लटका हुआ देखा था, फिर कुमद को कहा तुम उसके गले से वह घंटा उतार लाओ। कुमद आकाश मार्ग से कदली बन को गया। वह उस हाथी के गले में से घन्टा उतार कर ले आया। जब लाकर रखा तो महात्मा प्रसन्न होकर कहने लगे कि जाओ बच्चा अब तुम तीनों लोकों में विजय पावोगे। महात्मा की आज्ञा पाकर कुमद वहाँ से चला वहाँ जहाँ शिव मिले थे पहुँच गया। जाकर प्रणाम किया। महादेव ने आदर से आसन दिया और कहा अहो महात्मन्! आप कैसे आये हो। कुमद ने कहा मैं वह फल लेने की आया हूँ। महादेव ने कहा मैंने तो वह फल विष्णु से लया था। कुमद ने कहा चलो विष्णु लोक चलें। विष्णु को जाकर पूछा तो विष्णु ने कहा मैंने तो ब्रह्मा से लिया था। कुमद ने कहा चलो ब्रह्मलोक चलें। ब्रह्मा से जाकर पूछा तो ब्रह्मा ने कहा हमने इन्द्र से लिया था। कुमद ने कहा चलो इन्द्र लोक में चलें। ब्रह्म, विष्णु और शिव इन्द्र लोक को गये। इन्द्र लोक को गये। इन्द्र से जाकर कहा वह फल हमें दो, इन्द्र ने कहा हम–तुम और सब उस फल को नहीं ला सकते।

एक मृत्युलोक में कुमद नाम वैश्य का बाग है उसका यह फल है उसके यह फल कोई नहीं खा सकता। कुमद बोल उठा वह मैं ही हूँ। मेरी स्त्री बेला यहाँ आई हुई है। इन्द्र ने कहा चलो उस फल को लें। इन्द्र ने ही जाकर उस बाग के आगे खड़ा कर दिया और इन्द्र ने कहा उसमें कुमद ही जा सकता है और कोई नहीं। कुमद ने जब दरवाजे को हाथ लगाया तो उसी वक्त खुल गया। कुमद भीतर चला गया जब बेला ने देखा तो पंघूड़े से उतर सब दासियों को साथ ले बड़ीं प्रसन्नता से मिली। कुमद ने पूछा कहो कुशल है बेला बोली आपके दर्शन करके प्रसन्न हो गई, नहीं तो शोक समुद्र में डूबी रहती हूँ। कुमद ने कहा स्वर्ग में भी चिन्ता होती है ? बेला ने कहा जिसने हमसे ज्यादा दान यज्ञ आदि किये हैं वह ऊँचे स्वर्ग में बैठे हुये है। उनको तो पुष्प विमान और कई–कई तरह के आभूषणादि गन्धर्व आदि गान करते अप्सरा आदि नृत्य करती मिलीं है। और यह देखो मेरे गले का हार इसमें से फूल सूख गये इतने वर्ष यहाँ रहने के कम हो गये। हमें तो इसी बात की चिन्ता खा गई। उनका बाग देखो तो कैसे चमकीले फूल लगे हुये हैं। और हर एक भोग भोग सकते हैं उनके वास्ते सुना जाता है और भी कई–कई अमृत के कुण्ड आदि भोग्य होते हैं इसके वास्ते आप कुछ उपाय करो। कुमद ने कहा तुम ईश्वर का भजन करो। बेला ने कहा यहाँ भजन नहीं हो सकता। कुमद ने कहा अच्छा मैं तो यह फल लेने के वास्ते आया हूँ मैं यहाँ रहने को नहीं आया हूँ। बेला ने कहा यहाँ आकर स्वर्ग सुख भोगो। कुमद बोला ऐसे सुख को धिक्कार है तुम ऐसे रो रही हो हमें सुख बतलाती हो। यह

अज्ञानियों के वास्तें सुख है। कुमद इतना कहकर वह फल वृक्षों से तोड़कर चला। फिर ब्रह्मा विष्णु इन्द्र से विदा माँग चला। आकर माता को फल दे दिये अब माता पिता से विदा माँगने लगा। माता पिता ने कहा हमें तुम्हें विदा नहीं कर सकते क्योंकि हमारे घर सन्तान नहीं हैं तुम एक ही हमारे पुत्र हो। कुमद ने बहुत कुछ कहा पर माता पिता नहीं माने तब कुमद ने कहा तुम्हारे घर लड़का हो जाये तो हमें आज्ञा दे दोगे। उन्होंने कहा फिर आप चले जाना। उसने अपने योग बल से एक लड़का दे दिया। तब फिर जब गर्भ हुआ उनको निश्चय हो गया तो कुमद ने विदा माँगी। माता पिता ने कहा अभी नहीं जब लड़का पैदा हो जावेगा तब तुम चले जाना। कुमद नित्य ही समाधि में बैठा रहा करे। एक दिन जब लड़का पैदा हो गया तो कुमद ने फिर विदा माँगी। माता पिता विदा न करें। आखिर वह वहाँ से चलने लगा तो उसके माता-पिता बिलाप करने लगे तो कुमद ने सोचा अब यह मुझे नहीं जाने देंगे तो उनसे कुमद ने कहा अच्छा तुम अगर मुझे नहीं जाने देते तो मुझे एक अकेले माकन में बन्द करके बाहर से ताला लगा दो तो उन्होंने वैसा ही किया। जब कुमद ताले में बन्द हो गया तो वह योगबल से अपना शरीर मकान के बाहर निकाल ले गया। जब भोजन करने का समय हुआ तो उन्होंने किवाड़ खोलकर देखा तो रोने लगे। दो चार दिन रोकर सन्तोष कर लियों उन्होंने कहा यह लड़का मनुष्य नहीं था अब हम क्या कर सकते हैं यह तो कोई देवता था अन्त में अपने लड़के में मोह करने लग गये। कुमद भी भूल गया। कुमद हिमालय पर्वत में पहुँचकर खूब समाधिस्थ हो गया।

१७.५ योग सिद्ध धृतराव

एक महात्मा वन में रहते थे। धृतराव राजा शिकार खेलते खेलते उस महात्मा के पास पहुँच गये और उस महात्मा से कहने लगे कि महाराज कुछ मुझ पर भी कृपा करो। मैं हर समय चिनता ग्रस्त रहता हूँ। तब महात्मा ने कहा जिस बात में तुम्हें चिन्ता होती है तुम उसको त्याग दो इतना कह कर महात्मा तो समाधिस्थ हो गये राजा कुछ काल विश्राम करके चल पड़ा। तब राजा अपने शहर में आ गया तो सोचता है कि मुझको किस बात की चिन्ता है। जिस बात की चिन्ता है उसका त्याग करें। तब राजा के मन में आई कि हमें राज्य की चिन्ता रहती है कि कोई राजा हम पर चढ़ाई करके छीन न लेवे। तब हम राज्य को छोड़ दें। तब राजा ने राज्य और अपना पुत्र मंत्री को सौंप दिया और आप वन को चले। तब उस महात्मा के पास पहुँच गये और जाकर प्रणाम कर बैठ गये। महात्मा को जाकर कहने लगे कि महाराज मुझे जिस बात की चिन्ता थी वह मैंने त्याग दी। तब महात्मा ने पूछा तुम क्या त्याग आये हो ? तब राजा धृतराव ने कहा कि मुझे राज्य की चिन्ता थी वह मैंने त्याग दिया अब मुझे कोई चिन्ता नहीं। तब महात्मा ने कहा अब तुम ईश्वर का भजन करो। तब राजा ने कहा कृपा करके जो मार्ग अच्छा है उधर हमें लगा दो। सबसे उत्तम स्वर्गादि को उलंघन कर शीघ्र मोक्ष के दाता आदिनाथ हैं। तब इस भवसागर से तुम पार हो जाओगे। तब राजा ने कहा कृपा करके उस मार्ग में ही लगा दीजिये। तब महात्मा ने राजा धृतराव को योग में लगा दिया। राजा बड़े प्रेम से योग साधन करने लगे। जब महात्मा ने देखा कि यह राजा योग में परिपूर्ण हो गया तब महात्मा ने कहा अब आप अपना आसन कहीं अन्य ले जाइये। तब धृतराव राजा ने स्वगृरु की आज्ञा मान अन्त बन में जाकर आसन जमा लिया। अपना काम प्रति दिन करते रहा करें। वहाँ राज्य में जब धृतराव राजा का पुत्र रघुवीर राव राज्य करने लायक हो गया तब मंत्री ने रघुवीर राव को राज तिलक दे दिया। अपने लड़के को मंत्री का स्थान दे दिया। कुछ दिन बाद मंत्री स्वर्ग सिधार गये। तब एक दिन रघुवीर राव के मन में आ गई कि पिता का दर्शन करना

चाहिये। तब रघुवीर ने अपने मंत्री और सेना को साथ ले, साथ ही रणवास लेकर, वन को पिता के दर्शन करने के वास्ते चल पड़ा। वन में एक नदी आई वहाँ सभी स्नान ध्यान करने लगे। तो मस्तक के आभूषण से हीरा निकल कर नदी में गिर गया। तब रघुवीर राव ने अनेक यत्न किये परन्तु हीरा न मिला क्योंकि वह नदी अति गहरी थी। तब रघुवीर राव हार कर चल पड़ा और चलते-चलते उस वन में अपने पिता के पास जा पहुँचे। जाकर क्या देखते हैं कि पत्थरो के ऊपर राजा लेटे हुये हैं। वह सब लोग उनके पास जा बैठे। जब राजा धृतराव उठे तब उसका पुत्र रघुवीर राव कहने लगा कि महाराज राज्य त्याग यहाँ पाषाणों की शैया पर शयन कर रहे हो। हमें देखते ही अति कष्ट हुआ, तो आपकी क्या दशा होती होगी तब उसकी रानी देखते ही आँसू भर आई। धृतराव ने कहा तुम क्या हमें राज्य का सुख बताते हो हमारे आगे राज्य कुछ वस्तु नहीं है। तब रघुवीर राव ने कहा हे महाराज हम कैसे मान लें तब राजा धृतराव ने उसके हाथ की अँगूठी उतार जोर से फेंक दी तब रघुबीर राव से कहा तुम इस अँगूठी को अपने भृत्यों से मँगवाओ उसने उस ही समय हुक्म दे दिया। मंत्री आदि सब भृत्य ढूँढ़ने लगे बहूत देरी तक ढूँढ़ते रहे वह अँगूठी न मिली क्योंकि योगबल से फेंकी हुई अँगूठी स्वर्ग लोक में चली गई उन्हें कब मिल सकती थी वह ढूंढ़ते-ढूंढ़ते हार गये। तब रघुवीर राव ने कहा जाने दो अँगूठी की क्या बात है। तब धृतराव राजा ने हाथ फैला कर कहा कि शीघ्र अँगूठी लाओं, थोड़ी देर के बाद एक अप्सरा अँगूठी लिये आ गई तब उसने आकर प्रणाम किया, और अँगूठी सामने रख दी तब धृतराव राजा ने कहा तुमने इतनी देर क्यों लगाई तब अप्सरा ने कहा महाराज जब मुझे इन्द्र ने दी तभी लेकर चली आई हूँ तब रघुवीर राव ने कहा यह स्वर्ग से आई है, क्या महाराज ? तब धृतराव ने कहा यह स्वर्ग से आई है। तुम अपने राज्य का सुख बड़ा बताते हो हम तो तीनों लोकों के राजा है। त्रिलोकों में रहने वाले देव, मनुष्य, पशु पक्षी जलचर, थलचर सभी हमारी आज्ञा का पालन करते हैं। तब रघुवीर राव ने कहा मार्ग में इस नदी में हमारा हीरा खो गया हमने बड़े यत्न किये परन्तु न मिला तब हम हार कर चले आये। तब धृतराव ने हाथ फैलाकर कहा, लाओ वह हीरा कहाँ है। तब हजारों मछलियाँ उसी समय एकत्रित होकर चली आई जो आगे की मछली थी उसकी मुख में हीरा पकड़ा हुआ था तब धृतराव राजा ने हीरा पकड़ लिया और रघुवीरजी राजा को दे दिया। रघुवीर अत्यन्त प्रसन्न हुआ तब रघुवीरजी ने, रानी, मंत्री और सेना आदि सब अपने राज्य को लौटा दिया। आप अकेला पिता जी की सेवा करने लगा। वहाँ मंत्री ने सेना प्रजा अपने वश में करली और हुकुम दे दिया जहाँ रघुवीर हाथ लगे उसे मार दो। एक रघुवीर राव का मित्र ब्राह्मण था उसने सुना कि मंत्री ने यह हुक्म दे दिया है जहाँ रघुवीर राव मिले उसे मार दो। और रानियों को अपने वश में करना चाहता है। तब वह ब्राह्मण घोड़ा लेकर जंगल की तरफ भागा। वहाँ धृतराव ने रघुवीर राव को वहाँ से निकाल दिया वह चला आ रहा था। इतने में वह ब्राह्मण रास्ते में मिल गया उस ब्राह्मण ने सारा वृतान्त रघुवीर को सुना दिया। तब रघुवीर ने ब्राह्मण को विदा किया और आप धृतराव पिता के पास पहुँच गया। जाकर देखा तो राजा समाधिस्थ हो गये थे। वह चार मास तक समाधिस्थ रहते थे तब रघुवीर राव ने कहा चार मास के बाद हम राज्य को क्या करेंगे इतना कहकर अपने श्वसुर के राज्य में चला गया। सम्पूर्ण वृतान्त अपने श्वसुर मकरन्द राजा को सुना दिया। मकरन्द राजा ने अपनी सेना सजाय अपने पुत्र विजयसेन को आज्ञा दे दी तुम ललाह मंत्री को बाँधकर ले आओ जब वहाँ उस राज्य के समीप पहुँचे तो उसकी सेना मार्ग में मिली तब रघुवीर राव ने उसकी सेना मार्ग में घेर ली। उस सेना के पुरूषों को पूछा तुम किसकी आज्ञानुसार यहाँ घूम रहे हो ? तब उस सेनापति ने कहा हमें राजा ललाह की आज्ञा है कि जहाँ रघुवीर राव मिले वहाँ मार कर ले आओ। यह आज्ञा पत्र लिखा हुआ है। तब रघुवीर

राव उनके हथियार छीन और उन्हें बाँधकर संग ले गये। वहाँ जाकर एक दूत को भेजा। ललाह मंत्री इस ही समय अकेले को हुक्म है कि शीघ्र चला आवे नहीं तो हम उसे सपरिवार नष्ट कर देंगे। यह लिख पत्र उस दूत को दे दिया दूत ललाह मंत्री के पास भेज दिया। उस पत्र को ललाह मन्त्री ने पढ़कर पत्र का जबाब दे दिया, इस ही समय हमारे राज्य से अपनी जान लेकर चले जाओ नहीं तो दो घड़ी के बाद तुम्हें और तुम्हारी सेना को मलियामेट कर दूँगा। दूत यह पत्र लेकर वापिस चला आया तब मकरन्द के पुत्र ने अपनी सेना तुरन्त तैयार कर दी। वहाँ ललाह मन्त्री ने अपनी सेना सजा रणभूमि में आ गये। उस समय संग्राम होने लगा। संग्राम होते-होते मकरन्द राजा की हार होने लगी तब मकरन्द राजा के पुत्र ने अपने बहनोई को और सेना लेने के वास्ते पीछे भेज दिया तब रघुवीर ने शीघ्रता से जाकर सम्पूर्ण वृतान्त सुना दिया तब राजा ने बहुत सी सेना रघुवीर राव के साथ भेज दी। उस सेना को लेकर मकरन्द के पुत्र विजयसेन ने जब अपनी सेना देखी तो अत्यन्त प्रसन्न हुआ। रघुवीर राव ने पूछा कि सेना कहाँ गई तब विजयसेन ने कहा सब फौजें कट गई उसके पास बहुत सेना है अब हमारे बस की न रही तब रघुवीर ने कहा आज हम सेना लेकर संग्राम करने को जायेंगे तब रघुवीर कुमार सेना लेकर चला वहाँ ललाह मंत्री भी सेना लेकर आ गये, सँग्राम भूमि में घोर सँग्राम होने लगा। रघुवीर राव की सेना सब कट गई तब ललाह मन्त्री ने रघुवीर कुमार को बाँधकर कारागार में भेज दिया। जब मकरन्द को खबर हुई तो वह वहाँ से भाग अपने राज्य में चला गया। इधर रघुवीर को बाँध कर जब ले जा रहे थे तब उसने अपने माता पिता उस महात्मा को याद किया और कहने लगा, हे पिता परमेश्वर हमें इस आपत्ति से बचालो नहीं तो यह मुझे अभी मार डालेंगे तब उस ही समय जो उसको पकड़े ले जा रहे थे वह बेसुध होकर गिर पड़े। तब रघुवीर वहाँ से भाग निकले। चलते-चलते वन में पिता के पास पहुँच गये। उसी दिन राजा धृतराय समाधि से निवृत हुये थे। तब रघुवीर राव चरणों में गिर पड़ा और सम्पूर्ण वृतान्त कह सुनाया तब धृतराव राजा ने कहा तुम जाओ हमें राज्य की इच्छा नहीं है। हमें क्या अब राज्य करना है। तब रघुवीर राव अत्यन्त सेवा भक्ति करने लगा। एक दिन धृतराव ने देख कि यह पीछे नहीं हटता तो राजा ने कहा माँगों क्या माँगना चाहते हो तब रघुवीर ने कहा हमारे श्वसुर की सब सेना भी कट गई हमारी जय कैसे होगी तब राजा धृतराव ने कहा तुम हमारी सेना ले जाओ और ललाह मन्त्री को जान से नहीं मारना होगा। तुम्हारी रक्षा हम ही करेंगे तब उसने कहा महाराज कृपा करके वह सेना हमें दे दीजिए तब राजा धृतराव ने कहा तुम थोड़ी सी कुशा ले आओ, रघुवीर राव ने कुश लाकर आगे धर दी तब उस राजा धृतराव योगी ने उस कुश के ऊपर जल सींचा उसी समय एक दिव्य पुष्प विमान बन गया। तब राजा धृतराव योगी ने रघुवीर राव को कहा यह लो पुष्प विमान इसके ऊपर चढ़कर सँग्राम करोगे तो तुमको कोई नहीं देखेगा और तुम्हारी जय होगी। तब राजा ने कहा तुम इस नदी के किनारे खड़े होकर देखो सेना उस नदी में से निकलते हुये देखोगे। तुम उस सेना को लेकर चलो। जब तुम उसकी सेना को जीत लोगे तो वह किले में छिपकर तुम्हारे ऊपर शस्त्र प्रहार करेगा तुम्हारी सेना और तुम्हें कोई घाव नही होगा। तब तुमसे किला नहीं टूटेगा तो उस समय हम उस किले को गिरा देंगे तब तुम उस किले में प्रविष्ट होना इतना कह कर राजकुमार को विदा किया। तब राजकुमार नदी के किनारे जाकर खड़ा हो गया। तब क्या देखता है कि नदी में लोहे की वर्दी पहने हुये सेना और सेनापति निकलने लगे तब उस सेना को लेकर रघुवीर राव चल पड़ा। चलते-चलते अपने राज्य में जा पहुँचे तब सेना ठहरा दी। उधर ललाह मन्त्री को खबर हुई तब उसने चुपके ही फौंजें लाकर रात्रि को रघुवीर राव और सेना को घेर लिया। तब रघुवीर राव ने अपनी सेना को आज्ञा दे दी। दोनो ओर से सँग्राम होने लगा। तब

ललाह मन्त्री की सेना बहुत सी कट गई। अन्य भाग गई। तब ललाह मन्त्री दुर्ग में जाकर सँग्राम करने लगा। वहाँ राजा धृतराव योगी ने जल की अँजली दुर्ग की ओर फेंक दी तब इधर यह किला अपने आप गिरने लगा। तब रघुवीर राव उस पुष्प विमान पर आरूढ़ होकर किले के ऊपर चला गया। सेनापति और सेना सब काटने लगा इतने में रघुवीर राव की सेना भी दुर्ग के ऊपर चढ़ आई तब रघुवीर राव ने आज्ञा दे दी कि ललाह मन्त्री को बाँध लो। तब सेना पति ने ललाह मन्त्री को बाँध लिया। जो-जो अन्य विपरीत देखे उनको काट दिया। तब ललाह मन्त्री को पिता की आज्ञानुसार देश निकाला दे दिया। फिर रघुवीर राव राज्य को सम्भाल कर अपनी सेना को बड़े प्यार से रक्खा। कुछ दिनों में अन्य फौजें एकत्रित कर लीं। तब पुष्प विमान और वह सेना लेकर अपने पिता योगाभ्यासी के पास चला। जाकर सेना दे दी। महात्मा ने नदी को दे दी। विमान कुवेर को वापिस दे दिया और कहा यह तुम रक्खो। तब उन्होंने आज्ञा दे दी कि जाओ आनन्दपूर्वक राज्य करो।

१७.६ चार लड़के गड़वाये

एक महात्मा फिरते फिरते एक गाँव में चले गये। एक ब्राह्मण का लड़का उनकी सेवा करता था। तब उसके घर में एक लड़का पैदा हुआ महात्मा ने कहा कहो पुत्र आज अधिक समय हो गया। उसने कहा आपके घर नाती हुआ है। महात्मा ने ध्यान लगा कर देखा तो उस लड़के को कहा तुम पचास रूपया ब्राह्मणों को दे दो और उस लड़के को उठा लाओ। तब उसने 50 रूपये ब्राह्मण को दे दिये और उस लड़के को उठा लाया। महात्मा ने कहा इसे गाड़ आओ। वह गाड़ आया। एक वर्ष के पश्चात् एक लड़का फिर उत्पन्न हुआ। तब महात्मा को खबर लगी कि लड़का हुआ है, तब महात्मा ने कहा तुम 10 रूपये ब्राह्मण को दे दो फिर उस लड़के को जमीन में गाड़ आओ उसने वैसा ही किया। तब एक वर्ष बाद फिर लड़का उत्पन्न हुआ तब महात्मा ने कहा दो सौ रूपया ब्राह्मणों को दे दो, फिर पीछे जमीन में उसको गाड़ आओ। वह ब्राह्मण जाकर गाड़ आया। उस ब्राह्मण और ब्राह्मणी ने चूँ तक न की क्योंकि महात्मा ने योग मार्ग में उनहें लगा दिया था। एक लड़का फिर उत्पन्न हुआ। तब महात्मा को खबर हुई तो महात्मा ने सार्ध सहस्त्र रूपया ब्राह्मणों को दान करवा दिया। उस लड़के को भी जमीन में गड़वा दिया। तब एक वर्ष पश्चात् एक लड़का और उत्पन्न हुआ। तब महात्मा ने आज्ञा दी कि उत्सव करें। उन्होंने मनमाने उत्सव किये। जब लड़का पाँच वर्ष का हुआ तो उस लड़के की माता के मन में आई कि वे लड़के हमारे अगर जीते रहते तो इस बालक जैसे होते। तब उधर महात्मा ने जान लिया कि आज इसके मन में ये संकल्प उठते हैं। जब रात्रि शुरू हुई तो महात्मा ने उस ब्राह्मण को कहा प्रातः तुम सहपत्नी हमारे स्थान पर आना। वह ब्राह्मण अपनी पत्नी को लेकर आ गया। महात्मा ने ब्राह्मणी को कहा तुम्हें अपने लड़के मिला दें। तुम उनकी बातें सुनना चाहते हो। उस ब्राह्मणी ने कहा हाँ महाराज मुझे मिला दो। तो महात्मा उनको एक जंगल में ले गये और उन दोनों को बिठा दिया और उनके चारों ओर लाइन खींच दी। तब उनको समझा दिया कि तुम दोनों चुपके बैठे रहना बोलना नहीं, न लाइन से बाहर निकलना। तब महात्मा ने चारो लड़के बुलवा दिये। वह लड़के आपस में बातचीत करने लगे। पहले लड़के ने कहा देखो भाई वह जो साधु बैठा है हमसे इसने धोखा किया है। पचास रूपया तो ब्राह्मणों को दिलवा दिये। हमने बीस दिन में 50 रूपया लोगों को दिलवाने थे और इनको दिन रात खराब करना था, इसने हम से धोखा किया है। फिर दूसरा लड़का बोला अरे! हमें तो एक महीने दुनियाँ की हवा खानी थी इसने दस रूपया ब्राह्मणों को दिलवा कर हमें जीते ही गड़ावा दिया। तब तीसरा लड़का बोला इस साधु ने आगे भी हमसे विरोध किया था। हम पहले एक क्षत्री के धर में पैदा हुये थे, तब इसने उस क्षत्री के ऊपर जाकर थाना

लगा दिया। हमने एक बनिये के घर चोरी की थी। तब इस महात्मा ने उस क्षत्री को बता कर हमें घर से निकलवा दिया। तब हम चोरी में पकड़े गये, तब राजा के दण्ड से हम मारे गये थे। इस ब्राह्मण ने मेरा दो सौ रूपया लिया था और हम पर ही गवाही दी थी इस वास्ते मुझे इसको बड़ा कष्ट देना था। इस महात्मा ने जन्म से ही दो सौ रूपया ब्राह्मणों को बटवायया और जीते जी हमें जमीन में गढ़वा दिया। चौथा लड़का बोला अरे तुमने क्या करना था मैंने तो इस ब्राह्मण से सार्धसहस्त्र रूपया लेना था। मैंने पाँच दस वर्ष आयु भोगनी थी, कई जीवों से पिताजी का घात करवा कर राजा से दंड दिवाना था और हमने कई विषयों में और उपद्रवों में रूपया व्यय करवा कर बहुत कष्ट देकर तब शरीर छोड़ना था। हमारे कष्ट के मारे ये दोनों शरीर न मरते न जीते रहते। मुझे इस साधु से बड़ा बैर है वह साधु हमारे पीछे से हटे, अब देखो इस ने क्या किया है जो अब लड़का उस ब्राह्मण के घर पैदा हुआ है। इस ब्राह्मण का बहुत ऋणी है इसने इसकी सेवा करनी है और इसकी आज्ञा में यह रहेगा। पिछले जन्म का यह ऋषि है और बड़ी आयु वाला है। देखो इसको इस साधु ने रख लिया है। लोग कहते है कि साधु समदर्शी होते हैं। हमसे बैर उससे मित्रता। दूसरे लड़के ने कहा यह सेवा का फल है। तब महात्मा ने उनका विसर्जन कर दिया। वह ब्राह्मण और ब्राह्मणी उस महात्मा के चरणों में गिर गये और कहने लगे महाराज हमारे अपराध क्षमा करो। तब महात्मा ने आशीर्वाद दिया वह बड़ी प्रीति से सेवा करने लगे। महात्मा ने ब्राह्मण को योग मार्ग में लगा दिया था। थोड़े ही दिनों में उस ब्राह्मण का अन्धकार दूर हो गया। वह लड़का शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा। छोटी अवस्था में ही वह शास्त्र का वक्ता हो गया। उसने सम्पूर्ण पंडितों को जीत लिया। राजा ने अच्छा पंडित जान अपना गुरु बना लिया। राजगुरु होते हुए भी उसमें कोई अभिमान नहीं था। माता पिता की भक्ति में हर वक्त लगा रहता था।

१७.७ बिजना

मगध देश में एक क्षत्री धनवान रहता था। उसके घर में एक लड़का और एक लड़की थी। उस लड़की का नाम बिजना था। वह एक नौकर के साथ व्याभिचार करने लगी। वह नौकर पहले डाकू था। बिजना ने कहा कि हम स्वतन्त्र व्यवहार किस तरह कर सकते हैं। डाकू बोला इन सबको मार कर कहीं चलें तो स्वतन्त्र हो जायेंगे अन्यथा नहीं हो सकते। बिजना ने स्वीकार कर लिया। जब रात्रि को सब सो गये तो बिजना ने उस डाकू को लाकर अपने पिता माता व भ्राता सब को कटवा दिया और सब धन को खच्चारों पर रख कर मकान को आग लगवा कर चल पड़े। वह तो डाकू ही था, जंगल में रहने लगे। थोड़े ही दिनों में धन उड़ा कर डाका मारने लगे। कुछ दिनों के बाद वह डाकू पकड़ा गया। तब बिजना इधर-उधर घूमने लगी और अन्त में वेश्या का काम करना शुरू कर दिया। ऐसे काल व्यतीत होने पर उसे उपदंस की बीमारी शुरु हो गई। उससे बिगड़ कर कुष्ट हो गया। ऐसे ही बहुत काल व्यतीत हो गया। बिजना रात्रि को एक धर्मात्मा क्षत्री के दरवाजे पर जा पड़ती थी। क्षत्री के घर पर नित्य ही साधू आया करते थे। एक दिन एक साधू प्रसन्न हुए और कहने लगे, बच्चा! हम तुम पर प्रसन्न हैं। जो तुम्हारी इच्छा हो सो माँगो। धर्मात्मा ने कहा महाराज जो आप मेरे पर प्रसन्न हैं तो बिजना ऐसी न रहे। महात्मा बोले उसको लाओ। धर्मात्मा ने उसको लाकर सामने किया। महात्मा ने बिजना को देखकर कहा यह तो बड़ी कुकर्मन है और मनुष्य घातिन है इसका कर्मों का फल मिलना अवश्य है। इतनी बात सुनते ही बिजना ने महात्मा के चरण पकड़ लिए और कहने लगी आपके चरणों में गिरी हुई भी मैं कुकर्मन ही रही। इन चरणों से तो दुःखी भी भवसागर से तर गये। इतना कहकर रोने लगी। आँसुओ से चरण घुल गये, महात्मा को

दया आ गई तो फिर महात्मा बोले अच्छा बच्चा, भवसागर से पार उत्तर जायेगी। तुमको हम योगमार्ग में लगाते हैं। अब तुम सावधान हो। महात्मा योग साधन कराने लग गये। साधन करते–करते रोग तो कहीं गया परन्तु बिजना सिद्धबन गई। एक दिन वहाँ के राजा का लड़का गुजर गया। शहर में शोर मच गया। शव को श्मशान घाट में चिता पर चढ़ा दिया। इतने में बिजना आ गई और कहने लग गई वह जीता है। लोगों ने कहा यह रात का मरा पड़ा है। बिजना ने जाते ही लात मारी और कहा कि तुम्हारे बिना स्त्री को दो लड़के कौन पैदा करेगा, मुझे इतना तो बता ? उसी वक्त लड़का बैठ गया और राजा प्रजा सब बिजना के चरणों में जा पड़े और कहने लग गये। हे बिजना! तेरी जय हो। एक दिन वहाँ एक सेठ–सेठानी आ आए वे हाथ जोड़ कर चरणों में गिर गये और कहने लगे हे बिजना देवी। हमारे घर सन्तान नहीं है। हम बूढ़े हो गये हैं। सन्तान के बिना कुल जा रही है। हे देवी कृपा करो। बिजना चुप रही, इतने में सेठानी घबराकर बोली, हे देवी, नहीं तो एक लड़की दीजिए। बिजना प्रसन्न हो एक कुत्ता और कुतिया को कहने लगी कि तुम इनके घर जन्म लो। सेठ–सेठानी को कहा एक लड़का और एक लड़की जोड़े पैदा होंगे। एक दिन वह बिजना फिरती–फिरती एक भील के घर जा पहुँची और कहने लगी मुझे भूख लगी हैं। वह भील अति बूढ़ा था। आँखों से अन्धा था उसका लड़का बारह साल का था उसकी माता चने उबाल दिया करती थी और वह उन चनों को बेचकर निर्वाह किया करते थे, निर्वाह कठिनता से होता था। फिर भी उन्होंने जो कुछ अपने खाने के वास्ते बनाया था उसके आगे रख दिया। वह सब खा गई। उन्होंने देखा अभी यह भूखी है। उन्होनें जिन दामों से चने लाकर बेचने थे उनका भी पकवान लाकर खिला दिया फिर भी वह भूखी की भूखी ही रही। उन्होंने इधर–उधर से ऋण उठा कर खिला दिया। जब तक ऋण उनको मिलता रहा वह खाती गई। जब देखा कि अब इनको कुछ नहीं मिलता तो वह उठ खड़ी हुई और कहने लगी–तुम्हारा ब्याह हो जावे तो हमें बारात में ले जावोगे। लड़का और उसकी माता बोली–पहले तुम पीछे इसका पिता। बिजना ने कहा–एक वर्ष बाद आज के दिन इसका विवाह होगा। उसके पिता को कहने लगी तुम आँखे मूंदे क्यों बैठे हो खोलो, तुम्हारी आँखे अच्छी हैं। इतना कह कर बिजना चली गई। लड़के के माता पिता ने कहा बच्चा तुम साग पात तोड़ कर बाहर से ले आवो। उसे खा कर पेट भरें। ज्योंहि लड़का बाहर निकलने लगा तो पाँव में अंगूठी की ठोकर लगी सो, गिर पड़ा। उसने कहा पहले इसे उखाड़ लूँ, पीछे जाऊँगा। जब उखाड़ा तो नीचे से खजाना मिल गया। तब वह दुकान मकान बनाने लग गया। सगाई हो गई। विवाह का वही दिन आ गया। जब घोड़ी पर चढ़ा तो याद आ गई कि उस देवी से कहा हुआ है। अब देवी आयेगी अब घोड़ी पर चढूँगा, इतना कह कर उतर गया। बिजना ने हिमालय पर्वत पर चढ़ कर, बैठ कर, देखा ही था कि लड़का बिजना के वियोग में व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी वक्त बिजना ने आकर दर्शन दिया और कहा बच्चा उठो घोड़ी पर चढ़ो, इतना कह आशीर्वाद दे चली गई।

१७.८ हिमालय पाँचल

हिमालय पर्वत से एक महात्मा योगाभ्यासी निकल कर देशाटन करने लगे। तब ग्राम में आ गये। वहाँ आकर क्या देखते हैं कि लड़के खेल रहे हैं। उन महात्मा ने कहा ये लड़के मर जायेंगे। तब उन्होंने पाँच लड़कों को बिठा कर उनकी नाड़ी दवा कर श्वाँस चढ़ा कर आप चल दिये। और लड़कों ने गाँव में जाकर कहा कि एक साधु उन लड़कों को खबर नहीं क्या कर गया। तब उनके माता पिता आ कर देखने लगे। दो तीन दिन तक तो देखते रहे। दो लड़कों के माता पिता ने उन को जला दिया। दूसरे लड़कों के माता पिता के धर में एक–एक ही बेटे थे। उन्होंने नहीं जलाया। तब उन्होंने उनके ऊपर कोठरियाँ बनवादी और

नित्य आकर उस स्थान पर झाड़ बुहार कर जाया करें। तब उनके घर में और लड़के पैदा हो गये। वह नित्य ही उनकी सेवा करते रहे। और जिस स्त्री पुरूष की कामना होय, वह पूरी वहाँ से हो जाया करे। ऐसे ही कई वर्ष व्यतीत हो गये। गाँव वाले लोगों ने यह काम पकड़ लिया जो कोई साधु आवे उसे मार पीट कर बाहर निकाल दें। उन्होंने भी ऐसा काम कई वर्ष तक किया। लड़कों के माता पिता के नाती पन्ती भी हो गये। वे लड़के वैसे के वैसे ही रहे। जब उसके नाती वहाँ से गुजरा करें तो कहा करें कि ये हमारे दादा यहाँ ऐसे ही इतनी उमर में बैठे हुये हैं। तो एक दिन वही महात्मा वहाँ आ गये और आकर गाँव वाले लोगों से पूछने लगे कि कई वर्षों की बात है हम यहाँ आये थे तो पाँच लड़के यहाँ बिठा गये थे। वह कहाँ हैं ? लोगों ने वहाँ साथ ले जाकर उनको दिखला दिये, तब महात्मा कहने लगे कि इनके घर में से कोई है तो उनको बुला लाओ। तब लोगों ने कहा कि महाराज! इनके भाईयों के नाती इस गाँव में है। आप कहें तो हम बुला लाते हैं। तब उन्होंने कहा बुला लाओ। लोग जाकर उनको बुला लाये। महात्मा ने कहा हम ही हैं जो इन लड़को को यहाँ बिठाने वाले हैं। तुम अब इनका कुछ करना चाहते हो ? तब उन लड़कों ने कहा महाराज इनको आप जिन्दा कर दो। तब महाराज ने जो जो वस्तु उनके वास्ते जरूरत थी वह मंगवालीं। तब महात्मा ने उन लड़कों की नाड़ियों को दबाकर श्वाँस नीचे उतार दिये। तब वे लड़के उसी महात्मा के गले का हार हो गये और उन्होंने कहा मुझे वैसा फिर कर दीजिये। महात्मा ने कहा, ऐसा करना होता तो तुम्हारे स्वाँस नीचे हम क्यों उतारते। तब वे लड़के कहने लगे कि हमें आप वैसा न करोगे तो हम तुम्हे ऐस ही छोड़ जावेंगे। तुम कुछ काल यहाँ रहो फिर तुम्हे जरूरत होगी तो हम हिमाचल पहाड़ में रहते हैं वहाँ आ जाना। अब तुम दूध या चावल खाया करना। इतना कह महात्मा लोप हो गये वे लड़के रोने लगे। जगत उनको बुरा मालूम होता था। इस वास्ते दो लड़के तो उसी दिन ही भाग गये और एक लड़का उन्होंने जबरदस्ती पकड़ लिया। उस लड़के ने अन्न-जल सब कुछ छोड़ दिया। कई दिन व्यतीत हो गये। तब वहाँ के राजा को खबर हुई। महाराज वहाँ आकर उस लड़के को कहने लगा तुम राज्य भोगो और वन को न जाओ और लोगों ने भी बहुत सा समझाया। तब लड़के ने राज्य लेना स्वीकार कर लिया और राज सिंहासन पर चला गया। तब राजा ने राज्य के अनेक भोग दिखलाये उस लड़के को वह अच्छे न लगे। तब उस लड़के ने बद्रीनारायण की यात्रा करने को साथ में कुछ नौकर लेकर उधर चल पड़ा। बड़े वेग से चलने लगा, रास्ते में वे दो लड़के मिल गये। तब उनको भी साथ बिठा कर आगे चल पड़ा। कई दिन के बाद हिमालय पहाड़ पर पहुँच गये। तब उन लड़कों ने सलाह की यह आदमी नहीं छोड़ते इनको रात्रि में सोते हुए को छोड़ कर चल दें। जब रात्रि हुई तब वे लोग सो गये। तब ये तीनों चल दिये। प्रातः जब वे लोग उठे तब उन्होंने बहुत सी खोज की। परन्तु वे लड़के न मिलें। वे दो तीन दिन खोजते रहे और अन्त में पीछे लौट आये और राजा के पास आकर उनका सब वृतान्त कह दिया। तब वे लड़के उस महात्मा की खोज में लगे हुये भूखे प्यासे कई दिन व्यतीत करते हुये घूमते फिरते रहे। उन्होंने हजारों कष्ट सहे परन्तु पीछे हटने की आशा नहीं की। तब उन महात्मा ने सिंह का रूप धारण कर एक को उठा कर ले गये बाकी काँपने लगे। तब वे महात्मा एक पुरूष का रूप धारण कर उनको कहने लगे कि देखो तुम इस जंगल से जाओ क्योंकि यहाँ हजारों जानवर फिरते हैं। कोई तुम्हें खा जायेगा। तब वे लड़के कहने लगे हम इसी वास्ते आये हैं या महात्मा मिल जायँ या जानवर खा जायँ। जब उस मनुष्य ने समझा कर देखा कि ये किसी तरह नहीं माने तब वह लाठी लेकर उनके पीछे पड़ा, वे लड़के भागते जाँये और भूखे प्यासे गिरते जाँये। अन्त में वे रोने लगे, हाय महात्मा हमें ले लो। इतना सुन महात्मा प्रसन्न हो निज रूप दिखा दिया। उनको पकड़ कर गले लगा लिया वे लड़के अति प्रसन्न हुये। तब योग में लगा दिये।

१७.९ निषिद्ध कर्मा

एक ब्राह्मण एक गाँव में रहता था। उसकी इच्छा हुई कि हम हवन करें। तब विजया पीकर हवन करना शुरू कर दिया। इतने में एक कुकर्मी मद्य लेकर वहाँ आ गया। उसने देखा यह ब्राह्मण विजया पीकर अन्धा हुआ है तब उसने मद्य चरू में डाल दी। वह ब्राह्मण उस चरू से हवन करता रहा। जब हवन करके पूर्णाहुति दी तब कुकर्मी पुरूष हँसने लगा। ब्राह्मण न समझा क्यों कि वह तो विजया में अन्धा था। जब दूसरा दिन चढ़ा तब उसकी स्त्री हवन कुन्ड पर गई, जाकर देखा तो वहाँ हवन कुन्ड में स्वर्ण पड़ा हुआ था। उसने देखते ही उठा लिया। उठ कर पति को दे दिया। पति ने कहा हम तो नित्य ही हवन किया करेंगे। तब वह फिर सामग्री लाकर हवन करने लग गया। उसने हवन कर लिया और दूसरे दिन उठा तो ब्राह्मणी कुन्ड पर फिर स्वर्ण लेने के वास्ते गई। तब वहाँ स्वर्ण नहीं मिला। ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों सोचने लगे कि आज हमें स्वर्ण क्यों नहीं मिला। यह सोच रहे थे कि इतने में कुकर्मी पुरूष आ गया। उसने आकर पूछा आज तुम्हारा क्या खो गया है जिससे तुम ऐसे उदास हो? ब्राह्मण ने सब हाल कह दिया, तब उस कुकर्मी ने कहा कि उस दिन तो मैंने तुम्हारे चरू में मदिरा गेर दी थी। इस लिये कुछ हो गया हो। तब ब्राह्मणी ने कहा आज तुम हमें थोड़ी सी मदिरा लादो जिससे हम ऐसा करके देखें। उस कुकर्मी ने मदिरा ला दी तब वैसे ही चरू में मदिरा मिला कर हवन करना शुरू कर दिया। जब प्रातःकाल फिर देखा तो स्वर्ण मिल गया। वह नित्य ही ऐसा काम करने लग गये। उसकी स्त्री ने और स्त्रियों से भी बात की। वे स्त्री पुरूष सब इसी प्रकार करने लग गये। इधर तो मदिरा निकलने लग गई उधर नित्य हवन होने शुरू हो गये। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्राम में ही हवन होने लग गये। कुल स्त्री पुरूष बड़े धनी हो गये। एक ब्राह्मण योगाभ्यासी और पतिव्रता स्त्री वहाँ रहते थे। उस स्त्री ने अपने पति से कहा कि महाराज इस तरह यहाँ के लोग हवन करते हैं, और इस प्रकार बहुत से धन, गज, घोड़े, इतने ऊँचे मकान लोगों ने बना लिये हैं और हमारी यह दशा हो रही है कि हमें अन्न मात्र ही मिलता है। तब महात्मा ध्यान लगा कर देखने लगे कि पृथ्वी भार से पीड़ित हो गई है। शेष अकुला रहे हैं। दिग्गज चिंघाड़ते हैं और देवता लोग यह कहते हैं, वह देखो इस योगाभ्यासी ने कितने लोगों को कष्ट दे रखा है। एक देवता कहते हैं ग्राम भी तो इसी ने बचा रखा है। तब नारद जी योग की महिमा कहने लगे। वह योगाभ्यासी सुनते रहे। तब शारदा ने कहा इस महात्मा को ऐसा हठ नहीं करना चाहिये तब महात्मा आसन से उठे अपनी स्त्री को कहा तुम्हें जो अच्छा लगता है वह वस्तु तुम जल्दी से उठाओ। तब उसकी स्त्री ने जो वस्तु उससे उठी सो उठाली। उठाकर जब ग्राम से बाहर निकले और कुछ दूर गये तो गड़गड़ा करके वह ग्राम गरक हो गया।

१७.१० वेदान्ती

एक राजा के गुरु का देहान्त होने का समय हुआ। तब उसने राजा को बुला कर अपने लड़के की भुजा राजा को पकड़ा कर कहा कि यह लड़का किसी के आगे हाथ न फैलाये। राजा ने स्वीकार कर लिया और गुरु का देहान्त हो गया। तब राजा ने एक पंडित बुलाकर उसके लड़के को पढ़ने लगा दिया। जब वह लड़का पंडित से पढ़ चुका तब राजा ने एक महात्मा से जाकर कहा कि इस बालक का पिता हमारा गुरु था। उन्होंने इस बालक की भुजा हमारे हाथ देकर कहा कि यह लड़का किसी के आगे हाथ न फैलाये। तब महात्मा ने कहा इसको वेदान्त शास्त्र पढ़ाओ। तब उस को वेदान्त शास्त्र पढ़ने के वास्ते

काशी में नियुक्त कर दिया। तब उस लड़के ने काशी में जाकर व्याकरण, न्याय, साँख्य वेदान्त शास्त्र सम्पूर्ण किये। फिर सब ग्रन्थों को घोड़े पर लाद कर वह राजा के पास आ गया। तब पुष्प ताम्बूल एलाफल (इलायची) भेंट लेकर राजा को देने लगा। जब राजा ने देखा तो राजा रोने लगा तब उस ब्राह्मण का लड़का निराश होकर पीछे लौटा। रास्ते में एक जंगल आ गया। वहाँ घोड़े को खड़ा कर एक वृक्ष के नीचे वह भी रोने लगा। इतने में एक महात्मा आ गये। उन्होंने पूछा कि तुम यहाँ क्यों उदास बैठो हो तब लड़के ने सब वृतान्त कह दिया तब महात्मा ने कहा कि वह राजा सच्चा था इस वास्ते वह रोता था। तब वह ब्राह्मण तंग आ कर बोला कि वह हमारा सुहृदय कैसा जिसने मुझ जैसे श्रमी का सत्कार न किया। तब वह महात्मा कहने लगे, ऐसा सुहृदय तुम्हारा पिता भी न था। तुम्हें एक दो दिन के सुख को लेकर, तुम्हारी सारी आयु और कई जन्म का दुख हेतु बनता। तब उसने सोचा यह तो अज्ञानी ही रहा तुम्हें ज्ञान हो जाता तो उसकी प्रतिज्ञा का भी पालन हो जाता। तब वह लड़का कहने लगा कि हम अज्ञानी नहीं हैं हमने तो वेदान्त पढ़े हुये हैं। तब महात्मा कहने लगे, अरे पढ़े हुये बैल तुमने गीता पढ़ी हुई है।

''शुभाशुभ फलैरेवमोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैस्यसि।।

अर्थात् सब कर्म का सम्पूर्ण रूप सन्यास योग करके युक्त मन वाला तू कर्म रूप प्राप्ति के रोकने वाले शुभाशुभ कर्म फल से विमुक्त हुआ मेरे को प्राप्त हो जायेगा। यह श्लोक जो हैं इसका अर्थ हमें सुनाओ, तब वह लड़का बड़ा वेदान्ती यह श्लोक पढ़कर अनेक प्रकार के अर्थ करने लगा। तब वह लम्बा व्याख्यान देने लगा। महात्मा ने उसे रास्ते में रोक लिया। महात्मा ने कहा हम तुम्हारा लम्बा व्याख्यान नहीं सुनना चाहते। उसमें क्या लिखा है, यह हमें बताओं। उसमें तो लिखा है कि जन्म मरण की बीमारी हटाने के लिये तुम्हें साधन रूपी औषधी कही है, सो क्या तुमने खाई। तब उसने कहा कि आप कृपा करके हमें इस बिमारी से छुड़ा दीजिये। तब महात्मा ने उसे योग मार्ग में लगा दिया। समाधि में बैठा दिया। कुछ दिनों में उन्हें तैयार करके महात्मा चल दिये। वह ब्राह्मण कई–कई दिन तक समाधि में बैठा रहा करे। जब उस शहर के लोगों को यह बात मालूम हुई कि कोई महात्मा उस जंगल में बैठा है। वह लोग नाना प्रकार के पदार्थ लाकर रख दें और कोई आदमी उठाकर ले जावे। उसे कुछ खबर नहीं। तब एक दिन उसी राजा को खबर लगी, उसने कहा पहले हम किसी को भेज कर देखें वह महात्मा कैसा है। तब वजीर को उसने भेज दिया, तब वजीर ने जाकर देखा कि यह तो वही महात्मा है जिन्होंने राजा से पढ़कर अपमान करवाया था। तब उसने उस ब्राह्मण का नाम लेकर कहा कि तुम्हें राजा बुलाता है। उसने कहा तुम और तुम्हारा राजा भाड़ में पड़े हम नहीं जानते कैसा राजा होता है। तब बजीर ने उस राजा को जाकर वैसे ही कह दिया। राजा उस ही समय भेंट लेकर वहाँ आया, भेंट आगे रख कर बैठ गया। तब कुछ कहने लगा। वह ब्राह्मण समाधि से उठा उसने राजा को कहा, तुम कैसे आये हो? तब उसने कहा हम आपके दर्शनार्थ आये हैं। ब्राह्मण ने कहा दर्शन हो गये, अब तुम जाओ। तब राजा अति प्रसन्न हुआ, और चला गया।

१७.११ कर्म लक्ष्मी

एक ब्राह्मण धन प्राप्ति के वास्ते लक्ष्मी का जप करने लगा। एक लक्ष्य का प्रयोग समाप्त हो जाने पर भजनादि किया करता था। फिर वहाँ प्रयोग करता रहता था। जब एक पुराचरण हो गया तो उसका एक लड़का मर गया और धन भी जाता रहा। तब उसके बाद वह ब्राह्मण प्रयोग वही फिर करता रहा, फिर उसकी स्त्री मर गई परन्तु उसके करते करते धन भी नष्ट हो गया। उस ब्राह्मण ने वह प्रयोग नही छोड़ा। अन्त में वह ब्राह्मण साधु हो गया और प्रयोग करता ही रहा। प्रयोग करते-करते अन्त में लक्ष्मी सामने आ खड़ी हुई और आकर कहने लगी हे द्विजों में श्रेष्ठ! तुम वर माँगो। ब्राह्मण बोला अरी लण्डी तुम पहले कहाँ गई रही। पहिले क्यों नहीं आई। अब तुम्हारा क्या काम। अब तू यहाँ से चली जा। लक्ष्मी ने कहा अब मैं पीछे हटने को नहीं जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर माँगो। ब्राह्मण ने कहा अब तुम्हें पीस कर व्रण के ऊपर नहीं लगाना, हमें तुम्हारी जरूरत नहीं, तुम जाओ। लक्ष्मी ने कहा हम नहीं जायेंगे, तो फिर ब्राह्मण ने कहा अच्छा लण्डी जिस शिला पर बैठकर हम सन्ध्या करते हैं, उसे उठा ले, जहाँ हम कहें वहाँ रख दिया करना क्योंकि अब हमें तीर्थ यात्रा करनी है। तब हजारों मन की शिला सिर के ऊपर उठाकर उनके पीछे-पीछे चली। जहाँ ब्राह्मण जा कर रहते थे, वहाँ शिला उठाकर रख देती थी। जब वहाँ से चलते थे तो शिला सिर के ऊपर उठाकर चल देती थी। वर्षों ऐसे व्यतीत हो गये। तब एक दिन लक्ष्मी ने सिर का कपड़ा उतार कर ब्राह्मण को दिखलाया और कहा कि महाराज सिर के बाल भी उड़ गये और तुम्हें दया नहीं आई। तो ब्राह्मण ने कहा अरी कपटिन! तब तुम्हारी दया कहाँ गई थी जब परिवार हमने तुम्हारे पीछे खो दिया। तो लक्ष्मी ने कहा मैं तो तुम्हारे कुकर्म धोती रही थी इस वास्ते हमें देरी हो गई। ब्राह्मण ने कहा हम तुम्हारा कपट धो रहे हैं, शिला उठा कर चल। तब लक्ष्मी शिला उठाकर चली, आगे-आगे ब्राह्मण और पीछे फिर लक्ष्मी चलने लगी। लक्ष्मी ने सोचा यह ब्राह्मण हठ के ऊपर चढ़ा हुआ है यह मुझे ऐसे नहीं छोड़ेगा। इतना सोचकर जब ब्राह्मण दक्षिण में पहुँचे तो दक्षिण का जो राजा था, उसको लक्ष्मी ने रात्रि में स्वप्न में कहा कि तुम्हारे देश में फलाने स्थान पर महात्मा आया हुआ है उससे तुम मुझे माँगलो मैं तुम्हारे पास रह जाऊँगी। इधर ब्राह्मण ने देखा कि वह राजा के पास फरियादी गई है। ब्राह्मण उसी समय उठकर चल दिया। लक्ष्मी हार गई। जब वह किसी के पास जावे तो ब्राह्मण वहाँ से उसी सयम उठ कर चल देता और लक्ष्मी उस के पीछे शिला उठाकर फिरने लगती। महात्मा ने एक चक्कर फिर लगा लिया। फिर जब दक्षिण दिशा में गये लक्ष्मी अति आतुर हो गई और महात्मा से कहने लगी कि महाराज ब्राह्मण तो दयालु होते हैं सिर के ऊपर से कपड़ा उतार कर कहने लगी, वह देखो इस शिला से मेरे सिर के बाल उड़ गये हैं आपको दया नहीं आती। ब्राह्मण बोला अरे! लण्डी उस वक्त दया कहाँ थी जिस समय हमारा सारा परिवार गर्क कर दिया था। तब लक्ष्मी ने ब्राह्मण के चरण पकड़ लिये क्षमा माँगने लगी। ब्राह्मण ने कहा इस राजा से हमारा कुछ संस्कार है, इसको तुम्हें हम दे देंगे फिर लक्ष्मी दक्षिण देश के राजा के पास गई और जाकर कहने लगी कि तुम अमुक स्थान पर जाकर महात्मा की सेवा करो। वहाँ तुम्हारे राज्य में एक ब्राह्मण महात्मा आये हुये हैं उनकी सेवा कर उनको प्रसन्न करो तब उनसे कह देना जो आपकी शिला उठाने वाली है उसे हमें दे दो। जब तुम हमें ले आओगे तो मैं तुम्हारे राज्य में स्वर्ण की वर्षा करूँगी। तब महात्मा ने आते ही लक्ष्मी को फटकारा। तब लक्ष्मी ने चरण पकड़ कर क्षमा माँगी। महात्मा ने कहा फिर ऐसा नहीं करना। प्रातःकाल राजा उठे तब उस महात्मा को ढूँढने लगे। जब महात्मा मिल गये तब राजा ने दण्डवत प्रणाम किया। राजा महात्मा की सेवा करने लगे। एक दिन महात्मा प्रसन्न होकर कहने लगे, राजन्! कुछ माँगो। तब राजा ने कहा हे महाराज! जो आपकी शिला उठाने वाली हैं उसको हमें दे दो ब्राह्मण ने कहा जारी लण्डी आज हमने तुमको

छोड़ा। उसी वक्त महात्मा तो चल दिये। लक्ष्मी ने उस राजा के राज्य भर में स्वर्ण की वर्षा की तब राजा ने हुक्म दिया आज जिसके घर में जितना स्वर्ण पड़ा हो सम्भाल ले, दूसरे का न ले। बाकी स्थान का स्वर्ण राजा ने ले लिया।

१७.१२ शम्भू

एक महात्मा वन में बैठे हुए योगाभ्यास में रत थे। एक दिन उनकी पर्यटन करने की इच्छा हुई। तब वह महात्मा अपने आसन से चल दिये, चलते–चलते रियासत में आ गये। वहाँ का राजा उस दिन मर गया। जब उस राजा को श्माशान भूमि में ले गये, तब वह महात्मा वहाँ आ निकले। महात्मा ने पूछा–किसे तुम ले जा रहे हो। तब उन्होंने कहा हमारे इस देश का राजा शम्भू महाराज था, उसने पूर्व दिन में शरीर त्याग दिया है। उसे आज जलाने के लिये श्मशान भूमि में ले जा रहे हैं। उस महात्मा ने कहा, इस राजा को यहाँ लाओ। तब उन्होंने कहा–यहाँ ही लेकर आ रहे हैं। जब वहाँ से मुरदे को लेकर निकलने लगे तब महात्मा ने सोचा, यहाँ का राज्य हम करें। तब महात्मा ने मुरदे को नीचे रखवा लिया। तब महात्मा ने कहा, हम मर जायें और राजा तुम्हारा जी पड़े, उन लोगों ने कहा महाराज इससे बढ़कर और क्या काम करना अच्छा है, महात्मा का शरीर परस्वार्थी होता है। तब महात्मा ने कुछ पढ़ कर जल का छींटा उनके ऊपर दिया, तब अपने शरीर को छोड़ कर राजा के शरीर में प्रवेश हो गये। तब राजा उठ बैठा और महात्मा का शरीर उठवा कर गंगा में डाल दिया। तब महाराजा शम्भू वह राज्य करने लगा। लोगों को इस बात का पता न लगा। तब उन्होंने राजा बनकर कई वर्ष तक राज्य किया। तीन पाणि ग्रहण करवा लिये, तब उन रानियों को योग के कौतुक दिखाते रहा करें। एक रानी को कराने भी लग गये। सब को पता था कि देश का राजा शम्भू योगाभ्यासी है। योग से सत्या सत्य देख कर न्याय करते हैं। सब लोग राजा के भय से विपरीत धर्म के कुछ काम न करते थे। सब प्रजा आनन्द से रहा करती थी। ऐसे ही कई वर्ष व्यतीत हो गये। तब एक कनफटा योगी वहाँ आ निकला वह योग को भी जानता था, उसके मन में आई, इसका राज्य हम छीन लें और हाथ में शुक को लिये हुये राजा के पास चला आया। तब उसने राजा को कहा, मैंने देखा है कि तुम पूर्ण योगिराज हो, तुम हमें योग का कौतुक दिखलाओ, हम तुम्हें दिखालाते हैं। तब शम्भू महाराज ने कहा चलो शिवालय में चलें, वहाँ जाकर हमारी परिक्षा लेना, हम तुम्हारी लेंगे। तब वह दोनों शिवालय में चले गये। तब योगी कनफटे ने कहा, तुम हमें इस शुक में प्रवेश कर बतलाओ। तब राजा ने कहा लाइये उस शुक्र को। तब योगी ने शुक्र को मार कर राजा के आगे रख दिया। राजा उस ही समय शरीर त्याग उस शुक्र में प्रवेश हो गये। तब उस योगी ने शरीर में प्रवेश किया। शिवालय का दरवाजा तो बन्द था, वह योगी उस तोते को मारने लगा। शम्भू राजा को उस समय ज्ञान न रहा। आगे–आगे शम्भू पीछे–पीछे योगी भागते फिरते रहे। देखो मरने वाला तो था ही नहीं अज्ञानता के वश वह दोनों ही भागते रहे। तब वह योगी शुक् को त्याग राज महल में गया, और किसी ने नहीं पहचाना। उस राजा की स्त्री हीरावती बुद्धिमान कुछ योग के भी साधन करती थी। उसने पहचान लिया कि यह हमारा राजा नहीं है। तब हीरावती ने उन दोनों रानियों को भी समझा दिया। यह तीनों ही उसके कहने में न रही। तब उस योगी ने वह रानियाँ जो शम्भू राजा ने आप पहिले ब्याहीं थी उनके पास चला गया, तब राज्य करने लगा और हुक्म दे दिया, जो तोते को पकड़ लाये उसे उतने ही रूपये मिल जायेंगे, सैकड़ों तोता नित्य मरने लगा। तब हीरावती ने एक दिन सुना कि सैकड़ों तोते प्रति दिन मरते हैं इसका क्या कारण है ? यह बात उसने जानली कि

हमारा राजा किसी तोते के क्लेवर में पड़ा है, शुकों को हम भी पकड़-पकड़ कर मँगवाएँ। तब उसने गोलियों को भेजा कि तुम्हें जितने तोते मिलें ले आओ, तब गोली शहर में तोता ढूंढ़ने के वास्ते गई तो शहर में कोई तोता न मिला, लोगों ने कहा, तोता घर में रखने का हुक्म नहीं है। दुनियाँ के तोते तो राजा ने मरवा दिये। अब तोते कहाँ से मिल सकते हैं। गोली ने आकर हीरावती को सम्पूर्ण हाल सुना दिया। तब हीरावती ने कहा हमारा राजा अभी तोते के शरीर में है उसे कहाँ अन्वेषण करें। तब दूसरी रानियों ने कहा तुम अपने मन को एकाग्र करके देखो तो सही कहाँ है। तब उसने देखा पड़ोस में ही एक स्त्री के पास पिंजरे में बाते कर रहा है। तब रानी उस स्त्री के घर में रात्रि को आप चली गई। उस स्त्री को जाकर धमका करके उस शुक को महल में ले आई। तब अपने महल में लाकर उस शुक को अन्य रानियों को दिखलाया। तब रानियों ने उस राजा को बुला भेजा। जब राजा आया तो हीरावती ने कहा कि तुम इस शरीर में कब आये हो। राजा ने कहा हे प्राणप्रिये मैं दूसरा नहीं हूँ, तुम क्यों भूलती हो ? तब हीरावती ने कहा, हमारा राजा तो दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता था, तुम हमें करके दिखलाओ। तब उस राजा ने कहा, यह तो क्या बात है, हम अभी करके दिखलाते हैं। तब राजा ने एक छाग मँगवाया, उसको मार कर उसके शरीर में आप प्रवेश हो गया तब हीरावती ने तोते को इशारा किया। शम्भू राजा शुक से निकल राजा के शरीर में प्रवेश कर गया। छाग को काट दिया।

१७.१३ सुकर्मा

गौड़ देश में ब्रज नाम का एक राजा शूरवीर और धीरवान था। उसकी स्त्री अति रूपा बुद्धिमान सुकर्मनि थी। धर्मात्मा राजा पुत्र की तरह प्रजा को पालता था। साधु-ब्राह्मणों का भक्त था। एक दिन उसने तीर्थों का महात्म सुना। सुनते ही चेटक लग गया, तीर्थ यात्रा को तैयार हो गया। संग में फौज खजाना हाथी घोड़ा लेकर तीर्थयात्रा करने चला। हर एक तीर्थ पर विधि से यज्ञ हवन हस्ति आदि दान करने लगा, ज्यों-ज्यों धन कम होता गया, त्यों-त्यों फौंजें व नौकर कम करता जाता था क्योंकि कई वर्षों का सफर था। अन्त में राजा रानी दोनों ही रह गये। न धन रहा न नौकर ही रहे। वे उस वक्त ऋषिकेश में आ पहुँचे वहाँ एक वन में महात्मा रहते थे, उनके पास रहने लगे और सेवा दिन रात करते रहा करें। महात्मा उनको कंदमूल खिला दिया करते थे। एक दिन महात्मा प्रसन्न होकर कहने लगे-हे राजन्! जो तुम्हें इच्छा हो सो माँगो। राजा ने कहा-कि महाराज! हम तीर्थ यात्रा करना चाहते हैं, अभी हमने सारे तीर्थ नहीं किये। महाराज ऐसी कृपा करो जिससे हमारे सारे तीर्थ हो जायँ। रानी ने कहा हे प्रभो! मुझे तो मोक्ष की इच्छा है, आप कृपा करके योग मार्ग में लगा दीजिये। महात्मा बोले अच्छा पुत्री तुम बुद्धिमान हो, तुम अच्छे मार्ग में चलती हो। तुम्हारा मोक्ष होगा। फिर राजा को महात्मा ने कहा-हे राजन! तीर्थों से सारी सृष्टि भरी पड़ी है, सारे तीर्थ कभी नहीं हो सकते और न आशा ही मिटती हैं। इसका यह फल है कि स्वर्ण की बेड़ी पड़ जाती हैं। उससे तुम छूटोगी नहीं। इस वास्ते तुम योग मार्ग में लग जाओ इसमें तुम्हारा कल्याण होगा। महात्मा ने बहुत समझाया परन्तु राजा नहीं समझा। रानी सुकर्मा महात्मा की आज्ञा शिरोधार योग साधन में लग गई। थोड़े ही काल में अन्धकार दूर हो गया। चौदह भुवन दिखने लग गये। कुछ दिनों बाद वो जाकर इन्द्रादि देवताओं के दर्शन करने लगी। ऐसे ही तीन लोक घूम आई। एक दिन सुकर्मा प्राणायाम कर रही थी। उसका आसन जमीन से उठकर आकाश में गया और फिर नीचे आ गया। राजा देखकर कुछ भी न बोला। जब आसन से उठी तो राजा ने पूछा तुम्हें आज क्या हो गया। तुमको मैंने आकाश में बैठी देखा। सुकर्मा बोली वह तो

सिर्फ प्राणायाम फल है। इसके आगे तो बहुत आनन्द है। सुकर्मा ने राजा को बहुत समझाया राजा न समझा क्योंकि राजा के अन्दर तीर्थों का फल भरा पड़ा था कि हमें स्वर्ग मिलेगा। फिर सुकर्मा ने सात दिन का स्वाँस चढ़ा लिया। राजा चार पाँच दिन तक देखता रहा पर सुकर्मा न उठी तो राजा ने जान लिया कि मर गई है। राजा ने मुख बाति दी और उठाय गंगा में फेंक दिया और कहने लगा अब छूटे। अब हम तीर्थ बड़ी अच्छी तरह से करेंगे इतना कह तीर्थ यात्रा करने को चल दिया। जब सुकर्मा को गंगा में फेंका उसी वक्त गंगा ने वो स्थान छोड़ दिया। सुकर्मा रेते में पड़ी रही। दो दिन के बाद सुकर्मा उठी और देखने लगी। मैं कहाँ आ गई और किसने मुझे यहाँ फेंक दिया। वहाँ से आकर स्थान पर देखा तो राजा भी नही है। ये क्या हुआ तब ध्यान लगा कर सारा हाल देख लिया। तब सुकर्मा ने सोचा कि राजा का सुधार करना चाहिए, तब सुकर्मा आकाश मार्ग से राजा के पीछे चली जाकर देखा तो जंगल में राजा चल रहा था। तब रानी ने विचार किया कि अगर मैं इस शरीर में उपदेश करूँ तो राजा नहीं मानेगा। उसी समय साधु का रूप धार कर उसके रास्ते में जा बैठी। योग माया से कुआँ, बगीचा, मंदिर बना लिया। जब राजा आया तो साधु मंदिर में बैठा देखा, देखते ही, चरणों में पड़ा। महात्मा ने आशीर्वाद दिया और कहने लगे अहो राजन् कहाँ जा रहे हो? इस जंगल में तेरा क्या काम है? राजा बोला तीर्थ यात्रा करने चला हूँ। महात्मा ने कहा इन रास्तों में शेर, हाथी रहते हैं, कोई इस शरीर का ग्रास कर जायगा तो तीर्थ कैसे होंगे? और तीर्थो से स्वर्ग मिलेगा, स्वर्ग में तुम्हें ईर्षा आदि दुख होवेंगें। राजा बोला हे महाराज स्वर्ग में चिन्ता केसी होती है। क्या ईर्षा दुःख स्वर्ग में भी होते हैं! महात्मा ने कहा चिन्ता गिरने की लगी ही रहती है। इर्षा उनसे होती है जिन्होंने उनसे ज्यादा तीर्थ यज्ञ-दान किये हों। उनको उनसे ज्यादा भोग, पदार्थ बाहन आदि मिलते हैं। उनको देख दुख पाते हैं। जब भोग भुगत जाते हैं तो फिर लोक में आकर मलमूत्र के थैले में उल्टा लटकते हैं। इसमें तेरा कल्याण नहीं हे। तू योग मार्ग में चल इसमें तेरा कल्याण होगा। महात्मा ने बहुत समझाया परन्तु राजा न समझा। सुकर्मा ने सोचा इस तरह ये मूर्ख नहीं समझेगा। यह भय से समझेगा। एक दिन महात्मा कंदमूल लेने गये और उन्होंने शेर का रूप धार कर सामने आ गये। राजा शेर देख घबराया और कहने लगा अब क्या करूँ। यदि मैं सुकर्मा से उड़ना सीख लेता तो इस वक्त उड़ जाता अब तो शेर खा जायेगा इतने में शेर ने पकड़ लिया खींचने लगा। राजा बेसुध हो गया सुकर्मा ने साधु का रूप धार करके राजा को कठिनता से जगाया। जब राजा जागा तो वह कहने लगा कि शेर आया, साधु ने जल पिलाय और होश में लाया। तो सुकर्मा ने कहा हे राजन अब क्या विचार है? अब मुझसे तीर्थ नहीं होंगे। मेरी स्त्री सुकर्मा उड़ना जानती थी मैंने उससे नहीं सीखा अब मैं क्या कर सकता हूँ। तीर्थ होने मुश्किल हैं। क्या आप उड़ना सीखना चाहते हैं? राजा बोला हाँ, आप कृपा करके ये साधन हमें करा दीजिये, मेरे तीर्थ हो जायेंगे। अब राजा योग साधन करने लगा। अष्टांग योग साधन कर लिया। तब राजा का सब भ्रम और अंधकार दूर हो गये। अब सुकर्मा ने देखा कि इसके ये साधन हो गये अब इसकी परीक्षा लेनी चाहिये। सुकर्मा ने कहा राजा अब तुम जाओ तीर्थ यात्रा करो। अब मुझे तीर्थ यात्रा करने की इच्छा नहीं अब मुझे इन कर्म के फल का ज्ञान हो गया, ये सब बन्धन हेतु हैं। एक दिन सुकर्मा और राजा दोनों विचरने लगे सुकर्मा ने अपनी माया से स्वर्ग वहाँ रच दिया। वहाँ की अप्सरा ने आकर राजा को साथ लेकर सारा स्वर्ग दिखाया फिर सुकर्मा ने इन्द्र का मन फेर दिया। इन्द्र कहने लगा, हे राजन ये स्वर्ग का तुच्छ आनन्द मैं नहीं चाहता, ये तो महाजाल है इसमें फँसा हुआ कई जन्मों में भी नहीं निकलेगा। ऐसा स्वर्ग हम नहीं चाहते और राजा स्वर्ग को त्याग कर सुकर्मा के साथ चले आये। सुकर्मा ने बहुत परीक्षा की, राजा नहीं डोला।

तब सुकर्मा ने कहा तुम ध्यान लगाकर देखो तुम्हारी सुकर्मा स्त्री कहाँ है ? राजा ने जब ध्यान किया तो सब जान लिया। ये साधु नहीं है ये सकुर्मा मेरी स्त्री है। तब सुकर्मा ने अपना असलियत रूप धार लिया। राजा ने सुकर्मा को कण्ठ लगाया लिया और कहा धन्य है। सुकर्मा बोली हे स्वामी कहो अब अपने राज्य में चलना है या यहीं रहना है। राजा बोला यहाँ से राज्य में क्या विशेष है ? तब सुकर्मा ने कहना मान लिया और उस वन में रहने लगे।

१७.१४ मर्यादा रानी

एक राजा हरेन्द्र राव शूरवीर था उसकी स्त्री मर्यादा नाम करके अत्यनत बुद्धिमान थी वह नित्य ही ठाकुर पूजन में लगी रहती थी उसकी एक दासी वरना नाम की थी वह एक महात्मा योगाभ्यासी के पास जाकर सेवा किया करती थी। महात्मा ने उसे योग मार्ग में लगा रखा था। तब एक दिन वरना दासी ने देखा कि रानी मर्यादा मूर्ति पूजन में और स्तोत्र पाठ में सब दिन खोया करती है। तब उसके मन में दया आ गई कि इस रानी को इस गढ़े से निकाल दें। तब उसने मार्यादा रानी को कहा तुम कुछ साधु संग किया करो, मैं देखती हूँ तुम कर्म–काण्ड में बह जाती हो। तब मर्यादा रानी ने कहा कि हमको क्या करना चाहिये यह मुझको बतलाओ। तब वरना दासी ने कहा, योग के बिना कोई भी मार्ग मोक्ष नहीं देता और तब तक जीव जन्मता मरता ही रहता है, इससे तुम योगाभ्यासी महात्मा देख कर उसे गुरु धारण करो ताकि तुम्हारा जन्म मरण कट जाय, नहीं तो यह जो तुम पूजन करती हो यह तो तुम अपने दुश्मन के हवाले अपने आप को करती हो। वह तुम्हारा शत्रु है जिसने पाँच चोर तुम्हारे पीछे लगा दिये हैं। ऐसा गुरु योगी होय तो उनसे छुड़ा डाले। फिर भी वह तुम्हारा शत्रु कैसा है जिसने तुम्हें कुटुम्ब जाल में फँसाया है। फिर वह तुम्हारा शत्रु कैसा है। जिसने रोग और भोग तुम्हारे वास्ते पैंदा कर दिया। फिर भी वह कैसा है कि अपना आप तुम्हारे से छिपा लिया है। ऐसे शत्रु को योगाभ्यासी महात्मा पकड़ कर सीधा कर देते हैं कोऽर्थः योगरूपी साधन से स्वयं परमात्मा ही हो जाता है। तब जो–जो उसने शत्रुता करके तुम्हारे कष्ट देने के वास्ते उत्पन्न की है उनको योग कृपाण से काट कर मोक्ष के देने वाले परमात्मा प्रिय बना देते हैं। तब मार्यादा रानी ने कहा कि यदि तुमको मेरे ऊपर परोपकार करना है तो मुझे ऐसे महात्मा के दर्शन करवाओ। महात्मा योगाभ्यासी उसके राज्य में रहते थे। उन महात्मा की वरना दासी स्तुति करने लगी, तब मर्यादा ने कहा तुम जाकर उन महात्मा जी को ले आओ। तब वरना दासी ने कहा तुम एक दिन अन्य महात्माओं को निमंत्रण के वास्ते बुलाओ तो मैं उनको किसी न किसी उपाय से ले आऊँगी। तब उन्होंने एक दिन ठहरा दिया, उस दिन अन्य महात्माओं को भी बुला लिया तब वरना दासी उस महात्मा योगाभ्यासी अपने गुरु को जाकर बड़े आदर से कहने लगी कि महाराजाओं के ईश्वर मेरे प्रभु आपके चरणों की दासी आपके चरणों की प्यासी इस राज्य की महारानी आपका दर्शन करना चाहती है आप कृपा करके निजदासी की प्रतिज्ञापूर्ण करो, तब महात्मा ने कहा कि वह इतनी प्यासी है तो यहाँ ही आ जाती। तब वरना ने कहा महाराज यहां के अन्य साधु भी वहाँ स्थित हैं आपकी दासी की भी यही आशा है कि मेरी प्रतिज्ञा आप पूर्ण करेंगे, इतना कह कर चरण पकड़ लिए। तब महात्मा योगाभ्यासी वरना के साथ चल पड़े तब राजमहल में पहुँच गये, जो आगे बैठे थे सबने उठकर प्रणाम किया। तब महारानी आकर चरणों पर गिर पड़ी और कहने लगी कि देवन के देव मेरे प्रभु दासी पर कृपा कर के अपने चरणों में लगा लीजिये और मुझ लायक जो सेवा हो, उसको कह दीजिये। मुझे जन्म मरण के कष्ट से छुड़ा दीजिये। तब महात्मा उस

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

रानी मर्यादा के दीन वचन सुन कर प्रसन्न हो गये और कहने लगे अच्छा पुत्री तुमको जो कुछ हम साधन कहेंगे, उनको तुम कर लिया करना। तब रानी मार्यादा ने कहा कि मैं और मेरा बलवीर पुत्र भी आपकी आज्ञा पालन करेंगे जो कुछ आप कहेंगे। तब रानी ने अपने बलवीर पुत्र को बुला कर महात्मा के चरणों में लिटा दिया। तब महात्मा ने उन दोनों को योग मार्ग में लगा दिया। महात्मा निज स्थान पर चले गये। अन्य जो साधु सन्यासी थे उन्होंने बलवीर कुमार को रूद्राक्ष और त्रिपुंड तिलक लगाना सिखा दिया। रानी मर्यादा, बलीवर कुमार दोनों आपना साधन करते रहे। एक दिन बलवीर कुमार राज्य सभा में गया तब राजा हरेन्द्र अपने पुत्र बलबीर को देख कर कहने लगा, ए साधिनी के पुत्र साधु! तुम्हारा यहाँ आने का क्या काम है ? तुम यहाँ से चले जाओ। बलवीर कुमार वहाँ से लौट आया और सम्पूर्ण हाल कह सुनाया। तब रानी मर्यादा ने अपना वजीर बलवीर के सुपुर्द कर दिये। वलवीर ने राजा से मिलना छोड़ दिया। तब हरेन्द्र राजा क्रोध कर कुछ भृत्य साथ लेकर बलवीर को मारने के वास्ते चला। वहाँ बलवीर को खबर हो गई तब उसने विचारा क्षत्री जो युद्ध से पीछे हटता है तो उसका धर्म नष्ट हो जाता है, तब उसने कृपाण पकड़ युद्ध करने के वास्ते उस महात्मा जी का ध्यान धर कर चल पड़ा। जाते ही उन भृत्यों को मार राजा बाँध लिया। तब मंत्री ने आकर छुड़ा दिया। हरेन्द्र राजा तब अपनी स्त्री मर्यादा के पास पहुँचा तब उसके मन्त्री ने आकर कहा, स्त्रियों के ऊपर शस्त्र उठाना क्षत्री धर्म नहीं है तब वह लौटा कर ले गया। तब राजा के भृत्यों ने हस्ती को उसके मकान में छोड़ने की आज्ञा दी तब राजा के भृत्यों ने हस्ती को लाकर छोड़ दिया। तब हस्ती ने उन्हीं भृत्यों को मार दिया। जब मर्यादा रानी मकान से बाहर निकली तब हस्ती ने मर्यादा रानी को प्रणाम कर आगे बैठ गया। तब मर्यादा ने हस्ती को आशीर्वाद दिया और मकान के अन्दर चली गई। तब वह हस्ती हरेन्द्र राजा के पीछे भागा तब हरेन्द्र राजा दुहाई देने लगा। तब हस्ती ने उसे छोड़ दिया। जो पुरूष मर्यादा के विपरीत थे, उनको मार दिया। तब हरेन्द्र राजा मर्यादा के पास आकर सविनय क्षमा माँगने लगा। एक दिन हरेन्द्र राजा मित्र राजा के साथ दोनों शिकार खेलने के वास्ते चले गये तब सैना तो पीछे रह गई और वह दोनों सिंह के पीछे चले गये। जब चलते–चलते रात्रि हो गई तब उन्होंने एक वृक्ष के नीचे डेरा डाल दिया। जब अर्ध रात्रि हुई तो अत्यन्त वृष्टि और वायु चलने लगी। हरेन्द्र राजा का मित्र सर्दी से व्याकुल हो गया तब उसने कहा कि भ्राता इस समय कोई उपाय करो। तब हरेन्द्र राजा ने कहा और तो कोई उपाय नही हो सकता हमारी रानी देवता स्वरूप है वह हमारी इस समय रक्षा करे तो हो सकती है और कोई उपाय नहीं है। तब वह दोनो हाथ जोड़ा कर विनती करने लगे तब उस ही समय रानी मर्यादा सामने खड़ी हो गई और दोनों का श्रम जाता रहा तब वह आराम से बैठ गये जब प्रातः काल हुआ तब वह दोनों चल पड़े। चलते–चलते किसी और राजा के राज्य में चले गये। तब उस राजा का लड़का जंगल में मारा गया था, तो उस राजा की सेना मारने वालों को ढूंढते फिरती थी, वह वहाँ आ निकली। उस सेना ने उनको पकड़ लिया और कहने लगे यही मारने वाले हैं इनका सिर उतार कर राजा के पास ले चलें। जब उन्होंने यह बातें सेनापति की सुनी तब दोनों मर्यादा रानी का स्मरण करने लगे। इतने में मर्यादा रानी वहीं आ गई। जो पुरूष उन्हें मारने के वास्ते तत्पर हुये थे। उनकी तलवार छीन कर उन्हें ही काट गिराया और सेनापति को अन्धा कर जमीन पर गिरा दिया। बाकी सब सेना भाग गई, तब वे दोनों वहाँ से चलने लगे। तब सेनापति ने जान लिया कि यह कोई भक्त हैं यह मैंने कर्म का फल पाया। जब अपने राज्य में आये तो हरेन्द्र के मित्र ने कहा पहले मर्यादा का दर्शन कर के अपने राज्य में जाऊँगां। तब वह मर्यादा का दर्शन कर स्वस्थान को चला गया।

१७.१५ मोह पर

एक क्षत्री बद्रीनारायण की यात्रा करने को गया। वह रास्ते के मध्य में जाकर भूल गया। भूलते-भूलते बड़े भारी जंगल में चला गया। जब उसको कोई रास्ता न मिला तो वह भूख का मारा रोने लगा इतने में एक महात्मा वहाँ से निकले। उन्होंने कहा बच्चा क्यों रोते हो। तब वह क्षत्री बोला कि महाराज मैं रास्ता भूल गया हूँ तब महात्मा उसे अपने आश्रम में ले गये। वह क्षत्री उनकी सेवा करने लगा और महात्मा उसको कंदमूल खिला दिया करें। एक दिन महात्मा के मन में दया आ गई। महात्मा ने उसे योग साधन में लगा दिया। फिर महात्मा इस क्षत्री को कहने लगे कि बच्चा आँखे बन्द करो और अपने पितरों को देखो किस योनि में हैं। महात्मा ने दिव्य दृष्टि दे दा। उस क्षत्री ने आँखे बन्द कर लीं तब क्या देखता है कि हमारा पितामह हमारे घर में गौका बच्चा बना हुआ है। तब उसने पूछा तुम्हारा क्या हाल है। बच्चा बोला हम मजे में हैं तुम हाल बताओं और आगे हमें लगाओं, हम तुम्हारा काम करेंगे। तब उसने मातामही को देखा तो वह हमारे घर में कुतिया बन कर बैठी हुई है। तब क्षत्री ने पूछा, मातामही तुमने ऐसा जन्म क्यों लिया है ? तब उसने कहा मैं तुम्हारे घर की रक्षा करने के वास्ते बैठी हूँ। तब वह अपनी माता जी को देखने लगा, क्या देखता है कि अपने घर में सर्पिनी बन कर धन के ऊपर बैठी हैं तब पूछा हे माता! तुम इस योनि में कैसे आई ? तब उसने कहा तुम्हारे पिता ने हमें रूपया लाकर दिया हुआ था वह रूपया मैंने यहाँ गाढ़ा था इस धन में हमारा ध्यान रह गया, क्योंकि मेरी मरने के दो चार दिन पहले से ही जबान बन्द रही। इस वास्ते तुम्हारे पिता और तुमसे न कह सकी, और तुम्हारे साथ मोह था इस वास्तें तुम्हारे घर में आ गई तब वह अपने पिता को देखने लगा कि हमारा पिता कहाँ है ? जब देखा तो हमारी स्त्री के गर्भ में पड़ा हुआ है उसका सर नीचे को टागों के बीच मैं नाड़ियों से बँधा है और मल का भरा हुआ है और बहुत चिल्लाता हुआ देखा। तब इसने पूछा कि हे तात्! यहाँ तुम कैसे आये और ऐसे तुम क्यों लिल्ला रहे हो। तब उसने कहा कि तुम्हारे मोह ने यह हमारी दुर्दशा की है कि मुझे इस गंदे अंधे कूप मैं रस्सों से बाँध कर उल्टा लटका दिया है। मैं वह पुरूष था कि त्रिकाल सन्ध्या और ठाकुर पूजन करता। कभी मलेच्छ के पानी की छींट पड़ जाती तो सहित अम्बरों के स्नान करता और गंगा जल पीकर शुद्ध होता था। अब देखो कि मल-मूत्र वाहिनी नालियों में एक मल माँस के थैले में नाड़ियों से बाँधकर घेरा हुआ हूँ। मेरे सभी रन्ध्र मल से बन्द है सुख पूर्वक स्वाँस भी नहीं निकलता अब मैं इस कष्ट से चिल्ला रहा हूँ और ईश्वर से प्रार्थना हर समय कर रहा हूँ। यह बातें देखसुन कर उस क्षत्री का शरीर काँपने लगा। महात्मा के चरण पकड़ कर क्षमा माँगने लगा। तब महात्मा ने कहा तुम्हारी तो इच्छा घर में जाने की हुई थी, अब तुम क्षमा क्यों माँगते हो ? तब उस क्षत्री ने कहा कि महाराज! तुम्हारी माया के मैं वश हुआ घर जाने की आशा करता था और आपको तो मैंने कहा ही नही है। इतना कह कर महात्मा के चरण पकड़ लिये और कहने लगा कि मुझको दास जान कर कृपा कीजिये और मेरी शिखा सूत्र लेकर मुझे सन्यास दे दीजिये। इतना कह कर महात्मा तो चुप रहे, उसने अत्यन्त सेवा करनी आरम्भ कर दी। तब एक दिन महात्मा प्रसन्न होकर कहने लगे कि बच्चा जो तुम्हारी आशा है सो माँगो हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। तब क्षत्री ने कहा कि हमारे पितामह हमने देखे, उस समय वृषभ की योनि में पड़े थे और मातामही स्वानि की योनी में पड़ी हुई थी। आप कृपा कर उनका उद्धार कर दीजिये, जो कि मुझ पर प्रसन्न हो तो। महात्मा ने कहा तथास्तु। तब थोड़ी देर के बाद पुष्प विमानों में विराजमान हुये वह कहते जाते थे कि पुत्र तू धन्य है, धन्य है। ऐसा कह कर वह जाते हुये देखे, इतना देख उसने साधु के चरण पकड़ लिये।

१७.१६ मंगल बध ज्ञानी

एक महात्मा वेदान्ती फिरते–फिरते एक शहर में आ गये। वहाँ आन कर टिक गये। उन्होंने आनकर वेदान्त की कथा करनी आरम्भ कर दी। वहाँ पर पुरूष स्त्री सब आ कर सुनने लग गये। एक क्षत्री मंगल उनका परम भक्त बन गया। उस महात्मा ने उनको उपदेश किया और कहा, ''एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति'' ऐसे वाक्यों को उपदेश करते रहे। तब महात्मा तो चले गये, वह भक्त क्षत्री वेदान्ती के ग्रन्थ देखता रहा। देखते–देखते उसको होना तो था ज्ञान परन्तु अज्ञान हो गया। अब उसने हर एक पुरूष ,स्त्री बालक से सीधी तरह बोलना बन्द कर दिया। कोई पूछे तुम कहाँ रहते हो वह कह दे हि हम सर्वदेश में रहते हैं। कोई पूछे क्या खाते हो तो वह कह दे कि हम खाने वाले नहीं हैं। कोई पूछे तुम्हारे लड़के कितने हैं तो वह कह दे कि सृष्टि मात्र ही मेरा लड़का है। हम निष्क्रिय हैं। हम हर एक भक्ष्याभक्ष्य भक्ष्य कर सकते हैं और राम कृष्ण भी मुझ से ही थे, क्या कृष्ण से हम कम हैं, क्या कृष्ण जैसे भोग हम नहीं भोग सकते ? किसी पोथी थोथी को हम जानते ही नहीं, जो मन में आई वही बातें, ब्रह्मज्ञानी जो नहीं कहते ऐसा वह अज्ञानी कहने लगा। मन में तो ये होता कि किसी तरह सुख भोगें। जहाँ तक चली वहाँ तक चलाई अन्त में एक महात्मा ज्ञानी मिल गये। उनके साथ वह शास्त्रार्थ को तैयार हो गये। शास्त्रार्थ का पूर्व पक्ष करने को कटिबद्ध। जब वह गये तो इसने कहा तुम क्या कर रहे हो। वह महात्मा चुप रहे कुछ उत्तर न दिया। वह महात्मा समाधिस्थ थे। इसने बहुत सी बातें की इतने में वह महात्मा आसन पर से उठे। तब उसने पूर्व पक्ष में यह कहा कि तुम क्या वक ध्यान लगा कर बैठे हो। महात्मा ने कहा हम समाधिस्थ थे। तो वह अज्ञानी बोला समाधि में क्या रखा है ? ऐसा कहने लगा। महात्मा ने कहा 'महानन्द' परम्परा से देव मुनि कहते आये हैं। वह बोला एक मल त्यागा जाय उसमें भी समाधि का आनन्द आ जाता है। देखो तुम ये कर्म छोड़ दो, ये अच्छे कर्म नही है। हम तो कृष्ण की तरह सभी भोग भोगते है। क्या हम में और कृष्ण में कुछ फर्क है ? महात्मा ने सोचा यह वेदान्तियों का सार न समझ कर ज्ञानी बना हुआ अज्ञानी फिरता है। अच्छा इसको कुछ कहना चाहिये। महात्मा ने कहा तुमने कुछ साधन किया है। बद्ध ज्ञानी ने उत्तर दिया हम तो निष्क्रिय हैं क्या हमें भी क्रिया है ? देखो तुम इन कुकर्मों का फल जरूर भोगोगे, महात्मा ने कहा, फिर नरक चौरासी लक्ष्य योनि भोगोगे। तो बद्ध ज्ञानी ने कहा क्या उसमें कोई कष्ट है ? नहीं नहीं उसमें कोई कष्ट नहीं। जो विष्ठा में कीड़ा होता है, उसे भी मारने की चेष्टा करो तो वह भी अपनी जान बचाने को भागता है, इस वास्ते, तुम तो मनुष्य हो क्या तुम कुछ नहीं जानते, उसमें क्या कष्ट है। तब महात्मा ने सोचा यह तो कुपात्र हो गया, इस वास्ते इसका त्याग ही अच्छा है। महात्मा तो चल दिये क्योंकि उन्हें क्या जरूरत थी। एक दिन बद्ध ज्ञानी बीमार हो गया और चिल्लाने लगा तो लोगों ने कहा भगत जी कुछ इलाज कराओ। उसने कहा इलाज करते तो तीन दिन हो गये अब तो मर जावेगे इतना कह कर रोने लगा। लागों ने कहा आप तो कहते थे कि हम मरने वाले नहीं हैं तो आप कैसे मर जाओगे, क्या तुम अब मरने वाले हो। उसने कहा इस वक्त ऐसी बातें न करो, मैं मरने लगा हूँ और मुझे ज्ञान सिखाते हैं। यह तो ठगों की बातें हम नित्य करते हैं। उनका फल अब हम भोग रहे हैं। लागों ने कहा तुम्हें क्या बीमारी है तो उसने कहा यह देखो बड़े–बड़े लम्बे दाँत वाले भयंकर स्वरूप हमें लेने वास्ते आये हुए हैं। ज्वर तो है ही लोगों ने कहा तुम तो ब्रह्म हो दूसरा है ही नहीं अब तुम्हें दूसरे भयंकर स्वरूप क्यों भासते हैं ? उस ज्ञानी ने कहा अरे भाई मैंने तुमको पहिले कह चुका हूँ कि हमें इन यमदूतों से बचाओ, मैं भूल गया फिर पीछे ऐसी बाते नहीं करूँगा। उन लोगों ने वैद्य को लाकर

उसका इलाज करवा दिया। वह राजी हो गया। तब वह वैसे ही फिर ''अहं ब्रह्म'' कह कर वही उपद्रव करने लगा। फिर लोगों ने कहा अमुक आदमी ज्ञानियों की नकल से अत्याचार कर रहा है। राजा ने उसका सबहाल लोगों से पूछकर पता लगाया तो वे ज्ञानी झूठे निकले जब उसकी तलाशी ली तो और लागों का माल मदिरादि उपद्रवों की वस्तु निकलीं और यह साबित हुआ ये चोरी करता है। तब राजा ने उस ज्ञानी को कारागृह में बन्दकर दिया काकभुषुण्डजी गरूड़ से कहते हैं, हे खगेश कलियुग में अपार कष्ट मनष्य भोगेंगे तब गरूड़ ने कहा कि महाराज क्या कारण होगा। तब कागभुषुण्डी ऋषि बोले, गुरु सत्य वक्ता न होंगे और न किसी को पात्र कुपात्र देख कर शिक्षा देंगे। गुरु जो होंगे वह शिष्य का धन और कीर्ति हर लेगें परन्तु शोक नही हरेंगे। ऐसे गुरूओं का घोर नरक में बास होता है। वह गुरु ब्रह्म ज्ञान साधन से कुपात्रों को उपदेश करेंगे। तब कलियुग में कोई भी पुरूष स्त्री ब्रह्म ज्ञान बिना दूसरी बात ही नहीं करेगा। भीतर से माया में और विषयों में फँसकर एक कौड़ी के बदले विप्र, गुरु, गौ, घात कर देंगे।क्योंकि वह निरलेष अपने को मानते हैं और उनमें तरखान, जाट, धींवर, छीवे आदि ऐसे नर कपटी शील, ब्राह्मण क्षत्रियों से पैर पुजवावेंगे। उनके दोनों लोक नाश हो जायेंगे क्योंकि भीतर से कपट करने वाले, ममता में लिपटे हुए, द्रोह करने में चतुर पर स्त्रियों से लम्पट हो कर वर्णशंकर उत्पन्न होगें।

समाधिः फल मुदिष्टं घार्णा ध्यानाकैरपि।
प्रत्यक्षं ब्रह्म विज्ञानं सविकल्पमथ परम्।।
न तु योग मृते शक्या प्राप्तुं सा परमागतिः।
अव वंधो हि बद्धस्य कर्मभिर्नोपपद्यते।।
योग मे कं विहायाय मानं दात्मा महेश्वरः।
नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।।

१८ सिद्धयोग परम्परा के कृपामयी संस्मरण

आनन्दकन्द योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज शक्तिपात योग-दीक्षा देते थे। इस दीक्षा द्वारा स्वयं श्री सद्गुरुशक्ति शिष्य में प्रविष्ट होकर शिष्य के आध्यात्मिक-स्तर के अनुरूप स्वयं अन्तः क्रिया प्रारम्भ करती है और गुरुमंत्र के जपने से क्रमशः अन्तःकरण शुद्ध होता जाता है। अज्ञान का आवरण हटता जाता है तथा साधक स्वयं में तथा विश्वात्मा में अभेद अनूभूति करके धन्य हो जाता है। पारस तो केवल लोहे को सोना ही बनाता है, पारस नही। किन्तु सिद्धों के महासिद्ध परब्रह्म अवतार प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की असीम कृपा-शिष्य को सिद्धपुरुष ही बना देती है। ऐसे कृपामय सिद्धयोग परम्परा के प्रकाशित परमात्म सत्ता के दो दिव्य स्वरूप :-

सद्गुरुदेव पं० रामलाल जी महाराज
(जटाधारी स्वरूप)

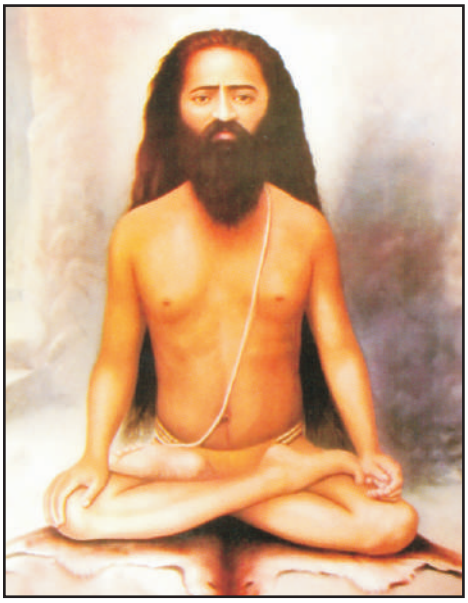

आकाश मार्ग द्वारा सुमेरु पर्वतसे वापसी पर
(ई० सन् 1911)

सद्गुरुदेव पं० रामलाल जी महाराज
(गृहस्थी स्वरूप)

अन्तिम गुरुपूर्णिमा पूजन उत्सव पर
(12 जुलाई, 1938)

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

१८.१ योगेश्वर प्रभु राम के योगसिद्धांतों को परिपुष्ट करने वाले सदुपदेश

शिवोपमाय पूज्या वद्धभ्रूरुहशोभिने।
यतयेयोगमतये नमो में ज्ञानवोधिने।। 1

मैं राम लाल शिव को नमस्कार करता हूँ। फिर वे कैसे हैं कि लम्बी है भ्रूलता जिनकी पुनः वह भ्रूलता कैसी हैं कि जो शोभायुक्त हैं फिर भी शिव कैसे हैं कि जिसने योगियों को भी जीत लिया है फिर भी वे शिव कैसे हैं जिन्होंने मुझे ज्ञान दिया है ऐसे उनके लिए प्रणाम स्वीकार हो।

कैलास शिखरे रम्ये गौरी पृच्छति शंकरम्
गुह्यादगुह्यतरं गुह्यं कथयस्व महेश्वरः। 2

पवित्र कैलाश शिखर पर श्री पार्वतीजी शंकर जी से पूछती हैं कि मुझे आप गुह्यात्गुह्यतर ज्ञान का उपदेश दें।

कैलासे शोभनतरे उमा पृच्छति शंकरम्
अत्यनतसुगमं ह्याशुमुक्तिं कथय में प्रभो। 3

अति शोभनतर कैलाश पर्वत पर भगवती उमा भगवान शंकर से पूछती हैं कि शीघ्र मुक्ति देने वाला उपाय आप मुझे बतायें।

कैलासेऽतिशुभे शैले गौरी पृच्छति शंकरम्
मुक्ति मार्गंतु मेब्रूहि शीघ्रसिद्धि करं प्रभो। 4

अति शोभित कैलाश पर जगदम्बा गौरी भगवान शंकर से पूछती हैं कि शीघ्र सिद्धि दाता मुक्ति मार्ग आप मुझसे कहें।

मुक्तस्यानुभवं विद्धि शीघ्रं मतस्तु पार्वति!
सद्ज्ञानेन भवेन्मुक्तिः पापिनामपि साधिके। 5

भगवान शंकर कहते हैं कि हे पार्वती सद्ज्ञान के द्वारा पापियों की भी मुक्ति हो जाती है।

इदानीं कथयिष्यामि मुक्तस्यानुभवं प्रिये!
यज्ज्ञात्वा लभते मुक्तिं पापयुक्तोपि साधकः। 6

भगवान शंकर कहते हैं कि हे प्रिये अब हम मुक्तों के अनुभव कहते हैं, जिस को जान कर पापी साधक भी मुक्ति पा जाते हैं।

सत्यं केचित् प्रशंसन्ति तपःशौचं तथा परे!
क्षमां केचित् प्रशंसन्ति तथैव सम आर्जवम्। 7

मुक्ति के लिये कोई सत्य की प्रशंसा करते हैं व कोई तप, शोच, क्षमा की, कोई समत्व एवं आर्जवता को कहते हैं।

केचिद्दानं प्रशंसन्ति श्राद्धकर्म तथा परे!
शंसन्त्युपासनां केचित् केचित् वैराग्य मुत्तमम्। 8

कोई–2 दान, श्राद्ध कर्म, उपासना व वैराग्य को उत्तम बतलाते हैं।

मंत्र योगं प्रशंसन्ति केचित्तीर्थनुसेवनम्!
एवं बहूनुपायाँस्तु प्रवदन्ति विमुक्तये। 9

कोई–2 मन्त्र योग, तीर्थ सेवन आदि विविध उपायों को मुक्ति के लिये बतलाते हैं।

एवं व्यवसिता लोके कृत्याकृत्यविदोजनाः!
व्यामोह मेव गच्छन्ति विमुक्ताः पापकर्मभिः। 10

इस प्रकार नाना बिध विचारों में ग्रसित व्यक्ति पाप कर्मों से मुक्त होने पर भी मोह में ही पड़े रहते हैं।

एतन्मतावलम्बी यो लब्ध्वा दुःखानि पुण्यके!
भ्रमतीत्यवशः सोऽत्र जन्ममृत्युपरम्पराम्। 11

इस प्रकार के विचारों का अवलम्ब लेकर मुनष्य विवशता से जन्म मरण के चक्रों में पड़ें रहते हैं।

एते चान्येच मुनिभिःसंज्ञाभेदात् पृथग्विधाः!
मताः शास्त्रेषु कथिताः लोकव्यामोहकारकाः। 12

अनेक मुनियों ने और भी अनेक मत शास्त्रों में संशय पैदा करने वाले कहे हैं।

एतद् विवाद शीलानां मतं वक्तुं न शक्यते।
भ्रमन्त्यस्मिन् जनाः सर्वेमुक्तिमार्गबहिष्कृताः 13

इस प्रकार के विवादों में पड़े हुये व्यक्तियों के मत कहे नहीं जा सकते, ये सब मुक्ति मार्ग को छोड़कर भ्रमित हो रहे हैं।

यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति निश्चितम्।
तस्मिन् परिश्रमःकार्यः किमन्यच्छास्त्रभाषितम्। 14

शास्त्रों के अनेक विचारों से क्या अर्थ जिसके जानने पर सब कुछ जाना जाता है उसी का प्रयत्न करना सर्वथा उचित है।

योगशास्त्रमिदं गोप्यम् अस्माभिः परिभाषितम्।
सुभक्ताय प्रदातव्यं त्रैलोक्ये च महात्मने। 15

भगवान शिव कहते है कि यह हमारा बतलाया योग शास्त्र परम गोप्य है तीन लोक में किसी पवित्र विचार वाले भक्तात्मा को बतलाना चाहिये।

न स्थिरं क्षणमप्येकं उदकंच यथोर्मिभिः।
वाताहतं तथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत्। 16

जिस प्रकार वायु से हिलाया हुआ जल स्थिर नहीं हो पाता है इसी प्रकार चित्त भी चंचल रहता है उसका कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये।

अप्यब्धिपनान्महतः सुमेरुन्मूलनादपि।
अपि वन्ह्यशनात् साधो ! विषमश्चित्तनिग्रहः। 17

समुद्र पीया जा सकता है, सुमेरू उखेड़ा जा सकता है, अग्नि पानी किया जा सकता है किन्तु चित्त निग्रह अति कठिन है।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनेनुविधीयते
तदस्य हरित प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि। 18

जिस प्रकार वायु जल में नाव, को विचलित कर देता है, इसी प्रकार इन्द्रियों का अनुगामी मन बुद्धि को हर लेता है।

यथा निरिन्धनो दीपः स्वयमेवोपशाम्यति
तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्बयमेवोशाम्यति। 19

जिस प्रकार तेल बत्ती आदि के बिना दीपक स्वयमेव शान्त हो जाता है, इसी प्रकार वृत्तियों के क्षय होने से चित्त स्वयमेव शान्त हो जाता है।

द्विविधःकर्मकाण्डःस्यात् निषेधविधिपूर्वकः
निषिद्धकर्मकरणेपापं भवति निश्चितम्
विहिते कर्मणि कृते पुण्यं भवति निश्चितम्। 20

निषेद विधि आत्मक दो प्रकार का कर्म काण्ड है, निषिद्ध कर्म करने से पाप होता है व विहित कर्म करने से पुण्य होता है।

पुण्यकर्मणि वै स्वर्गो नरकः पापकर्मणि
कर्मबन्धमयी सृष्टिर्नान्यथा भवति ध्रुवम्। 21

पुण्य कर्मों से स्वर्ग व पाप कर्मों से नरक मिलता है, यह सृष्टि कर्म बन्धमयी है यह बिल्कुल निश्चित है।

पापकर्मवशादुःखं पुण्यकर्मवशात् सुखम्
तस्मात्सुखार्थी विविधं पुण्यं प्रकुरुते ध्रुवम्। 22

पाप कर्मों से दुःख व पुण्य कर्मों से सुख मिलता है, इसीलिये सुख चाहने वाले सभी प्राणी पुण्य कर्मों में लगे रहते हैं।

पापभोगावसाने तु पुनर्जन्म भवेत् खलु
पुण्यभोगावसाने तु नान्यथा भवति ध्रुवम्। 23

यह बिल्कुल निश्चित है कि पाप व पुण्य के भोगावसान पर मनुष्य जन्म मिलता है।

पुण्यस्य फलफलामिमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्तिमानवाः
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः। 24

अश्चर्य यह है कि मनुष्य पुण्य के फल को चाहते हैं किन्तु पुण्य नहीं करते–पाप के फल को नहीं चाहते किन्तु पाप करने में लगे रहते हैं।

स्वर्गेपि दुःखसम्भोगः परस्त्रीदर्शनाद् ध्रुवम्
ततो दुःखमिदं सर्वं भवेन्नास्त्यत्र संशयः। 25

क्योंकि स्वर्ग में भी पर स्त्री दर्शन से दुख ही होता है अतः यह स्वर्गादि भी सब दुखमय हैं।

नच तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्नचेज्ययागतिं
गन्तुं द्विजाःशक्ता योगात् संप्राप्नुवन्तियाम्। 26

जिस गति को मनुष्य योग से प्राप्त कर लेता है यह तीव्र तप, स्वाध्याय, व यज्ञादियों से नहीं प्राप्त की जा सकती ।

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपंजरम्
प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति। 27

क्योंकि योगाग्नि अशेष पाप पंजर को जल्दी ही जला देती है अतः निर्मल ज्ञान को पाकर निर्वाण पद को पा लेता है।

योगात्संप्राप्यते ज्ञानं योगो धर्मस्य लक्षणम्
योगः परं तपोज्ञेयः तस्माद्योगं समभ्यसेत्। 28

योग से ज्ञान प्राप्त होता है, योग ही धर्म का लक्षण है व योग ही परम तप है अतः प्रयत्न के साथ योग का ही अभ्यास करना चाहिये।

आश्रमे यतिवर्यस्य मुहूर्तमपि विश्रमेत्
किं तस्यान्येन धर्मेण कृतकृत्योऽभिजायते। 29

किसी सिद्धयोगी के आश्रम में एक मुहूर्त भी जो विश्राम करता है वह कृतार्थ हो जाता है उसको अन्य धर्मों के चिन्तन से क्या प्रयोजन।

नास्ति माया समं पापं नास्ति योगात्परं बलम्
नास्ति ज्ञानात्परो बन्धुर्नाहंकारात् परोरिपुः। 30

माया के समान कोई पाप नहीं, योग से बढ़कर कोई बल नहीं ज्ञान से बढ़ कर कोई बन्धु नहीं व अहंकार से बढ़कर कोई शत्रु नहीं।

देहेस्मिन वर्तते मेरुः सप्त द्वीप समन्वितः
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः। 31

इस शरीर में सप्त द्वीपों से युक्त सुमेरु विद्यमान है। उसके साथ–साथ नदियाँ, पहाड़, क्षेत्र और क्षेत्रपालक भी है।

ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा
पुण्य तीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः। 32

ऋषि, मुनि, नक्षत्र और ग्रह धुण्य तीर्थ, पीठ और पीठ देवता इसके अतिरिक्त

त्रलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते
जानाति यः सर्व मिदंस योगी नात्र संशयः। 33

त्रेलोक्य में जितने प्राणी हैं वे सब देह के अन्दर ही हैं। सुमेरू को चारों ओर से घेर कर अवस्थित हैं वही से सब क्रियायें चलती हैं जो यह जब जानता है, वह योगी है इसमें

संशय नहीं है।

ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशाः पवनाभ्यासतत्पराः
अभवन्नान्तको भयस्तस्मात् पवनमभ्यसेत्। 34

ब्रह्मादिक जितने देवता हैं। वह सब प्राणायाम परायण है, प्राणायाम के बल से मनुष्य काल को जीत लेता हे। इसलिये मनुष्य को प्राणायाम का अभ्यास अवश्य करना चाहिये।

यादशी वासना मूलां वर्तते जीवसंगिनी
ताहशं वहते जन्तुः कृत्याकृत्यविघौभ्रमम्। 35

कृत्या कृत्य के विधान में जीव के अन्तः करण में जैसी भावना होती है वैसे ही फल को प्राप्त करता है यह बिल्कुल निश्चित है।

देहोदेवालयः प्रोक्तः सजीवः केवलः शिवः
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूज्यते। 36

यह शरीर ही शिवालय है और जीवात्मा ही शिव है, अज्ञान निर्माल्य को छोड़कर सोऽहम् भाव से ही उनकी पूजा की जाती है।

मूले चतुर्दलोपेते वसान्ताक्षारसंश्रये
चतुर्भुजमुदारांगं पूर्णचन्द्रसमप्रभम्। 37

पीत वर्णयुक्त (गुदा द्वार से चार अँगुल ऊपर) मूलाधार कमल है जिसमें पूर्ण चन्द्रमा के समान रूप वाले चतुर्भुज विराजमान है

यं यं कामयते चित्ते तं तं फलमवाप्नुयात्
निरन्तरं कृताभ्यासात् पश्यति विमुक्तिदम्। 38

इस मूलाधार कमल के ध्यान का यह फल है, इसका ध्यान करने वाला व्यक्ति जो जो कामना करता है वह उसकी पूर्ण हो जाया करती है और निरन्तर ध्यान करने से उस मोक्षदाता प्रभु को सर्वत्र प्राप्त करता है।

बहिरभ्यन्तरे श्रेष्ठं पूजनीयं प्रयत्नतः
ततः श्रेष्ठतरं ह्येतत् नान्यदस्ति मतम् मम। 39

हमारा विचार है कि इस ध्यान से और कोई उत्तम वस्तु नहीं है। इसलिए बाहर और भीतर इनकी पूजा करनी चाहिए।

आत्मसंस्थं शिवं त्वक्त्वा वहिःस्थं यः समर्चयेत्
हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य भ्रमते जीविताशया। 40

अपने अन्तः स्थित रहने वाले भगवान शंकर की पूजा न करके जो बाहर की पूजाएँ करते हैं, उनकी यह दशा है कि जैसे हाथ में आये ग्रास को फैंक करके इधर उधर भोजन की तलाश में भटकते फिरते हैं।

आत्मलिंगार्चनं कुर्यात् अनालस्यं दिने दिने
तस्यस्यात्सकलासिद्धिः नात्रकार्याविचारणा। 41

यह बिल्कुल सत्य बात है कि जो मनुष्य ध्यान दृष्टि से आत्मःस्थ लिंग की पूजा करते हैं उनको थोड़े ही समय में सकल सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।

चतुर्मुखं चतुर्वाहुं सुप्रसन्नं शुचिस्मितं
कमण्डलुधरं देवं धातारं शक्तिसंयुतम्। 42

जो लोग स्वादिष्ठान कमल में चार भुजाओं युक्त सकल शक्ति सम्पन्न ब्रह्मा जी का ध्यान करते हैं-

योध्यायति सदा दिव्यं स्वाधिष्ठाना रविन्दकम्
तस्य कामांगनाः सर्वा भजन्ते काममोहिताः। 43

जो इस स्वाधिष्ठान कमल का ध्यान करते हैं काम मोहिता देवाण्गनायें भी उनका सम्मान करती हैं।

विविधं चाश्रुतं शास्त्रं निशंको वै वदेध्रुवम्।
सर्वरोगविनिर्मुक्तो लोके चरति निर्भयः। 44

और स्वयं ही इस योग्य को चारों वेदों का ज्ञान हो जाया करता है और सब प्रकार से निरोग रहता है।

मणिपुरे दशदले कन्दमध्यात्समुत्थिते
द्वादशांगुलनालेऽस्मिन् रक्ताभे केशरान्विते। 45

कन्दमूल से उठे हुए रक्तवर्ण दशदल युक्त बारह अँगुल ऊँचे नाल वाले कमल में:-

वासुदेवं जगद्योनिं पद्मपत्रनिभेक्षणम्
चतुर्भुजमुदारांग्ड़ं शंखचक्रगदाभृतम्। 46
तस्मिन् ध्यानं सदा योगी करोति मणिपूरके
तस्य पातालसिद्धिःस्यात् निरन्तरसुखवहा। 47

शंखचक्रगदा युक्त भगवान वासुदेव का ध्यान करते है उनको स्वतः ही पाताल सिद्धि प्राप्त हो जाया करती हैं।

इप्सितं च भवेल्लोके दुःखरोगविनाशनम्।
कालस्य वंचनं चापि परदेहप्रवेशनम्।। 48

इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण दुखों का नाश हो जाता है। अभिलषित वस्तु मिलती है। काल को जीत लेता है। वह परकाय प्रवेश की योग्यता आजाया करती है।

जाम्बूनदादि करणं सिद्धानां दर्शनं भवेत्।
दिव्यौषधिदर्शनं च निधीनां दर्शनं भवेत्।। 49

जाम्बूनदादि करण सिद्धों के दर्शन होते हैं। दिव्य वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है और निधियाँ दीखने लगती हैं।

अतः परेह्यनाहते पद्मे द्वादशत्रके।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं शशीव प्रियदर्शनम्।। 50

और हृदय स्थान में स्थित द्वाद्वश दल संयुक्त अनाहत कमल में शशीव प्रभु भगवान शिव का जो ध्यान करते है।

पद्मासनसमामीनं देवेशं गिरिजायुतम्।
जगत्संहारकर्तारं अनन्तबलपौरूषाम्
यो ध्यायति परं शान्तं शिवं योगीन्द्रवल्लभम्। 51

जो देव देवेश गिरजा को लेकर पद्मासन पर बैठे हैं और जगत संहार करने वाले अनन्त बल युक्त हैं।

ज्ञानं चाप्रतिमं तस्य त्रिकालविषयं भवेत्।
दूरश्रुति र्दूरदृष्टिःस्वेच्छया स्वर्गतिं व्रजेत्। 52

उनका ध्यान करने से प्रतिभ ज्ञान होता है, दूर दर्शन दूर श्रुति का ज्ञान होता है और स्वर्गदिकों में इसी शरीर से गमन करने की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

सिद्धानां दर्शनं चापि योगिनीदर्शनं तथा।
भवेत् खेचरसिद्धिश्च खेचराणां जयं तथा। 53

और इन्हीं प्रभु के ध्यान से खेचरी भूचरी आदि सिद्धियाँ भी उपलब्ध होती हैं।

योध्यायति परं नित्यं बाणलिंगमद्वितीयकम्।
खेचरी भूचरी सिद्धिर्भवेत्तस्य न संशयः। 54

और बाणलिंग रूप प्रभु के ध्यान से खेचरी भूचरी आदि सिद्धियाँ भी उपलब्ध होती हैं।

एतद्ध्यानस्य माहात्म्यं कथितुं नैवशक्यते।
ब्रह्माद्यांः सकला देवा गोपायन्ति परंत्विदम्। 55

यह ध्यान परम गोपनीय है। ब्रह्मादिक इसका वर्णन नहीं कर सकते।

विशुद्धेषोडशदले षोडशाक्षरसंयुते।

जगत्कारणकर्तारं जीवात्मानं सनातनम्। 56
ध्यानं करोतियोनित्यं स योगीश्वरपण्डितः।
चतुर्वेदा विभासन्ते सरहस्या निधेरिव। 57

और जो लोग षोडश दल युक्त विशुद्ध कमल में शक्ति रूपी जीवात्मा का ध्यान करते हैं उन्हें चारों वेदों का निधियों की तरह ज्ञान हो जाते हैं।

इह स्थाने स्थितोयोगी यदा क्रोधवशोभवेत्
तदा समस्तं त्रैलोक्यं कम्पते नात्र संशयः। 58

इस स्थान पर संयम करने वाला योगी यदि क्रोध करे, उससे तीनों लोक काँपते हैं।

तस्य न क्षयमायाति स्वशरीरस्य शक्तितः
संवत्सरसहीत्रेपि वज्राति कठिनस्यवै। 59

और शक्ति के प्रभाव से सहस्त्रों वर्ष व्यतीत हो जाने पर उसका शरीर नष्ट नहीं होता।

यदा त्यजति तद् ध्यानं योगीन्द्रोऽवनिमंडले
तदा वर्षसहस्त्राणि मन्यते तत्क्षणं कृती। 60

और जिस समय सहस्त्रों बरस इस समाधि से उठता है तो वे हजारों वर्ष एक क्षण के समान दीखता है।

पद्मं आज्ञाचक्रं भुवोर्मध्ये हंसोपेतं दलद्वयम्
शुक्लाभं तन्महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी 61

इसके बाद दो दल युक्त हंस, अक्षर वाला शुभ्र प्रकाश युक्त आज्ञा कमल दोनों भुवोंके बीच में विराजमान है। यहाँ पर महाकाल सिद्ध और हाकिनी देवी है।

इड़ाहि पिंगला ख्याता वाराणसीतिहोच्यते।
वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोऽत्रभाषितः।। 62

इस शरीर में जो इड़ा और पिंग्ला नाड़ी हैं उनको वरूण और असी कहते हैं यह वरणा और असी के मध्य में वाराणसी है। जहाँ स्वयं विश्वनाथ जी विराजमान हैं। तात्पर्य यह है कि यह इड़ा और पिग्ड़ाला के मध्य जो स्थान है उसी को शिवजी ने वाराणसी कहा है।

तुरीयं त्रितयं लिगं तदाहं मुक्ति दायकः।
ध्यानमत्रेण योगीन्द्राः मत्समो भवति ध्रुवम्।। 63

हे पार्वती। उस स्थान में तुरीया तृतीया लिंग हम ही मुक्तिदाता हैं। इसके ध्यानमात्र से योगीन्द्र निश्चय हमारे तुल्य हो जायेगा।

ब्रह्मरन्ध्रेहि यत्पद्मं सहस्त्रारं व्यवस्थितम्।
तत्र कन्दे हि या योनिस्तस्यां चन्द्रो व्यवस्थितः। 64

ब्रह्मरन्ध्र द्वार में जो सहस्त्रदल नाम का कमल विराजमान है वहाँ पर जो कन्द में योनी है उसमें चंद्रमा स्थित है।

त्रिकोणाकारतस्तस्याः सुधा क्षरति सततम्
इडायाममृतं तत्र समं स्रवति चन्द्रमाः। 65

वहाँ पर ईडा नाड़ी में चन्द्रमा हमेश अमृत का श्राव करता रहता है।

तयोरन्तरे सहस्त्रदलपद्मं स्फटिकमणिमय। मण्डन, मण्डितरत्नखचितसिंहासनासीनं महादेव स्वरूपसद्रशं, सहस्त्रकोटिसूर्यप्रकाशं धिक्कृत मीनकेतनरूपर्दं, निजगुरुं, सहस्त्रवर्ष विलोक-नान्तरमपि चेतोहरं, अनहदवाज, एतादृशं शिष्यःपश्यति। 66

वहाँ सहस्त्र दल कमल में मणिमय सिंहासन पर श्री महादेव जी के रूप में गुरुदेव विराजमान हैं उनका प्रकाश करोड़ों सूर्यो के समान है इस दृश्य को शिष्य देखता है।

यः करोति सदाध्यानं आज्ञापद्मस्य गोपितम्।
पूर्वजन्मकृतं कर्म विनश्यत्यविरोधतः। 67

जो व्यक्ति इस आज्ञाकमल का ध्यान करता है उसके पूर्व जन्म कृत सभी पापों का नाश हो जाता है।

तदा वद्धो यदा जीवो किंचिद् वांच्छति शोचति।
तदा मोक्षो यदा चित्ते न शोचति न वांच्छति। 68

जब तक यह जीव चिन्ता करता है तब तक वद्ध है। और जब निरीह हो जाता है तब यह पूर्णतया मुक्त हो जाता है।

अस्मिन् स्थाने मनोयस्य क्षणार्धं वर्ततेऽचलम्।
तस्य सर्बाणि पापानि नाशमायान्तितत्क्षणात्। 69

जिसका इस स्थान में एक क्षण भी मन लग जाता है। उसके सभी पापों का नाश हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं।

न क्षुधा न तृषा निद्रा शीतोष्णं न तथैव च।
न मृत्युर्नान्तकः क्रुद्धो वाधते तंच योगिनम्। 70

यहाँ पर ध्यान करने वाले योगी को न भूख लगती हैं, न प्यास लगती हैं, न सर्दी व गर्मी बाधक होती है, और वह काल के अधिकार से परे हो जाता है! मृत्यु उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती।

गंगायमुनयोमध्ये वहत्येषा सरस्वती
तासां तु संगमे स्नात्वा धन्योयाति परां गतिम। 71

यहाँ पर गंगा और यमुना के बीच में सरस्वती नदी बहती है। जिसके संगम में मनुष्य स्नान करके परम गति को प्राप्त हो जाता है।

इडा गंगा पुरा प्रोक्ता पिंगला चार्कपुत्रिका।
मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां संगोऽति दुर्लभः। 72

इड़ा गंगा का नाम है और पिंगला जमुना का नाम है। सरस्वती इनके बीच में बहती है। इस प्रकार इन तीनों के बीच स्नान करना अति दुर्लभ है।

सित्रासिते संगमे यो मनसा स्नानमाचरेत्
सर्वपाप विनिर्मुक्तो याति ब्रह्म सनातनम्। 73

श्वेत और नीलवर्ण संयुक्त संगम में स्नान करके, सब पापों से मुक्त हो करके मुनष्य परम ब्रह्म को प्राप्त होता है।

त्रिवेण्याः संगमे यो बै पितृकर्मसमाचरेत्
तारयित्वा पितृन् सर्वान् सयाति परमां गतिम्। 74

जो त्रिवेणी संगम में पितृ तर्पण करते हैं वे अपने पितरों का उद्धार कर मुक्ति प्राप्त करते हैं।

अपवित्रःपवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा
स्नानाचरणमात्रेण पूतो भवति नान्यथा। 75

अपवित्र हो या पवित्र हो चाहे कैसी भी स्थिति में हो संगम में स्नान करने वाले सब प्रकार से पवित्र हो जाते हैं।

मृत्युकालेप्लुतं देहं त्रिवेण्याःसलिले यदा

विचिन्त्य यस्त्यजेत् प्राणान् स तदा मोक्ष प्राप्नुयात्।। 76

मृत्यु काल में त्रिवेणी संग का ध्यान करके जो शरीर छोड़ता है वह अवश्य मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

नातः परतरं गुह्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते
गोप्तव्यं तत् प्रयत्नेन न व्याख्येयं कदाचन। 77

इससे बढ़ करके कोई गुप्त विद्या नहीं है। अतः इसको हर किसी के सामने प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मरन्ध्रे मनोदत्वा क्षणार्धं यदि तिष्ठति
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्। 78

ब्रह्मरन्ध्र में जो मनुष्य मन लगा करके एक क्षण भी ध्यान में बैठता है वह सर्व–पाप विमुक्तात्मा हो करके मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

भक्तों की दिव्यानुभूतियाँ

सद्गुरुदेव योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के श्री चरणों में पूर्ण आत्म समर्पित महापुरुषों द्वारा सिद्धयोग परम्परा मार्ग के अनुगामी सभी गुरु–भक्तों व साधको पर असीम प्रभु कृपा बरस रही है और उन्हें दिव्यानुभूतियाँ भी हो रही हैं अतः उदाहरण स्वरूप कुछ भक्तों के संस्मरण यहाँ दिये जा रहे हैं। आशा है कि इन संस्मरणों को पढ़ने से प्रभु भक्तों के मन में श्री प्रभु जी की कृपा से श्रद्धा की श्रीवृद्धि होगी व उन अकारण दयालु श्री प्रभु जी के श्री चरणों में प्रेम बढ़ेगा।

१८.२ श्री दुष्यन्त सिंह सिसोदिया व सुशली देवी के दिव्य अनुभव

श्री दुष्यन्त सिंह सिसोदिया ई० सन् १९५३-५४ के लगभग सपत्नी श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा योग दीक्षा ली थी। ये उत्तर प्रदेश के कई जेलों में पहले जेलर रहे और बाद में सुपरिटेन्डेंट हो गये। इनकी पत्नी बहिन सुशीला देवी की प्रभुकृपा से बहुत ऊची ध्यान स्थिति है। वर्तमान में ये ट्रांसपोर्ट नगर आगरा में रहते हैं। पढ़ियें इन्हीं के शब्दों में श्री प्रभु जी के भावपूर्ण संस्मरण।

मेरा छोटा भाई धर्मज्ञ सिंह सिसोदिया दतिया में रहता है। वह कई बार प्रसंगवश श्री गुरुदेव की शक्तियों का वर्णन करता रहता था। एक बार मैनें उससे कहा कि मैं

तुम्हारे गुरुदेव को तब जानू जब वे मेरा तबादला बदायूं से आगरा करवा दें। इसी बीच में मेरा ट्रांसफर आर्डर लखनऊ के लिए हो गया, लेकिन हमने वहाँ ज्वाईन नहीं किया। मुझे डर था कि अधिकारी मेरा तबादला नैनीताल न कर दें। हम बदायूँ में ही काम करते रहे। एक महीने बाद मेरा ट्रांसफर आर्डर आगरा के लिए हो गया। मैं आगरा आ गया। अब हमारे मन की इच्छा पूरी हो गई। हमने अपनी पत्नी सहित गुरुदेव से योग दीक्षा ले ली। यह सन् 1953-54 की बात है। उस समय सवांई आश्रम में केवल गुरुदेव का एक कमरा था। शेष घास-फूस की झोपड़ियाँ ही थीं ई सन् 1953-54 में दीक्षा लेने के बाद ही हमने आगरा ज्वाइन कर लिया। हम जेलर के पद पर नियुक्त थे। इसी दौरान जेल में एक कैदी गिनती में कम पड़ गया। हम बहुत परेशान हो गये। उस कैदी को ढूढ़ँते-2 रात के दस बज गये। किन्तु उस कैदी का पता नहीं चला हमारी बड़ी लड़की से एक सिपाही ने कहा कि-साहब बहुत परेशान हैं। एक कैदी नहीं मिल रहा है। जेल में सब जगह ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल रहा है। यह सुनकर लड़की अपनी माँ के पास गई और बोली-जेल से एक कैदी भाग गया है पिताजी बहुत परेशान हैं। सुनकर सुशीला पूजा के कमरे में गई। वहाँ श्री प्रभुजी का स्वरूप विराजमान था। जहाँ नित्य आरती-पूजा होती थी। श्री प्रभुजी के स्वरूप के सामने जाकर वह कहने लगी-प्रभुजी! यह क्या हो गया हैं ? अभी-अभी हमारा प्रमोशन हुआ है। यदि कैदी नहीं मिला तो प्रमोशन रूक जायेगा। श्री प्रभुजी से विनती करने के बाद उसका ध्यान लग गया। ध्यान में श्री प्रभुजी ने कहा-घबराओं मत! कैदी जेल के अन्दर ही है। जेल के अन्दर एक कब्र है, उसके पास पीपल का एक पेड़ है। कैदी भागने के उद्देश्य से पीपल पर चढ़कर पास की दीवार पर चढ़ गया है। तुम अपने पति को सूचना करवा देना कि वह वहाँ पर देख लें। इसके बाद मेरी पत्नी (सुशीला देवी) ध्यान से उठ गई। मेरी पत्नी ने एक सिपाही से कहा कि जेल जाकर उस कैदी को दीवार पर देख ले। सिपाहियों ने वहाँ जाकर देखा तो वह कैदी उसी जगह पर मिला। सिपाही उस कैदी को पकड़कर हमारे पास लाये। मैंने उस कैदी से पूछा कि तुम वहाँ तक पहुँच गये तो भागे क्यों नहीं ? उस कैदी ने कहा कि-''साहब! एक लम्बी जटाओं वाला हाथ में त्रिशूल लिये हुए एक महात्मा मेरे सामने खड़ा था। वह महात्मा मुझे आगे नहीं जाने दे रहा था''। इसके बाद सिपाही उसको मारने लगे। मैंने उन सिपाहियों से मारने को मना कर दिया। मैंने कहा-इसे मारो मत! श्री प्रभुजी ने इसे भागने नहीं दिया है तो हम ही इसे क्यों मारें ?

एक बार की घटना है कि मेरी पत्नी सुशीला देवी की तबीयत काफी खराब हो गई। तबीयत खराब होने के कारण पूजा नहीं कर पा रही थी। मेरी पत्नी ने मेरी छोटी लड़की से पूजा करने को कहा। लड़की पूजा गृह में गई, किन्तु तुरन्त लौट आई और कहने लगी-नहीं, मैं उस कमरे में नहीं जाऊँगी, वहाँ तो लम्बी जटाओं वाले कोई घूम रहे हैं। पता नहीं कौन है ? कोई भूत है या कुछ और ? सुशीला ने कहा-नहीं बेटे, उस कमरे में भूत हो ही नही सकता। वह तो श्री प्रभुजी होगें। दूसरे दिन सुशीला ध्यान में बैठी तो ध्यान में श्री प्रभुजी ने सुशीला से कहा-बेटी! मैं उस कमरे में इसलिये गया था। क्योंकि तुमने हमारे लिये दूध का भोग लगाया था। उसे बिल्ली ने झूठा कर दिया था। तुम कहीं प्रसाद मानकर इसे बाँट न दो। इसलिये मैं वहाँ प्रकट हो गया था।

आगरा के बाद हमारा तबादला मेरठ में हो गया। वहाँ जेल में सभी को पता लग गया था कि किसी पर कठिनाई हो तो माताजी श्री प्रभुजी से कहकर हल करवा लेती हैं। एक बार की बात है सौ कैदी कोर्ट में गये थे। जब कोर्ट से वापिस आये तो एक कैदी छूट गया। गेट कीपर ने भी लिख दिया कि सब कैदी आ गये हैं। जेल बन्द हो गई। जेल के अन्दर गिनती की तो लिख दिया कि सब कैदी आ गए हैं। जेल बन्द हो गई। जेल के

अन्दर गिनती की तो लिख दिया कि सब कैदी आ गये। सुभा जब जेल खोली तो एक कैदी कम निकला। हम बहुत परेशान हो गये। जेल सुबह रोज छः बजे खुल जाती है। उस दिन गिनती करते-करते दस बज गये। एक सिपाही ने जाकर माताजी से कहा-माताजी एक कैदी नहीं मिल रहा है, साहब परेशान हैं। मेरी पत्नी ध्यान में बैठ गई। ध्यान में श्री प्रभुजी की आवाज आई-गिनती में गलती हो रही हैं। कैदी यहीं है, कहीं भी नहीं गया है दोबारा गिनती करवाओं। दोबार गिनती करवाई गई तो गिनती ठीक निकली। श्री प्रभुजी की कृपा से परेशानी दूर हुई।

हम आगरा में रहते थे। उस समय की घटना है। एक दिन सुशीला ने कहा कि हम सब हर रोज प्रभुजी-प्रभुजी करते रहते हैं, लेकिन हमें श्री प्रभुजी दर्शन क्यों नहीं देते हैं। दूसरे दिन वह ध्यान में बैठी तो प्रभुजी ने ध्यान में दर्शन दिया और कहा-हम अमुक दिन दर्शन रात के बाहर बजे देंगे। मेरी पत्नी ने यह बात हमें बताई। जिस दिन प्रभु जी ने दर्शन देने को कहा था हम सामाजिक जीवन में व्यस्त हो गये। उस दिन का हमें ध्यान ही नहीं रहा। हम सब अपने कमरे में रोज की तरह सो गये। श्री प्रभजी ने अपने वचन के अनुसार ठीक उसी दिन जिस समय प्रभुजी ने दर्शन देना था रात के बारह बजे कमरें में बहुत तेज प्रकाश हो गया। जबकि कमरे में लाइट बन्द थी। श्री प्रभु जी ने सुशीला को जगाया-देवी! उठ, वह उठ गई। पहले तो वह अचानक सामने प्रभुजी को देखकर घबरा गई। मृगछाला पहने हुए हाथ में त्रिशुल सुशोभित हो रहा था। श्री प्रभुजी ने कहा घबराओं मत देवी! तुमने हमें पहचाना नहीं। मैंने कहा-हमने आपको नहीं पहचाना। उन्होंने कहा मैं वही हूँ जिसकी तू रोज ''चरणारविन्दं गुरुदेव नमामि'' कहकर आरती करती है। इसके बाद मैंने श्री प्रभुजी के पैर छुए और आरती की। इसके बाद मैं अपने पति को जगाने लगी। श्री प्रभुजी ने हमें जगाने से मना कर दिया और कहा-यह सारे दिन जेल के कार्यों में व्यस्त रहता है, इसे मत जगाओ। इसके बाद श्री प्रभुजी ने हमें आशीर्वाद दिया और फिर अन्तर्ध्यान हो गये।

१८.३ डाक्टर रविन्द्र कुमार जौहरी के संस्मरण (*उनके अपने शब्दों में*)

दुर्लभ दर्शन- व्यक्ति के जीवन में कभी-कभी ऐसी अलौकिक घटना घटित होती है जिस में सिद्ध महात्माओं के अनायास दर्शन होते हैं और जिन के फलस्वरूप उन का जीवन धन्य हो जाता है। ऐसी घटना 1954 अक्टूबर माह में प्रभु कृपा से घटित हुई उस समय मैं बलवंत राजपूत कॉलेज आगरा में इन्टरमीडियेट द्वितीय वर्ष का छात्र था और हॉकी की टीम में खेलता था। एक दिन जब शाम को हमारा हॉकी का मैच नही हुआ तो मैं कॉलेज ऑडिटोरियम में एक महात्मा जी का प्रवचन सुनने चला गया। उन्होंने बड़े उच्च स्वर में कह कि आज भी यादि किसी को सिद्ध महात्मा के दर्शन करने हों तो यहाँ से थोड़ी ही दूर स्थित संवाई-एत्मादपुर में कर सकता है।

हमारे घर में नित्य भगवान् की आरती-पूजा होती थी और पिताजी स्व0 डा0 बी0पी0 जौहरी अक्सर महात्माओं व पंडितों को घर लाकर बहुत सम्मान से भोजन आदि करवाते रहते थे। उन्हीं संस्कारों के वश उस दिन जब उन महात्माजी के मुख से किन्हीं सिद्ध महात्मा के एत्मादपुर के नजदीक होने के विषय में सुना तो उनके दर्शन की अभिलाषा सीधी मन में आ गई और मन किसी प्रकार उनके दर्शनों के लिये व्यग्र रहने लगा। घर में सबसे छोटा 16 वर्ष की अवस्थ होने के नाते इतनी दूर अकेले जाने की अनुमति मिलना कठिन था। इसलिये मैंने निर्णय किया कि मैं अपने उन सहपाठियों के साथ दर्शन करने चले जाऊँगा। यह सब मेरे खेल अभ्यास के समय में ही हो जायेगा और घर पर किसी को पता भी नहीं चलेगा।

'अद्भुत दिव्य–जीवन गाथा'

इसी योजना के तहत एक शाम को मैं अपने कुछ सहपाठियों के साथ एत्मादपुर रेलवे स्टेशन पहुँच गया और अपने सहपाठियों के साथ स्टेशन मास्टर से पूछा–यहाँ कोई सिद्ध महात्मा रहते हैं ? उनके विषय में हम जानना चाहते हैं। उन्होंने खेल की यूनिफार्म पहने मुझे बड़े कौतुहल से ऊपर से नीचे तक देखकर पूछा–''क्यों पढ़वे में मन नाय लगतो का ? घरे जाओं और पढ़वे में मन लगाओं।'' उनकी डाँट सुनकर हम तीनों चुपचाप उनके कक्ष से आकर गाड़ी में बैठ गये। यह वह जमाना था जब बड़ों का इतना आदर सम्मान होता था कि कोई भी बड़ा किसी अपरिचित छोटे को गलत काम करते देखकर डाँट सकता था और छोटों की हिम्मत पलटकर जबाव देने की नहीं होती थी।

घर लौटकर मन में बड़ा क्षोभ सा बना रहा जैसे कोई चीज खो गयी हो और मिल नहीं रही हो। कई दिन इसी उधेड़बुन में निकल गये और एक दिन फिर मैं कुछ साथियों के साथ एत्मादपुर के लिए गाड़ी से चल पड़ा। एक बोगी में हम चार–पाँच लड़के ही बैठे थे। कदाचित् जलेसर स्टेशन निकल जाने के बाद मैंने देखा कि किनारे वाली सीट पर एक बहुत तेजस्वी विशालकाय जटाजूट महात्माजी विराजमान हैं जिनके हाथ में एक लम्बा सा चिमटा है और वे बीच वाली सीट पर बैठे हुये मुझे देख रहे हैं।

कहानियों में माँ अक्सर डराया करती थी कि बाबा पकड़ कर ले जाते हैं। उन्हीं कथाओं से मन में जटाजूट बाबाओं के प्रति एक डर सा बैठ गया था जो उन बाबाजी को अपनी ओर निहारते देखकर और प्रबल हो उठा–कहीं पकड़ न ले जायें। वे मुझे देख रहे थे और मैं जानबूझकर उन्हें कनखियों से देखते हुए, अपने को प्रकट रूप से उन्हें न देखकर, उन्हीं की सीट पर सामने बैठे अपने साथियों से बातें करने का अभिनय करने लगा। कुछ देर में वे मेरे और नजदीक सामने की ओर आ गये और उन्होंने पूछा–''तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?'' उनके यूँ पूछने पर मैं और डर गया कि ये तो जरूर पकड़ने वाले बाबा ही हो सकते हैं जो गन्तव्य भी पूछ रहे हैं। मैंने झूठ बोल दिया–''हम लोग टूण्डला जा रहे है।'' इस पर उनके चेहरे पर स्पष्ट मुस्कान फैल गई जो आज भी मुझे स्पष्ट याद है और उन्होंने कहा कि–''यदि सिद्ध महात्मा के दर्शन करने हों तो एत्मादपुर के स्टेशन मास्टर के पास जाना वे तुम्हें उनके पास ले जायेगें।'' खूब ध्यान से उनकी बातें सुनी किन्तु भयवश उन्हें कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई। इतने में कदाचित् स्टेशन आने से पहले पटरी बदलने पर जो आवाजें होने लगी, मेरे साथी भी एत्मादपुर आ रहा है ऐसा कहकर वे चौकन्ने हो गये। मैंने देखा कि वह महात्माजी भी उठकर खड़े हो गये और पीछे के दरवाजे की ओर बढ़ गये। एक पल को लगा कि स्वयं भगवान शंकर ही जा रहे हो लेकिन भयवश मैंने देखकर भी उधर न देखने की चेष्टा की और सोचने लगा कि बाबाजी शायद बिना टिकट थे इसिलिए पीछे के दरवाजे से उतरने चले गये। गाड़ी रूकने से पहले कौतूहलवश मैंने मुड़कर देखा तो वह अन्तर्धान हो चुके थे। मैंने मन में सोचा बिना टिकट होने के कारण चलती गाड़ी से उतर गये। एत्मादपुर स्टेशन आने पर मैं अपने साथियों के साथ स्टेशन मास्टर के कक्ष में पहुँचा तो देखा कि वह स्टेशन मास्टर टिकट बाँट रहे हैं। उन्हें देखकर व उनकी लगाई डाँट को याद करके मैं उल्टें पाँव ही लौटने लगा तब उन्होंने पीछे मुड़कर पूछा–ठहरो! क्या बात है ? मैंने घबराकर कहा–आप तो सिद्ध महात्माजी को जानते ही नहीं हैं। उन्होंने कहा–अरे! सिद्ध गुफा वाले बाबाजी। अनायास ही मेरे मुख से निकल गया–हाँ, हाँ वो ही। स्टेशन मा0 साहब बोले बैठ जाओ गाड़ी निकाल दूँ तब तुम्हें ले चलूगाँ। मैं बैठ गया और मेरे साथी गाड़ी से टूण्डला चले गये। थोड़ी देर में अपना काम निपटाकर स्टेशन मास्टर अपनी साइकिल के कैरियर पर बैठाकर कंकड़ों से बनी धूल–धूसरित सड़क से मुझे पाँच मील के लगभग एत्मादपुर से लायें और कच्ची पगडंडी पर बागों के बीच से पैदल चलकर हम लोग बाग में पहुँचे जहाँ एक कच्चा कमरा था और पास में ही एक छप्पर वाला कमरा था। पेड़ के नीचे एक चारपाई बिछी थी। उसके पास ही

एक बोरे पर दो व्यक्ति बैठे हुए थे। स्टेशन मास्टर साहब एक दूसरे बोरे पर बैठ गये और मैं भी पास में बैठ गया।

थोड़ी देर में एक स्वस्थ शरीर वाले तेजस्वी महापुरूष हाथ में पीतल की बाल्टी लिये हुए आये। उनके साथ में एक नवयुवक भी था। उन्हें देखकर स्टेशन मास्टर साहब ने अभिवादन किया। मैं चुपचाप आने वाले महात्मा जी जो गेरूवा वस्त्र धारण किया हो, दाढ़ी बाल रखायें हुए हों की कल्पना कर प्रतीक्षा में मौन बैठा रहा। आने वाले तेजस्वी पुरूष चारपाई पर बैठकर लोगों से बातें करने लगे। तभी मेरी दृष्टि अनायास ही कमरे में रखे दाढ़ी वाले बाबाजी के चित्र पर टिक गई। मुझे आश्चर्य हुआ, यह तो उन्हीं महापुरूष का चित्र था जो मुझे गाड़ी में मिले। मुझे इस प्रकार देखते हुए देखकर उन्होंने पूछा–लल्ला! क्या देख रहे हो। मेरे मुख से अनायास निकला वह बाबाजी कब आयेगें ? उन्होंने उस चित्र की ओर देखकर कहा–''लल्ला! उन श्री प्रभुजी को शरीर छोड़े तो बहुत समय हो गया है। मैंने आश्चर्य से कहा–मुझे तो अभी गाड़ी में मिले थे।'' अब वह तेजस्वी महापुरूष उठकर सीधे बैठ गये और मुझे ऐसे दृष्टि से देखा जो मेरे आर–पार निकल गई। फिर बहुत ही गम्भीर आवाज में बोले–हाँ! वे अपने बच्चों को इसी प्रकार दर्शन देते रहते हैं और मार्ग दर्शन करते हैं। अब मैंने देखा उनके शरीर से विचित्र आभा निकल रही थी। मैं अपने आप उनके चरणों में झुक गया और गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाराज जी ने मुझे अपने हृदय से लगा लिया।

१८.४ ईश्वरी प्रसाद खड़ड्र के संस्मरण (*ईश्वरी प्रसाद खड़ड्र सिद्ध गुफा झाँसी मण्डल के संस्थापक थे। सन्* 1985 *में उन्होंने नश्वर देह का त्याग कर दिया था। पढ़िये उन के हीं शब्दों में उन के संस्मरण*)

11 अप्रैल ई0 सन् 1955 की घटना हैं। मैं घाटकोपर स्टेशन (बंबई) पर सुबह 9–15 बजे की लोकल गाड़ी में प्रतिदिन की भाँति सवार होने पहुँचा। उस गाड़ी से मैं प्रायः अपने कार्यालय स्थल बोरी बन्दर (वी0टी0) जाया करता था। उस दिन गाड़ी के प्रत्येक डिब्बे के प्रवेश द्वार पर मुसाफिर खड़े हुये थे, इस कारण अन्दर पहुँचना कठिन था। दो डिब्बों के बीच खाली स्थान देखकर मैं बफर पर खड़ा हो गया और गाड़ी ने प्रस्थान किया। लालकिला स्टेशन निकल जाने के बाद जब हमारी गाड़ी पुल के नीचे मोड़ पर पहुँची तब झटका लगने से हमारे पैर बफर से फिसल गये। उस समय हमारी गाड़ी की गति 50–60 मील प्रतिघंटा थी। अकस्मात् हमारे मन में 'प्रभो' शब्द का स्मरण हुआ। उसी क्षण हमने अनुभव किया कि किसी शक्ति ने अपने कर–कमलों का सहारा देते हुए हमारे समस्त शरीर को रेलगाड़ी के पहियों की भेंट होने से बचा लिया। उस समय हमारी गाड़ी सन्डर्सरोड स्टेशन पर खड़ी हुई और हम विचार करने लगे कि मुझ पतित को जीवनदान करने वाला दयालु कौन हो सकता है। हम यही सोचते रहे और गाड़ी हमको छोड़कर चल दी। निष्कर्ष न निकलने पर हम अपने कर्यालय पहुँचे। दो तिन दिन तक विचार करते रहे। परन्तु सन्तोषजनक फल न निकलने पर हमारा मन चिन्तित रहने लगा मानो हमारी प्रिय वस्तु खो गई हो। अगले दिन से मुझे अपने रहन–सहन व्यवहार इत्यादि पर निःसन्देह घृणा होने लगी। मेरे मन में झाँसी वापस आने के विचार उत्पन्न हुए और इतने प्रबल हो गये कि एक सप्ताह के भीतर तरक्की को ठुकरा कर मैं झाँसी आ गया। कुछ दिन पश्चात् पुनः मैं बंबई तुल्य जीवन रसपान करने लगा। इस भांति 20 माह बीत गये।

14 दिसम्बर सन् 1956 को स्पप्न में मुझे एक महापुरूष के दर्शन हुये। उन्होंने अपने मुखारविन्द से इन शब्दों का उच्चारण किया ''क्या तुझे इसलिए जीवनदान दिया था

कि तू अपने कर्त्तव्य से विमुख हो।'' मेरी निद्रा खुल गई। मैं तुरन्त उठा स्नान करके समीप शिवालय पहुँचकर भगवान शंकरजी को एक लोटा जल चढ़ाया और प्रणाम करते ही मुझे एक महात्मा जी की झलक प्रतीत हुई। वह दृश्य आज भी मेरे नेत्रों के सामने स्पष्ट है। जब मैं प्रभुजी के सन्मुख सिसकता हुआ अपने अपराधों के लिए क्षमा-याचना कर रहा था। कुछ समय बाद मैं अपने निवास स्थन पर आकर नित्य कर्म में लग गया।

भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन

16 दिसम्बर सन् 1956 के प्रातः काल 4 बजे मैं घूमने की दृष्टि से पहाड़ की ओर गया। एक स्थान पर पहुँचने पर मेरा मन अकारण प्रेम-मग्न हो गया और तुरन्त ही मेरे कंठ से अकस्मात् पहली बार ''हरि ओम'' शब्द दूसरी और तीसरी बार भी सर्वोच्च ध्वनि से स्वतः निकल पड़ा। ठीक उसी क्षण मेरे नेत्रों ने श्री कृष्ण भगवान को सन्मुख प्रसन्न चित्त मुद्रा में देखा। मैं उस छवि को निहार ही रहा था। कि मुस्कराते हुयें बोले ''अब चलो।'' वह एक फुट आगे चल रहे थे और मैं पीछे चल रहा था। दाँये-बाँये ओर सीधी कतार में कुछ देवतागण थे। जिनमें श्री सरस्वती जी दाँयी ओर, कैलाशपति बाँयी ओर थे। समस्त देवता पृथ्वी से लगभग 8 फुट की ऊँचाई पर कतारो में खड़ें थे। कैलाशपति कमलासन पर सुशोभित हो रहे थे। इनकी छवियों को हम भली प्रकार देखते थे। विशेष बात यह थी कि हम लोगो के हाथ-पैर गतिशील थे परन्तु उन सबके नहीं थे। श्री कृष्ण भगवान् ने हमारा परिचय समस्त देवताओं से कराया। कुछ समय उपरान्त मैं अपने स्थान पर वापस आकर कार्य में लग गया। एक रात्रि को हमारे प्रभुजी ने ताड़ना देते हुये मुझे यह उपदेश दिया-''यदि तू मुझे पाना चाहता है तो मानव जाति से प्रेम कर।''

१८.५ श्री पुष्कर दत्त (पोखर) शर्मा (धनाना वाले) के संस्मरण

बात सन् 1962-63 की है श्री चन्द्रमोहन जी गुरुदेव उन दिनों ऋषिकेश आश्रम में विराजमान थे वहाँ का वार्षिक उत्सव होना था। मैं भी उस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये घर से जाने लगा। मेरे पिताजी ने कहा-पोखर! उत्सव के तीन-चार दिन बाद ही तुम्हारी साली की शादी हैं तुम्हें उसमें अवश्य शामिल होना है इसलियें तुम जल्दी घर लौट आना। गुरुदेव से कहा देना-पिताजी ने कहा है कि मुझे आप जल्दी घर भेज दें। वह तुरन्त भेंज देंगे। आश्रम का उत्सव समाप्त हो गया। उत्सव समाप्त होने के दूसरे दिन के बाद मैं वापिस जाने के लिये आज्ञा मांगने की सोचने लगा। प्रातःकाल उठकर गुरुजी शीशम झाड़ियों में स्नान करने के लिये जा रहे थे साथ में दो-ढाई सौ शिष्य थे। रास्ते में सभी अपनी-अपनी कथाओं को सुनाते और समाधान व आशीर्वाद पाते। मैंने भी हिम्मत करके अपनी बात कह दी। गुरुजी कहने लगे-अरे! साली की शादी में जाकर क्या करेगा ? तब मैंने मन ही मन अब शादी में जाने का विचार छोड़ दिया। दूसरे दिन दोपहर को एक ब्रह्मचारी मुझे ढूँढ़ते हुए आया और कहने लगा-गुरुदेव जी! तुम्हें बुला रहे हैं। मैं तुरन्त गुरुदेव के पास चला गया। गुरुदेव जी ने कहा-लल्ला! तुम्हें अपनी साली की शादी में अवश्य जाना चाहिये। यह ले प्रसाद और शाम की गाड़ी पकड़ करके चले जाना। मैंने कहा-महाराज जी। मुझे इस शादी में नहीं जाना है। मुझे अपना मृत शरीर पड़ा हुआ दिखाई देता है। मेरे लिये वहाँ अवश्य ही बड़ा अनिष्ट हो सकता है। गुरुदेव जी ने कहा-यदि तुम शादी में नहीं जाओगे तो हमारे तुम्हारे बीच दीवार खड़ी हो जायेगी। मैंने कहा मुझे मृत्यु दीख रही है। आप मुझे मृत्यु के मुँह में क्यों भेज रहे हैं। गुरुदेव जी कहने

लगे-प्रभुजी तुम्हारी अवश्य रक्षा करेंगे। गुरुजी ने प्रसाद देते हुए मुझसे कहा-तुम्हें प्रणाम करना हो तो अभी कर लो, जाते-जाते प्रणाम नहीं करना। जिस समय मैं वहाँ से चला तो उस समय गुरुजी प्रवचन कर रहे थे। मैं दूर से ही प्रणाम करके रोता हुआ आश्रम से चल पड़ा। आश्रम से थोड़ी दूर जाने के बाद गुरुदेव ने माइक में आवाज दी पुष्कर! एक बार मेरे पास आ जा। मैंने वापस आकर गुरुजी को प्रणाम किया गुरुजी ने अपने गले से माला उतारकर मुझे पहना दी और कहा-इसे अपने पास रखना। प्रभुजी तुम्हारी रक्षा करेंगे, अब जाओ।

मैंने हरिद्वार से दिल्ली के लिए जो गाड़ी पकड़ी थी उसमें बहुत भीड़ थी। दिल्ली पहुँचने पर मैंने गाड़ी से उतरकर रोहतक के लिए गाड़ी पकड़ ली, गाड़ी खाली थी। मैं ऊपर की सीट पर लेट गया। मुझे नींद आ गई। गाड़ी रोहतक पहुँच गई। किन्तु मुझे पता नहीं चला, गाड़ी में मुसाफिर आपस में विवाद करने लगे तो मेरी नींद टूट गई। मैंने पूछा-कौन सा स्टेशन आया है। लोगों ने बातया कि-रोहतक का स्टेशन निकल गया है। मैंने कहा-मुझे तो रोहतक उतरना था। मैं झट से उठा और उतरने लगा। मेरा कम्बल भी सीट पर छूट गया। यात्री कहने लगे-गाड़ी ने रफ्तार पकड़ ली है। मैंने सोचा गाड़ी अभी चली है। मैं चलती हुई गाड़ी से कूद पड़ा। मुझे यह तो आभास हुआ कि किसी ने मुझे पकड़ा है लेकिन दिखाई कोई नहीं दिया। मेरे सामान का भी कुछ पता नहीं चल रहा था। गाड़ी स्टेशन से एक मील दूर आ चुकी थी। मैं सोचने लगा कि-मैं बचा तो बचा कैसे? मैंने सोचा गुरुदेव का संकल्प था उसी से ही मेरी रक्षा हुई है। प्रभुजी ने ही आकर मेरी रक्षा की है।

इतनी देर में रेलवे के तीन व्यक्ति आ गये और मुझसे कहने लगे-आपको मजिस्ट्रेट साहब बुला रहे हैं। दिन के नौ बज रहे थे। मैंने कहा-मुझे छोड़ दो मुझे शादी में जाना है। मेरा सामान भी छूट गया है। मुझे बाजार से सामन भी लेना है। वे लोग माने नही और-मजिस्ट्रेट साहब के पास ले गये। कार्यालय के बाहर सन्तरी खड़ा था। वह कहने लगा-मजिस्ट्रेट बहुत क्रोधी हैं। मैं उनके पास गया जो तीन आदमी मुझे ले गये थे वे वहाँ पहुँचकर काँपने लगे और काँपते हुए कहने लगे-साहब यहा चलती गाड़ी से कूदा है। मजिस्ट्रेट ने कहा-यदि यह चलती गाड़ी से कूदा है तो बचा कैसे, तुम सब झूठ बोल रहे हो। उनको फटकारते हुए साहब ने फोन उठा लिया और फोन करने लगे। मैंने उनके हाथ से फोन छीन लिया और साहब बहुत क्रोधित हुए। वे कहने लगे-मुझे बीस साल नौकरी करते हुए हो गये ऐसा अजीब आदमी तो आज ही मिला है। वह गुस्से में खड़ा हो गया। मैंने फोन मेज पर रख दिया। वह मुझे ठोकर मारना चाह रहा था। उसने कई बार कोशिश की मैं बचता रहा। मुझे भी गुस्सा आ गया मैंने भी जोर से फटकारते हुए कहा-हट पीछे, तू क्या चाहता है? उसने कहा-टिकट दिखाओ। मैंने कहा-ले टिकट। मैंने अपनी जेब से टिकट निकाली और टिकट दिखा दी। टिकट देखकर वह चुप हो गया। उसके बाद वह उन तीनों कर्मचारियों की ओर मुड़ा और कहने लगा-मैं तुम्हें अभी नौकरी से निकाल देता हूँ, तुमने झूठ बोला है। उनमें से एक कर्मचारी बोला-साहब हम सत्य कह रहे हैं कि यह चलती गाड़ी से कूदा है। जिस जगह पर यह कूदा था, उस जगह मैंने आकाश से बिजली सी चमकती देखी। उस बिजली में से एक महात्मा प्रकट हुए और महात्मा ने इसको पकड़कर दूर छोड़ दिया। इस प्रकार इसकी रक्षा हुई है। ऐसा सुनकर मस्ट्रिट कुर्सी पर बैठ गया और बैठा-2 रोने लगा। कुर्सी पर बैठे-2 हिलने लग गया। हालत बिगड़ गई। तुरन्त डॉक्टर को बुलाया गया। डॉक्टर आकर नाड़ी देखने लगा और स्टेथोस्कोप से जाँच करने लगा। लेकिन डॉक्टर की समझ में कुछ भी नही आया। मजिस्ट्रेट साहब काफी देर तक

रोते रहे। मैंने कहा-साहब क्यों राते हो ? वह कहने लगा-भाई साहब जिसको परमात्मा बचाने आ जायें उनको मैं गाली देता हूँ, अपशब्द कहता हूँ। आपने ठीक किया जो मेरे हाथ से फोन छीन लिया। यदि पुलिस वाले तुम्हें ले जाते तो जेल में डाल देते और आपसे अभद्र व्यवहार करते तुम जेल में पड़े रहते। मैंने कहा मैं जेल में क्यों पड़ा रहता ? उसने मुझसे बार-बार माफी माँगी। मैंने कहा-तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। वह कहने लगा-आप दोनो हाथ मेरे सिर पर रखकर कह दो कि आपने मुझे माफ कर दिया। मैंने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा-प्रभुजी इसको माफ कर देना। उसने अपने नजदीक एक और कुर्सी लगवाई और मुझे उस पर बिठाया और दूध मिठाई मँगवाई और बड़े ही प्यार से बोलने लगा-आप यह प्रसाद ग्रहण कीजिये। इस सारे प्रकरण को देखने के लिए प्लेटफार्म पर काफी लोग जमा हो गये। यहाँ तक कि मजिस्ट्रेट साहब का कमरा भी लोगों से खचाखच भर गया। इस के बाद मजिस्ट्रेट साहब सभी को साथ लेकर मुझे स्टेशन से बाहर तक छोड़ने आए। वह बार-बार मुझसे माफी मांग रहे थे। इसके बाद मैंने बाजार से सामान खरीदा। उस समय मुझे गुरूदेव की सौ रूपये वाली बात याद आई जो कि गुरुदेव ने मुझसे चलते हुए सौ रूपये देते हुए कहा था-लल्ला! यह रख ले ये तुम्हारे काम आयेंगे। लेकिन मैं उन पैसों को आदर सहित वापस कर आया था। इसके बाद मैं शादी में चला गया।

१८.६ ऐसे भी बुलाते हैं... योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज-पी.एस. मेहता

श्रीमती तारा मेहता गाँव किरटी जिला शिमला की रहने वाली हैं। तारा मेहता अब शिमला में H.P.M.C. दफ्तर में कार्यरत हैं। पति श्री रघुबीर सिंह मेहता शिमला में पुलिस Head Constable के पद से सेवा निवृत्त हो चुके हैं।

रघुबीर मेहता जो पृथ्वी सिंह मेहता के छोटे भाई हैं, पृथ्वी सिंह मेहता को सन् 1970 ई. में प्रो0 चमनलाल कफूर जी ने कहा था कि छोटे भाई रघुबीर सिंह को मेरे से मिलाना। परन्तु किसी कारणवश पृथ्वी सिंह अपने भाई को मिला नहीं पाये। श्रीमती तारा मेहता ने श्री प्रभु जी की पूजा करनी शुरु की। कुछ समय पश्चात् श्री प्रभु जी की कृपा से तारा मेहता की पहली समाधि अपने गाँव में लगी। श्रीमती तारा मेहता 15 दिनों तक ध्यान समाधि में रही। उन्हें चलते फिरते प्रभु जी के दर्शन होने लगे। ध्यान अवस्थ में ही घर का सारा कामकाज करने लगीं। तारा मेहता को अब दूसरे के मन की बातों का भी ज्ञान होने लगा। तारा मेहता आरती के पश्चात् केवल प्रसाद ही ग्रहण करतीं तथा उन्होंने एक महीने तक भोजन नहीं खाया। केवल पानी पीकर ही संतुष्ट रहीं। उन्हें भूख प्यास नहीं सताती थी। एक दिन प्रभु जी ने तारा मेहता को कहा घर का सारा सामान दान कर दो। श्रीमती मेहता ने प्रभु जी के आदेशानुसार घर का सारा सामान दान कर दिया। फिर प्रभु जी ने आदेश दिया अब गायें व भैंस भी दान कर दो। तारा मेहता ने ऐसा ही किया। फिर प्रभु जी ने कहा अब मकान भी छोड़ दो। श्रीमती मेहता प्रभु जी की आज्ञा के अनुसार गाँव का मकान छोड़कर शिमला आ गईं।

सन् 1976 ई. में श्रीमती मेहता की रात को समाधि लगी। श्रीमती तारा ने समाधि अवस्था में ही अपने पति रघुबीर मेहता को उठाया तथा कहा, मैं राम लाल बोल रहा हूँ। तुम्हारे गुरु जी प्रो0 चमनलाल कपूर होशियारपुर में हैं और आदेश दिया आप गुरु जी के पास जल्दी जाओ और दीक्षा ग्रहण करो। वह सन् 1976 ई. में प्रभु के आदेशनुसार वहाँ होशियारपुर पहुँचे तथा बहुत देर तक आश्रम ढूँढ़ते रहे। जब योग साधन

आश्रम पहुँचे तो गुरु देव प्रो० चमन लाल श्रीमती तारा व रघुबीर मेहता को देख कर बहुत हँसे और कहने लगे, पहुँच ही गये आश्रम। गुरु जी दोनों को मिल कर बहुत खुश हुए। गुरु जी ने दोनों पति–पत्नी की हस्त रेखा देखी तथा कहा ये तो हमारे बच्चे हैं। गुरुमाता जी ने अपने आप कहा–सारा घर का सामान दान कर दिया है। इन दोनों ने मुस्कुराते हुए कहा जी हाँ। प्रभु जी का आदेश था। गुरु जी ने दोनों को दीक्षा दी तथा तीन अक्षरों का मन्त्र दिया तारा मेहता ने गुरु जी से विनती की कि मुझे समाधि में पड़े रहना अच्छा नहीं लगता क्योंकि घर का काम करना होता है। आप कृप्या मुझे चलते फिरते ही भक्ति का दान दें। गुरु जी ने कहा ऐसा ही होगा।

रघुबीर मेहता ने लेखक को बताया कि जब वह कुँवारे थे तो उस समय इनकी ड्यूटी किन्नौर के बोर्डर पर लगी। उस समय वहाँ तैनात सिपाही टैंटों में रहते थे। रघुबीर मेहता तथा इनका साथी मदिरा व मांस का सेवन नहीं करते थे। बाकी सभी कर्मी मांस मदिरा का सेवन करते थे यह दोनो ही अपने कैम्प में अकेले रहते थे। रघुबीर मेहता सोचते थे कि मैं कहाँ इन शराबियों में फँस गया मेरी तो भगवान यहाँ से बदली कर दें तो अच्छा है। किन्नौर का बोर्डर काफी ऊँचाई पर स्थित है तथा यहाँ बर्फ काफी पड़ती है। यहाँ काफी बर्फ पड़ने के पश्चात् कई दिनों बाद धूप निकली थी। रघुबीर मेहता तथा मेहता जी का सहकर्मी दिन में धूप में बैठे थे कि वहाँ से एक साधु महाराज लंगोटी व मृगछाला पहने हुए गुजर रहे थे। रघुबीर मेहता ने साधु महाराज को प्रणाम किया और पूछा कि आप पानी पियेंगे। साधु महाराज ने कहा हाँ भाई पानी पियेंगे। रघुबीर मेहता ने अपने कम्बल का आसन बना कर साधु महाराज को उस पर बिठा दिया और इन का साथी मैस में पानी लेने चला गया। मेहता ने मुझे बताया कि साधु जी के चेहरे पर बहुत तेज था तथा मेरी निगाहें उन पर टिकती नहीं थी। जिस कारण मेहता बहुत प्रभावित हुये। साधु जी ने मेहता को कहा आप चिन्ता मत करो। जो तुम चाहते हो, पूरा हो जायेगा। मेहता ने बताया उनका तेज इतना था कि मन खुशी से गद्–गद् हो रहा था। मेहता ने श्रद्धा से साधु जी से पूछा कि महाराज आप भोजन करेंगे, तो उन्होंने कहा क्यों नहीं, जरूर भोजन करेंगे। तभी मेहता ने अपने साथी को कहा, रसोईये को कहो साफ–सफाई से साधु जी महाराज के लिये भोजन बनाये। साधु महाराज ने जब भोजन कर लिया तो मेहता अपने मित्र को कहने लगे, मुझे तो साधु बहुत पहुँचे हुये लगते हैं क्यों न रात्रि को इन को यहाँ ठहरा लें और कुछ ज्ञान की बातें पूछें। मित्र ने कहा ठीक है इनका ठहरने का उचित प्रबन्ध करते हैं। इन दोनों ने पलट कर देख तो दूर–दूर तक साधु नजर नहीं आये। दोनों को बहुत दुःख हुआ। कुछ दिनों के पश्चात् शिमला बदली हो गई।

रघुबीर मेहता के बड़े भाई पृथ्वी सिंह मेहता की शादीतय हो गई। पृथ्वी सिंह मेहता की होने वाली धर्मपत्नी की छोटी बहन का रिश्ता भी मेहता जी के छोटे भाई रघुबीर मेहता के लिये आया। पृथ्वी सिंह मेहता ने यह प्रस्ताव अपने छोटे भाई रघुबीर महता के सामने रखा। परन्तु रघुबीर मेहता ने अपनी शादी के लिये मना कर दिया तथा कहा मैं जीवन भर शादी नहीं करूँगा। फिर भी पृथ्वी सिंह मेहता ने कहा ठीक है यदि तुम्हारा विचार शादी के लिये बन जाये तो मेरे शादी वाले दिन शिमला धर्मशाला में आ जाना। परन्तु रघुबीर मेहता ने गुस्से में कहा मैंने शादी नहीं करनी है। कुछ दिनों पश्चात् रघुबीर मेहता को फिर वही साधु महाराज जी मिले। (जो पहले किन्नौर बोर्डर पर मिले थे) और उन्होंने कहा बच्चा तुम शादी कर लो, यह हमारा आदेश है। परन्तु रघुबीर ने कहा महाराज जी मेरा मन शादी करने को नहीं करता। साधू महाराज ने कहा ''घबराओं नहीं हम तुम्हारे साथ हैं। तुम शिमला पहुचों और शादी करो।'' रघुबीर जी साधु महारज का आदेश टाल नहीं सके और शादी पर रघुबीर मेहता के आने की कोई उम्मीद नहीं थी। अचानक

रघुबीर को घर वाले देखकर बहुत खुश हुये। उस दिन दोनों भाइयों की प्रभु जी की कृपा से शादी हो गई। शादी के पश्चात् पृथ्वी सिंह मेहता ने अपनी भाभी तारा देवी को श्री प्रभु जी का चित्र दिया तो रघुबीर ने प्रभु जी का चित्र देखा तो वह कहने लगे ये तो साधु महाराज जी का चित्र है जिनकी प्रेरणा से मैंने शादी की है। उनकी हैरानी का ठिकाना नहीं रहा, जब उन्हें पता चला कि स्वयं प्रभु जी ही मेरे पास आये थे।

१८.७ मनोरमा पर अद्भुत प्रभु कृपा के संस्मरण (*मनोरमा सूद के शब्दों में*)

देहली के एक सम्पन्न व सुशिक्षित आर्यसमाजी सूद परिवार में मेरा जन्म हुआ। वहाँ अच्छी विद्या प्राप्त करने के बाद मेरा विवाह, होशियारपुर के एक धनाड्य भक्त परिवार में प्रो0 रघुनन्दन लाल सूद के साथ ई0 सन् 1957 में सम्पन्न हुआ। ई0 सन् 1962 में मेरे जीवन साथी की Posting Govt. College Sector-II, Chandigarh में हो गई।

ई सन् 1966 में हम अपने दो बच्चों–धीरेन्द्र (सनी) आयु 4 वर्ष व छोटी बेटी–अनुपम (हनी) के साथ मकान नं0 376 सैक्टर–15A चन्डीगढ़ में रहते थे। प्रो0 सूद आनन्दकन्द प्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा दीक्षित हैं और उन के स्वरूप का घर में आरती पूजन होता था परन्तु संस्कार वश मुझे गुरुपरम्परा में विश्वास नहीं था। स्वामी श्री मुलखाराज जी महाराज द्वारा दीक्षित, होशियारपुर योग साधन आश्रम के आचार्य, प्रो0 चमन लाल जी कपूर की Posting B.Ed College Simla में थी और वह कालेज में सर्दी की छुट्टियाँ होने पर होशियार पुर जाते हुये तीन चार दिन के लिये अपने परिवार सहित चंडीगढ़ रुके।

श्री प्रभु प्रेरणा से 9.01.1966 (रविवार) को सुबह 10 बजे हमारे घर पर प्रो0 चमन लाल जी द्वारा हवन सत्संग आदि का प्रोग्राम हुआ। इस में 14 सेक्टर चन्डीगढ़ से श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा दीक्षित भक्त समाज तथा कुछ पड़ोसी लोग भी सम्मिलित हुये। आनन्दकंद प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की अपार कृपा से हवन के समय सै0 14 के पाँच भक्तों का ध्यान लग गया। एक ध्यानी देवी–कृष्णा (श्री आर0सी0 कालिया जी की पुत्रवधु) को वहाँ ध्यान में श्री प्रभु जी के चरणों से दो पुष्प मिले फिर उसने श्री प्रभु आज्ञानुसार एक अशीर्वाद रूपी पुष्प प्रो0 सूद को तथा दूसरा मुझे दिया। हवन के बाद श्री प्रभु जी की आरती हुई। एक ओर खड़ी मैं एक नवयुवक की ओर देख रही थी, जो खड़े–खड़े हाथ जोड़े हुये ध्यान में थे। वहाँ पर आये भक्तों ने बहुत कोशिश की कि उस ध्यानी को बिठा दिया जाये ताकि वह गिरे नहीं, पर उस की टांगे लकड़ी के समान थीं और कोई भी उस युवक को बिठाना तो दूर रहा उस की टांगे हिला तक न सका। आरती के बाद मैंने आरती ली। इतने में मैं क्या महसूस करती हूँ कि मेरे पैर व हाथ पत्थर होते जा रहे हैं। मैंने बड़ी कोशिश की पैरों को उठाऊँ व हाथों को अलग करूँ पर ये सब बेकार था। मेरी आंखे बन्द हो गई और मैं चरणामृत व प्रसाद न ले सकी।

फिर मैंने अपने सामने अखंड तेज प्रकाश को देखा जो अनन्त सूर्यो की रोशनी से भी कहीं अधिक तेज था परन्तु चन्द्रमा की चाँदनी से कहीं अधिक शीतल तथा लुभायमान था। उस दिव्य प्रकाश में मैंने आनन्दकन्द योग योगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज को जटाधारी स्वरूप में देखा जो बाद में मर्यादा पुरुषोत्तम राम, लीलाधारी भगवान कृष्ण, श्री गुरुनानक देव जी महाराज, गौतम बुद्ध, Lord Crist आदि के रूपों में बारी–बारी से बदलते हुये दिखाइ दिये। फिर मैनें अखंड प्रकाश में देखा कि श्री प्रभु रामलाल जी

महाराज जटाधारी रूप में खड़े मुझे बुला रहे हैं। मैंने कहा कि–''मैं आप के पास नहीं आँऊगी।'' श्री प्रभु जी बोले–फिर तुम्हें कौन सा रूप अच्छा लगता है ?'' मेरे यह कहने पर कि मुझे श्री कृष्णा जी अच्छे लगते हैं तो श्री प्रभु जी अपने मुँह पर हाथ फेर कर और अपनी दाढ़ी हटा कर फिर सिर पर मुकुट धारण किये हुये श्रीकृष्ण जी बन कर मेरे सामने खड़े हो गए। यह देख कर मैं प्रसन्नता पूर्वक उन की ओर बढ़ी पर उन के निकट जा कर फिर उन का वही पहले वाला दिव्य जटाधारी रूप देखा। मुझे उदास देखकर वे मुस्कराकर फिर श्रकृष्णा जी बन गये और मैं उन की उंगली पकड़ कर उन के साथ चल दी। परन्तु राह में वह मुझे कई बार अपना रूप बदल–बदल कर दिखाते रहे। जब वह श्रीकृष्ण जी के रूप में होते थे तो मैं उन की उँगली पकड़ लेती थी। पर जब फिर दिव्य जटाधारी रूप में होते थे तो मैं उन की उंगली छोड़ देती थी मैंने बच्चों की भांति श्री प्रभु जी से आग्रह किया कि मुझे श्री कृष्ण जी अच्छे लगते हैं, आप इस साधू रूप में मुझे अच्छे नही लगते। तब श्री प्रभु जी कहने लगे– ''अच्छा तो जाओ उधर कृष्ण जी के पास चली जाओ।'' जब मैं श्रीकृष्ण जी की ओर जाने लगी तो मुझे वहां पर भयंकर सर्प दिखाई दिये। मैं बहुत डर गई तो देखा कि सामने श्री प्रभु जी हँसते हुये खड़े थे और वो मुझे कृष्ण रूप में अपने साथ ले गये।

श्री प्रभु जी ने मुझे कई मंदिर, पहाड़ रास्ते में दिखाये, फिर एक छोटा सा मकान बर्फीले पहाड़ों के ऊपर दिखाया जिस से एक मार्ग नीचे की ओर जा रहा था। उस मकान में श्री प्रभुजी मेरे साथ छुपन–छुपाई खेलते रहे। इस के बाद उन्होंने मुझे अपनी गोदी में बिठा कर बहुत प्यार किया। मैंने श्री प्रभु जी से कहा कि मुझे भूख लगी है और वापस घर जाना है। श्री प्रभु जी मुझे उसी मकान के एक स्थान पर ले गये जहाँ पर थालियों में बहुत सारी खाने की चीजे थी। उन्होंने मुझे एक गिलास पानी दिया। मैंने फिर श्री प्रभुजी से कहा कि मुझे घर जाना है। तो श्री प्रभु जी ने गर्दन हिला कर मना किया तब मैंने कहा कि मुझे फिर कुछ खाने को दीजिए बहुत भूख लगी है। श्री प्रभु जी बोले–''यदि हमने तुम्हें खाना खिला दिया तो तुम यहाँ कभी नहीं आओगी। इसलिए खाना तो नही मिलेगा।'' इस के बाद श्री प्रभु जी मुझे उस घर के दरवाजे के बाहर छोड़ देते हैं ताकि मैं घर आजाऊँ पर मेरे पैर उसी स्थान पर जमे रहे तो श्री प्रभु जी हँस कर मेरे पास आये और मेरी उंगली पकड़ कर मुझे फिर दरवाजे से अंदर ले गये। इसी प्रकार वह मुझे कई बार दरवाजे के बाहर छोड़ जाते और फिर अंदर ले जाते। जब मैं बाहर होती तो मेरे पैर उस स्थान से हिल नहीं पाते थे। मेरे बार–बार प्रार्थना करने पर कि मुझे भूख बहुत लगी है इसलिए जाने दीजिए तो श्री प्रभु जी ने कहा–''अच्छा जाओ, जो व्यक्ति तुम्हें सव से पहले दिखाई दे उस से आशीर्वाद लेना।'' फिर मैं उसी मकान से जो मार्ग नीचे जा रहा था उससे नीचे उतरने लगी। उतरते–उतरते मैंने प्रो0 कपूर (भापा जी) को ऊपर की ओर आते हुये देखा तो उन के चरणों में प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त किया और अपने को सब के बीच पाया।

रात्रि को सात बजे जब सब मिल कर श्री प्रभु जी की आरती कर रहे थे तो भापा जी ने मुझे भी आरती उतारने के लिये बुलाया। आरती उतारते हुये मैं ध्यान मग्न हो गई। भापा जी ने आरती की थाली मेरे हाथ से ले ली पर मैं ध्यान में उसी प्रकार हाथ उपर उठाये खड़ी रही। आरती के काफी देर बाद मुझे बिठा दिया गया। अनुपम (हनी) को 103 डिग्री बुखार था और वह प्रो0 सूद की गोदी में लेटी हुई थी। रात के 10 बज चुके थे इस कारण श्रीमती कपूर ने अपनी बेटी अरूणा से वहाँ खाना लाने को कहा। अरूणा ने रसोईघर से खाना लाकर वहाँ रख दिया। इतने में ध्यानास्थ श्री प्रभु जी द्वारा मैंने बन्द आखें अपने हाथ को धीरे–धीरे पूरीयों की ओर आगे बढ़ा कर के उपर रख दिया और फिर अपने हाथ से होले होले थाली को अपनी ओर सरका कर दो पूरियाँ प्रो0 सूद की ओर

फेंकी तथा हाथ उठा कर आशीर्वाद भी दिया। प्रो0 कपूर (भापा जी) ने कहा कि इस समय मनोरमा में श्री प्रभु जी महाराज का आवेश हुआ है। उसी समय छोटी बेटी हनी ने रोना आरम्भ कर दिया और वह कह रही थी कि मुझे बेडरूम में ले चलो। श्री प्रभु जी ने भी मेरे हाथ के इशारे से प्रो0 सूद को अनुपम (हनी) को दुसरे कमरे में ले जाने को कहा। प्रो0 सूद बेटी हनी को उसी समय साथ वाले बेडरूम में ले गये। फिर आीशर्वाद सहित एक पूरी भापा जी को, एक पूरी श्रीमती कपूर (माता जी) को और एक पूरी Prof. K.L. Khetarpal को मिली। इस के बाद थाली खाली हो गई। थाली फिर मेरे द्वारा बन्द आंखें दूर खिसका दी गई। भाया जी ने अरूणा द्वारा और पूरियाँ रसोई घर से मंगवाई। श्री प्रभु जी ने मेरे द्वारा थाली फिर बन्द आंखें धीरे–धीरे अपनी ओर सरका कर प्रो0 सूद को दो पूरीयाँ तथा आशीर्वाद प्रदान किया। फिर एक पूरी तथा आशीर्वाद आशा को मिला। अब एक पूरी जो शेष रही उस का कुछ भाग तथा आशीर्वाद अनुपम (हनी) को व शेष पूरी आशीर्वाद सहित इन्दू को प्रसाद रूप में मिली। बाकी बच्चे सो रहे थे। फिर रात के 11 बजे मेरी समाधि खुल गई। उस समय हनी बेटी का Temperature बिल्कुल Normal था। अब मैं दोनों समय श्री प्रभु जी की आरती करने लगी। एक दिन मुझे गणेश जी के दर्शन हुये। फिर एक दिन ध्यान में श्री कृष्णा जी नन्हें से बालरूप में ग्वालों के साथ खलते हुये दिखाई दिये। एक दिन मैंने ध्यान में देखा कि श्री रामचन्द्र जी खड़ें हैं उन के पास विश्वामित्र व श्री लक्ष्मण जी खड़ें हैं और सीता जी ने वरमाला श्री रामचन्द्र जी महाराज के गले में डाल दी। आरती के समय मुझे हर रोज ऐसे दिखाई देता था जैसे कोई मकान है और उस में बहुत से खम्बें हैं। इस का एक बड़ा सा दरवाजा खुलता है और वहाँ बहुत से लोग पूजा कर रहे होते है। एक दिन तो लोग सचमुच ही हिलते हुये दिखाई दिये और उन्हों ने मुझे आशीर्वाद भी दिये।

13.01.1966 को आरती करते–करते मेरा ध्यान श्री प्रभु जी के चरणों में लग गया। मुझे बहुत तेज रोशनी दिखाई दी और इस रोशनी में श्री प्रभु जी के दिव्य रूप को देखा। मेरे यह कहने पर कि मुझे श्री कृष्ण जी अच्छे लगते हैं श्री प्रभु जी ने मुझे इस प्रकार से दिखाया। भगवान श्री रामचन्द्र जी व सीता जी दोनो पास–पास खड़े होते हैं और मुझ से पूछते हैं– ''हम अच्छे नहीं लगते न ?'' और इन दोनो की गर्दनें न का इशारा भी करती हैं इस के साथ ही श्री प्रभु जी भी एक तरफ बैठे ''ना–ना'' कहते हुये गर्दन हिलाते हैं। फिर इसी प्रकार भगवान शिव–पार्वती दिखाई देते हैं। वह भी ''ना ना'' करके गर्दन हिलाते हैं और श्री प्रभु जी भी ''ना'' करते हैं। अन्त में श्री कृष्ण जी व राधा जी उसी प्रकार पास–पास खड़े होते हैं और पूछते हैं। ''हम अच्छे लगते हैं न ?'' और अपनी गर्दन ''हाँ'' में हिलाते हैं। साथ ही श्री प्रभु जी भी ''हाँ–हाँ'' करते हुये गर्दन हिलाते हैं। फिर सब प्रभुस्वरूप एक बार इकट्ठे आते हैं बाकी सब तो ''ना'' में गर्दन हिलाते हैं पर श्री लीलाधारी कृष्णा–राधा जी ''हाँ'' में गर्दन हिलाते हैं। श्री प्रभु जी मुस्करा रहे होते हैं और इस सारे समय में बहुत ही तेज प्रकाश रहता है। फिर श्री प्रभु जी के साथ मेरी इस प्रकार से बातें होती हैं–

मैं पूछती हूँ–''आप मुझे छोड़ कर क्यों चले जाते हैं ? अब मेरा मन आप के बिना नहीं लगता।'' श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया–हमें और काम भी तो करने है। यह कैसे हो सकता है कि हम हमेशा तुम्हारे पास रहें। हाँ, हम अपने भक्तों को निराश नहीं करते। कोई हमारी मूर्त्ति बना कर अपने मन को बहला लेता है। कोई हमारा चित्र रख लेता है। हमारा स्थूल शरीर सदा एक स्थान पर तो नहीं रह सकता न।'' मैं कहती हूँ– ''फिर आप मुझे अपना चित्र दें। परन्तु मुझे श्रीकृष्ण रूप में चित्र चाहिए।'' उनका उत्तर आया–''हमारे

मुझे अपन चित्र दें। परन्तु मुझे श्रीकृष्ण रूप में चित्र चाहि।'' उनका उत्तर आया– ''फिर आप मुझे अपना चित्र दें। परन्तु मुझे श्री कृष्ण रूप में चित्र चाहिए।'' उनका उत्तर आया– ''हमारे चित्र पर तुम मुकुट लगा लों।'' मैं कहती हूँ कि इस प्रकार से तो यदि कोई देखेगा तो समझेगा कि किसी सरदार जी ने मुकुट लगा कर अपना फोटो खिचवाया है। मुझे तो पूरा श्री कृष्ण रूप चाहिए–कमर में पीली चुन्नी बन्धी हुई और कांधों पर लाल चुन्नी, सिर पर मुकुट व हाथों में बाँसुरी धोती डाल कर।''श्री प्रभु जी हँस पड़े और बोले–अच्छा समय आने दो तुम्हें चित्र मिल जायेगा।'' फिर मैं कहती हूँ– आप मेरे पास बालरूप में आजाइये। मेरा आप के बिना मन नहीं लगता।'' श्री प्रभु जी मुस्कराने लगे और बोले– 'बालरूप कैसा चाहिए देवकी की तरह या योशदा की तरह।'' मैं कहती हूँ दोनों ठीक भी हैं और गलत भी। इसके बाद श्री प्रभु जी का आर्शीवाद पर कर ध्यान खुल गया और मैं सो गई। अगले दिन श्रीमती कपूर माता जी ने भापा जी से कहा कि आप मनोरमा का हाथ देख कर बतायें कि इस पर यह अद्भुत कृपा प्रो० सूद करके है या कि इनके अपने पिछले संस्कार हैं। भापा जी ने सब के सामने मेरा हाथ देख कर बताया कि यह सब इनकी अपनी कमाई है जिस के कारण श्री प्रभु जी महाराज ने स्वयं ही इन पर यह अद्भुत कृपा की है।

अक्टूबर 1966 से मुझे अपने परिवार सहित श्री प्रभु जी के असीम कृपापात्र श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 10–12 वर्ष तक हर साल सैक्टर–14 चन्डीगढ़ में सत्संग करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके शाम के प्रवचन में मेरा ध्यान लग जाता और रात के एक दो बजे खुलता। श्री महाराज जी मुझे सदा प्यार से 'शक्ति' कह कर सम्बोधित करते थे। जब मैंने उन से दीक्षा लेने के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने मुझे कहा कि 'शक्ति तुम्हें दीक्षा लेने की कोई जरूरत नही है। तुम्हें दीक्षा श्री प्रभुजी महाराज ने स्वयं ही दी हुई हैं।

ई० सन् 1970 में श्री प्रभु जी द्वारा दीक्षित श्री श्यामलाल जी खन्ना की सुपुत्री 'मीरा' का विवाह प्रो० सी एल कपूर जी के बेटे 'उमेश' के साथ दिल्ली में महात्मा ऋषिदेवी जी की देखरेख में सम्पन्न हुआ। वहाँ पर मेरी आवेश समाधि हुई और श्री प्रभु जी महाराज ने अपनी अपार कृपा से सारा कार्य स्वयं अपने आर्शीवाद द्वारा सम्पन करवाया

आज तक श्री प्रभु जी की कृपा से घर में क्या–क्या घटनायें घटी और श्री प्रभु जी अपने बच्चों का योग–क्षेम कैसे–कैसे वहन करते हैं इन सब का वर्णन उन्हीं कृपालु प्रभु जी की आज्ञानुसार व भक्तसमाज के हितार्थ कब हो पायेगा यह तो वह कृपालु ही जाने।

!! जय श्री कृष्ण !!

श्री मद् भागवद् गीता

श्री कृष्ण अर्जुन संवाद

गीता तो सागर संमान, मोती है जिसमें भरे।
कृष्ण का आदेश इस में, कृष्ण का संदेश है।।
जगत्-गुरू श्री कृष्ण का, लासानी यह उपदेश है।
"माम् एमक् शरणम् ब्रज, दर्द-ओ-गम तेरे सारे भगें।।

(श्री हरि गीता ज्ञान)

॥ भगवान श्री कृष्ण कृपा ॥

श्री कृष्णार्जुन संवाद

श्रीमद्भगवद्गीता

मंगलमय पहला अध्याय

राजा धृतराष्ट्र ने कहा –

1 रण-लालसा से पुण्य-भू, कुरु-खेत में एकत्र हो।
मेरे सुतों ने, पाण्डवों ने, क्या किया संजय कहो॥

संजय ने कहा –

2 तब देखकर पाण्डव-कटक को व्यूह-रचना साज से।
इस भांति दुर्योधन वचन कहने लगे गुरुराज से॥

3 आचार्य महती-सैन्य सारी, पाण्डवों की देखिये।
तबा शिष्यब ुधवरद ुपद-सुतन ेद लस भी० यूहिता कये॥

4 भट भीम अर्जुन से अनेकों शूर श्रेष्ठ धनुर्धरे।
सात्यकि द्रुपद योद्धा विराट महारथी रणबांकुरे॥

5 भट धृष्टकेतु, नरेशकाशी, चेकितान महान् हैं।
नर-श्रेष्ठ शैब्य, नरेन्द्र पुरुजित, कुन्तिभोज समान हैं॥

6 श्री उत्तमौजा युधामन्यु, पराक्रमी वरवीर हैं।
सौभद्र, सारे द्रौपदेय, महारथी रणधीर हैं॥

7 द्विजराज ! जो अपने कटक के श्रेष्ठ, सेनापति सभी।
सुन लीजिये मैं नाम उनके भी सुनाता हूँ अभी॥

8 हैं आप फिर श्रीभीष्म, कर्ण, अजेय कृप रणधीर हैं।
भूरिश्रवा गुरुपुत्र और विकर्ण से बलवीर हैं॥

9 रण साज साजे निपुण शूर अनेक ऐसे बल भरे।
मेरे लिये तय्यार हैं, जीवन हथेली पर धरे॥

10 श्रीभीष्म-रक्षित है नहीं, पर्याप्त अपना दल बड़ा।
पर भीम-रक्षा में उधर, पर्याप्त उनका दल खड़ा॥

11 इस हेतु निज निज मोरचों पर, वीर पूरा बल धरें।
सब ओर चारों छोर से, रक्षा पितामह की करें॥

12 कुरुकुल पितामह तब नृपति मन मोद से भरते हुए।
करा विकटग र्जना संहस ी,ा निजश ंख-ध्वनिक रतेह ुए॥

13 फिर शंख भेरी ढोल आनक गोमुखे चहुँ ओर से।
सब युद्ध बाजे एक दम बजने लगे ध्वनि घोर से॥

14 तब कृष्ण अर्जुन श्वेत घोड़ों से सजे रथ पर चढ़े।
निज दिव्य शंखों को बजाते वीर वर आगे बढ़े॥

15 श्रीकृष्ण अर्जुन 'पाञ्चजन्य' व 'देवदत्त' गुंजा उठे।
फिर भीमकर्मा भीम 'पौण्ड्र' निनाद करने में जुटे॥

16 करने लगे ध्वनि नृप युधिष्ठिर, निज 'अनन्तविजय' लिये।
गुंजितन कुलस हदेवन ेस ु-'सुघोष'' मणिपुष्पक'ा कये॥

श्रीमद्भगवद्गीता

मंगलमय पहला अध्याय

17 काशीनरेश विशाल धनुधारी, शिखण्डी वीर भी।
भट धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि, श्रेष्ठ योधा गण सभी॥
18 सब द्रौपदी के सुत, द्रपद, सौभद्र बल भरने लगे।
चहुँ ओर राजन् ! वीर निज निज शङ्ख ध्वनि करने लगे॥
19 वह घोर शब्द विदीर्ण सब कौरव-हृदय करने लगा।
चहुं ओर गूँज वसुन्धरा आकाश में भरने लगा॥
20 सब कौरवों को देख रण का साज सब पूरा किये।
शस्त्रादि चलने के समय अर्जुन-कपि-ध्वज धनु लिये॥
21 श्रीकृष्ण से कहने लगे आगे बढ़ा रथ लीजिये।
दोनों दलों के बीच में अच्युत ! खड़ा कर दीजिये॥
22 करलूँ निरीक्षण युद्ध में जो जो जुड़े रणधीर हैं।
इस युद्ध में माधव ! मुझे जिन पर चलाने तीर हैं॥
23 मैं देखलूँ रण-हेतु जो आए यहाँ बलवान हैं।
जो चाहते दुर्बुद्धि दुर्योधन-कुमति-कल्याण हैं॥

संजय ने कहा -

24 श्रीकृष्ण ने जब गुडाकेश विचार, भारत ! सुन लिया।
दोनों दलों के बीच में जाकर खड़ा रथ को किया॥
25 राजा, रथी, श्रीभीष्म, द्रोणाचार्य के जा सामने।
लो देखलो ! कौरव कटक, अर्जुन ! कहा भगवान् ने॥
26 तब पार्थ ने देखा वहां, सब हैं स्वजन बूढ़े बड़े।
आचार्य भाई पुत्र मामा, पौत्र प्रियजन हैं खड़े॥
27 स्नेही ससुर देखे खड़े, कौन्तेय ने देखा जहाँ।
दोनों दलों में देखकर, प्रिय बन्धु बान्धव ही वहाँ॥
28 कहने लगे इस भांति तब, होकर कृपायुत खिन्न से।
हे कृष्ण ! रण में देखकर, एकत्र मित्र अभिन्न से॥
29 होते शिथिल हैं अंग सारे, सूख मेरा मुख रहा।
तन कांपता थर थर तथा रोमांच होता है महा॥
30 गांडीव गिरता हाथसे, जलता समस्त शरीर है।
मैं रह नहीं पाता खड़ा, मन भ्रमित और अधीर है॥
31 दिखते सभी विपरीत लक्षण, खिन्न चित भगवान् है।
रण में स्वजन सब मार कर, दिखता नहीं कल्याण है॥
32 इच्छा नहीं जय राज्य की है, व्यर्थ ही सुख-भोग है।
गोविन्द ! जीवन राज्य-सुख का क्या हमें उपयोग है॥
33 जिसके लिये सुख भोग सम्पति राज्य की इच्छा रही।
लड़ने खड़े हैं आश तज धन और जीवन की वही॥

श्रीमद्भगवद्गीता

मंगलमय पहला अध्याय

34 आचार्यगण, मामा, पितामह, सुत, सभी बूढ़े बड़े।
साले, ससुर, स्नेही, सकल प्रिय पौत्र सम्बन्धी खड़े॥

35 क्या भूमि, मधुसूदन ! मिले त्रैलोक्य का यदि राज्य भी।
वे मारलें पर शस्त्र मैं उन पर न छोड़ूँगा कभी॥

36 इनको जनार्दन मारकर होगा हमें संताप ही।
हैं आतताई, मारने से पर लगेगा पाप ही॥

37 माधव ! उचित वध है न इनका बन्धु हैं अपने सभी।
निज बन्धुओं को मार कर क्या हम सुखी होंगे कभी॥

38 मति मन्द उनकी लोभ से, दिखता न उनको आप है।
कुल-नाश से क्या दोष, प्रिय-जन-द्रोह से क्या पाप है॥

39 कुल-नाश दोषों का जनार्दन ! जब हमें सब ज्ञान है।
फिर क्यों न ऐसे पाप से बचना भला भगवान् है।

40 कुल नष्ट होते भ्रष्ट होता कुल-सनातन-धर्म है।
जब धर्म जाता आ दबाता पाप और अधर्म है॥

41 जब वृद्धि होती पाप की कुल की बिगड़ती नारियां।
हे कृष्ण ! फलती फूलती तब वर्णसंकर क्यारियां॥

42 कुल घातकी को और कुल को ये गिराते पाप में।
होता न तर्पण पिण्ड यों पड़ते पितर संताप में॥

43 कुल घातकों के वर्णसंकर-कारकी इस पाप से।
सारे सनातन, जाति, कुल के धर्म मिटते आप से॥

44 इस भांति से कुल-धर्म जिनके कृष्ण ! होते भ्रष्ट हैं।
कहते सुना है वे सदा पाते नरक में कष्ट हैं॥

45 हम राज्य सुख के लोभ से हा ! पाप यह निश्चय किये।
उद्यत हुए सम्बन्धियों के प्राण लेने के लिये॥

46 यह ठीक हो यदि शस्त्र ले मारें मुझे कौरव सभी।
निःशस्त्र हो मैं छोड़ दूँ करना सभी प्रतिकार भी॥

संजय ने कहा –

47 रणभूमि में इस भाँति कहकर पार्थ धनु-शर छोड़ के।
अति शोक से व्याकुल हुए बैठे वहीं मुँह मोड़ के॥

॥ मंगलमय पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

अमृतमय दूसरा अध्याय

संजय ने कहा -

1 ऐसे कृपायुत अश्रुपूरित दुःख से दहते हुए।
कौन्तेय से इस भांति मधुसूदन वचन कहते हुए॥

श्रीभगवान् ने कहा-

2 अर्जुन! तुम्हें संकट समय कैसे हुआ अज्ञान है।
जो आर्य-अनुचित और नाशक स्वर्ग, सुख, सन्मान है॥

3 अनुचित नपुंसकता तुम्हें हे पार्थ ! इसमें मत पड़ो।
यह क्षुद्र कायरता परंतप ! छोड़कर आगे बढ़ो॥

अर्जुन ने कहा -

4 किस भांति मधुसूदन समर में भीष्म द्रोणाचार्य पर।
मैं वाण अरिसूदन चलाऊं वे हमारे पूज्यवर॥

5 भगवन् ! महात्मा गुरु-जनों का मारना न यथेष्ट है।
इससे जगत में मांग भिक्षा पेट-पालन श्रेष्ठ है॥
इन गुरुजनों को मार कर, जो अर्थलोलुप हैं बने।
उनके रुधिर ही से सने, सुख भोग होंगे भोगने॥

6 जीतें उन्हें हम या हमें वे, यह न हमको ज्ञात है।
यह भी नहीं हम जानते, हितकर हमें क्या बात है।
जीवित न रहना चाहते हम, मार कर रण में जिन्हें।
धृतराष्ट्र-सुत कौरव वही, लड़ने खड़े हैं सामने॥

7 कायरपने से हो गया सब नष्ट क्षात्र-स्वभाव है।
मोहित हुई मति ने भुलाया धर्म विषयक भाव है॥
आया शरण हूँ आपकी मैं शिष्य शिक्षा दीजिये।
निश्चित कहो कल्याणकारी कर्म क्या मेरे लिये॥

8 धन-धान्य-शाली राज्य निष्कंटक मिले संसार में।
स्वामित्व सारे देवताओं का मिले विस्तार में॥
कोई कहीं साधन मुझे फिर भी नहीं दिखता अहो।
जिससे कि इन्द्रिय-तापकारी शोक सारा दूर हो॥

संजय ने कहा -

9 इसभ ांतिक हकरकृ ष्णस ,र ाजन्!' 'लडूँगाम ैंन हीं''।
ऐसे वचन कह गुडाकेश अवाच्य हो बैठै वहीं॥

10 उस पार्थ से, रण-भूमि में जो, दुःख से दहने लगे।
हंसते हुए से हृषीकेश तुरन्त यों कहने लगे॥

श्री भगवान् ने कहा -

11 कह विज्ञ-वाक्य अशोच्य का तू व्यर्थ करता शोच भी।
जीते मरे की विज्ञजन चिंता नहीं करते कभी॥

श्रीमद्भगवद्गीता

अमृतमय दूसरा अध्याय

12 मैं और तू राजा सभी देखो कभी क्या थे नहीं।
यह भी असम्भव हम सभी अब फिर नहीं होंगे कहीं॥
13 ज्यों बालपन, यौवन जरा इस देह में आते सभी।
त्यों जीव पाता देह और, न धीर मोहित हों कभी।
14 शीतोष्ण या सुख-दुःख-प्रद कौन्तेय इन्द्रिय भोग हैं।
आते व जाते हैं सहो सब नाशवत संयोग हैं॥
15 नर श्रेष्ठ ! वह नर श्रेष्ठ है इनसे व्यथा जिसको नहीं।
वहम ोक्षप ानेय ोग्यह ै,स ुखद ुख ि जसेस मस बक हीं॥
16 जो है असत् रहता नहीं, सत् का न किन्तु अभाव है।
लखि अन्त इनका ज्ञानियों ने यों किया ठहराव है।
17 यह याद रख अविनाशि है जिसने किया जग व्याप्त है।
अविनाशि का नाशक नहीं कोई कहीं पर्याप्त है।
18 इस देह में आत्मा अचिन्त्य सदैव अविनाशी अमर।
पर देह उसकी नष्ट होती अस्तु अर्जुन युद्ध कर॥
19 है जीव मरने मारने वाला यही जो मानते।
यह मारता मरता नहीं दोनों न वे जन जानते॥
20 मरता न लेता जन्म, अब है, फिर यहीं होगा कहीं।
शाश्वत,प ुरातन,अ ज,अ मरत नव ध ि कयेम रतान हीं॥
21 अव्यय अजन्मा नित्य अविनाशी इसे जो जानता।
कैसे किसी का वध कराता और करता है बता॥
22 जैसे पुराने त्याग कर नर वस्त्र नव बदलें सभी।
यों जीर्ण तन को त्याग नूतन देह धरता जीव भी॥
23 आत्मा न कटता शस्त्र से है, आग से जलता नहीं।
सूखे न आत्मा वायु से, जल से कभी गलता नहीं॥
24 छिदने न जलने और गलने सूखने वाला कभी।
यह नित्य, नि श्चल, थिर, सनातन और है सर्वत्र भी॥
25 इन्द्रिय पहुंच से है परे, मन-चिन्तना से दूर है।
अविकार इसको जान दुख में व्यर्थ रहना चूर है॥
26 यदि मानते हो नित्य मरता, जन्मता रहता यहीं।
तो भी महाबाहो ! उचित ऐसी कभी चिन्ता नहीं॥
27 जन्मे हुए मरते, मरे निश्चय जनम लेते कहीं।
ऐसी अटल जो बात है उसकी उचित चिन्ता नहीं॥
28 अव्यक्त प्राणी आदि में हैं, मध्य में दिखते सभी।
फिर अन्त में अव्यक्त, क्या इसकी उचित चिन्ता कभी॥

श्रीमद्भगवद्गीता

अमृतमय दूसरा अध्याय

29 कुछ देखते आश्चर्य से, आश्चर्यवत कहते कहीं।
कोई सुने आश्चर्यवत, पहिचानता फिर भी नहीं॥

30 सारे शरीरों में अमर आत्मा न वध होता किये।
फिर प्राणियों का शोक यों तुमको न करना चाहिये॥

31 फिर देखकर निज धर्म, हिम्मत हारना अपकर्म है।
इस धर्म-रण से बढ़ न क्षत्रिय का कहीं कुछ धर्म है॥

32 रण स्वर्गरूपी द्वार देखो खुल रहा है आप से।
यह प्राप्त होता क्षत्रियों को युद्ध भाग्य-प्रताप से॥

33 तुम धर्म के अनुकूल रण से जो हटे पीछे कभी।
निज धर्म खो अपकीर्ति लोगे और लोगे पाप भी॥

34 अपकीर्ति गायेंगे सभी फिर इस अमिट अपमान से।
अपकीर्ति, सम्मानित पुरुष को अधिक प्राण-पयान से॥

35 ''रण छोड़कर डर से भगा अर्जुन'' कहेंगे सब यही।
सन्मान करते वीरवर जो तुच्छ जानेंगे वही॥

36 कहने न कहने की खरी खोटी कहेंगे रिपु सभी।
सामर्थ्य-निन्दा से घना दुख और क्या होगा कभी॥

37 जीते रहे तो राज्य लोगे, मर गये तो स्वर्ग में।
इस हेतु निश्चय युद्ध का करके उठो अरिवर्ग में॥

38 जय-हार लाभालाभ, सुख-दुख सम समझकर सब कहीं।
फिर युद्ध कर तुझको धनुर्धर ! पाप यों होगा नहीं॥

39 हैस ांख्यक ाय हज्ञ ानअ बस ुनय ोगक ाश ुभज्ञ ानभ ी।
हो युक्त जिससे कर्म-बन्धन पार्थ ! छूटेंगे सभी॥

40 आरम्भ इसमें है अमिट यह विघ्न वाधा से परे।
इस धर्म का पालन तनिक भी सर्व संकट को हरे॥

41 इस मार्ग में नित निश्चयात्मक-बुद्धि अर्जुन एक है।
बहु बुद्धियां बहु भेद-युत उनकी जिन्हें अविवेक है॥

42 जो वेदवादी, कामनाप्रिय, स्वर्गइच्छुक, मूढ़ हैं।
''अतिरिक्त इसके कुछ नहीं'' बातें बढ़ा कर यों कहें॥

43 नाना क्रिया विस्तारयुत, सुख भोग के हित सर्वदा।
जिस जन्मरूपी कर्म-फल-प्रद बात को कहते सदा॥

44 उस बात से मोहित हुए जो भोग वैभव रत सभी।
व्यवसाय बुद्धि न पार्थ ! उनकी हो समाधिस्थित कभी॥

45 हैं वेद त्रिगुणों से भरे तुम गुणातीत महान् हो।
तज योग क्षेम व द्वन्द्व नित सत्वस्थ आत्मावान् हो॥

श्रीमद्भगवद्गीता

अमृतमय दूसरा अध्याय

46 जितना प्रयोजन कूप से चहुं ओर निर्मल जल बहे।
मतिमान् ब्राह्मण का प्रयोजन वेद से उतना रहे॥

47 अधिकार केवल कर्म करने का, नहीं फल में कभी।
होना न तू फल-हेतु भी, छोड़ देना कर्म भी॥

48 आसक्ति सब तज सिद्धि और असिद्धि मान समान ही।
योगस्थ होकर कर्म कर, है योग समता ज्ञान ही॥

49 इस बुद्धियोग महान से सब कर्म अतिशय हीन हैं।
इस बुद्धि की अर्जुन शरण लो चाहते फल दीन हैं॥

50 जो बुद्धि-युत है पाप-पुण्यों में न पड़ता है कभी।
बन योग-युत, है योग ही यह कर्म में कौशल सभी॥

51 नित बुद्धि-युत हो कर्म के फल त्यागते मतिमान् हैं।
वे जन्म-बन्धन तोड़ पद पाते सदैव महान् हैं॥

52 इस मोह के गंदले सलिल से पार मति होगी जभी।
वैराग्य होगा सब विषय में जो सुना सुनना अभी॥

53 श्रुति-भ्रान्त-बुद्धि समाधि में तेरी अचल, थिर हो जभी।
हे पार्थ ! योग समत्व होगा प्राप्त यह तुझको तभी॥

अर्जुन ने कहा -

54 केशव ! किसे दृढ़-प्रज्ञजन अथवा समाधिस्थित कहें।
थिर-बुद्धि कैसे बोलते, बैठें, चलें, कैसे रहें॥

श्रीभगवान् ने कहा -

55 हे पार्थ ! मन की कामना जब छोड़ता है जन सभी।
हो आप आपे में मगन दृढ़-प्रज्ञ होता है तभी॥

56 सुख में न चाह, न खेद जो दुख में कभी अनुभव करे।
थिर-बुद्धि वह मुनि, राग एवं क्रोध भय से जो परे॥

57 शुभ या अशुभ जो भी मिले उसमें न हर्ष न शोक ही।
निःस्नेह जो सर्वत्र है थिर-बुद्धि होता है वही॥

58 हे पार्थ ज्यों कछुआ समेटे अङ्ग. चारों छोर से।
थिर-बुद्धि जब यों इन्द्रियां सिमटें विषय की ओर से॥

59 होत विषय सब दूर हैं आहार जब जन त्यागता।
रस किन्तु रहता, ब्रह्म को कर प्राप्त वह भी भागता॥

60 कौन्तेय ! करते यत्न इन्द्रिय-दमन हित विद्वान् हैं।
मन किन्तु बल से खैंच लेती इन्द्रियां बलवान् हैं॥

61 उन इन्द्रियों को रोक, बैठे योग-युत मत्पर हुआ।
आधीन जिसके इन्द्रियां, दृढ़-प्रज्ञ वह नित नर हुआ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

अमृतमय दूसरा अध्याय

62 चिन्तन विषय का, सङ्ग. विषयों में बढ़ाता है तभी।
फिर संग से हो कामना, हो कामना से क्रोध भी॥

63 फिर क्रोध से है मोह, सुधि को मोह करता भ्रष्ट है।
यह सुधि गए फिर बुद्धि विनशे, बुद्धि-विनशे नष्ट है॥

64 पर राग-द्वेष-विहीन सारी इन्द्रियां आधीन कर।
फिर भोग करके भी विषय, रहता सदैव प्रसन्न नर॥

65 हो प्राप्त जब सुप्रसन्नता, दुख नष्ट होते हैं सभी।
जब चित्त में है मोद, होती बुद्धि भी है दृढ़ तभी॥

66 रहकर अयुक्त न बुद्धि अथवा भावना होगी कहीं।
बिनभ ावनान हिंश ांतिह ै ,ि बनश ांतिक ेस ुखह ैन हीं॥

67 सब विषय विचरित इन्द्रियों में, साथ मन जिसके रहे।
वह बुद्धि हर लेती, पवन से नाव ज्यों जल में बहे॥

68 चहुं ओर से इन्द्रिय-विषय से, इन्द्रियां जब दूर ही।
रहती हटीं जिसकी सदा, दृढ़-प्रज्ञ होता है वही॥

69 सबकी निशा तब जागता योगी पुरुष हे तात ! है।
जिसमें सकल जन जागत्ते, ज्ञानी पुरुष की रात है॥

70 सब ओर से परिपूर्ण जलनिधि में सलिल जैसे सदा।
आकर समाता, किन्तु अविचल सिन्धु रहता सर्वदा॥
इस भांति ही जिसमें विषय जाकर समा जाते सभी।
वह शांति पाता है, न पाता काम-कामी-जन कभी॥

71 सब त्याग इच्छा कामना, जो नर विचरता नित्य ही।
मद और ममता हीन होकर, शांति-पद पाता वही॥

72 यह पार्थ ! ब्राह्मीस्थिति इसे पा नर न मोहित हो कभी।
निर्वाण पद हो प्राप्त इसमें ठैर अन्तिम काल भी॥

॥ अमृतमय दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ भगवान श्री कृष्ण कृपा ॥

श्री कृष्णार्जुन संवाद

श्रीमद्भगवद्गीता

कर्मयोग तीसरा अध्याय

अर्जुन ने कहा -

1 यदि हे जनाद्रन ! कर्म से तुम बुद्धि कहते श्रेष्ठ हो।
तो फिर भंयकर कर्म में मुझको लगाते क्यों कहो॥

2 उलझन भरे कह वाक्य, भ्रमता डालते भगवान् हो।
वह बात नि श्चय कर कहो जिससे मुझे कल्याण हो॥

श्रीभगवान् ने कहा -

3 पहले कही दो भांति निष्ठा, ज्ञानियों की ज्ञान से।
फिर योगियों की योग-निष्ठा, कर्मयोग विधान से॥

4 आरम्भ बिन ही कर्म के निष्कर्म हो जाते नहीं।
सब कर्म ही के त्याग से भी सिद्धि जन पाते नहीं॥

5 बिन कर्म रह पाता नहीं कोई पुरुष पल भर कभी।
हो प्रकृति-गुण आधीन करने कर्म पड़ते हैं सभी॥

6 कर्मेन्द्रियों को रोक जो मनसे विषय-चिन्तन करे।
वह मूढ़ पाखण्डी कहाता दम्भ निज मन में भरे॥

7 जो रोक मन से इन्द्रियां आसक्ति बिन हो नित्य ही।
कर्मेन्द्रियों से कर्म करता श्रेष्ठ जन अर्जुन ! वही॥

8 बिन कर्म से नित श्रेष्ठ नियमित-कर्म करना धर्म है।
बिन कर्म के तन भी न सधता, कर नियत जो कर्म है॥

9 तज यज्ञ के शुभ कर्म, सारे कर्म बन्धन पार्थ ! हैं।
अतएव तज आसक्ति सब कर कर्म जो यज्ञार्थ हैं॥

10 विधि ने प्रजा के साथ पहले यज्ञ को रच के कहा।
पूरे कर यह सब मनोरथ, वृद्धि हो इससे महा॥

11 मख से करो तुम तुष्ट सुरगण, वे करें तुमको सदा।
ऐसे परस्पर तुष्ट हो, कल्याण पाओ सर्वदा॥

12 मख-तृप्त हो सुर कामना पूरी करेंगे नित्य ही।
उनका दिया उनको न दे, जो भोगता तस्कर वही॥

13 जो यज्ञ में दे भाग खाते पाप से छुट कर तरें।
तन हेतु जो खाते पकाते पाप में घुट कर मरें॥

14 सम्पूर्ण प्राणी अन्न से हैं, अन्न होता वृष्टि से।
यह वृष्टि होती यज्ञ से, जो कर्म की शुभ सृष्टि से॥

15 फिर कर्म होते ब्रह्म से हैं, ब्रह्म अक्षर से कहा।
यों यज्ञ में सर्वत्र-व्यापी ब्रह्म नित ही रम रहा॥

16 चलता न जो इस भांति चलते चक्र के अनुसार है।
पापायु इन्द्रियलम्पटी वह व्यर्थ ही भू-भार है॥

श्रीमद्भगवद्गीता

कर्मयोग तीसरा अध्याय

17 नित किन्तु जो जन आत्मरत है आत्म-तृप्त विशेष है।
संतुष्ट आत्मा में, उसे करना नहीं कुछ शेष है॥
18 उसको न कोई लाभ है करने न करने से कहीं।
हे पार्थ ! प्राणीमात्र से उसको प्रयोजन है नहीं॥
19 जब है यही, कर्तव्यकर, आसक्ति छोड़ सदैव ही।
जो कर्म यों करता परम-पद नित्य नर पाता वही॥
20 जनकादि ने भी सिद्धि पाई कर्म ऐसे ही किये।
फिर लोकसंग्रह देख कर भी कर्म करना चाहिये॥
21 जो कार्य करता श्रेष्ठ जन करते वही हैं और भी।
उसके प्रमाणित-पंथ पर ही पैर धरते हैं सभी॥
22 अप्राप्त मुझको कुछ नहीं जो प्राप्त करना हो अभी।
त्रैलोक्य में करना न कुछ पर कर्म करता मैं सभी॥
23 आलस्य तजके पार्थ ! मैं यदि कर्म में वरतूँ नहीं।
सब भांति मेरा अनुकरण ही नर करेंगे सब कहीं॥
24 यदि छोड़दूँ मैं कर्म करना, लोक सारा भ्रष्ट हो।
मैं सर्व संकर का बनूँ कर्ता, सभी जग नष्ट हो॥
25 ज्यों मूढ़ मानव कर्म करते नित्य कर्मासक्त हो।
यों लोकसंग्रह-हेतु करता कर्म विज्ञ विरक्त हो॥
26 ज्ञानी न डाले भेद कर्मासक्त की मति में कभी।
वह योग-युत हो कर्म कर, उनसे करावे फिर सभी॥
27 नित प्रकृति-गुण द्वारा किये सब कर्म हैं सुविधान से।
मैं कर्म करता, मूढ़-मानव मानता अभिमान से॥
28 गुण और कर्म विभाग के सब तत्व जो जन जानता।
होता न वह आसक्त गुण का खेल गुण में मानता॥
29 गुण कर्म में आसक्त होते प्रकृतिगुण मोहित सभी।
उन मंद मूढ़ों को करे विचलित न ज्ञानी जन कभी॥
30 अध्यात्म-मति से कर्म अर्पण कर मुझे आगे बढ़ो।
फल-आश ममता छोड़कर निश्चिन्त होकर फिर लड़ो॥
31 जो दोष-बुद्धि विहीन मानव नित्य श्रद्धायुक्त हैं।
मेरे सुमत अनुसार करके कर्म वे नर मुक्त हैं॥
32 जो दोष-दर्शी मूढ़मति मत मानते मेरा नहीं।
वे सर्वज्ञान-विमूढ़ नर नित नष्ट जानो सब कहीं॥
33 वर्ते सदा अपनी प्रकृति अनुसार ज्ञान-निधान भी।
निग्रह करेगा क्या, प्रकृति अनुसार हैं प्राणी सभी॥

श्रीमद्भगवद्गीता

कर्मयोग तीसरा अध्याय

34 अपने विषय में इन्द्रियों को राग भी है द्वेष भी।
ये शत्रु हैं, वश में न इनके चाहिये आना कभी॥

35 ऊँचे सुलभ पर धर्म से निज विगुण धर्म महान् है।
पर-धर्म भय-प्रद, मृत्यु भी निज धर्म में कल्याण है॥

अर्जुन ने कहा -

36 भगवन् ! कहो करना नहीं नर चाहता जब आप है।
फिर कौन बल से खींच कर उससे कराता पाप है॥

श्री भगवान् ने कहा -

37 पैदा रजोगुण से हुआ यह काम ही यह क्रोध ही।
पेटू महापापी कराता पाप है, बैरी यही॥

38 ज्यों गर्भ झिल्ली से, धुएँ से आग, शीशा धूल से।
यों काम से रहता ढका है, ज्ञान भी (आमूल) से॥

39 यह काम शत्रु महान्, नित्य अतृप्त अग्नि समान है।
इसने ढका कौन्तेय ! सारे ज्ञानियों का ज्ञान है॥

40 मन, इन्दियों में, बुद्धि में यह वास वैरी नित करे।
इनके सहारे ज्ञान ढक, जीवात्म को मोहित करे॥

41 इन्द्रिय-दमन करके करो फिर नाश शत्रु महान् का।
पापी सदा यह नाशकारी ज्ञान का विज्ञान का॥

42 हैं श्रेष्ठ इन्द्रिय, इन्द्रियों से पार्थ ! मन मानो परे।
मन से परे फिर बुद्धि, आत्मा बुद्धि से जानो परे॥

43 यों बुद्धि से आत्मा परे है जान इसके ज्ञान को।
मन वश्य करके नष्ट करदे काम शत्रु महान् को॥

॥ कर्मयोग तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

ज्ञान कर्म संन्यास योग चौथा अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

1 मैंने कहा था सूर्य के प्रति योग यह अव्यय महा।
फिर सूर्य ने मनु से कहा, इक्ष्वाकु से मनु ने कहा॥

2 यों राज-ऋषि परिचित हुए सुपरम्परागत योग से।
इस लोक में वह मिट गया बहु काल के संयोग से॥

3 मैंने समझ कर यह पुरातन योग श्रेष्ठ रहस्य है।
तुझसे कहा सब क्योंकि तू मम भक्त और वयस्य है।

अर्जुन ने कहा -

4 पैदा हुए थे सूर्य पहले आप जन्मे हैं अभी।
मैं मानलूँ कैसे कहा यह आपने उनसे कभी॥

श्रीभगवान् ने कहा -

5 मैं और तू अर्जुन अनेकों बार जन्में हैं कहीं।
सब जानता हूँ मैं परंतप ! ध्यान तुझको है नहीं॥

6 यद्यपि अजन्मा, प्राणियों का ईश मैं अव्यय परम्।
पर निज प्रकृति आधीन कर, लूँ जन्म माया से स्वयम्॥

7 जब जब धरम की हानि होती और बढ़ता पाप ही।
तब तब सदा मैं धारता अवतार, भारत ! आप ही॥

8 सब साधु जन रक्षार्थ, दुर्जन-नाश करने के लिये।
युग युग प्रकट होता सुधर्म-विकास करने के लिये॥

9 जो दिव्य मेरा जन्म कर्म रहस्य से सब जान ले।
मुझमें मिले तन त्याग, अर्जुन ! फिर न वह जन जन्म ले॥

10 मन्मय ममाश्रित जन हुए भय क्रोध राग-विहीन हैं।
तप यज्ञ से हो शुद्ध बहु मुझमें हुए लवलीन हैं॥

11 जिस भांति भजते जो मुझे उस भांति दूं फल-भोग भी।
सब ओर से ही वर्तते मम मार्ग में मानव सभी॥

12 इस लोक में करते फलेच्छुक देवता-आराधना।
तत्काल होती पूर्ण उनकी कर्म-फल की साधना॥

13 मैंने बनाये कर्म गुण के भेद से चहुँ वर्ण भी।
कर्ता उन्हों का जान तू, अव्यय अकर्ता मैं सभी॥

14 फल की न मुझको चाह, बँधता मैं न कर्मों से कहीं।
यों जानता है जो मुझे वह कर्म से बंधता नहीं॥

15 यह जान कर्म मुमुक्षुपुरुषों ने सदा पहिले किये।
प्राचीन पूर्वज-कृत करो अब कर्म तुम इसही लिये॥

16 क्या कर्म और अकर्म है भूले यही विद्वान् भी।
जो जान पापों से छुटो, वह कर्म कहता हूं सभी॥

श्रीमद्भगवद्गीता

ज्ञान कर्म संन्यास योग चौथा अध्याय

17 हे पार्थ ! कर्म अकर्म और विकर्म का क्या ज्ञान है।
यह जान लो सब, कर्म की गति गहन और महान् है॥

18 जो कर्म में देखे अकर्म, अकर्म में भी कर्म ही।
है योग-युत ज्ञानी वही सब कर्म करता है वही॥

19 ज्ञानी उसे पंडित कहें, उद्योग जिसके हों सभी।
फल-वासना बिन, भस्म हों ज्ञानाग्नि में सब कर्म भी॥

20 जो है निराश्रय तृप्त नित, फल कामनाएँ तज सभी।
वह कर्म सब करता हुआ, कुछ भी कहीं करता कभी॥

21 जो कामना तज, सर्वसंग्रह त्याग, मन वश में करे।
केवल करे जो कर्म दैहिक, पाप से है वह परे॥

22 बिन द्वेष द्वन्द्वअसिद्धि सिद्धि समान हैं जिसको सभी।
जो है यदृच्छा-लाभ-तृप्त, न बद्ध वह कर कर्म भी॥

23 चित ज्ञान में जिनका सदा जो मुक्त संग-विहीन हों।
यज्ञार्थ करते कर्म उनके सर्व कर्म विलीन हों॥

24 मख ब्रह्म से, ब्रह्माग्नि में, हवि ब्रह्म, अर्पणा ब्रह्म है।
सब कर्म जिसको ब्रह्म, करता प्राप्त वह जन ब्रह्म है॥

25 योगी पुरुष कुछ दैव-यज्ञ उपासना में मन धरें।
ब्रह्माग्नि में कुछ यज्ञ द्वारा यज्ञ ज्ञानी जन करें॥

26 कुछ होमते श्रोत्रादि इन्द्रिय संयमों की आग में।
इन्द्रिय-अनल में कुछ विषय शब्दादि आहुति दे रमें॥

27 कर आत्म-संयमरूप योगानल प्रदीप्त सुज्ञान से।
कुछ प्राण एवं इन्द्रियों के कर्म होमें ध्यान से॥

28 कुछ संयमी जन यज्ञ करते योग, तप से, दान से।
स्वाध्याय से करते यती, कुछ यज्ञ करते ज्ञान से॥

29 कुछ प्राण में होमें अपान व प्राणवायु अपान में।
कुछ रोक प्राण अपान प्राणायाम ही के ध्यान में॥

30 कुछ मिताहारी हवन करते प्राण ही में प्राण हैं।
क्षय पाप यज्ञों से किये ये यज्ञ-विज्ञ महान् हैं॥

31 जो यज्ञ का अवशेष खाते ब्रह्म को पाते सभी।
परलोक तो क्या, यज्ञ-त्यागी को नहीं यह लोक भी॥

32 बहु भांति से यों ब्रह्म-मुख में यज्ञ का विस्तार है।
होते सभी हैं कर्म से, यह जानकर निस्तार है॥

33 धन-यज्ञ से समझो सदा ही ज्ञान-यज्ञ प्रधान है।
सब कर्म का नित ज्ञान में पार्थ ! पर्यवसान है॥

श्रीमद्भगवद्गीता

ज्ञान कर्म संन्यास योग चौथा अध्याय

34 सेवा विनय प्रणिपात पूर्वक प्रश्न पूछो ध्यान से।
उपदेश देंगे ज्ञान का तब तत्व-दर्शी ज्ञान से॥

35 होगा नहीं फिर मोह ऐसे श्रेष्ठ शुद्ध विवेक से।
तब ही दिखेंगे जीव मुझमें और तुझमें एक से॥

36 तेरा कहीं यदि पापियों से घोर पापाचार हो।
इस ज्ञान-नय्या से सहज में पाप-सागर पार हो॥

37 ज्यों पार्थ ! पावक प्रज्वलित ईंधन जलाती है सदा।
ज्ञानाग्नि सारे कर्म करती भस्म यों ही सर्वदा॥

38 इस लोक में साधन पवित्र न और ज्ञान समान है।
योगी पुरुष पाकर समय पाता स्वयं वह ज्ञान है।

39 श्रद्धा सहित जो जीत इन्द्रिय, ज्ञान में तत्पर रहे।
वह शीघ्र पाकर ज्ञान यह, सुख शान्ति सागर में बहे॥

40 जिसमें न श्रद्धा ज्ञान, संशयवान् डूबे सब कहीं।
उसके लिये सुख, लोक या परलोक कुछ भी है नहीं॥

41 तज योग-बल से कर्म, काटे ज्ञान से संशय सभी।
उस आत्म-ज्ञानी को न बांधे, कर्म बन्धन में कभी॥

42 अज्ञान से जो भ्रम हृदय में, काट ज्ञान कृपान से।
अर्जुन खड़ा हो युद्ध कर, हो योग आश्रित ज्ञान से॥

॥ ज्ञान कर्म संन्यास योग चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

कर्म संन्यास योग पाँचवां अध्याय

अर्जुन ने कहा -

1 कहते कभी हो योग को उत्तम कभी संन्यास को।
हे कृष्ण ! कहदो एक निश्चय श्रेय, अपने दास को॥

श्रीभगवान् ने कहा -

2 संन्यास एवं योग दोनों मोक्षकारी हैं महा।
संन्यास से पर कर्मयोग महान् हितकारी कहा॥

3 है नित्य संन्यासी न जिसमें द्वेष या इच्छा रही।
तज द्वन्द्वसुख से सर्व बन्धन-मुक्त होता है वही॥

4 हैं 'सांख्य' 'योग' विभिन्न कहते मूढ़, नहिं पण्डित कहें।
पाते उभय फल एक के जो पूर्ण साधन में रहें॥

5 पाते सुगति जो सांख्य-ज्ञानी कर्म-योगी भी वही।
जो सांख्य, योग समान जाने तत्व पहिचाने सही॥

6 निष्कामकर्म-विहीन हो, पाना कठिन संन्यास है।
मुनि कर्म-योगी शीघ्र करता ब्रह्म ही में वास है॥

7 जो योग युत है, शुद्ध मन, निज-आत्म-युत देखे सभी।
वहअ ात्म-इन्द्रिय-जीतज न,न हिं लिप्तक रकेक र्मभ ी॥

8 तत्त्वज्ञ योगी मानता मैं कुछ कभी करता नहीं।
खाकर व पाकर देख सुन कर सूँघ कर जाकर कहीं॥

9 छूते व सोते सांस लेते छोड़ते या बोलते।
वर्तें विषय में इन्द्रियां दृग बन्द करते खोलते॥

10 जो संग-विरहित ब्रह्म-अर्पण कर्म करता आप है।
जल ज्यों कमल दल पर, नहीं लगता उसे यों पाप है॥

11 मन, बुद्धि, तन से और केवल इन्द्रियों से भी कभी।
तज संग, योगी कर्म करते आत्म-शोधन-हित सभी॥

12 फल से सदैव विरक्त हो नित शांति पाता युक्त है।
फल-कामना में सक्त हो बंधता सदैव अयुक्त है॥

13 सब कर्म तज मन से जितेन्द्रिय जीवधारी मोद से।
बिन कुछ कराये या किये नव-द्वार-पुर में नित बसे॥

14 कर्तृत्व कर्म न, कर्म-फल-संयोग जगदीश्वर कभी।
रचता नहीं अर्जुन ! सदैव स्वभाव करता है सभी॥

15 ईश्वर न लेता है किसी का पुण्य अथवा पाप ही।
है ज्ञान माया से ढका यों जीव मोहित आप ही॥

16 शुभ आत्म-ज्ञान महान् से अज्ञान जिसका नाश हो।
तब सूर्य सम उस ज्ञान से परमार्थ-तत्त्व प्रकाश हो॥

श्रीमद्भगवद्गीता

कर्म संन्यास योग पाँचवाँ अध्याय

17 तन्निष्ठ तत्पर जो उसी में, बुद्धि मन धरते वहीं।
वे ज्ञान से निष्पाप होकर जन्म फिर लेते नहीं॥

18 विद्या-विनय-युत-द्विज, श्वपच, चाहे गऊ, गज, श्वान है।
सबके विषय में ज्ञानियों की दृष्टि एक समान है॥

19 जो जन रखें मन साम्य में वे जीत लेते जग यहीं।
है ब्रह्म सम निर्दोष नित यों ब्रह्म में वे सब कहीं॥

20 प्रिय वस्तु पा न प्रसन्न, अप्रिय पा न जो सुख-हीन है।
निर्मोह दृढ़मति ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म में लवलीन है॥

21 नहिं भोग विषयासक्त जो जन आत्म-सुख पाता वही।
वह ब्रह्मयुत, अनुभव करे अक्षय महा सुख नित्य ही॥

22 जो बाहरी संयोग से हैं भोग, दुखकारण सभी।
है आदि उनका अन्त, उनमें विज्ञ नहिं रमते कभी॥

23 जो काम-क्रोधावेग सहता है मरण पर्यन्त ही।
संसार में योगी वही नर, सुख सदा पाता वही॥

24 आराम अन्तः सुख जिसे है ज्योति अन्त-व्याप्त है।
वह युक्त ब्रह्म-स्वरूप हो निर्वाण करता प्राप्त है॥

25 निष्पाप जो कर आत्म-संयम द्वन्द्व-बुद्धि-विहीन हैं।
रत जीवहित में, ब्रह्म में होते वही जन लीन हैं॥

26 यति काम क्रोध विहीन जिनमें आत्म-ज्ञान प्रधान है।
जीता जिन्होंने मन उन्हें सब ओर ही निर्वान है॥

27 धर दृष्टि भृकुटी मध्य में तज बाह्य विषयों को सभी।
नित नासिका चारी किये सम प्राण और अपान भी॥

28 वश में करे नित बुद्धि इन्द्रिय मोक्ष में जो युक्त है।
भय क्रोध इच्छा त्याग कर वह मुनि सदा ही मुक्त है॥

29 जाने मुझे तप यज्ञ भोक्ता लोक स्वामी नित्य ही।
सब प्राणियों का मित्र जाने शांति पाता है वही॥

॥ कर्म सन्यास योग पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ भगवान श्री कृष्ण कृपा ॥

श्री कृष्णार्जुन संवाद

श्रीमद्भगवद्गीता

आत्म उद्धार योग छठा अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

1 फल-आश तज, कर्तव्य कर्म सदैव जो करता, वही -
योगी व संन्यासी, न जो बिन अग्नि या बिन कर्म ही॥

2 वह योग ही समझो जिसे संन्यास कहते है सभी।
संकल्प के संन्यास बिन बनता नहीं योगी कभी॥

3 जो योग-साधन चाहता मुनि, हेतु उसका कर्म है।
हो योग में आरूढ़, उसका हेतु उपशम धर्म है॥

4 जब दूर विषयों से, न हो आसक्त कर्मों में कभी।
संकल्प त्यागे सर्व, योगारूढ़ कहलाता तभी॥

5 निज से करे उद्धार निज, निज को न गिरने दे कभी।
नर आप ही है शत्रु अपना, आप ही है मित्र भी॥

6 जो जीत लेता आपको वह बन्धु अपना आप ही।
जाना न अपने को स्वयं, रिपु सी करे रिपुता वही॥

7 अति शान्त जन, मन जीत का आत्मा सदैव समान है।
सुख, दुःख, शीतल, ऊष्ण अथवा मान या अपमान है॥

8 कूटस्थ इन्द्रियजीत जिसमें ज्ञान है विज्ञान है।
वह युक्त जिसको स्वर्ण, पत्थर, धूल एक समान है॥

9 वैरी, सुहृद, मध्यस्थ, साधु, असाधु, जिनसे द्वेष है।
बान्धव, उदासी, मित्र में सम बुद्धि पुरुष विशेष है॥

10 चित्त-आत्म-संयम नित्य एकाकी करे एकान्त में।
तज आश संग्रह नित निरन्तर योग में योगी रमें॥

11 आसन धरे शुचि-भूमि पर थिर, ऊंच नीच न ठौर हो।
कुश पर बिछा मृगछाल, उस पर वस्त्र पावन और हो॥

12 एकाग्र कर मन, रोक इन्द्रिय चित्त के व्यापार को।
फिर आत्म-शोधन हेतु बैठे नित्य योगाचार को॥

13 होकर अचल, दृढ़, शीश ग्रीवा और काया सम करे।
दिशि अन्य अवलोके नहीं नासाग्र पर ही दृग धरे॥

14 बन ब्रह्मचारी शान्त, मन-संयम करे, भय-मुक्त हो।
हो मत्परायण चित्त मुझमें ही लगाकर युक्त हो॥

15 यों जो नियत-चित युक्त योगाभ्यास में रत नित्य ही।
मुझमें टिकी निर्वाणपद-प्रद शांति पाता है वही॥

16 यह योग अति खाकर न सधता है, न अति उपवास से।
सधता न अतिशय नींद अथवा जागरण के त्रास से॥

17 जब युक्त सोना जागना आहार और विहार हों।
हो दुःख-हारी योग जब परिमित सभी व्यवहार हों॥

श्रीमद्भगवद्गीता

आत्म उद्धार योग छठा अध्याय

18 संयत हुआ चित्त आत्म ही में नित्य रम रहता जभी।
रहती न कोई कामना नर युक्त कहलाता तभी॥

19 अविचल रहे बिन वायु दीपक-ज्योति जैसे नित्य ही।
है चित्तसंयत योग-साधक युक्त की उपमा वही॥

20 रमता जहां चित योग-सेवन से निरुद्ध सदैव है।
जब देख अपने आप को सन्तुष्ट आत्मा में रहे॥

21 इन्द्रिय-अगोचर बुद्धि-गम्य अनन्त सुख अनुभव करे।
जिसमें रमा योगी न डिगता तत्त्व से तिल भर परे॥

22 पाकर जिसे जग में न उत्तम लाभ दिखता है कहीं।
जिसमें जमे जन को कठिन दुख भी डिगा पाता नहीं॥

23 कहते उसे ही योग जिसमें सर्व-दुःख-वियोग है।
दृढ़-चित्त होकर साधने के योग्य ही यह योग है॥

24 संकल्प से उत्पन्न सारी कामनाएँ छोड़के।
मनसे सदा सब ओरसे ही इन्द्रियों को मोड़के॥

25 हो शान्त क्रमशः धीर मति से आत्म-सुस्थिर मन करे।
कोई विषय का फिर न किंचित् चित्त में चिन्तन करे॥

26 यह मन चपल अस्थिर जहां से भाग कर जाये परे।
रोके वहीं से और फिर आधीन आत्मा के करे॥

27 जो ब्रह्मभूत, प्रशान्त-मन, जन रज-रहित निष्पाप है।
उस कर्मयोगी को परम-सुख प्राप्त होता आप है॥

28 निष्पाप हो इस भांति जो करता निरन्तर योग है।
वह ब्रह्म-प्राप्ति-स्वरूप-सुख करता सदा उपभोग है।

29 युक्तात्म समदर्शी पुरुष सर्वत्र ही देखे सदा।
'मैं प्राणियों में और प्राणीमात्र मुझमें सर्वदा'॥

30 जो देखता मुझ में सभी को और मुझको सब कहीं।
मैं दूर उस नर से नहीं, वह दूर मुझसे है नहीं॥

31 एकत्व-मति से जान जीवों में मुझे नर नित्य ही।
भजता रहे जो, सर्वथा कर कर्म, मुझमें है वही॥

32 सुख दुःख अपना और औरों का समस्त समान है।
जो जानता अर्जुन वही योगी सदैव प्रधान है॥

अर्जुन ने कहा -

33 जो साम्य-मति से प्राप्य तुमने योग मधुसूदन ! कहा।
मन की चपलता से महा अस्थिर मुझे वह दिख रहा॥

34 हे कृष्ण ! मन चञ्चल हठी बलवान् है, दृढ़ है घना।
मन साधना दुष्कर दिखे जैसे हवा का बांधना॥

श्रीमद्भगवद्गीता

आत्म उद्धार योग छठा अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

35 चंचल असंशय मन महाबाहो ! कठिन साधन घना।
अभ्यास और विराग से पर पार्थ ! होती साधना॥

36 जीता न जो मन, योग है दुष्प्राप्य मत मेरा यही।
मन जीत कर जो यत्न करता प्राप्त करता है वही॥

अर्जुन ने कहा -

37 जो योग-विचलित, यत्न-हीन परन्तु श्रद्धावान् है।
पा योग-सिद्धि न, कौन गति पाता कहो भगवान् है ?

38 मोहित निराश्रय, ब्रह्म-पथ में हो उभय पथ-भ्रष्ट क्या।
वह बादलों सा छिन्न हो, होता सदैव विनष्ट क्या ?

39 हे कृष्ण ! करुणा कर सकल सन्देह मेरा मेटिये।
तज कर तुम्हें, है कौन यह भ्रम दूर करने के लिये ?

श्रीभगवान् ने कहा -

40 इस लोक में परलोक में वह नष्ट होता है नहीं।
कल्याणकारी-कर्म करने में नहीं दुर्गति कहीं॥

41 शुभ लोक पाकर पुण्यवानों का रहे वर्षों वहीं।
फिर योग-विचलित जन्मता श्रीमान् शुचि के घर कहीं॥

42 या जन्म लेता श्रेष्ठ ज्ञानी योगियों के वंश में।
दुर्लभ सदा संसार में है जन्म ऐसे अंश में॥

43 पाता वहां फिर पूर्व-मति-संयोग वह नर-रत्न है।
उस बुद्धि से फिर सिद्धि के करता सदैव प्रयत्न है॥

44 हे पार्थ ! पूर्वाभ्यास से खिंचता उधर लाचार हो।
हो योग इच्छुक वेद-वर्णित कर्मफल से पार हो॥

45 अति यत्न से वह योगसेवी सर्वपाप-विहीन हो।
बहु जन्म पीछे सिद्ध होकर परम-गति में लीन हो॥

46 सारे तपस्वी, ज्ञानियों से, कर्मनिष्ठों से सदा।
है श्रेष्ठ योगी, पार्थ ! हो इस हेतु योगी सर्वदा॥

47 सब योगियों में मानता मैं युक्ततम योगी वही।
श्रद्धा सहित मम ध्यान धर भजता मुझे जो नित्य ही॥

॥ आत्म उद्धार योग छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥

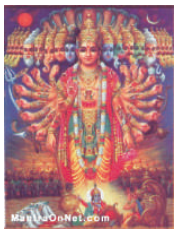

श्रीमद्भगवद्गीता

ज्ञान विज्ञान योग सातवाँ अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

1 मुझमें लगा कर चित्त मेरे आसरे कर योग भी।
जैसा असंशय पूर्ण जानेगा मुझे वह सुन सभी॥

2 विज्ञानयुत वह ज्ञान कहता हूँ सभी विस्तार में।
जो जान कर कुछ जानना रहता नहीं संसार में॥

3 कोई सहस्रों मानवों में सिद्धि करना ठानता।
उन यत्नशीलों में मुझे कोई यथावत् जानता॥

4 पृथ्वी, पवन, जल, तेज, नभ, मन, अहंकार व बुद्धि भी।
इन आठ भागों में विभाजित है प्रकृति मेरी सभी॥

5 हे पार्थ ! यह "अपरा" प्रकृति का जान लो विस्तार है।
फिर है "परा" यह जीव जो संसार का आधार है॥

6 उत्पन्न दोनों से इन्हीं से जीव हैं जग के सभी।
मैं मूल सब संसार का हूं और मैं ही अन्त भी॥

7 मुझसे परे कुछ भी नहीं संसार का विस्तार है।
जिस भांति माला में मणी, मुझमें गुथा संसार है॥

8 आकाश में ध्वनि, नीर में रस, वेद में ओंकार हूँ।
पौरुष पुरुष में, चांद, सूरज में प्रभामय सार हूँ॥

9 शुभ गन्ध वसुधा में सदा, मैं प्राणियों में प्राण हूँ।
मैं अग्नि में हूँ तेज, तपियों में तपस्या ज्ञान हूँ॥

10 हे पार्थ ! जीवों का सनातन बीज हूँ, आधार हूँ।
तेजस्वियों में तेज, बुध में बुद्धि का भंडार हूँ॥

11 हे पार्थ ! मैं कामादि राग-विहीन बल बलवान् का।
मैं काम भी हूँ धर्म के अविरुद्ध विद्यावान् का॥

12 सत और रज, तम भाव मुझसे ही हुए हैं ये सभी।
मुझमें सभी ये किन्तु मैं उनमें नहीं रहता कभी॥

13 इन त्रिगुण भावों में सभी भूला हुआ संसार है।
जाने न अव्यय-तत्त्व मेरा जो गुणों से पार है॥

14 यह त्रिगुणदैवी घोरमाया अगम और अपार है।
आता शरण मेरी वही जाता सहज में पार है॥

15 पापी, नराधम, ज्ञान माया ने हरा जिनका सभी।
वे मूढ़ आसुर बुद्धि-वश मुझको नहीं भजते कभी॥

16 अर्जुन ! मुझे भजता सुकृति-समुदाय चार प्रकार का।
जिज्ञासु, ज्ञानीजन, दुखी-मन, अर्थ-प्रिय संसार का॥

17 नित-युक्त ज्ञानी श्रेष्ठ, जो मुझमें अनन्यासक्त है।
मैं क्योंकि ज्ञानी को परम प्रिय, प्रिय मुझे वह भक्त है॥

श्रीमद्भगवद्गीता

ज्ञान विज्ञान योग सातवाँ अध्याय

18 ये श्रेष्ठ, पर मैं मानता मम प्राण ज्ञानी भक्त है।
वह युक्त हो, सर्वोच्च - गति मुझमें सदा आसक्त है।
19 जन्मान्तरों में जान कर, 'सब वासुदेव यथार्थ है'।
ज्ञानी मुझे भजता, सुदुर्लभ वह महात्मा पार्थ ! है॥
20 निज प्रकृति-प्रेरित, कामना द्वारा हुए हत ज्ञान से।
कर नियम भजते विविध विध नर अन्य देव विधान से॥
21 जो जो कि जिस जिस रूप की पूजा करे नर नित्य ही।
उस भक्त की करता उसी में, मैं अचल श्रद्धा वही॥
22 उस देवता को पूजता फिर वह, वही श्रद्धा लिये।
निज इष्ट-फल पाता सकल, निर्माण जो मैंने किये॥
23 ये मन्दमति नर किन्तु पाते, अन्तवत फल सर्वदा।
सुर-भक्त सुर में, भक्त मेरे, आमिलें मुझमें सदा॥
24 अव्यक्त मुझको व्यक्त, मानव मूढ़ लेते मान हैं।
अविनाशि अनुपम भाव मेरा वे न पाते जान हैं॥
25 निज योग-माया से ढका सबको न मैं दिखता कहीं।
अव्यय अजन्मा मैं, मुझे पर मूढ़ नर जानें नहीं॥
26 होंगे, हुए हैं, जीव जो मुझको सभी का ज्ञान है।
इनको किसी को किन्तु कुछ मेरी नहीं पहिचान है॥
27 उत्पन्न इच्छा द्वेष से, जो द्वन्द्वजग में व्याप्त हैं।
उनसे परंतप ! सर्व प्राणी मोह करते प्राप्त हैं॥
28 पर पुण्यवान् मनुष्य जिनके छुट गये सब पाप हैं।
वे द्वन्द्व-मोह-विहीन, दृढ़ भजते मुझे फिर आप हैं॥
29 करते ममाश्रित जो जरा-मृति-मोक्ष के हित साधना।
वे जानते हैं ब्रह्म, सब अध्यात्म, कर्म महामना॥
30 अधि-भूत, दैव व यज्ञ-युत, जो विज्ञ मुझको जानते।
वे युक्त-चित मरते समय में भी मुझे पहिचानते॥

॥ ज्ञान विज्ञान योग सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

अक्षर ब्रह्म योग आठवाँ अध्याय

अर्जुन ने कहा -

1 हेकृष्ण ! क्या वह ब्रह्म ?क्या अध्यात्म है ?क्या कर्म है ?
अधिभूत कहते हैं किसे ?अधिदैव का क्या मर्म है ?

2 अधियज्ञ कैसा है कहो ?अधिदेह किसको मानते ?
मरते समय कैसे जितेन्द्रिय जन तुम्हें पहिचानते ?

श्रीभगवान् ने कहा -

3 अक्षर परम वह ब्रह्म है, अध्यात्म जीव सुमर्म है।
जो भूतभावोद्भव करे वह त्याग जानो कर्म है॥

4 अधिभूत नश्वर भाव है, चेतन पुरुष अधिदैव ही।
अधियज्ञ मैं सब प्राणियों के देह बीच सदैव ही॥

5 तन त्यागता जो अन्त में मेरा मनन करता हुआ।
मुझमे असंशय नर मिले वह ध्यान यों धरता हुआ॥

6 अन्तिम समय तन त्यागता जिस भाव से जन व्याप्त हो।
उसमें रँगा रहकर सदा, उस भाव ही को प्राप्त हो॥

7 इस हेतु मुझको नित निरन्तर ही सुमर, कर युद्ध भी।
संशय नहीं, मुझमें मिले, मन बुद्धि मुझमें धर सभी॥

8 अभ्यास-बल से युक्त योगी चित्त अपना साधके।
उत्तम पुरुष को प्राप्त होता है उसे आराधके॥

9 सर्वज्ञ शास्ता सूक्ष्मतम आदित्य-सम तम से परे।
जो नित अचिन्त्य अनादि सर्वाधार का चिन्तन करे॥

10 कर योग-बल से प्राण भृकुटी मध्य अन्तिम काल में।
निश्चल हुआ वह भक्त मिलता दिव्य पुरुष विशाल में॥

11 अक्षर कहें वेदज्ञ, जिसमें राग तज यति जन जमें।
हों ब्रह्मचारी जिस लिये, वह पद सुनो संक्षेप में॥

12 सब इन्द्रियों को साध कर निश्चल हृदय में मन धरे।
फिर प्राण मस्तक में जमा कर धारणा योगी करे॥

13 धरता हुआ फिर ध्यान मेरा, ॐ एकाक्षर कहे।
तन त्याग कर इस भांति जो जाता परम शुभ गति गहे॥

14 भजता मुझे जो जन सदैव अनन्य मन से प्रीति से।
नित-युक्त योगी वह मुझे पाता सरल सी रीति से॥

15 पाए हुए हैं सिद्धि-उत्तम जो महात्मा-जन सभी।
पाकर मुझे दुख-धाम नश्वर-जन्म नहिं पाते कभी॥

16 विधिलोक तक जाकर पुनः जन जन्म पाते हैं यहीं।
पर पा गए अर्जुन ! मुझे वे जन्म फिर पाते नहीं॥

श्रीमद्भगवद्गीता

अक्षर ब्रह्म योग आठवाँ अध्याय

17 दिन-रात ब्रह्मा की, सहस्रों युग बड़ी जो जानते।
वे ही पुरुष दिन-रैन की गति ठीक हैं पहिचानते॥
18 जब हो दिवस अव्यक्त से सब व्यक्त होते हैं तभी।
फिर रात्रि होते ही उसी अव्यक्त में लय हों सभी॥
19 होता विवश सब भूत-गण उत्पन्न बारम्बार है।
लय रात्रि में होता दिवस में जन्म लेता धार है॥
20 इससे परे फिर और ही अव्यक्त-नित्य-पदार्थ है।
सब जीव विनशे भी, नहीं वह नष्ट होता पार्थ है॥
21 कहते परमगति हैं जिसे अव्यक्त अक्षर नाम है।
पाकर जिसे लौटें न फिर मेरा वही पर धाम है॥
22 सब जीव जिसमें हैं सकल संसार जिससे व्याप्त है।
वह पर-पुरुष होता अनन्य सुभक्ति से ही प्राप्त है॥
23 वह काल सुन, तन त्याग जिसमें लौटते योगी नहीं।
वह भी कहूँगा काल जब मर लौट कर आते यहीं॥
24 दिन, अग्नि, ज्वाला, शुक्लपख, षट् उत्तरायण मास में।
तन त्याग जाते ब्रह्मवादी, ब्रह्म ही के पास में॥
25 निशि धूम्र में मर कृष्ण पख, षट् दक्षिणायन मास में।
नर चन्द्रलोक विशाल में बस फिर फंसें भव-त्रास में॥
26 ये शुक्ल, कृष्ण सदैव दो गति वि श्व की ज्ञानी कहें।
दे मुक्ति पहली, दूसरी से लौट फिर जग में रहें॥
27 ये मार्ग दोनों जान, योगी मोह में पड़ता नहीं।
इस हेतु अर्जुन ! योग-युत सब काल में हो सब कहीं॥
28 जो कुछ कहा है पुण्यफल, मख वेद से तप दान से।
सब छोड़ आदिस्थान ले, योगी पुरुष इस ज्ञान से॥

॥ अक्षरब्रह्मयोग आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

परम गुह्य राजविद्या योग नवाँ अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

1 अब दोषदर्शी तू नहीं यों, गुप्त, सह-विज्ञान के।
वह ज्ञान कहता हूँ, अशुभ से मुक्त हो जो जान के॥

2 यह राजविद्या, परम-गुप्त, पवित्र, उत्तम-ज्ञान है।
प्रत्यक्ष फलप्रद, धर्मयुत, अव्यय, सरल, सुख-खान है॥

3 श्रद्धा न जिनको पार्थ है इस धर्म के शुभ सार में।
मुझको न पाकर लौट आते मृत्युमय संसार में॥

4 अव्यक्त अपने रूप से जग व्याप्त मैं करता सभी।
मुझमें सभी प्राणी समझ, पर मैं नहीं उनमें कभी॥

5 मुझमें नहीं हैं भूत, देखो योग-शक्ति-प्रभाव है।
उत्पन्न करता पालता उनसे न किन्तु लगाव है॥

6 सब ओर रहती वायु है आकाश में जिस भांति से।
मुझ में सदा ही हैं समझ सब भूतगण इस भांति से॥

7 कल्पान्त में मेरी प्रकृति में जीव लय होते सभी।
जब कल्प का आरम्भ हो, मैं फिर उन्हें रचता तभी॥

8 अपनी प्रकृति आधीन कर इस भूतगण को मैं सदा।
उत्पन्न बारम्बार करता, जो प्रकृतिवश सर्वदा॥

9 बंधता नहीं हूं पार्थ ! मैं इस कर्म-बन्धन में कभी।
रहकर उदासी-सा सदा आसक्ति बिन करता सभी॥

10 अधिकार से मेरे प्रकृति रचती चराचर वि श्व है।
इस हेतु फिरकी की तरह फिरता बराबर वि श्व है॥

11 मैं प्राणियों का ईश हूँ, इस भाव को नहिं जान के।
करते अवज्ञा जड़, मुझे नर देहधारी मान के॥

12 चित भ्रष्ट, आशा ज्ञान कर्म निरर्थ सारे ही किये।
वे आसुरी अति राक्षसीय स्वभाव मोहात्मक लिये॥

13 दैवी प्रकृति के आसरे बुध-जन भजन मेरा करें।
भूतादि अव्यय जान पार्थ ! अनन्य मन से मन धरें॥

14 नित यत्न से कीर्तन करें दृढ़व्रत सदा धरते हुए।
करते भजन हैं भक्ति से मम वन्दना करते हुए॥

15 कुछ भेद और अभेद से कुछ ज्ञान-यज्ञ विधान से।
पूजन करें मेरा कहीं कुछ सर्वतोमुख ध्यान से॥

16 मैं यज्ञ श्रोतस्मार्त हूँ एवं स्वधा आधार हूँ।
घृत और औषधि, अग्नि, आहुति, मन्त्र का मैं सार हूँ॥

17 जग का पिता माता पितामह विश्व-पोषण-हार हूँ।
ऋक्स ामय जुश्र ुति,ज ाननेक ेय ोग्यश ुचिअ ोंकारह ूँ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

परम गुह्य राजविद्या योग नवाँ अध्याय

18 पोषक प्रलय उत्पत्ति गति आधार मित्र निधान हूँ।
साक्षी शरण प्रभु बीज अव्यय मैं निवासस्थान हूँ॥
19 मैं ताप देता, रोकता जल, वृष्टि मैं करता कभी।
मैं ही अमृत भी मृत्यु भी मैं सत् असत् अर्जुन ! सभी॥
20 जो सोमपा त्रैविद्य-जन निष्पाप अपने को किये।
कर यज्ञ मुझको पूजते हैं स्वर्ग इच्छा को लिये॥
वे प्राप्त करके पुण्य लोक सुरेन्द्र का, सुरवर्ग में।
फिर दिव्य देवों के अनेकों भोग भोगें स्वर्ग में॥
21 वे भोग कर सुख-भोग को, उस स्वर्गलोक विशाल में।
फिर पुण्य बीते आफँसें इस लोक के दुख जाल में॥
यों तीन वेदों में कहे जो कर्म-फल में लीन हैं।
वे कामनाप्रिय-जन सदा अवागमन आधीन हैं॥
22 भजते मुझे जो नित्य योगी-जन अनन्यासक्त हो।
उनका करूं मैं योग-क्षेम सदैव ही अनुरक्त हो॥
23 जो अन्य देवों को भजें नर नित्य श्रद्धा-लीन हो।
वे भी मुझे ही पूजते हैं पार्थ ?पर विधिहीन हो॥
24 सब यज्ञ-भोक्ता विश्व-स्वामी पार्थ हूँ मैं ही सभी।
पर वे न मुझको जानते हैं तत्त्व से गिरते तभी॥
25 सुरभक्त सुर को पितृ को पाते पितर-अनुरक्त हैं।
जो भूत पूजें भूत को, पाते मुझे मम भक्त हैं॥
26 अर्पणा करें जो फूल फल जल पत्र मुझको भक्ति से।
लेता प्रयत-चित्त भक्त की वह भेंट मैं अनुरक्ति से॥
27 कौन्तेय ! जो कुछ भी करो तप यज्ञ आहुति दान भी।
नित खानपानादिक समर्पण तुम करो मेरे सभी॥
28 हे पार्थ ! यों शुभ-अशुभ-फल-प्रद कर्म-बन्धन-मुक्त हो।
मुझमें मिलेगा मुक्त हो, संन्यास-योग-नियुक्त हो॥
29 द्वेषी हितैषी है न कोई, विश्व मुझमें एकसा।
पर भक्त मुझमें बस रहा, मैं भक्त के मनमें बसा॥
30 यदि दुष्ट भी भजता अनन्य सुभक्ति को मन में लिये।
है ठीक निश्चयवान् उसको साधु कहना चाहिये॥
31 वह धर्मयुत हो शीघ्र शाश्वत शान्ति पाता है यहीं।
यह सत्य समझो भक्त मेरा नष्ट होता है नहीं॥
32 पाते परम-पद पार्थ ! पाकर आसरा मेरा सभी।
जो अड़ रहे हैं पाप-गति में वैश्य वनिता शूद्र भी॥

॥ भगवान श्री कृष्ण कृपा ॥

श्री कृष्णार्जुन संवाद

श्रीमद्भगवद्गीता

परम गुह्य राजविद्या योग नवाँ अध्याय

33 फिरर ाज-ऋषिप ुण्यात्मब ाह्मणभ ाक्तक ीक याब ातह ै।
मेरा भजन कर, तू दुखद नश्वर जगत् में तात है॥

34 बन भक्त मेरा मन लगा, कर यजन वन्दन नेम से।
मुझमें मिलेगा मत्परायण युक्त होकर प्रेम से॥

॥ परमगुह्य राजविद्यायोग नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्री गीता जी की दिव्यता

(ब्रह्मलीन स्वामी श्री गीतानन्द जी महाराज)

गीता तो सागर समान,
मोती हैं जिसमें भरे।
गोता विरला ही लगाता,
भाग्य हैं जिसके जगे।

ज्ञान, भक्ति, कर्म के,
हीरे हैं जिसमें भरे।
माल-ओ-माल उसको करे
शरण में जो आ पड़े॥
वो ही जाने इसकी कीमत,
चाट यह जिस मुँह लगे॥
गीता तो सागर समान .....

चाहे पापी हो या वो,
उनका भी सरदार हो।
किन्तु गीता-ज्ञान की,
नैया पर सवार हो।
शान से फिर क्यों न उसकी,
नाव भव-जल से तरे॥
गीता तो सागर समान .....

कृष्ण का आदेश इसमें,
कृष्ण का संदेश है।
जगत्-गुरू श्री कृष्ण का,
लासानी यह उपदेश है।
'माम् एकम् शरणम् ब्रज',
दर्द-ओ-गम तेरे सारे भगें।
गीता तो सागर समान .....

यह है पारस की छड़ी,
संग इसके जो लगे।
लोहे को सोना करे,
भाग्य सोया फिर जगे।
कितने ही सिक्के किये हैं,
इसने खोटे से खरे॥
गीता तो सागर समान .....

॥ भगवान श्री कृष्ण कृपा ॥

श्री कृष्णार्जुन संवाद

श्रीमद्भगवद्गीता

विभूति योग दसवाँ अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

1 मेरे परम शुभ सुन महाबाहो ! वचन अब और भी।
तू प्रिय मुझे, तुझसे कहूँगा बात हित की मैं सभी॥
2 उत्पत्ति देव महर्षिगण मेरी न कोई जानते।
सब भांति इनका आदि हूँ मैं यों न ये पहिचानते॥
3 जो जानता मुझको अजन्म अनादि लोके श्वर सही।
ज्ञानी मनुष्यों में सदा सब पाप से छुटता वही॥
4 सद्बुद्धि ज्ञान अमूढ़ता सुख दुःख एवं भय अभय।
इन्द्रियदमन मन-शमन सत्य क्षमा तथा उत्पत्ति लय॥
5 समता अहिंसा तुष्टि तप एवं अयश यश दान भी।
उत्पन्न मुझसे प्राणियों के भाव होते हैं सभी॥
6 मनु और सप्त-महर्षिगण उनके प्रथम के चार भी।
मम भाव-मानस से हुए, उत्पन्न उनसे जन सभी॥
7 जो जानता मेरी विभूति व योग-शक्ति यथार्थ है।
संशय नहीं दृढ़-योग वह नर प्राप्त करता पार्थ ! है॥
8 मैं जन्मदाता हूं सभी मुझसे प्रवर्तित तात हैं।
यह जान ज्ञानी भक्त भजते भाव से दिन-रात हैं॥
9 मुझमें लगा कर प्राण, मन, करते हुए मेरी कथा।
करते परस्पर बोध रमते तुष्ट रहते सर्वथा॥
10 इस भाँति होकर युक्त जो नर नित्य भजते प्रीति से।
मति-योग ऐसा दूँ मुझे वे पा सकें जिस रीति से॥
11 उनके हृदय में बैठ पार्थ ! कृपार्थ अपने ज्ञान का।
दीपक जलाकर नाश करता तम सभी अज्ञान का॥

अर्जुन ने कहा -

12 तुम परम-ब्रह्म पवित्र एवं परम-धाम अनूप हो।
हो आदिदेव अजन्म अविनाशी अनन्त स्वरूप हो॥
13 नारद महामुनि असित देवल व्यास ऋषि कहते यही।
मुझसे स्वयं भी आप हे जगदीश ! कहते हो वही॥
14 केशव ! कथन सारे तुम्हारे सत्य ही मैं मानता।
हे हरि ! तुम्हारी व्यक्ति सुर दानव न कोई जानता॥
15 हे भूतभावन भूतईश्वर देवदेव जगत्पते।
तुम आप पुरुषोत्तम स्वयं ही आपको पहिचानते॥
16 जिन-जिन महान् विभूतियों से व्याप्त हो संसार में।
वे दिव्य आत्म-विभूतियां बंतलाइये विस्तार में॥

श्रीमद्भगवद्गीता

विभूति योग दसवाँ अध्याय

17 चिन्तन सदा करता हुआ कैसे तुम्हें पहिचान लूँ।
किन किन पदार्थों में करूं चिन्तन तुम्हारा जान लूँ॥
18 भगवन् ! कहो निज योग और विभूतियां विस्तार से।
भरता नहीं मन आपकी वाणी सुधामय धार से॥

श्रीभगवान् ने कहा –

19 कौन्तेय ! दिव्य विभूतियां मेरी अनन्त अशेष हैं।
अब मैं बताऊँगा तुझे जो जो विभूति विशेष हैं।
20 मैं सर्वजीवों के हृदय में अन्तरात्मा पार्थ ! हूँ।
सब प्राणियों का आदि एवं मध्य अन्त यथार्थ हूँ॥
21 आदित्यगण में विष्णु हूँ, सब ज्योति बीच दिनेश हूँ।
नक्षत्र में राकेश, मरुतों में मरीचि विशेष हूँ॥
22 मैं साम वेदो में तथा सुरवृन्द बीच सुरेन्द्र हूँ।
मैं शक्ति चेतन जीव में, मन इन्द्रियों का केन्द्र हूँ॥
23 शिव सकल रुद्रों बीच, राक्षस यक्ष बीच कुबेर हूँ।
मैं अग्नि वसुओं में, पहाड़ों में पहाड़ सुमेर हूँ॥
24 मुझको बृहस्पति पार्थ ! मुख्य पुरोहितों में जान तू।
सेनानियों में स्कन्द, सागर सब सरों में मान तू॥
25 भृगु श्रेष्ठ ऋषियों में, वचन में मैं सदा ॐकार हूँ।
सब थावरों में गिरि हिमालय, यज्ञ में जप-सार हूँ॥
26 मुनि कपिल सिद्धों बीच, नारद देव-ऋषियों में कहा।
गन्धर्वगण में चित्ररथ, तरु-वर्ग में पीपल महा॥
27 उच्चैःश्रवा सारे हयों में, अमृत-जन्य अनूप हूँ।
मैं हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत, नरों में भूप हूँ॥
28 सुरधेनु गौओं में, भुजंगों बीच वासुकि सर्प हूँ।
मैं वज्र शस्त्रों में, प्रजा उत्पत्ति-कर कन्दर्प हूँ॥
29 मैं पितर-गण में, अर्यमा हूँ, नाग-गण में शेष हूँ।
यम शासकों में, जलचरों में वरुण रूप विशेष हूँ॥
30 प्रहलाद दैत्यों बीच, संख्या-सूचकों में काल हूँ।
मैं पक्षियों में गरुड़, पशुओं में मृगेन्द्र विशाल हूँ॥
31 गंगा नदों में, शस्त्र-धारी-वर्ग में मैं राम हूँ।
मैं पवन वेगों बीच, मीनों में मगर अभिराम हूँ॥
32 मैं आदि हूँ मध्यान्त हूँ हे पार्थ ! सारे सर्ग का।
विद्यागणों में ब्रह्मविद्या, वाद वादी-वर्ग का॥
33 सारे समासों बीच द्वन्द्व, अकार वर्णों में कहा।
मैं काल अक्षय और अर्जुन ! विश्वमुख धाता महा॥

॥ भगवान श्री कृष्ण कृपा ॥

श्री कृष्णार्जुन संवाद

श्रीमद्भगवद्गीता

विभूति योग दसवाँ अध्याय

34 मैं सर्वहर्ता मृत्यु, सबका मूल जो होंगे अभी।
तिय वर्ग में मेधा क्षमा धृति कीर्ति सुधि श्री वाक् भी॥

35 हूँ साम में मैं बृहत्साम, बसन्त ऋतुओं में कहा।
मंगसिर महीनों बीच, गायत्री सुछन्दों में महा॥

36 तेजस्वियों का तेज हूं मैं, और छलियों में जुआ।
जय और नि श्चय, सत्व सारे सत्वशीलों का हुआ॥

37 सब वृष्णियों में वासुदेव व शुक्र कवियों में कहा।
मैं हूं धनंजय पाण्डवों में, व्यास मुनियों में महा॥

38 मैं शासकों का दण्ड, विजयी की सुनीति प्रधान हूँ।
हूं मौन गुह्यों में सदा, मैं ज्ञानियों का ज्ञान हूँ॥

39 इस भांति प्राणीमात्र का जो बीज है मैं हूँ सभी।
मेरे बिना अर्जुन ! चराचर है नहीं कोई कभी॥

40 हे पार्थ ! दिव्य विभूतियाँ मेरी अनन्त अपार हैं।
कुछ कह दिये दिग्दर्शनार्थ विभूति के विस्तार हैं॥

41 जो-जो जगत में वस्तु, शक्ति विभूति श्रीसम्पन्न हैं।
वे जान मेरे तेज के ही अंश से उत्पन्न हैं॥

42 विस्तार से क्या काम तुमको जान लो यह सार है।
इस एक मेरे अंश से व्यापा हुआ संसार है॥

॥ विभूतियोग दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

विश्वरूप दर्शन योग ग्यारहवाँ अध्याय

अर्जुन ने कहा –

1 उपदेश यह अति गुप्त जो तुमने कहा करके दया।
अध्यात्म विषयक ज्ञान से सब मोह मेरा मिट गया॥

2 विस्तार से सब सुन लिया उत्पत्ति लय का तत्त्व है।
मैंने सुना सब आपका अक्षय अनन्त महत्त्व है॥

3 जगदीश ! अपने को कहा है आपने जैसा वही।
मैं चाहता हूं देखना ऐ श्वर्ययुक्त स्वरूप ही॥

4 समझें प्रभो यदि आप, मैं वह देख सकता हूं सभी।
तो वह मुझे योगेश ! अव्यय रूप दिखलादो अभी॥

श्रीभगवान् ने कहा –

5 हे पार्थ ! देखो दिव्य अनुपम विविध वर्णाकार के।
शतशत सहस्रों रूप मेरे भिन्न-भिन्न प्रकार के॥

6 सब देख ! रुद्र वसु अश्विन मरुत आदित्य भी।
आश्चर्य देख अनेक अब पहले न देखे जो कभी॥

7 इस देह में एकत्र सारा जग चराचर देखले।
जो और चाहे देखना इसमें बराबर देखले॥

8 मुझको न अपनी आँख से तुम देख पाओगे कभी।
मैं दिव्य देता दृष्टि, देखो योग का वैभव सभी॥

संजय ने कहा –

9 जब पार्थ से श्रीकृष्ण ने इस भांति हे राजन् ! कहा।
तब ही दिया ऐ श्वर्य-युक्त स्वरूप का दर्शन महा॥

10 मुख नयन थे उसमें अनेकों ही अनोखा रूप था।
पहिने अनेकों दिव्य गहने शस्त्र साज अनूप था॥

11 सीमा रहित अद्भुत महा वह वि श्वतोमुख रूप था।
धारण किये अति दिव्य माला वस्त्र गन्ध अनूप था॥

12 नभ में सहस रवि मिल उदय हों प्रभापुञ्ज महान् हो।
तब उस महात्मा कान्ति के कुछ कुछ प्रकाश समान हो॥

13 उस देवदेव शरीर में देखा धनंजय ने तभी।
बांटा विविध विध से जगत एकत्र उसमें है सभी॥

14 रोमांच तन में हो उठा आ श्चर्य से मानो जगे।
तब यों धनंजय सिर झुका, कर जोड़ कर कहने लगे॥

अर्जुन ने कहा –

15 भगवन् ! तुम्हारी देह में मैं देखता सुर-गण सभी।
मैं देखता हूं देव ! इसमें प्राणियों का संघ भी॥

श्रीमद्भगवद्गीता

विश्वरूप दर्शन योग ग्यारहवाँ अध्याय

शुभ कमल आसन पर इसी में ब्रह्मदेव विराजते।
मैं देखता इसमें सकल ऋषि, दिव्य पन्नग साजते॥
16 बहु बाहु इसमें हैं अनेकों ही उदरमय रूप है।
मुख और आंखें हैं अनेकों हरि स्वरूप अनूप है॥
दिखता न विश्वेश्वर ! तुम्हारा आदि मध्य न अन्त है।
मैं देखता सब ओर छाया विश्वरूप अनन्त है॥
17 पहिने मुकुट मञ्जुल, गदा, शुभ चक्र धरते आप हैं।
हो तेज-निधि सारी दिशा दैदीप्त करते आप हैं॥
तुम दुर्निरीक्ष्य महान् अपरम्पार है भगवान् हो।
सब ओर दिखते दीप्त अग्नि दिनेश सम द्युतिवान् हो॥
18 तुम जानने के योग्य अक्षरब्रह्म अपरम्पार हो।
जगदीश सारे वि श्व मंडल के तुम्हीं आधार हो॥
अव्यय सनातन धर्म के रक्षक सदैव महान् हो।
मेरी समझ से तुम सनातन पुरुष हे ! भगवान् हो॥
19 नहिं आदि मध्य न अन्त और अनन्त बल-भंडार है।
शशि-सूर्य रूपी नेत्र और अपार भुज-विस्तार है॥
प्रज्वलित अग्नि प्रचण्ड मुख में देखता मैं धर रहे।
संसार सारा तप्त अपने तेज से हरि कर रहे॥
20 नभ भूमि अन्तर सब दिशा इस रूप से तुम व्यापते।
यह उग्र अद्भुत रूप लखि त्रैलोक्य थर-थर कांपते॥
21 ये आप ही में देव-वृन्द प्रवेश करते जा रहे।
डरते हुए कर जोड़ जय-जय देव शब्द सुना रहे॥
सब सिद्ध-संघ महर्षिगण भी स्वस्ति कहते आ रहे।
पढ़ कर विविध विध स्तोत्र स्वामी आपके गुण गारहे॥
22 सब रुद्रगण आदित्य वसु हैं साध्यगण सारे खड़े।
सब पितर वि श्वेदेव अ श्विन और सिद्ध बड़े-बड़े॥
गन्धर्वगण राक्षस मरुत समुदाय एवं यक्ष भी।
मन में चकित होकर हरे ! वे देखते तुमको सभी॥
23 बहु नेत्र मुखमय अतिविशाल स्वरूप यह भगवान् है।
जंघा चरण बहु बाहुयुत हे महाबाहु ! महान है॥
बहु उदर हैं हरि और बहु विकराल डाढें हैं महा।
सब लोक लखि भयभीत भगवन् ! भय मुझे भी हो रहा॥
24 यह गगनचुंभी जगमगाता हरि ! अनेकों रंग का।
आंखें बड़ी बलती, खुला मुख भी अनोखे ढंग का॥

श्रीमद्भगवद्गीता

विश्वरूप दर्शन योग ग्यारहवाँ अध्याय

यह देख ऐसा रूप मैं मन में हरे ! घबरा रहा।
नहि धैर्य्य धर पाता, न भगवन् ! शान्ति भी मैं पा रहा॥
25 डाढ़ें भयंकर देख पड़ता मुख महाविकराल है।
मानो धधकती यह प्रलय-पावक प्रचण्ड विशाल है॥
सुख है न ऐसे देख मुख भूला दिशायें भी सभी।
देवेश जग-आधार ! हे भगवन् ! करो करुणा अभी॥
26 धृतराष्ट्र-सुत सब साथ उनके ये नृपति-समुदाय भी।
श्री भीष्म द्रोणाचार्य कर्ण प्रधान अपने भट सभी॥
27 विकराल डाढ़ों युत भयानक आपके मुख में हरे।
अतिवेग से सब दौड़ते जाते धड़ाधड़ हैं भरे॥
ये दिख रहे कुछ दांत में लटके हुए रण-शूर हैं।
इस डाढ़ में पिस कर अभी जिनके हुए शिर चूर हैं॥
28 जिस भांति बहु सरिता प्रवाह समुद्र प्रति जाते बहे।
ऐसे तुम्हारे ज्वाल - मुख में वेग से नर जा रहे॥
29 जिस भांति जलती ज्वाल में जाते पतङ्गे वेग से।
यों मृत्यु हित ये नर, मुखों मे आपके जाते धसे॥
30 सब ओर से इस ज्वालमय मुख में नरों को धर रहे।
देवेश ! रसना चाटते भक्षण सभी का कर रहे॥
विष्णो ! प्रभाएँ आपकी अति उग्र जग में छा रहीं।
निज तेज से संसार सारा ही सुरेश ! तपा रहीं॥
31 तुम उग्र अद्भत रूपधारी कौन हो बतलाइये।
हे देवदेव ! नमामि देव ! प्रसन्न अब हो जाइये।
तुम कौन आदि स्वरूप हो, यह जानना मैं चाहता।
कुछ भी न मुझको आपकी इस दिव्य करनी का पता॥

श्रीभगवान् ने कहा -

32 मैं काल हूँ सब लोक-नाशक उग्र अपने को किये।
आया यहां संसार का संहार करने के लिये॥
तू हो न हो तो भी धनंजय ! देख बिन तेरे लड़े।
ये नष्ट होंगे वीरवर योधा बड़े सब जो खड़े॥
33 अतएव उठ रिपुदल-विजय कर प्राप्त कर सम्मान को।
फिर भोग इस धन धान्य से परिपूर्ण राज्य महान् को॥
हे पार्थ ! मैंने वीर ये सब मार पहले ही दिये।
आगे बढ़ो तुम युद्ध में बस नाम करने के लिये॥

श्रीमद्भगवद्गीता

विश्वरूप दर्शन योग ग्यारहवाँ अध्याय

34 श्री भीष्म द्रोण तथा जयद्रथ कर्ण योधा और भी।
जो वीरवर हैं मार पहिले ही दिये मैंने सभी॥
अब मार इन मारे हुओं को, वीरवर व्याकुल न हो।
कर युद्ध रण में शत्रुओं को पार्थ ! जीतेगा अहो॥

संजय ने कहा -

35 तब मुकुटधारी पार्थ सुन केशव - कथन इस रीति से।
अपने उभय कर जोड़ कर कंपते हुए भयभीत से॥
नमते हुए, गद्गद गले से, और भी डरते हुए।
श्री कृष्ण से बोले वचन यों वन्दना करते हुए॥

अर्जुन ने कहा -

36 होता जगत अनुरक्त हर्षित आपका कीर्तन किये।
सब भागते राक्षस दिशाओं मे तुम्हारा डर लिये॥
नमता तुम्हें सब सिद्ध-संघ सुरेश ! बारम्बार है।
हे हृषीकेश ! समस्त ये उनका उचित व्यवहार है॥

37 तुम ब्रह्म के भी आदिकारण और उनसे श्रेष्ठ हो।
फिर हे महात्मन् ! आपकी यों वन्दना कैसे न हो॥
संसार के आधार हो, हे देवदेव ! अनन्त हो।
तुम सत्, असत् इनसे परे अक्षर तुम्हीं भगवन्त हो॥

38 भगवन् ! पुरातन पुरुष हो तुम विश्व के आधार हो।
हो आदि देव तथैव उत्तम धाम अपरम्पार हो॥
ज्ञाता तुम्हीं हो जानने के योग्य भी भगवन्त हो।
संसार में व्यापे हुए हो देवदेव ! अनन्त हो॥

39 तुम वायु यम पावक वरुण एवं तुम्हीं राकेश हो।
ब्रह्मा तथा उनके पिता भी आप ही अखिलेश हो॥
हे देवदेव ! प्रणाम देव ! प्रणाम सहसों बार हो।
फिर फिर प्रणाम ! प्रणाम ! नाथ प्रणाम ! बारम्बार हो॥

40 सानन्द सन्मुख और पीछे से प्रणाम सुरेश हो।
हरि बार - बार प्रणाम चारों ओर से सर्वेश हो॥
है वीर्य्य शौर्य्य अनन्त, बलधारी अतुल बलवन्त हो।
व्यापे हुए सब में इसी से "सर्व" हे भगवन्त ! हो॥

41 तुमको समझ अपना सखा जाने बिना महिमा महा।
यादव ! सखा ! हे कृष्ण ! प्यार प्रमाद या हठ से कहा॥

42 हे हरि ! हंसाने के लिये आहार और विहार में।
सोते अकेले बैठते सबमें किसी व्यवहार में॥

श्रीमद्भगवद्गीता

विश्वरूप दर्शन योग ग्यारहवाँ अध्याय

सबकी क्षमा मैं मांगता जो कुछ हुआ अपमान हो।
संसार में तुम अतुल अपरम्पार हे भगवान् हो॥

43 सारे चराचर के पिता बस आप ही भगवान् हो।
हरि आप गुरुओं के गुरु अति पूज्य और महान् हो॥
त्रैलोक्य में तुमसा हरे ! कोई कहीं भी है नहीं।
अनुपम अतुल्य प्रभाव बढ़कर कौन फिर होगा कहीं॥

44 इस हेतु वन्दन-योग्य ईश ! शरीर चरणों में किये।
मैं आपको करता प्रणाम प्रसन्न करने के लिये॥
ज्यों तात सुत के, प्रिय प्रिया के, मित्र सहचर अर्थ हैं।
अपराध मेरा आप त्योंही सहन हेतु समर्थ हैं॥

45 इस रूप को हरि ! देख कर, पहले न जो देखा कभी।
हर्षित हुआ मैं किन्तु भय से है विकल भी मन अभी॥
देवेश ! वि श्वाधार ! देव ! प्रसन्न अब हो जाइये।
हे नाथ ! पहला रूप ही अपना मुझे दिखलाइये॥

46 मैं चाहता हूँ देखना तुमको मुकुट धारण किये।
हे सहस बाहो ! शुभ करों में चक्र और गदा लिये॥
हे विश्वमूर्ते ! फिर मुझे वह सौम्य दर्शन दीजिये।
वह ही चतुर्भज रूप हे देवेश ! अपना कीजिये॥

श्रीभगवान् ने कहा -

47 हे पार्थ ! परम प्रसन्न हो तुझ पर अनुग्रह-भाव से।
मैंने दिखाया विश्वरूप महान योग-प्रभाव से॥
यह परम तेजोमय विराट अनन्त आदि अनूप है।
तेरे सिवाय न और ने देखा कभी यह रूप है॥

48 हे कुरु-प्रवीर ! न वेद से, स्वाध्याय, यज्ञ न दान से।
दिखता नहीं मैं उग्र तप या क्रिया कर्म-विधान से॥
मेरा विराट् स्वरूप इस नर-लोक में अर्जुन ! कहीं।
अतिरिक्त तेरे और कोई देख पाता है नहीं॥

49 यह घोर - रूप निहार कर मत मूढ़ और अधीर हो।
फिर रूप पहला देख, भय तज तुष्ट मन में वीर हो॥

संजय ने कहा -

50 यों कह, दिखाया रूप अपना सौम्य तन फिर धर लिया।
भगवान् ने भयभीत व्याकुल पार्थ को धीरज दिया॥

अर्जुन ने कहा -

51 यह सौम्य नर-तन देख भगवन् ! मन ठिकाने आ गया।
जिस भांति पहले था वही अपनी अवस्था पा गया॥

॥ भगवान श्री कृष्ण कृपा ॥

श्री कृष्णार्जुन संवाद

श्रीमद्भगवद्गीता

विश्वरूप दर्शन योग ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

52 हे पार्थ ! दुर्लभ रूप यह जिसके अभी दर्शन किये।
सुर भी तरसते हैं इसीकी लालसा मन में लिये॥

53 दिखता न मैं तप, दान अथवा यज्ञ, वेदों से कहीं।
देखा जिसे तूने उसे नर देख पाते हैं नहीं॥

54 हे पार्थ ! एक अनन्य मेरी भक्ति से सम्भव सभी।
यह ज्ञान, दर्शन, और मुझमें तत्त्व जान प्रवेश भी॥

55 मेरे लिये जो कर्म-तत्पर, नित्य मत्पर, भक्त है।
पाता मुझे वह जो सभी से वैर-हीन विरक्त है।

॥ विश्वरूप दर्शन योग ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

यह जन्म तेरा किसलिए

(गीता मनीषी स्वामी श्री ज्ञानानन्द जी महाराज)

श्रेय और प्रेय ये मार्ग हैं दो संसार में।
हैर ास्ताश्र ेयज्ञ ानक ा,अ ज्ञानम ेंल ेज ायेप ेय॥
ज्ञान बुद्धिमान लें, अविद्या में मूढ़ ही जिये।
सोच ले अब तू स्वयं, यह जन्म तेरा किसलिए॥

दुःखों में ही घुल-मरे, नहीं यह तुझे वाजिब कभी।
आनन्दमय स्वरूप तेरा, हो रहा फिर क्यों दुःखी?
तेरा ही है अज्ञान जिसने दुःख तुझे इतने दिये।
ज्ञान लेकर देख तू, है जन्म तेरा किसलिए?

धन-मान-प्रतिष्ठाक ेम दम ेंइ तनाम ोहितह ोग या।
तूक ैनह ै,अ ायाक हाँस े,ध यानय हभ ीन र हा॥
इनके लिये जीवन में तूने पाप क्या-क्या न किये।
सोच न इतना भी कभी, यह जन्म तेरा किसलिए?

पढ़ा कमाने के लिए, कमाया सभी खाने को ही।
बना रहे जीवन मेरा, खाने का मतलब था यही॥
पढ़ना-कमाना-खाना, है गर सब ये जीवन के लिये।
कर इसपे भी विचार कुछ कि जन्म तेरा किसलिए?

भूल बैठा तू जिसे 'किंकर' विचार कर तू ये।
मान या न मान, जीवन है तेरा प्रभु के लिये॥
प्रभु-प्रेम का तू छोड़ अमृत, विष जगत् का क्यों पिये?
प्रभु का बन पहचान कि यह जन्म तो प्रभु के लिये॥

श्रीमद्भगवद्गीता

भक्ति योग बारहवाँ अध्याय

अर्जुन ने कहा -

1 अव्यक्त को भजते कि जो धरते तुम्हारा ध्यान हैं।
इन योगियों में योगवेत्ता कौन श्रेष्ठ महान् हैं॥

श्रीभगवान् ने कहा -

2 कहता उन्हें मैं श्रेष्ठ मुझमें चित्त जो धरते सदा।
जो युक्त हो श्रद्धा सहित मेरा भजन करते सदा॥

3 अव्यक्त, अक्षर, अनिर्देश्य, अचिन्त्य नित्य स्वरूप को।
भजते अचल, कूटस्थ, उत्तम, सर्वव्यापी रूप को॥

4 सब इन्द्रियां साधे सदा समबुद्धि ही धरते हुए।
पाते मुझे वे पार्थ प्राणीमात्र हित करते हुए॥

5 अव्यक्त में आसक्त जो होता उन्हें अतिक्लेश है।
पाता पुरुष यह गति, सहन करके विपत्ति विशेष है॥

6 हो मत्परायण कर्म सब अर्पण मुझे करते हुए।
भजते सदैव अनन्य मन से ध्यान जो धरते हुए॥

7 मुझमें लगाते चित्त उनका शीघ्र कर उद्धार मैं।
इस मृत्युमय संसार से बेड़ा लगाता पार मैं॥

8 मुझमें लगाले मन, मुझी में बुद्धि को रख सब कहीं।
मुझमें मिलेगा फिर तभी, इसमें कभी संशय नहीं॥

9 मुझमें धनंजय ! जो न ठीक प्रकार मन पाओ बसा।
अभ्यास-योग प्रयत्न से मेरी लगाओ लालसा॥

10 अभ्यास भी होता नहीं तो कर्म कर मेरे लिये।
सब सिद्धि होगी कर्म भी मेरे लिये अर्जुन ! किये॥

11 यह भी न हो तब आसरा मेरा लिये कर योग ही।
कर चित्त-संयम कर्म - फल के त्याग सारे भोग ही॥

12 अभ्यास - पथ से ज्ञान उत्तम, ज्ञान से गुरु ध्यान है।
गुरु ध्यान से फल त्याग, करता त्याग शान्ति प्रदान है॥

13 बिन द्वेष, सारे प्राणियों का मित्र, करुणावान् हो।
सम दुःख सुख में मद न ममता, क्षमा शील महान् हो॥

14 जो तुष्ट नित मन बुद्धि से मुझमें हुआ आसक्त है।
दृढ़ नि श्चयी है संयमी प्यारा मुझे वह भक्त है॥

15 पाते न जिससे क्लेश जन, उनसे न पाता आप ही।
भय क्रोध हर्ष विषाद बिन प्यारा मुझे है जन वही॥

16 जो शुचि उदासी दक्ष है जिसको न दुख वाधा रही।
इच्छा-रहित, आरम्भ-त्यागी, भक्त प्रिय मुझको वही॥

॥ भगवान श्री कृष्ण कृपा ॥

श्री कृष्णार्जुन संवाद

श्रीमद्भगवद्गीता

भक्ति योग बारहवाँ अध्याय

17 करता न द्वेष न हर्ष जो बिन शोक है बिन कामना।
त्यागे शुभाशुभ फल वही है भक्त प्रिय मुझको घना॥
18 सम शत्रु मित्रों से सदा अपमान मान समान है।
शीतोष्ण सुख दुख सम जिसे, आसक्ति बिन मतिमान है॥
19 निन्दा प्रशंसा सम जिसे, मौनी सदा सन्तुष्ट ही।
अनिकेत निश्चल बुद्धिमय प्रिय भक्त है मुझको वही॥
20 जो मत्परायण इस अमृत - मय - धर्म में अनुरक्त हैं।
वे नित्य श्रद्धावान् जन मेरे परम प्रिय भक्त हैं॥

॥ भक्ति योग बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

भजन में ही रह मगन

(गीता मनीषी स्वामी श्री ज्ञानानन्द जी महाराज)

नहीं मिला यह जन्म केवल खाने पीने सोने को।
नर देह मिली है इसलिए आगे न और जन्म हो॥
आवागमन से मुक्त होने का ही सदा कर यत्न।
साधान है इसका एक ही तू भजन में ही रह मगन॥

प्रभु भजन के अतिरिक्त, सब कुछ ही यहाँ निःसार है।
करता न जो ईश्वर भजन, उसका जन्म बेकार है॥
मिथ्या ये धन्धे छोड़कर मन में लगा इक ही लगन॥
हैभ ाजनह ीस ुखरू पब सत ूभ ाजनम ेंह ीर हम गन॥

हरि भजन बिन सुख शांति मुक्ति की गति न कोई और।
बीता है जो जीवन उसी पर देख ले तू करके गौर॥
जितने मनोरथ रखे जग से हो गये वे सब भगन।
है सार नर तन का भजन बस भजन में ही रह मगन॥

तेज पानी और हवा सम्भव न जीना जिनके बिन।
बिन मोल ईश्वर ने दिया सब कुछ है तुझे, तू लेकिन॥
भूलकर उस ईश्वर को ही बना क्यों कृतघ्न।
एहसान प्रभु के याद करके भजन में ही रह मगन॥

जम गई वृत्ति अगर हरि भजन में बस एक बार।
होने लगेगा रोम-रोम में ही मस्ती का संचार॥
छोड़ने से भी न छूट पायेगी फिर यह लगन।
इसीलिये कहता हूँ 'किंकर' भजन में ही रह मगन॥

श्रीमद्भगवद्गीता

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग तेरहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

1 कौन्तेय यह तन क्षेत्र है ज्ञानी बताते हैं यही।
जो जानता इस क्षेत्र को क्षेत्रज्ञ कहलाता वही॥

2 हे पार्थ ! क्षेत्रों में मुझे क्षेत्रज्ञ जान महान् तू।
क्षेत्रज्ञ एवं क्षेत्र का सब ज्ञान मेरा जान तू॥

3 वह क्षेत्र जो, जैसा जहां से, जिन विकारों-युत, सभी।
संक्षेप में सुन, जिस प्रभाव समेत वह क्षेत्रज्ञ भी॥

4 बहु भांति ऋषियों और छन्दों से अनेक प्रकार से।
गाया पदों में ब्रह्म सूत्रों के सहेतु विचार से॥

5 मन बुद्धि एवं महाभूत प्रकृति अहंकृति भाव भी।
पांचों विषय सब इन्द्रियों के और इन्द्रियगण सभी॥

6 सुख दुःख इच्छा द्वेष धृति संघात एवं चेतना।
संक्षेप में यह क्षेत्र है समुदाय जो इनका बना॥

7 अभिमान दम्भ अभाव, आर्जव, शौच, हिंसाहीनता।
थिरता, क्षमा, निग्रह तथा आचार्य-सेवा दीनता॥

8 इन्द्रिय-विषय-वैराग्य एवं मद सदैव निवारना।
जीवन, जरा, दुख, रोग, मृत्यु सदोष नित्य विचारना॥

9 नहिं लिप्त नारी पुत्र में सब त्यागना फल वासना।
नित शुभ अशुभ की प्राप्ति में भी एकसा रहना बना॥

10 मुझमें सदैव अनन्यता से शुद्ध अविचल भक्ति हो।
एकान्त का सेवन, न जन समुदाय में आसक्ति हो॥

11 अध्यात्म ज्ञान व तत्त्व-ज्ञान विचार, यह सब ज्ञान है।
विपरीत इनके और जो कुछ है सभी अज्ञान है॥

12 अब वह बताता ज्ञेय जिसके ज्ञान से निस्तार है।
नहिं जो असत् सत् है, अनादि महान् ब्रह्म अपार है॥

13 सर्वत्र उसके पाणि पद, सिर नेत्र मुख सब ओर ही।
सब ओर उसके कान हैं, सर्वत्र फैला है वही॥

14 इन्द्रिय गुणों का भास उसमें किन्तु इन्द्रिय-हीन है।
हो अलग जग पालक, निगुण होकर गुणों में लीन है॥

15 भीतर व बाहर प्राणियों में दूर भी है पास भी।
वह चर अचर अतिसूक्ष्म है जाना नहीं जाता कभी॥

16 अविभक्त होकर प्राणियों में वह विभक्त सदैव है।
वह ज्ञेय पालक और नाशक जन्मदाता देव है॥

17 वह ज्योतियों की ज्योति है, तम से परे है, ज्ञान है।
सब में बसा है, ज्ञेय है, वह ज्ञानगम्य महान् है॥

श्रीमद्भगवद्गीता

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग तेरहवाँ अध्याय

18 यह क्षेत्र, ज्ञान, महान् ज्ञेय, कहा गया संक्षेप से।
हे पार्थ ! इसको जान मेरा भक्त मुझमें आ बसे॥

19 यह प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही अनादि विचार तू।
पैदा प्रकृति ही से समझ गुण तीन और विकार तू॥

20 है कार्य एवं करण की उत्पत्ति कारण प्रकृति ही।
इस जीव को कारण कहा सुख दुःख भोग निमित्त ही॥

21 रह कर प्रकृति में नित पुरुष करता प्रकृति-गुण भोग है।
अच्छी बुरी सब योनियां देता यही गुण-योग है॥

22 द्रष्टानुमन्ता ईश भर्ता और भोक्ता सर्वदा।
इस देह में वह, पर पुरुष परमात्म कहलाता सदा॥

23 ऐसे पुरुष एवं प्रकृति को गुण सहित जो जान ले।
बरताव कैसा भी करे वह जन्म फिर जग में न ले॥

24 कुछ आपही में आप आत्मा देखते हैं ध्यान से।
कुछ कर्म-योगी योग से, कुछ सांख्य ज्ञानी - ज्ञान से॥

25 सुन दूसरों से ही किया करते भजन अनजान हैं।
तरते असंशय मृत्यु वे, श्रुति में लगे मतिमान् हैं॥

26 जानो चराचर जीव जो पैदा हुए संसार में।
सब क्षेत्र के क्षेत्रज्ञ के संयोग से विस्तार में॥

27 अविनाशि, नश्वर सर्वभूतों में रहे सम नित्य ही।
इस भांति ईश्वर को पुरुष जो देखता देखे वही॥

28 जो देखता समभाव से ईश्वर सभी में व्याप्त है।
करता न अपनी घात है, करता परम-पद प्राप्त है॥

29 करती प्रकृति सब कर्म, आत्मा है अकर्ता नित्य ही।
इस भांति से जो देखता है, देखता है जन वही॥

30 जब प्राणियों की भिन्नता जन एक में देखे सभी।
विस्तार देखे एक से ही ब्रह्म को पाता तभी॥

31 यह ईश अव्यय, निगुण और अनादि होने से सदा।
करता न होता लिप्त है रह देह में भी सर्वदा॥

32 नभ सर्वव्यापी सूक्ष्म होने से न जैसे लिप्त हो।
सर्वत्र आत्मा देह में रह कर न वैसे लिप्त हो॥

33 ज्यों एक रवि सम्पूर्ण जग में तेज भरता है सदा।
यों ही प्रकाशित क्षेत्र को क्षेत्रज्ञ करता है सदा॥

34 क्षेत्रज्ञ एवं क्षेत्र-अन्तर ज्ञान से समझें सही।
समझें प्रकृति से छूटना जो ब्रह्म को पाते वही॥

॥ क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

गुणत्रय विभाग योग चौदहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

1 अतिश्रेष्ठ ज्ञानों में बताता ज्ञान मैं अब और भी।
मुनि पा गये हैं सिद्धि जिसको जानकर जग में सभी॥

2 इस ज्ञान का आश्रय लिये जो रूप मेरा हो रहें।
उत्पत्ति-काल न जन्म लें, लय-काल में न व्यथा सहें॥

3 इस प्रकृति अपनी योनि में मैं गर्भ रखता हूं सदा।
उत्पन्न होते हैं उसीसे सर्व प्राणी सर्वदा॥

4 सब योनियों में मूर्तियों के जो अनेकों रूप हैं।
मैं बीज-प्रद उनका पिता हूं प्रकृति योनि अनूप हैं॥

5 पैदा प्रकृति से सत्त्व, रज, तम त्रिगुण का विस्तार है।
इस देह में ये जीव को लें बांध, जो अविकार है॥

6 अविकार सतगुण है प्रकाशक क्योंकि निर्मल आप है।
सुख, ज्ञान से यह बाँध लेता जीव हे निष्पाप ! है।

7 है रागमय रजगुण इसीसे संग तृष्णा भी बढ़े।
फिर कर्म में आसक्त होकर जीव बन्धन में पड़े॥

8 अज्ञान से उत्पन्न तम सब जीव जो मोहित करे।
आलस्य नींद प्रमाद से यह जीव को बंधित करे॥

9 सुख में सतोगुण, कर्म में देता रजोगुण संग है।
ढक कर तमोगुण ज्ञान को देता प्रमाद प्रसंग है॥

10 रज तम दबें तब सत्त्व गुण, तम सत्त्व दबते रज बढ़े।
रज सत्त्व दबते ही तमोगुण देहधारी पर चढ़े॥

11 जब देह की सब इन्द्रियों में ज्ञान का हो चांदना।
जब जान लेना चाहिये तन में सतोगुण है घना॥

12 तृष्णा अशान्ति प्रवृत्ति होकर मन प्रलोभन में पड़े।
आरम्भ होते कर्म के अर्जुन ! रजोगुण जब बढ़े॥

13 कौन्तेय ! मोह, प्रमाद हो जब हो न मन में चांदना।
उत्पन्न हो आलस्य जब होता तमोगुण है घना॥

14 इस जीव में यदि सत्त्वगुण की वृद्धि मरते काल है।
तत्त्वज्ञियों का प्राप्त करता शुद्ध लोक विशाल है॥

15 रज-वृद्धि में मर देह कर्मासक्त पुरुषों में धरे।
जड़ योनियों में जन्मता यदि जन तमोगुण में मरे॥

16 फल पुण्य कर्मों का सदा शुभ श्रेष्ठ सात्त्विक ज्ञान है।
फल दुख रजोगुण का, तमोगुण फल सदा अज्ञान है।

17 उत्पन्न सत से ज्ञान, रज से नित्य लोभ प्रधान है।
है मोह और प्रमाद तमगुण से सदा अज्ञान है॥

श्रीमद्भगवद्गीता

गुणत्रय विभाग योग चौदहवाँ अध्याय

18 सात्त्विक पुरुष स्वर्गादि में, नरलोक में राजस बसें।
जो तामसी गुण में बसे, वे जन अधोगति में फँसें॥

19 कर्ता न कोई तज त्रिगुण यह देखता दृष्टा जभी।
जाने गुणों से पार जब, पाता मुझे है जन तभी॥

20 जो देहधारी, देह-कारण पार ये गुण तीन हो।
छुट जन्म मृत्यु जरादि दुख से वह अमृत में लीन हो॥

अर्जुन ने कहा -

21 लक्षण कहो उनके प्रभो जन जो त्रिगुण से पार हैं।
किस भांति होते पार क्या उनके कहो आचार हैं॥

श्रीभगवान् ने कहा -

22 पाकर प्रकाश, प्रवृत्ति, मोह, न पार्थ ! इनसे द्वेष है।
यदि हों नहीं वे प्राप्त, उनकी लालसा न विशेष है॥

23 रहता उदासी सा गुणों से हो नहीं विचलित कहीं।
सब त्रिगुण करते कार्य हैं यह जान जो डिगता नहीं॥

24 हैस्वस्थस ुखद ुखस मि जसे,स मढ ेलप त्थरस्वर्णभ ी।
जोध ीर,ि निन्दास्तुति जसेस म,त ुल्यअ प्रिय ि प्रयस भी॥

25 सम बन्धु बैरी हैं जिसे अपमान मान समान है।
आरम्भ त्यागे जो सभी वह गुणातीत महान है॥

26 जो शुद्ध निश्चल भक्ति से भजता मुझे है नित्य ही।
तीनों गुणों से पार होकर ब्रह्म को पाता वही॥

27 अव्यय अमृत मैं और मैं ही ब्रह्मरूप महान हूँ।
मैं ही सनातनधर्म और अपार मोद निधान हूँ॥

॥ गुणत्रय विभाग योग चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

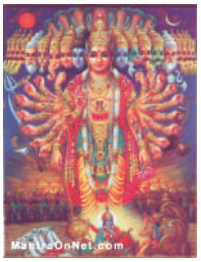

श्रीमद्भगवद्गीता

पुरुषोत्तम योग पन्द्रहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

1 है मूल ऊपर शाख नीचे पत्र जिसके वेद हैं।
वे वेदवित् जो जानते अश्वत्थ-अव्यय-भेद हैं॥

2 पल्लव विषय, गुण से पली अध ऊर्ध्व शाखा छा रहीं।
नर लोक में नीचे जड़ें कर्मानुबन्धी जा रहीं॥

3 उसका यहां मिलता स्वरूप न आदि मध्याधार से।
दृढ़ मूल यह अश्वत्थ काट असंग शस्त्र प्रहार से॥

4 फिर वह निकालो ढूँढ कर पद श्रेष्ठ ठीक प्रकार से।
कर प्राप्त जिसको फिर न लौटें, छूट कर संसार से॥
मैं शरण उसकी हूँ पुरुष जो आदि और महान है।
उत्पन्न जिससे सब पुरातन, यह प्रवृत्ति विधान है॥

5 जीता जिन्होंने संग-दोष न मोह जिनमें मान है।
मन में सदा जिनके जगा अध्यात्म-ज्ञान प्रधान है॥
जिनमें न कोई कामना सुख दुःख और न द्वन्द्व ही।
अव्यय परमपद को सदा ज्ञानी पुरुष पाते वही॥

6 जिसमें न सूर्य्य प्रकाश चन्द्र न आग ही का काम है।
लौटे न जन जिसमें पहुँच मेरा वही पर धाम है॥

7 इस लोक में मेरा सनातन अंश है यह जीव ही।
मन के सहित छै प्रकृतिवासी खींचता इन्द्रिय वही॥

8 जब जीव लेता देह अथवा त्यागता सम्बन्ध को।
करता ग्रहण इनको सुमन से वायु जैसे गंध को॥

9 रसना, त्वचा, दृग, कान एवं नाक, मन-आश्रय लिये।
यह जीव सब सेवन किया करता विषय निर्मित किये॥

10 जाते हुए तन त्याग, रहते, भोगते गुणयुक्त भी।
जानें न इसको मूढ़ मानव, जानते ज्ञानी सभी॥

11 कर यत्न योगी आपमें इसको बसा पहिचानते।
पर यत्न करके भी न मूढ़ अशुद्ध आत्मा जानते॥

12 करता प्रकाशित विश्व, मेरा तेज ठैर दिनेश में।
वह जान मेरा तेज ही जो अग्नि में राकेश में॥

13 क्षिति में बसा निज तेज से मैं प्राणियों को धर रहा।
रस रूप होकर सोम सारी पुष्ट औषधि कर रहा॥

14 मैं प्राणियों में बस रहा हो रूप वै श्वानर महा।
पाचन चतुर्विध अन्न प्राणापान-युत हो कर रहा॥

15 सुधि ज्ञान और अपोह, मुझसे मैं सभी में बस रहा।
वेदान्तकर्ता वेदवेद्य सुवेदवित् मुझको कहा॥

श्रीमद्भगवद्गीता

पुरुषोत्तम योग पन्द्रहवाँ अध्याय

16 संसार में क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं सर्वदा।
क्षर सर्व भूतों को कहा कूटस्थ है अक्षर सदा॥
17 कहते जिसे परमात्म हैं, उत्तम पुरुष इनसे परे।
त्रैलोक्य में रह ईश अव्यय सर्व जग पोषण करे॥
18 क्षर और अक्षर से परे मैं श्रेष्ठ हूं संसार में।
इस हेतु पुरुषोत्तम कहाया वेद लोकाचार में॥
19 तज मोह पुरुषोत्तम मुझे जो पार्थ ! लेता जान है।
सब भांति वह सर्वज्ञ हो भजता मुझे मतिमान् है॥
20 मैंने कहा यह गुप्त से भी गुप्त ज्ञान महान् है।
यह जान कर करता सदा जीवन सफल मतिमान् है॥

॥ पुरुषोत्तम योग पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

गीता महिमा

1 गीता हृदय भगवान् का, सब ज्ञान का शुभ सार है।
इस शुद्ध गीताज्ञान से ही, चल रहा संसार है॥
2 गीता परम विद्या सनातन सर्वशास्त्र प्रधान है।
परब्रह्म रूपी मोक्षकारी नित्य गीता गान है॥
3 यह मोह माया कष्टमय तरना जिसे संसार हो।
वह बैठ गीता-नाव में सुख से सहज में पार हो॥
4 संसार के सब ज्ञान का यह ज्ञानमय भंडार है।
श्रुति, उपनिषद्, वेदान्त ग्रन्थों का महा शुभ सार है॥
5 सुनते सुनाते नित्य जो लाते इसे व्यवहार में।
पाते परम-पद ठाकरें खाते नहीं संसार में॥
6 धरते हुए जो ध्यान, गीताज्ञान का तन छोड़ते।
लेने उसे माधव मुरारी आप ही उठ दौड़ते॥

(ब्रह्मलीन पं० श्री दीना नाथ जी भार्गव)

श्रीमद्भगवद्गीता

दैवीसंपदा योग सोलहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा -

1 इन्द्रिय-दमन, भय-हीनता, शुचि वृत्ति, सात्त्विक-ज्ञान भी।
तन-मन सरलता, यज्ञ, तप, स्वाध्याय, सात्त्विक दान भी॥

2 मृदुता, अनिन्दा, सत्य, करुणा, शान्ति, क्रोध-विहीनता।
लज्जा, अचञ्चलता, अहिंसा, त्याग, तृष्णाहीनता॥

3 धृति, तेज, पावनता, क्षमा, अद्रोह, मान-विहीनता।
ये चिन्ह उनके पार्थ जिनको प्राप्त दैवी-सम्पदा॥

4 मद, मान, मिथ्याचार, क्रोध, कठोरता, अज्ञान भी।
ये आसुरी सम्पत्ति में जन्में हुए पाते सभी॥

5 दे मोक्ष दैवी, बांधती है आसुरी सम्पत्ति ये।
मत शोक अर्जुन ! कर हुआ तू दैव संपद् को लिये॥

6 दो भांति की है सृष्टि दैवी, आसुरी, संसार में।
सुन आसुरी अब पार्थ ! दैवी कह चुका विस्तार में॥

7 क्या है प्रवृत्ति निवृत्ति? जग में जानते आसुर नहीं।
आचार, सत्य, विशुद्धता होती नहीं उनमें कहीं॥

8 कहते असुर झूठा जगत्, बिन ईश बिन आधार है।
केवल परस्पर योग से बस भोग-हित संसार है॥

9 इस दृष्टि को धर, मूढ़ नर, नष्टात्म, रत अपकार में।
जग नाश हित वे क्रूर-कर्मी जन्मते संसार में॥

10 मद मान दम्भ-विलीन, काम अपूर का आश्रय लिये।
बर्तें अशुचि नर मोह वश होकर असत् आग्रह लिये॥

11 उनमें मरण-पर्यन्त चिन्ताएँ अनन्त सदा रहें।
वे भोग विषयों में लगे आनन्द उसही को कहें॥

12 आशा कुबन्धन में बंधे, धुन क्रोध एवं काम की।
सुख भोग हित अन्याय से इच्छा करें धन धाम की॥

13 यह पा लिया अब, वह मनोरथ सिद्ध कर लूँगा सभी।
यह धन हुआ मेरा मिलेगा और भी आगे अभी॥

14 यह शत्रु मैंने आज मारा, कल हनूँगा और भी।
भोगी, सुखी, बलवान् ई श्वर, सिद्ध हूँ, मैं ही सभी॥

15 श्रीमान् और कुलीन मैं हूं कौन मुझसे और हैं।
मख, दान, सुख भी मैं करूँगा, मूढ़ता-मोहित कहें॥

16 भूले अनेकों कल्पना में मोह-बन्धन बीच हैं।
वे काम भोगों में फंसे पड़ते नरक में नीच हैं।

17 धन, मान, मद में मस्त, ऐंठू निज-प्रशंसक अज्ञ हैं।
वे दम्भ से विधिहीन करते नाम ही को यज्ञ हैं॥

श्रीमद्भगवद्गीता

दैवीसंपदा योग सोलहवाँ अध्याय

18 बल,क ाम,क्र ोध,घ ामण्ड,व श,ि नन्दाक रेंब लस ेत ने।
सब में व अपने में बसे मुझ देव के द्वेषी बने॥

19 जो हैं नराधम क्रूर द्वेषी लीन पापाचार में।
उनको गिराता नित्य आसुर योनि में संसार में॥

20 वे जन्म जन्म सदैव आसुर योनि ही पाते रहें।
मुझको न पाकर अन्त में अति ही अधोगति को गहें॥

21 ये काम लालच क्रोध तीनों ही नरक के द्वार हैं।
इस हेतु तीनों आत्म-नाशक त्याज्य सर्व प्रकार हैं॥

22 इन नरक द्वारों से पुरुष जो मुक्त पार्थ ! सदैव ही।
शुभ आचरण निज हेतु करता परम गति पाता वही॥

23 जो शास्त्रविधि को छोड़, करता कर्म मनमाने सभी।
वह ि सद्धि,स ुखअ थवाप रमगतिक ोन प ाताह ैक भी॥

24 इस हेतु कार्य्य-अकार्य-निर्णय मान शास्त्र-प्रमाण ही।
करना कहा जो शास्त्र में है, जानकर वह, कर वही॥

॥ दैवीसंपदा योग सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रद्धात्रय योग सत्रहवाँ अध्याय

अर्जुन ने कहा –

1 करते यजन जो शास्त्रविधि को छोड़ श्रद्धायुक्त हो।
हे कृष्ण ! उनकी सत्त्व, रज, तम कौनसी निष्ठा कहो॥

श्रीभगवान् ने कहा –

2 श्रद्धा स्वभावज प्राणियों में पार्थ ! तीन प्रकार से।
सुन सात्त्विकी भी राजसी भी तामसी विस्तार से॥

3 श्रद्धा सभी में सत्त्व सम, श्रद्धा स्वरूप मनुष्य है।
जिसकी रहे जिस भांति श्रद्धा वह उसी सा नित्य है॥

4 सात्त्विक सुरों का, यक्ष राक्षस का यजन राजस करें।
नित भूत प्रेतों का यजन जन तामसी मन में धरें॥

5 जो घोर तप तपते पुरुष हैं शास्त्र विधि से हीन हो।
मद दम्भ पूरित, कामना बल राग के आधीन हो॥

6 तन पंच-भूतों को, मुझे भी – देह में जो बस रहा।
जो कष्ट देते जान उनको मूढ़मति आसुर महा॥

7 हे पार्थ ! प्रिय सबको सदा आहार तीन प्रकार से।
इस भांति ही तप दान मख भी हैं, सुनो विस्तार से॥

8 दें आयु, सात्त्विकबुद्धि, बल, सुख, प्रीति, एवं स्वास्थ्य भी।
रसमय चिरस्थिर हृद्य चिकने खाद्य सात्त्विक प्रिय सभी॥

9 नमकीन, कटु, खट्टे, गरम, रुखे व दाहक, तीक्ष्ण ही।
दुख-शोक-रोगद खाद्य, प्रिय हैं राजसी को नित्य ही॥

10 रक्खा हुआ कुछ काल का, रसहीन, बासी या सड़ा।
नर तामसी अपवित्र भोजन भोगते जूठा पड़ा॥

11 फल आश तज, जो शास्त्र विधिवत, मान कर कर्तव्य ही।
अतिशान्त मन करके किया हो, यज्ञ सात्त्विक है वही॥

12 हे भरतश्रेष्ठ ! सदैव ही फल-वासना जिसमें बसी।
दम्भाचरण हित जो किया वह यज्ञ जानो राजसी॥

13 विधि-अन्नदान-विहीन जो, बिन दक्षिणा के हो रहा।
बिन-मन्त्र-श्रद्धा, यज्ञ जो वह तामसी जाता कहा॥

14 सुर द्विज तथा गुरु प्राज्ञ पूजन ब्रह्मचर्य सदैव ही।
शुचिता अहिंसा नम्रता तन की तपस्या है यही॥

15 सच्चे वचन, प्रिय और हितकर, दुःख न जिनसे हो कभी।
स्वाध्याय का अभ्यास भी, वाणी तपस्या है सभी॥

16 सौम्यत्व, मौन, प्रसाद मन का, शुद्ध भाव सदैव ही।
करना मनोनिग्रह सदा मन की तपस्या है यही॥

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रद्धात्रय योग सत्रहवाँ अध्याय

17 श्रद्धा सहित हो योगयुत फल वासनाएँ तज सभी।
करते पुरुष, तप ये त्रिविध, सात्त्विक तपस्या है तभी॥

18 सत्कार पूजा मान के हित दम्भ से जो हो रहा।
वह तप अनिश्चित और न श्वर, राजसी जाता कहा॥

19 जो मूढ़-हठ से आपही को कष्ट देकर हो रहा।
अथवा किया पर नाश हित, तप तामसी उसको कहा॥

20 देना समझ कर अनुपकारी को दिया जो दान है।
वह दान सात्त्विक देश काल सुपात्र का जब ध्यान है॥

21 जो दान प्रत्युपकार के हित क्लेश पाकर के किया।
है राजसी वह दान जो फल आश के हित है दिया॥

22 बिन देश काल सुपात्र देखे जो दिया बिन मान है।
अथवा दिया अवहेलना से तामसी वह दान है॥

23 शुभ ॐ तत् सत् ब्रह्म का यह त्रिविध उच्चारण कहा।
निर्मित इसी से आदि में हैं, वेद ब्राह्मण मख महा॥

24 इस हेतु कहकर ॐ होते नित्य मख तप दान भी।
सब ब्रह्मनिष्ठों के सदा शास्त्रोक्त कर्म-विधान भी॥

25 कल्याण-इच्छुक त्याग फल "तत्" शब्द कहकर सर्वदा।
तप यज्ञ दान क्रियादि करते हैं विवध विधि से सदा॥

26 सद् साधु भावों के लिये "सत्" का सदैव प्रयोग है।
हे पार्थ ! उत्तम कर्म में "सत्" शब्द का उपयोग है॥

27 "सत्" ही कहाती दान तप में यज्ञ में दृढ़ता सभी।
कहते उन्हें "सत्" ही सदा उनके लिये जो कर्म भी॥

28 सब ही असत् श्रद्धा बिना जो होम तप या दान है।
देता न वह इस लोक में या मृत्यु पर कल्यान है॥

॥ श्रद्धात्रय योग सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ भगवान श्री कृष्ण कृपा ॥

श्री कृष्णार्जुन संवाद

श्रीमद्भगवद्गीता

मोक्ष संन्यास योग अठारहवाँ अध्याय

अर्जुन ने कहा -

1 संन्यास एवं त्याग-तत्त्व पृथक् महाबाहो ! कहो।
इच्छा मुझे है हृषीकेश ! समस्त इनका ज्ञान हो॥

श्रीभगवान् ने कहा -

2 सब काम्य-कर्मन्यास ही संन्यास ज्ञानी मानते।
सब कर्मफल के त्याग ही को त्याग विज्ञ बखानते॥

3 हैं दोषवत् सब कर्म कहते त्याज्य कुछ विद्वान् हैं।
तप दान यज्ञ न त्यागिये कुछ दे रहे यह ज्ञान हैं॥

4 हे पार्थ ! सुन जो ठीक मेरा त्याग हेतु विचार है।
हे पुरुषव्याघ्र ! कहा गया यह त्याग तीन प्रकार है॥

5 मख दान तप ये कर्म करने योग्य, त्याज्य न हैं कभी।
मख दान तप विद्वान् को भी शुद्ध करते हैं सभी॥

6 येक र्मभ ीअ ासक्ति बनह ो,त यागक रप ्नलि नत्यह ी।
करने उचित हैं पार्थ ! मेरा श्रेष्ठ नि श्चत् मत यही॥

7 निज नियत-कर्म न त्यागने के योग्य होते हैं कभी।
यदि मोह से हो त्याग तो वह त्याग तामस है सभी॥

8 दुख जान कायाक्लेश भय से कर्म यदि त्यागे कहीं।
वह राजसी है त्याग उसका फल कभी मिलता नहीं॥

9 फल, संग, तज जो कर्म नियमित कर्म अपना मान है।
माना गया वह त्याग शुभ सात्त्विक सदैव महान् है॥

10 नहि द्वेष अकुशल कर्म से, जो कुशल में नहिं लीन है।
संशयरहित त्यागी वही है सत्त्वनिष्ठ प्रवीन है॥

11 सम्भव नहीं है देहधारी त्याग दे सब कर्म ही।
फल कर्म के जो त्यागता, त्यागी कहा जाता वही॥

12 पाते सकामी देह तज फल शुभ अशुभ मिश्रित सभी।
त्यागी पुरुष को पर न होता है त्रिविध फल ये कभी॥

13 हैं पाँच कारण जानलो सब कर्म होने के लिये।
सुन मैं सुनाता सांख्य के सिद्धान्त में जो भी दिये॥

14 आधार कर्ता और सब साधन पृथक् विस्तार से।
चेष्टा विविध विध, दैव, ये हैं हेतु पाँच प्रकार के॥

15 तन मन वचन से जन सभी जो कर्म जग में कर रहे।
हों ठीक या विपरीत उनके पाँच ये कारण कहे॥

16 जो मूढ़ अपने आपको ही किन्तु कर्ता मानता।
उसकी नहीं है शुद्ध बुद्धि, न ठीक वह कुछ जानता॥

श्रीमद्भगवद्गीता

मोक्ष संन्यास योग अठारहवाँ अध्याय

17 जो जन अहंकृतिभाव बिन, नहिं लिप्त जिसकी बुद्धि भी।
नहिं मारता वह मारकर भी, है न बन्धन में कभी॥

18 नित ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय करते कर्म में है प्रेरणा।
है कर्मसंग्रह, करण, कर्ता कर्म तीनों से बना॥

19 सुन ज्ञान एवं कर्म, कर्ता भेद गुण अनुसार हैं।
जैसे कहे हैं सांख्य में वे सर्व तीन प्रकार हैं॥

20 सब भिन्न भूतों में अन श्वर एक भाव अभिन्न ही।
जिस ज्ञान से जन देखता है, ज्ञान सात्त्विक है वही॥

21 जिस ज्ञान से सब प्राणियों में भिन्नता का भान है।
सब में अनेकों भाव दिखते, राजसी वह ज्ञान है॥

22 जो एक ही लघुकार्य में आसक्त पूर्ण-समान है।
निःसार युक्ति-विहीन है वह तुच्छ तामस ज्ञान है॥

23 फलआश-त्यागी नित्य नियमित कर्म जो भी कर रहा।
बिन राग द्वेष, असंग हो, वह कर्म सात्त्विक है कहा॥

24 आशा लिये फल की अहंकृत-बुद्धि से जो काम है।
अति ही परिश्रम से किया, राजस उसी का नाम है॥

25 परिणाम, पौरुष, हानि, हिंसा का न जिसमें ध्यान है।
वह तामसी है कर्म जिसके मूल में अज्ञान है॥

26 बिन अहंकार, असंग, धीरजवान्, उत्साही महा।
अविकार सिद्धि असिद्धि में सात्त्विक वही कर्ता कहा॥

27 हिंसक, विषय-मय, लोभ-हर्ष-विषाद-युक्त मलीन है।
फल कामना में लीन, कर्ता राजसी वह दीन है॥

28 चंचल, घमंडी, शठ, विषादी, दीर्घसूत्री, आलसी।
शिक्षा-रहित, पर-हानि-कर, कर्ता कहा है तामसी॥

29 होते त्रिविध ही हे धनंजय ! बुद्धि धृति के भेद भी।
सुन भिन्न-भिन्न समस्त गुण अनुसार कहता हूँ अभी॥

30 जाने प्रवृत्ति निवृत्ति बन्धन मोक्ष कार्य्य अकार्य्य भी।
हे पार्थ ! सात्त्विक बुद्धि है जो भय अभय जाने सभी॥

31 जिस बुद्धि से निर्णय न कार्य अकार्य बीच यथार्थ है।
जाने न धर्म अधर्म को वह राजसी मति पार्थ ! है॥

32 तम व्याप्त हो जो बुद्धि, धर्म अधर्म ही को मानती।
वह तामसी जो नित्य अर्जुन ! अर्थ उलटे जानती॥

33 जब जन अचल धृति से क्रिया मन प्राण इन्द्रिय की सभी।
धारण करे नित योग से, धृति शुद्ध सात्त्विक है तभी॥

श्रीमद्भगवद्गीता

मोक्ष संन्यास योग अठारहवाँ अध्याय

34 आसक्ति से फल-कामना-प्रिय धर्म अर्थ व काम है।
धारण किये जिससे उसी का राजसी धृति नाम है॥

35 तामसव हीध ृतिप ार्थ!ि जससेस्वप्न,भ ाय,उ न्मादक ो।
तजता नहीं दुर्बुद्धि मानव, शोक और विषाद को॥

36 अबस ुन ि त्रविधस ुखभ ोदभ ीि जसकेस दाअ भ्यासस े।
सब दुःख का कर अन्त अर्जुन ! जन उसी में जा बसे॥

37 आरम्भ में विषवत्, सुधा सम किन्तु मधु परिणाम है।
जो आत्म-बुद्धि-प्रसाद-सुख, सात्त्विक उसी का नाम है॥

38 राजस वही सुख जो हुआ इन्द्रिय-विषय-संयोग से।
पहिले सुधा सम, अन्त में विष तुल्य हो फल-भोग से॥

39 आरम्भ एवं अन्त में जो मोह जन को दे रहा।
आलस्य नींद प्रमाद से उत्पन्न सुख तामस कहा॥

40 इस भूमि पर आकाश अथवा देवताओं में कहीं।
हो प्रकृति के इन तीन गुण से मुक्त ऐसा कुछ नहीं॥

41 द्विज और क्षत्रिय वैश्य शूद्रों के परंतप ! कर्म भी।
उनके स्वभावज ही गुणों अनुसार बांटे हैं सभी॥

42 शमद मक्ष ामात पश ुद्धिअ ास्तिकब ुद्धिभ ीि वज्ञानभ ी।
द्विज के स्वभावज कर्म हैं, तन-मन-सरलता ज्ञान भी॥

43 धृति शूरता तेजस्विता रण से न हटना धर्म है।
चातुर्य्य स्वामीभाव देना दान क्षत्रिय कर्म है॥

44 कृषि धेनु-पालन वैश्य का वाणिज्य करना कर्म है।
नित कर्म शूद्रों का स्वभावज लोक-सेवा-धर्म है॥

45 करता रहे जो कर्म निज-निज सिद्धि पाता है वही।
निज-कर्म-रत नर सिद्धि सुन किस भाँति पाता नित्य ही॥

46 जिससे प्रवृत्ति समस्त जीवों की तथा जग व्याप्त है।
निज कर्म से नर पूज उसको सिद्धि करता प्राप्त है॥

47 निज धर्म निर्गुण श्रेष्ठ है, सुन्दर सुलभ पर धर्म से।
होता न पाप स्वभाव के अनुसार अपने कर्म से॥

48 निजि नयतक र्मस दोषह ों,त ोभ ीउ चितन हिंत यागह ै।
सब कर्म दोषों से घिरे जैसे धुएँ से आग है॥

49 वश में किये मन, मति असक्त, न कामना कुछ व्याप्त हो।
नैष्कर्म्य-सिद्धि महान तब, संन्यास द्वारा प्राप्त हो॥

50 जिस भांति पाकर सिद्धि होती ब्रह्म-प्राप्ति सदैव ही।
संक्षेप में सुन ज्ञान की अर्जुन परा-निष्ठा वही॥

श्रीमद्भगवद्गीता

मोक्ष संन्यास योग अठारहवाँ अध्याय

51 कर आत्म-संयम धैर्य्य से अतिशुद्ध मति में लीन हो।
सब त्याग शब्दादिक विषय, नित राग-द्वेष-विहीन हो॥

52 एकान्तसेवी अल्प-भोजी मन वचन तन वश किये।
हो ध्यान युक्त सदैव ही, वैराग्य का आश्रय लिये॥

53 बल अहंकार घमंड संग्रह क्रोध काम विमुक्त हो।
ममतारहित नर शान्त, ब्रह्म-बिहार के उपयुक्त हो॥

54 जो ब्रह्मभूत प्रसन्नमन है, चाह-चिन्ता-हीन है।
सम भाव सबमें साध, होता भक्ति में लवलीन है॥

55 मैं कौन कितना, भक्ति से उसको सभी यह ज्ञान हो।
मुझमें मिले, मेरी उसे जब तत्त्व से पहिचान हो॥

56 करता रहे सब कर्म भी मेरा सदा आश्रय धरे।
मेरी कृपा से प्राप्त वह अव्यय-सनातन-पद करे॥

57 मन से मुझे सारे समपित कर्म कर, मत्पर हुआ।
मुझमें निरन्तर चित्त धर, सम-बुद्धि में तत्पर हुआ॥

58 मुझमें रखे मन, मम कृपा से, दुःख सब तर जायगा।
अभिमान से, मेरी न सुनकर, नाश केवल पायगा॥

59 'मैं नहिं करूँगा युद्ध' तुम अभिमान से कहते अभी।
यह व्यर्थ निश्चय है प्रकृति तुमसे करा लेगी सभी॥

60 करना नहीं जो चाहता है मोह में तल्लीन हो।
वह सब करेगा निज स्वभावज कर्म के आधीन हो॥

61 ईश्वर हृदय में प्राणियों के बस रहा है नित्य ही।
सब जीव-यन्त्रारूढ़ माया से घुमाता है वही॥

62 इस हेतु ले उसकी शरण सब भांति से सब ओर से।
शुभ शांति लेगा नित्य-पद, उसकी कृपा की कोर से॥

63 तुझसे कहा अतिगुप्त ज्ञान समस्त ये विस्तार से।
जिस भांति जो चाहे वही कर पार्थ ! पूर्ण विचार से॥

64 अब अन्त में अतिगुप्त हे कौन्तेय ! कहता बात हूँ।
अतिप्रिय मुझे तू अस्तु हित की बात कहता तात हूँ॥

65 रख मन मुझी में, कर यजन, मम भक्त बन, कर वन्दना।
मुझमें मिलेगा, सत्य प्रण तुझसे, मुझे तू प्रिय घना॥

66 तज धर्म सारे एक मेरी ही शरण को प्राप्त हो।
मैं मुक्त पापों से करूँगा तू न चिन्ता-व्याप्त हो॥

67 निन्दा करे मेरी, न सुनना चाहता, बिन भक्ति है।
उसको न देना ज्ञान यह जिसमें नहीं तप-शक्ति है॥

श्रीमद्भगवद्गीता

मोक्ष संन्यास योग अठारहवाँ अध्याय

68 यह गुप्त-ज्ञान महान् भक्तों से कहेगा जो सही।
मुझमें मिलेगा भक्ति पा मेरी, असंशय नर वही॥

69 उससे अधिक प्रिय कार्य-कर्ता विश्व में मेरा नहीं।
उससे अधिक मुझको न प्यारा दूसरा होगा कहीं॥

70 मेरी तुम्हारी धर्म-चर्चा जो पढ़ेगा ध्यान से।
मैं मानता पूजा मुझे है ज्ञानयज्ञ विधान से॥

71 बिन दोष ढूँढे जो सुनेगा नित्य श्रद्धा-युक्त हो।
वह पुण्यवानों का महा शुभ लोक लेगा मुक्त हो॥

72 अर्जुन ! कहो तुमने सुना यह ज्ञान सारा ध्यान से।
अब भी छुटे हो या नहीं उस मोहमय अज्ञान से॥

अर्जुन ने कहा -

73 अच्युत ! कृपा से आपकी अब मोह सब जाता रहा।
संशय रहित हूँ, सुधि मुझे आई, करूँगा हरि कहा॥

संजय ने कहा -

74 इस भांति यह रोमांच-कारी और श्रेष्ठ रहस्य भी।
श्रीकृष्ण अर्जुन का सुना सम्वाद है मैंने सभी॥

75 साक्षात् योगेश्वर स्वयं श्रीकृष्ण का वर्णन किया।
यह श्रेष्ठ योग-रहस्य व्यास-प्रसाद से सब सुन लिया॥

76 श्रीकृष्ण-अर्जुन का निराला पुण्यमय संवाद है।
हर बार देता हर्ष है, आता मुझे जब याद है॥

77 जब याद आता उस अनोखे रूप का विस्तार है।
होता तभी विस्मय तथा आनन्द बारम्बार है॥

78 श्रीकृष्ण योगेश्वर जहाँ, अर्जुन धनुर्धारी जहाँ।
वैभव, विजय, श्री, नीति सब, मत से हमारे हैं वहाँ॥

॥ मोक्ष सन्यास योग अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥